पं. श्रीराम दवे कृत खण्डकाव्यों का समीक्षात्मक अध्ययन

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

की

पीएच.डी.(संस्कृत) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

कला संकाय

शोधार्थी

अवधेश कुमार मिश्र

पर्यवेक्षक

डॉ. दिनेश कुमार शुक्ल

सह आचार्य

संस्कृत विभाग

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बून्दी

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

2018

प्रमाण पत्र

मुझे प्रमाणित करते हुए प्रसन्नता हो रही है, कि शोध प्रबन्ध **''पं. श्रीराम दवे कृत खण्डकाव्यों का समीक्षात्मक अध्ययन''** शोधार्थी **अवधेश कुमार मिश्र (RS/452/10)** ने कोटा विश्वविद्यालय, कोटा के कला संकाय में पीएच.डी. (संस्कृत) के नियमानुसार निम्नलिखित आवश्यकताओं के साथ मेरे निर्देशन में पूर्ण किया है।

1. शोधार्थी ने विश्वविद्यालय के नियमानुसार कोर्सवर्क पूर्ण किया है।
2. शोधार्थी ने 200 दिन के आवासीय आवश्यकता नियम को पूरा किया है।
3. शोधार्थी ने विश्वविद्यालय के नियमानुसार समय–समय पर अपने कार्य का प्रगति प्रतिवेदन प्रस्तुत किया है।
4. शोधार्थी ने विभाग व संस्था प्रधान के समक्ष अपना शोधकार्य प्रस्तुत किया है।
5. शोधार्थी द्वारा यू.जी.सी से अनुमोदित शोध–पत्रिका में शोध पत्र का प्रकाशन किया है।

मैं इस शोध प्रबन्ध को कोटा विश्वविद्यालय, कोटा की पीएच.डी. उपाधि प्रदत्त किये जाने हेतु मूल्यांकनार्थ प्रस्तुत करने की अनुशंसा करता हूँ।

दिनांक : **पर्यवेक्षक**

(डॉ. दिनेश कुमार शुक्ल)
सह आचार्य, संस्कृत विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बूँदी

Anti-Plagiarism Certificate

It is certified that Ph.D. thesis Titled "पं. श्रीराम दवे कृत खण्डकाव्यों का समीक्षात्मक अध्ययन'' by **Awadhesh Kumar Mishra (RS/452/10)** has been examined by us with the following anti-plagiarism tools. We undertake the follows:

a. Thesis has significant new work/Knowledge as compared already published or are under consideration to be published elsewhere. No sentence, equation, diagram, table, paragraph or section has been copied verbatim for previous work unless it is placed under quotation marks and duly referenced.
b. The work presented is original and own work of the author (i.e. there is no plagiarism). No ideas, processes, results or words of other have been presented as author's own work.
c. There is no fabrication of data or result which have been compiled and analyzed.
d. There is no falsification by manipulation research materials, equipment or processes, or changing or omitting data or omitting data or result such that the research is not accurately represented in the research record.
e. The thesis has been checked using **Turnitin Plagiarism Website** and found within limits as per HEC plagiarism Policy and instructions issued from time to time.

(Awadhesh Kumar Mishra) (Dr. Dinesh Kumar Sukla)

Place : Place :

Date : Date :

शोध सार

धन्या–धरा राजस्थान की मरुधरा, बाड़मेर जनपद के समदड़ी ग्रामवासी, श्रीमाली कुलोत्पन्न श्री शंकर लाल–मथुरा देवी के आत्मज पं.श्रीराम दवे, स्वातंत्र्योत्तर काल के प्रतिष्ठित मूर्धण्य साहित्यकार है। गाँव की गोद में पले–बढ़े, सनातन संस्कारों से लबालब, सरल–सहज किन्तु पैनी–युग्दृष्टि वाली इस कवि की लेखनी ने कुल 20 कालजयी काव्य कृतियों से आधुनिक संस्कृत साहित्य को समृद्ध किया है।

उनकी कृतियों में तीन महाकाव्य, एकादश खण्डकाव्य, तीन अनूदित खण्डकाव्य, तीन अनुदित गद्यकाव्य तथा कतिपय मंचीय काव्य कृतियाँ समाहित है, जो प्रतिष्ठित प्रकाशनों द्वारा प्रकाशित भी है।

कहा जाता है कि कवि का परिवेश उनके काव्यों में किसी न किसी रुप में परिलक्षित होता अवश्य है। कवि का अतीत भी अभावों और संघर्षों में ही व्यतीत हुआ है। उन्होंने ह्रास होते मानवीय मूल्यों को तथा हावी होती स्वैर संस्कृति को कवि दृष्टि से देखा है। अतः स्वातंत्र्योत्तर काल की विडम्बनाओं के साथ–साथ युग् की संगति और विसंगतियों को नवीन कलेवर में अभिव्यंजित किया है।

कवि के समीक्ष्य खण्डकाव्यों में विविध विषयों के माध्यम से समय की विद्रूपताओं का प्रखर स्वर मुखर हुआ है, साथ ही भारत–भारती और भारतीयता की चिन्ता भी की गयी है। इनके व्यावहारिक शब्दावली, नवीन छन्द, आधुनिक प्रतिमानों से सुसज्जित इनके युग् संवादी खण्डकाव्यों में भक्ति, शृंगार और नीति, शिक्षा–संस्कृति–राजनीति, पर्यावरण चेतना, मानवीय संवेदना आदि रची बसी दिखाई देती है। धरातलीय सत्य–तथ्य की सहज प्रतीति होती है। आपके इन्हीं रचनात्मक साहित्यों से आत्मसात करवाने के लिये शोध कार्य किया गया है। कवि के लेखन में प्रौढ़ता, गम्भीरता और मौलिकता की प्रभा है। एतदर्थ इनके खण्डकाव्यों की उपादेयता, सार्थकता और श्रेष्ठता से पहचान कराने का प्रयास शोध प्रबन्ध में किया गया है। शोध प्रबन्ध सात अध्यायों में विभक्त है जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है –

प्रथम अध्याय में कवि पं.श्रीराम दवे के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का चिन्तन किया गया है। उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर उनके व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है तथा उनकी साहित्य साधना व सम्मान से परिचय कराने का प्रयास किया गया है।

द्वितीय अध्याय में खण्डकाव्यों का स्वरुप, उद्भव व विकास की चर्चा की गई है। काव्य शास्त्र के अनुसार इनका स्वरुप तथा ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार इनके उद्भव और विकास को प्रकाशित किया गया है।

तृतीय अध्याय में ग्रन्थ परिचय की कामना से पं.श्रीराम दवे प्रणीत खण्डकाव्यों का उपजीव्य एवं कथानक को उद्धृत किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में साहित्यिक समीक्षा विषयक विवेचना की गई है। जिसमें कवि की अनुभूति तथा उनकी अभिव्यक्ति को काव्यशास्त्रीय अनुशासन में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है तथा कवि की रस सिद्धता एवं काव्य के उत्कर्षक गुण, रीति, अलंकार, छन्द, भाषा, शैली, शिल्प आदि के आधार पर समीक्षा की गई है।

पंचम अध्याय में कवि के खण्डकाव्यों का संदेश व साहित्यिक अवदान को प्रस्तुत किया गया है। जिसके अन्तर्गत सनातन संस्कृति, सनातन मूल्य तथा जीवन और जगतोपयोगी सन्देशों को उद्घाटित किया गया है। साथ ही चारित्रिक चेतना मानवीय वेदना, संवेदना जैसे मानवतावादी चिन्तन को सांस्कृतिक अवदान के रुप में उजागर किया गया है।

षष्ठ अध्याय में पं.श्रीराम दवे का स्थान एक तुलनात्मक अध्ययन विषयक विवेचना की गई है। समकालीन खण्डकाव्यकारों की सम्भाव रखने वाली कृतियों का विशिष्टय प्रस्तुत कर कवि की कृतियों के साथ तुलनात्मक अध्ययन का प्रयास किया गया है ताकि कविता की नवता, सत ही सत्यता और युगीन स्पन्दना के स्वर को उजागर किया जा सकें। सप्तम अध्याय में उपसंहार को समाहित किया गया है जिसमें शोध निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार सार रुप में कहा जा सकता है कि कवि द्वारा दृष्ट स्वतन्त्रता प्राप्ति पश्चात् के भारतीय सांस्कृतिक दृश्यों को शब्दों में पिरोया है। भारतीयों का भारती से मोह भंग, प्रजातान्त्रिक विडम्बना, ह्रासोन्मुखी जीवन मूल्य, स्वच्छन्दाचार आदि युग् बोधक प्रसंगों को प्रस्तुत किया है। भाषा भाव के उत्कर्ष एवं अपकर्ष को प्रकाशित करने के उद्देश्य से इस शोध प्रबन्ध में पं.श्रीराम दवे के खण्डकाव्यों का समीक्षात्मक अध्ययन का प्रयास किया गया है।

अवधेश कुमार मिश्र
पी.एच.डी. संस्कृत
पंजीयन क्रमांक : RS/452/10
कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

घोषणा शोधार्थी

मैं **अवधेश कुमार मिश्र** (शोधार्थी संस्कृत विभाग) यह घोषणा करता हूँ, कि मेरा यह शोध–प्रबन्ध **"पं.श्रीराम दवे कृत खण्डकाव्यों का समीक्षात्मक अध्ययन"** है जो मेरे द्वारा प्रस्तुत किया गया है, यह मेरा अपना शोध कार्य है। मैंने यह शोध कार्य **डॉ. दिनेश कुमार शुक्ल,** सह आचार्य संस्कृत, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बून्दी (राज.) के निर्देशन में पूरा किया है। यह मेरा अपना मौलिक कार्य है। मैनें अपने विचारों को अपने शब्दों में प्रस्तुत किया है, और जहाँ दूसरे विचारों व शब्दों का प्रयोग किया है, वे मेरे द्वारा मान्य स्रोतों से लिया गया है। अपरिहार्य स्थिति में ली गई ऐसी हर सामग्री का यथास्थान सन्दर्भ एवं आभार व्यक्त कर दिया गया है, जो कार्य इस शोध प्रबन्ध में प्रस्तुत किया गया है।

मैं यह भी घोषणा करता हूँ कि मैंने विश्वविद्यालय के सभी अकादमिक नियमों का निष्ठा से पालन किया है तथा किसी तथ्य को गलत प्रस्तुत नहीं किया है। मैं समझता हूँ कि मेरे द्वारा किसी भी नियम का उल्लंघन करने पर मेरे खिलाफ जुर्माना भी लगाया जा सकता है यदि किसी स्रोत से बिना उसका नाम दर्शाये या जिस स्रोत से अनुमति की आवश्यकता हो, बिना अनुमति के लिया हो।

दिनांक :

शोधार्थी,
(अवधेश कुमार मिश्र)
संस्कृत

प्रमाणित किया जाता है कि शोधार्थी अवधेश कुमार मिश्र (RS/452/10) द्वारा दी गयी उपर्युक्त सभी सूचनाएँ मेरी जानकारी के अनुसार सही है।

पर्यवेक्षक
(डॉ. दिनेश कुमार शुक्ल)
सह आचार्य, संस्कृत
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बूंदी

प्राक्कथन

'संस्कृत नाम देवी वागन्वाख्याता महर्षिभिः'

समस्त ज्ञान–विज्ञानों का आगार देववाणी संस्कृत भाषा में रचित रचनाओं को माना जाता है इसकी साहित्यिक विधाऐं वैविध्य एवं वैशिष्ट्य से परिपूर्ण है तथा इसकी धारायें आदि काल से अधुनातन प्रवहमान है। लौकिक संस्कृत साहित्य की समृद्ध परम्परा में महाकाव्यों के साथ–साथ खण्डकाव्यों की भी एक महती परम्परा रही है। जिसने अपनी स्वर लहरियों से सहृदय सामाजिकों की अन्तः तंत्रिका को झंकृत किया है। आधुनिक जीवन की व्यस्तता व समयाभाव के कारण आम जनों का महाकाव्य जैसी दीर्घतम विधा के पठन–पाठन में असहजता के परिणाम स्वरुप खण्डकाव्यों का उदय हुआ। यह संस्कृत खण्डकाव्य–सरिता वैदिक काल से उद्गमित होकर अनेकानेक शब्द साधकों की लेखनी का साहचर्य पाकर अद्यतन गतिमान है। वहीं लौकिक साहित्य में कविता–कामिनी–विलास कवि कुल गुरु कालिदास की लेखनी–प्रसूत ऋतु संहारम् तथा मेघदूतम् आदि से प्रारम्भ होकर गीत–गोविन्दम्, भामिनी–विलास, अमरुशतकम् तथा शतकत्रयी आदि से आप्लावित होकर, माघ पुरस्कार पुरस्कृत स्वनाम धन्य पं. श्रीराम दवे की करांजली से प्रवाहित होकर आधुनिक संस्कृत साहित्य सिन्धु में संगमित हुयी है।

पं.श्रीराम दवे ने अपनी दीर्धकालिक साहित्यिक साधना में तीन महाकाव्य तथा एकादश खण्डकाव्यों का प्रणयन किया है। वहीं 6 विश्व प्रसिद्ध कृतियों का संस्कृतानुवाद भी किया है, जिसमें तीन संस्कृत पद्यानुवाद है, जिसे अनूदित खण्डकाव्य कहा जाता है। बीसवीं सदी में शुष्क होती संस्कृत खण्डकाव्य परम्परा को पुनर्भाश्वित करने वाले महाकवि पं.श्रीराम दवे का नाम आधुनिक संस्कृत साहित्य जगत् में सुविख्यात है। इनका खण्डकाव्य आज का आईना है। इसमें सतही सत्यता है। सांस्कृतिक संवेदना है तथा युग् को नई दिशा दिखाने का सामर्थ्य भी है। अतैव कवि के चिन्तन को साहित्य सुचिन्तकों के समक्ष लाना चाहिये। इसी इच्छा शक्ति ने शोधार्थी को शोधकार्य के लिये प्रेरित किया।

फलस्वरुप इस बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न काव्यकार की कृतिमंजुषा से अनेकानेक काव्य रत्नराशियों को निकालकर साहित्य साधकों के श्री चरणों में अर्पित करने के उद्देश्य से पं. श्रीराम दवे के खण्डकाव्यों की समीक्षा को अनुसंधान का विषय बनाया गया है।

अनुसंधान नवीन ज्ञान प्राप्त करने का व्यवस्थित प्रयास होता है। यह एक ऐसी बौद्धिक प्रक्रिया होती है, जो भ्रान्त धारणाओं का परिमार्जन करते हुये, नये ज्ञान को प्रकाश में लाती है।

पूर्वोपलब्धि का पुनराख्यान तथा नवीन उपलब्धि का आख्यान करते हुये, समीक्ष्य ग्रन्थ में निहित साहित्यिक सत्य को सर्वसमक्ष लाने के ध्येय से शोध–प्रबन्ध लेखन का प्रयास किया गया है।

यद्यपि आधुनिक संस्कृत खण्डकाव्यों पर शोध कार्य निरन्तर प्रवाहमान है। पं.दवे के खण्डकाव्यों की भी भिन्न–भिन्न प्रसंगों में समीक्षा हुई है तथापि कवि के समस्त खण्डकाव्यों का एक साथ समग्र चिन्तन अध्येताओं के सौविध्य की दृष्टि से अपेक्षित है। अतः इनके काव्यों की मौलिकता, साहित्यिक पक्ष, लोक–चेतना, सांस्कृतिक मूल्य, युग्बोध कथ्य एवं तथ्यों को माला रुप में उपस्थापित करने का विनम्र प्रयास किया गया है।

इस शोध प्रबन्ध में वर्णित विषय वस्तुओं की व्यवस्थित अध्ययन की कामना से सात अध्यायों में विभक्त किया गया है। अध्याय का आरम्भ कवि स्मरण की मंगल भावना से कवि का जीवन और उनकी साहित्यिक साधना को प्रणाम से हुआ है। द्वितीय अध्याय में खण्डकाव्यों का स्वरुप, उद्‌भव व विकास यात्रा की चर्चा की गयी है। तृतीय अध्याय में ग्रन्थ परिचय, चतुर्थ अध्याय में साहित्यिक समीक्षा, पंचम अध्याय में सांस्कृतिक अवदान और संदेश तथा छठे अध्याय में तुलनात्मक अध्ययन द्वारा कवि का स्थान निर्धारण किया गया है। अन्तिम सप्तम अध्याय में उपसंहार लिखा गया है। जिसमें शोध का निष्कर्ष समाहित है।

वस्तुतः युग् बोध के प्रति तथा आधुनिक समस्याओं के प्रति आज का खण्डकाव्यकार कितना सजग व सावधान है। देशभक्ति, सांस्कृतिक निष्ठा, चारित्रिक–प्रतिष्ठा तथा पारम्परिक पावनता के प्रति कितना निष्ठावान है, इसका साक्षात्कार समीक्ष्य खण्डकाव्यों में प्रत्यक्ष होता है। जिसे शोध प्रबन्ध के माध्यम से आलोकित किया गया है।

कवि के ग्रन्थ में स्थित भाषा और भाव की मंजुलता तथा आधुनिक संस्कृत शब्दों की चारुता को, भाषा समस्या से जूझते हुए, नवसर्जकों के लिए नवोपहार के रुप में शोध प्रबन्ध के माध्यम से प्रकाश में लाने का प्रयास शोधार्थी द्वारा किया गया है।

इस प्रकार कवि दवे के खण्डकाव्यों में समाहित समस्त काव्यावयवों का समग्र परिचय एवं आधुनिक कवि की युगीनता को युग् बोध के अवबोध में प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास किया गया है।

मेरा मानना है कि यह शोध कार्य गुरुजनों के आशीर्वाद, परिजनों की प्रेरणा, मित्रों के सहयोग तथा शुभचिन्तकों की शुभकामना के बिना पूर्ण होना कदाचित् सम्भव नहीं था।

एतदर्थ सर्वप्रथम मैं अपने शोध परिवेक्षक डॉ. दिनेश कुमार शुक्ल, संस्कृत विभागाध्यक्ष डॉ. पूर्ण चन्द्र उपाध्याय, प्राचार्य, राजकीय महाविद्यालय, बून्दी तथा शोध विभाग

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा के अधिकारी, कर्मचारियों के श्रीचरणों में अपेक्षित सहयोग के लिए साधुवाद अर्पित करता हूँ।

समीक्ष्य कवि की पुत्री डॉ. जया दवे तथा कवि के विद्वान मित्र डॉ. लक्ष्मीनारायण शर्मा का विशेष रुप से आभारी हूँ। जिन्होंने कवि के विषय में महत्वपूर्ण जानकारियाँ उपलब्ध करवायी।

पारिवारिक सदस्यों में सर्वप्रथम अपने ज्येष्ठ पिता श्री स्व. पं.श्यामनन्दन मिश्र एवं जननि स्व. प्रतिभा देवी का पुण्य स्मरण करता हूँ। जिनके संस्कारों का लाभ मुझे मिला है। पिता पं. विश्वम्भर मिश्र एवं अग्रज पं. गणपति मिश्र के आशीर्वाद के प्रति कृतज्ञ हूँ। अर्द्धागिंनी पुष्पम् मिश्रा जिनके सहयोग के विना शोध कार्य सम्भव नहीं था। वस्तुतः उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए मेरे पास उपयुक्त शब्द नहीं है। आत्मजा श्रुति की विशेष प्रेरणा तथा आत्मज शुभम्, अनुज–मिथिलेश–प्रभेश एवं अनुजा अनीता का शोधावधि में पारिवारिक दायित्व निवर्हन में यथा योग्य सहयोग ने मुझे शोध कार्य के सतत् प्रेरित किया है। अतः सभी साधुवाद के पात्र है।

राजकीय संस्कृत महाविद्यालय, कोटा के व्याख्याता–मित्रों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों का भी अपेक्षित सहयोग प्राप्त हुआ है। शोधकार्य की विषयवस्तु निर्धारण में स्व. कमलेश कुमार दीक्षित, का सहयोग भुलाया नहीं जा सकता है। डॉ. रश्मि अग्रवाल, व्याख्याता अंग्रेजी, डॉ. हंसराज गुप्ता, व्याख्याता संस्कृत वाड्मय का विशेष सहयोग एवं मार्गदर्शन से शोध कार्य पूर्ण हुआ है। एतद्र्थ अपने महाविद्यालय के समस्त सहयोगियों के प्रति हार्दिक आभार ज्ञापित करता हूँ।

शुभचिन्तकों में डॉ. ललित नामा, डॉ. कौशल तिवारी, डॉ. भूपेन्द्र राठौर, श्री ललन झा, श्री सत्यप्रकाश ठाकुर की शुभकामना शोधकार्य के प्रति रही है। अतः इनके प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ। परम सहयोगी श्री योगेश कुमार नामा जी का विशेष रुप से आभारी हूँ जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर शोध कार्य को टंकित किया है तथा उसे शोध–प्रबन्ध का रुप प्रदान किया है।

इस प्रकार अन्य सभी श्रद्धेय जन जिनका प्रत्यक्ष या परोक्ष सहयोग मिला है, उनके प्रति भी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

दिनांक :

अवधेश कुमार मिश्र
पी.एच.डी. संस्कृत
पंजीयन क्रमांक : RS/452/10
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,बून्दी
कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

विषयानुक्रमणिका

अध्याय	पृष्ठ संख्या
प्रथम अध्याय –	
महाकवि पं. श्री रामदवे का व्यक्तित्व एवं कृतित्व	1–25
द्वितीय अध्याय –	
खण्डकाव्यों का स्वरूप, उद्भव व विकास	26–50
तृतीय अध्याय –	
समीक्ष्य खण्डकाव्यों का उपजीव्य एवं कथानक	51–98
चतुर्थ अध्याय –	
पं.दवे कृत खण्डकाव्यों की साहित्यिक समीक्षा	99–252
पंचम अध्याय –	
पं. दवे के खण्डकाव्यों का सन्देश व सांस्कृतिक अवदान	253– 280
षष्ठ अध्याय –	
आधुनिक खण्डकाव्य परम्परा में पं.श्रीराम दवे का स्थान – एक तुलनात्मक अध्ययन	281–305
सप्तम् अध्याय –	
उपसंहार	306–315
शोध सार	316–325
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –	326–336
प्रकाशित शोध पत्र –	337–351

संक्षिप्ताक्षर

इस शोध–प्रबन्ध में कुछ स्थानों पर संक्षिप्ताक्षरों का प्रयोग किया गया है। जिन्हें निम्न प्रकार से समझा जा सकता है –

1. ई.पू. – ईसापूर्व
2. वि.स. – विक्रमसंवत्
3. डॉ. – डॉक्टर
4. पृ. सं. – पृष्ठ संख्या
5. श्लो. सं. – श्लोक संख्या
6. अनु. – अनुवाद / अनुवादक / अनुदान
7. पं. – पंडित
8. स्व. – स्वर्गीय
9. प्र.अ. – प्रधान अध्यापक (प्रधानाध्यापक) / प्रथम अध्याय
10. रा.स.अ. – राजस्थानसाहित्य अकादमी
11. पू. – पूज्य
12. प्र.परि. – प्रथम परिच्छेद
13. द्वि.परि. – द्वितीय परिच्छेद
14. तृ.परि. – तृतीय परिच्छेद
15. च.परि. – चर्तुथ परिच्छेद
16. पं.परि. – पंचम परिच्छेद
17. ष.परि. – षष्ठ परिच्छेद
18. द.परि. – दसम् परिच्छेद
19. का.सं. – कारिका संख्या
20. च.उ. – चतुर्थ उल्लास
21. ष.अ. – षष्ठ अध्याय
22. स.अ. – सप्तम् अध्याय
23. प्र.मयूख – प्रथम मयूख
24. अ.पु. – अग्नि पुराण
25. अ.का.सू. – अभिनव काव्यालंकार सूत्र
26. ल.गु. – लघु–गुरु

प्रथम अध्याय

महाकवि पं. श्री रामदवे का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

1. व्यक्तित्व –

(क) जन्म एवं शैशवकाल
(ख) अध्ययनकाल
(ग) सेवाकाल
(घ) साहित्य–साधना व सम्मान

2. कृतित्व –

(क) महाकाव्य कृति –

(i) भृत्याभरणम्
(ii) राजलक्ष्मी स्वयंवरम्
(iii) साकेत संगरम्

(ख) खण्डकाव्य कृति –

(i) श्रृंगारपरक खण्डकाव्य

- सौन्दर्यलीलामृतम्
- मेघोपालम्भनम्
- वियोगशतकम्

(ii) भक्तिपरक खण्डकाव्य

- ललितालहरी
- अपांगलीला
- भारतीविलास
- कामधेनुशतकम्

(iii) युग्बोधक खण्डकाव्य

- केलिभूकैतवम्
- कालकौतुकम्
- परिखायुद्धम्
- कारुण्यकादम्बिनी

(iv) अनूदित खण्डकाव्य

- यवनीनवनीतम्
- अकिंचनचैत्यम्
- ब्रह्मरसायनम्

(ग) मंचीय काव्य कृति –

प्रथम अध्याय
महाकवि पं. श्रीराम दवे का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

अपारे काव्य संसारे, कविरेकः प्रजापतिः।

यथास्मै रोचते विश्वं, तथेदं परिवर्तते।।[1]

इस अपार काव्य संसार में कवि ही एक मात्र प्रजापति है, उसे जो रुचता है वहीं वह रचता है। विद्वानों द्वारा षड् रस रुचिरा ब्राह्मी सृष्टि की अपेक्षा नवरस रुचिरा कवि भारती[2] की सृष्टि को अति उत्कृष्ट अंगीकार किया गया है तथा सकल प्रयोजन मौलिभूत अलौकिक आनन्दानुभूति दायक[3], कीर्ति–प्रीति[4] एवं पुरुषार्थ चतुष्ट्य का साधक[5] तथा त्रिविध उपदेशों में कान्ता–सम्मित उपदेश का प्रकाशक[6] केवल काव्य को ही कल्पित किया गया है।

उपर्युक्त वैशिष्ट्य से युक्त काव्य के कर्ता को ही कवि कहा जाता है, कवि क्रान्तदर्शी कालजयी, सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक होता है। वह अपने अनुभवों का चित्र शब्दार्थों में चित्रित करता हुआ, आगत–अनागत भाव तंरगों को काव्य–धारा मे सहज प्रवाहित करता है। सामाजिकों के हृदय तंत्र की मृदु तत्रिका को झंकृत कर देने की काव्योचित शक्ति सम्पन्नता के कारण ही कवि श्रेष्ठ एवं सौभाग्यशाली प्राणी कहलाता है। कहा भी गया है –

नरत्वं दुर्लभं लोके, विद्या तत्र सुदुर्लभा।

कवित्वं दुर्लभं तत्र, शक्तिस्तत्रसुदुर्लभाः।।[7]

इस संसार में मानव जन्म ही दुर्लभ है, मानवों में विद्या, विद्वानों में कवित्व, कवियों में काव्योचितशक्ति परम दुर्लभ है। वस्तुतः कवि ही इस ब्राह्मीसृष्टि का सर्वाधिक, सौभाग्यशाली प्राणी है, जिसे भगवती भारती की असीम अनुकम्पा प्राप्त होती है। अनुकम्पा से ही उस शक्ति का आविर्भाव होता है, जिससे कवित्व की प्राप्ति होती है। उसी शक्ति के सामर्थ्य से कवि काव्यामृत की अनभ्रवृष्टि करने में समर्थ होता है। मृतिका–जल–बीज की समष्टि से स्फुटित पौधवत्, शक्ति–निपुणता–अभ्यास[8] से अभिसिंचित प्रतिभा वाटिका में नैसर्गिक काव्यकुमोदिनी मुदित होती है। जिसके मोद से मानव मानस अंगना–लावण्य सम प्रतीयमान[9] की प्रतीति करता है। संस्कृत काव्य परम्परा में कवियों की बहुविध कोटियाँ सम्मुख आती है। बौद्ध ग्रन्थ अंगतुरनिकाय में काव्य रचना प्रक्रिया की दृष्टि से कवियों को चार भागों में विभक्त किया गया है।

1. सूत कवि – प्राचीन आख्यान को प्रस्तुत करने वाला।
2. प्रतिमान कवि – यथादृष्ट लिखने वाला कवि।
3. चिन्ता कवि – समाधि की दशा में अवस्थित होकर उत्कृष्ट काव्य की रचना करने वाला।
4. अर्थ कवि – पुरुषार्थ का उपदेश देने वाला कवि।

अनुसंधेय कवि **'पं. श्रीराम दवे'** प्रतीयमान कवि की श्रेणी में आते हैं। उन्होंने अपने काव्य में **यथादृष्ट अनुभवों का** ही चित्रण किया है :

कवि की रचना कितना ही कल्पना प्रधान क्यों न हो। वह समाज से असम्बन्धित नहीं हो सकता, समाज की तात्कालिक–परिस्थियों का प्रतिबिम्ब उसमें रहता ही है। कवि का दृष्ट एवं अनुभूत भाव–तरंगें ही उद्वेलित हो काव्यधारा में प्रवाहित होती है। जैसा कि, वाल्मीकि द्वारा दृष्ट एवं अनुभूत क्रोंच पक्षी का शोक कवि के श्लोक में समाहित हो गया –

काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा।
क्रोंचद्वन्दवियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः।।[10]

इस प्रकार समकालीन सांस्कृतिक दशाओं को तथा क्रान्तदर्शी सत्य–तत्थों को समुचित विन्यास करने वाले कवि को आचार्य राजशेखर ने महाकवि कहा है –

'सर्वगुणो योगी महाकविः'[11]

पं. श्रीराम दवे भी उक्त गुणों से युक्त महाकवि है, जिन्होंने 03 महाकाव्य एवं एकादश खण्डकाव्यों की रचना की है, उनकी रचना में उनके जीवन–दर्शन का मर्म निहित है, उनके कृतित्व में ही उनका व्यक्तित्व परिलक्षित है। अतः मंगलाचरण की परिपालना की कामना से अध्याय का आरम्भ शोधार्थी द्वारा कवि के व्यक्तित्व एवं कृतित्व विवेचन रुप मंगल स्तवन से किया जा रहा है।

1. व्यक्तित्व –

यद्यपि आधुनिक संस्कृत–साहित्य के गौरवपूर्ण हस्ताक्षर पं. श्रीराम दवे का जीवन वृतान्त प्रायः उनकी सभी रचनाओं में प्राप्य है, तथापि अनुसंधाता द्वारा उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के शोधपरक अध्ययन के निमित्त कविकृत काव्यों में उल्लिखित सन्दर्भों का अध्ययन करने के पश्चात्, उनके जन्मस्थान 'समदड़ी' गाँव जाकर, ग्रामवासी से साक्षात्कार स्थापित कर, उनके इष्ट–मित्रों से सम्पर्क कर तथा वर्तमान निवास जोधपुर में कवि के साक्षात् दर्शन कर, उनके परिजनो सें तथ्य प्राप्त कर, **कवि पं. श्रीराम दवे** का व्यक्तित्व निरुपण किया जा रहा है। प्रस्तुत अध्ययन से अनागत शोधार्थियों को लाभ हो सकेगा।

(क) जन्म एंव शैशवकाल –

राजस्थान प्रान्त का रजस्थान एवं मरुधरा की पुण्या वसुंधरा 'बाड़मेर' जनपद में समदड़ी (श्री मन्दिर) नामक गांव प्रतिष्ठित है। जहाँ शैलवासिनी–आद्याशक्ति–लक्ष्मीस्वरुपा–कुलदेवी–कल्पिता भगवती **ललितादेवी** का ललित–मन्दिर अधिष्ठित है। जिसका पुराकालिकी बाह्यरुप सम्प्रति ललितालहरी आदि ग्रन्थ में वर्णित वर्णनानुसार नहीं है। अनायास विकास के दम्भ में प्रकृतस्थान से रमणीय वृक्षावली तथा पर्वतों की कन्दराओं से कमनीय वनस्पतिवृन्द विलुप्तप्राय कर दिय गये है। खनन माफियाओं के प्रस्थर व्यापार से प्रकृति का सुरभ्य स्वरुप विगलित हो चुका है। जल कुण्ड़ों में झर–झर झरता हुआ निझरों का प्रवाह अवरुद्ध हो गया है। पर्वतीय पशु तथा वन्यप्राणियों का अन्यत्र पलायन हो चुका है।

अब वहाँ वर्ण आधारित बस्तियाँ तथा कर्म आधारित व्यापार भी दृष्टिगोचर नहीं होते हैं। ना ही यातायात के लिऐ ग्राम्य–सुलभ वृषभकटकादि है, ना ही उबड़–खाबड़ कच्ची पगड़ण्ड़ी स्वरुप सड़कें ही दिखाई देती है। वहाँ के कृषक धनिक हो गये हैं। कृषि भूमि आवास भूमि में एवं कच्चे मकान भव्य प्रासाद में परिवर्तित हो गये हैं। उत्सवों का स्वरुप बदल चुका है। ऐसी नैसर्गिक छटा से अभिराम हुआ करती थी, **श्री मन्दिर नाम्ना प्रसिद्ध ग्राम समदड़ी।**

इसी ललिता धाम की धन्या घरा पर ब्रह्म–कर्मनिष्ठ ब्राह्मणों की बस्ती 'ब्रह्मपुरी' वास्तव्य श्रीमाली–ब्राह्मण के अति सामान्य परिवार में दिनांक 22.09.1922 को कवि पं. श्रीराम देव का जन्म हुआ था।

धन्य होते हैं वे माता–पिता जिनके हृदय–उद्यान में क्रान्तदर्शी कवि रुपी प्रसून प्रस्फुटित होता है, ऐसे शिशु–सौरभ से जिनका आंगन सुवासित होता रहता है। अनन्तकाल तक जिनकी यशकाया पुलकित होती रहती है, ऐसी धन्या–पुण्या, गौरीगुणालंकृता कवि की पुज्या अम्बा का नाम **श्रीमती मथुरा देवी** था तथा पिता का **श्री नाम श्रीमान् शंकरलाल शर्मा** था।

श्रीमालिद्विजवंशलब्ध जनुषः श्री मन्दिरावासिकः,
श्री मच्छङ्करलालशर्मसुधयः पुत्रः शिवोपासिनः।
पुज्याम्बामथुरा मदेकतनयालम्बा कृपाजाह्नवी,
तद्वात्सल्य सुधाभिषिक्तहृदयः श्रीरामनामास्यम्यहम्।।[12]

माता में मथुरातिपुण्यचरिता गौरीगुणालंकृता,
तातः शंकरलालभूसुरवरो यातो दिवं शैशवे।
ख्याता ग्रामटिका शुभा समदड़ी लूणीतटे संस्थिता,
यत्रास्ते ललिताम्बिका शिखरिणी–मध्येस्थिता गह्वरे ।।[13]

कवि के पिता श्री शंकरलाल शर्मा महोदय अति सामान्य परिवार में उत्पन्न साधारण स्थिति के ब्राह्मण थे तथा माता विद्वद्–परिवार में उत्पन्न मेधावी एवं सात्विक प्रवृति की थी। वे कवि के मातामह पातनवाड़ा–अधिवासी श्री लक्ष्मीनारायण शर्मा महोदय की एकतनया थी।

कवि शैशवावस्था में अपने माता–पिता के साथ समदड़ी गाँव के ब्रह्मपुरी स्थिति धर में ही रहते थे। घर की स्थिति दयनीय थी। मिट्‌टी, पत्थर से निर्मित एवं तृणादि से आच्छादित, एक वातायन युक्त श्वेतसुधालेपित लधुकाय आवासगृह था। आवास के सन्निकट एक गौशाला थी, जहाँ येन–केन प्रकारेण मर्यादित जीवन यापन हुआ करता था।

कवि के पिता श्री शंकरलाल के भाग्य में विधाता ने शायद पितृ–सुख नहीं लिखा था, एतदर्थ बाल्यकाल में ही उनके पिता का स्वर्गवास हो गया था। अनाथ शंकरलाल का विधिवत् भरण–पोषण पितृस्वसा (बुआ) ने पुत्रवत् किया। उनकी पितृस्वसा लूणीनदी के कूलस्थित पातनवाड़ा गांव में निवास करती थी। बालविधवा एवं सन्ततिविहीन होने के कारण वहाँ के 'सामन्त' श्रीमन्तों की गृह परिचर्या ही उनकी दिनचर्या थी। उनकी पितृस्वसा (बुआ) के सम्बल तथा स्वयं के श्रमबल से ही कवि के पिताश्री ने स्वयं का व्यवसाय स्थापित किया था।

गांव के मध्य में उनकी मिष्ठान्न की दुकान थी। जहाँ शुद्ध धी से निर्मित पकवानों का स्वाद लेने प्रायः सभी वर्ग के मिष्ठान्न प्रिय ग्राहकों का समागम होता रहता था। यत् किंचित् उपार्जन के साथ, सानन्द समय–यापन भी हो रहा था, कि अकस्मात् वज्रपात हुआ, उनकी वृद्धा बुआ का देहावसान हो गया। कवि के पिता ने विधिवत् मातृस्वरुपा, पितृस्वसा का अन्त्येष्ठी कर्म सम्पादित कर उनकी आत्मा की शान्ति के लिये ऋणादि लेकर ब्राह्मणों को सद्क्षिणा भोजन करवाया। मानसिक व्यथा से व्यथित, आर्थिक विपन्नता से तार–तार पं. श्रीराम दवे के पिता श्री शंकरलाल पितृस्वसा की मृत्यु के ठीक एक वर्ष पश्चात् विषमज्वर से पीड़ित हो गये, परिजनों ने यथाशक्ति उनका उपचार भी कराया, किन्तु विधि की प्रतिकूलता के कारण विफलता ही मिली, माता मथुरादेवी विधवा हो गई। कवि की दोनों बहिने अनाथ हो गयी, 6 वर्ष की अल्प अवस्था में ही कवि पितृविहीन हो गये। आत्मीयजनों की सान्त्वना, प्रतिवेशियों की सद्भावना से अनुप्राणित भर्तुशोक–विह्वला के दीन–हीन हाथों

में सन्तति भरण का भार आ गया, एतदर्थ यथामति, यथाशक्ति, यथास्थिति, कवि पुत्र एवं दोनों पुत्रियों का पालन पोषण निमित्तिक–दायित्वों का निर्वहन करती हुयी दुर्गम–दुर्ग सी दारुण जिन्दगी को, अतीत का स्मरण करती हुयी, व्यतीत करने लगी। विषम परिस्थिति, अर्थाभाव और ऋणपुनर्भरण का दबाव, के त्रिनिनाद से त्रस्त कविपरिवार, पिता के मित्र श्री भगदत्त शर्मा के सहयोग से गौगृह (गौशाला) को न्यास रुप में संस्थापित कर क्रूर ऋणदाता ताराचन्द के ऋण से उऋण हुए। इस प्रकार वक्र समय चक्र के विविध संकष्टों में जीवन व्यतीत करते हुए कवि की बहिनों का विवाह भी सम्पन्न हो गया। एक का विवाह गुर्जर–प्रदेश में तथा द्वितीय का विवाह सिन्ध–प्रदेश में किया गया। माता मथुरा देवी सामन्तों के यहाँ पाक कार्य से उपार्जित धन–धान्य से पुत्र सहित पारिवारिक योगक्षेम वहन करने लगी।

(ख) अध्ययन काल –

पितृसुख से वंचित प्राथमिक सुविधाओं से रहित, माँ की अंगुली पकड़े लोकयात्रा करने वाला बालक आपदा और विपदा के बादल को चीरकर कविता–कामिनी का कान्त बनकर काव्य गगन का अद्भुत नक्षत्र बनेगा, नितान्त असम्भव सा प्रतीत होता है। किन्तु ''दुस्करंकिंमहात्मनाम्।''

कवि की अध्ययन–यात्रा **ग्रामटिका गाँव** से प्रारंभ हुयी। उन्होंने ग्रामटिका गाँव की प्राथमिक विद्यालय से प्राथमिक शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात्, अपनी अग्रजा के पास **अमरकोट** चले गये। दुर्भाग्य ने वहाँ भी साथ नही छोड़ा। दो वर्ष पश्चात् ही दोनों बहिनों का देहावसान हो गया, एक बहिन का पैर फिसलकर कुऐं मे गिरने से तथा द्वितीया का प्रसवकाल की असह्रय वेदना से । इस वेदना–वज्र से विषम वैधव्य की असहनीय पीड़ा को सहन करती हुयी माता मथुरा देवी अत्यन्त दुःखी हुयी। इस दुर्घटना का कवि के बालमन एवं अध्ययन पर भी सीधा प्रभाव पड़ा परन्तु उनका अध्ययन बहिन के पति के साथ रहकर जैसे–तैसे चलता रहा। कवि ने इस विषम परिस्थिति में भी अपने धैर्य को संयमित रखा, तथा **प्रथमा की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की।** उस समय कवि पं. श्रीराम दवे की आयु **12 वर्ष** की थी।

प्रथमा परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् वे अपनी माता के पास आ गये। इसी समय मातुल मणिशंकर के घर उनका यज्ञोपवीतसंस्कार किया गया। यज्ञोपवीतसंस्कार के पश्चात् अध्ययनार्थ अपने मामा के साथ हैदराबाद चले गये, वहीं सिंधू नदी के तट पर किसी ब्रह्मचारी का आश्रम था उसी आश्रम की एक कुटिया में मामा एवं मामा के पुत्र विद्याधर के साथ रहने लगे।

कुछ समय पश्चात् दुर्भाग्य से कवि की मामी की मृत्यु भी हो गयी, पत्नी के शोक मे व्यथित मामा का व्यवहार भी रुक्ष हो गया, अवसर पाकर कवि ने स्वावलम्बन का रास्ता चुना और एक शिवालय में आश्रय लिया। गुरुजनों के अनुग्रह से विद्यालय से दस रुपया मासिक छात्रवृति मिलने लगी, जिसमें से पाँच रुपये स्वयं के खर्चे के लिए रखकर शेष पाँच रुपया माता को भेजते रहे जिससे स्वयं की तथा माता के पोषण की चिंता कुछ कम हुयी।

हैदराबाद मे ही सिंधू नदी से लगभग 7 किलोमीटर की दूरी पर गिद्धमल व्यापारी के नाम से सुप्रसिद्ध **गिद्धमल संस्कृत पाठशाला** थी। सेठ गिद्धमल का संस्कृतानुरागी पुत्र **दीवान दयाराम पाठशाला का संचालक** था। पं. काशीनाथ उपाध्याय प्रधानाचार्य थे। इस पाठशाला में संस्कृत की विविध विधाओं के साथ–साथ संगीत, आंग्लभाषा, चित्रकला, कर्मकाण्ड और नृत्यकला की शिक्षा भी दी जाती थी, यहाँ का पुस्तकालय भी समृद्ध था तथा सभी गुरुजन अपने–अपने विषय के प्रकाण्ड पण्डित थे। इसी पाठशाला के विषय–विशेषज्ञ श्री गुरुचरणों में अध्ययन करते हुए **साहित्य की प्रथमा परीक्षा उत्तीर्ण की।**

हैदराबाद में ही अकस्मात् हिन्दी एवं संस्कृत के निष्णात् विद्वान **नागार्जुन** से पं. श्रीराम दवे का सम्पर्क हुआ, जिनकी प्रेरणा से ही उन्होंने संस्कृत में गद्य–पद्य लिखना प्रारम्भ किया। शनैः–शनैः उनके लेखन में गति आने लगी, चिन्तन को शब्द मिलने लगा, शब्दों को वाक्य और वाक्यों को प्रवाह मिलने लगा। फलस्वरुप हैदराबाद प्रकाशन से प्रकाशित होने वाली **कौमुदी पत्रिका** में उनके लेख प्रकाशित होने लगे तथा विद्वानों के मध्य **प्रतिष्ठित विद्यार्थी** बन गये। उनकी मेघा, चिन्तनशीलता तथा उद्यम से प्रभावित होकर संचालक मण्डल ने उसी गिद्धमल पाठशाला में उन्हें अध्यापक नियुक्त कर लिया। उसी विद्यालय में अध्यापन कार्य करते हुए कवि ने **मध्यमा परीक्षा काव्यतीर्थ** उत्तीर्ण कर ली।

काव्यतीर्थ परीक्षा मे प्रथम श्रेणी आने से प्रभावित पाठशाला अध्यक्ष **श्री केवलदास** ने **कराची नगर** के विशालकाय सुसमृद्ध पुस्तकालय मे कार्य करने के लिए उनकी **नियुक्ति** कर दी। उस समय पुस्तकालीय कार्यालय का समस्त कार्य आंग्लभाषा में किया जाता था, एतदर्थ अंग्रेजीभाषा में कार्य सम्पादित करते हुये, उनकी आंग्लभाषा भी हिन्दी, संस्कृत की तरह ही समृद्ध हो गयी। अध्ययन काल में ही प्रसंगवश अपने गुरुश्रेष्ठ के साथ कवि का **करांची शहर** में जाना हुआ, जहाँ उनकी मुलाकात **श्री रघुनन्दन** नाम के एक व्यक्ति से हुयी, रघुनन्दन कवि की प्रतिभा से प्रभावित होकर विवाह–योग्या अपनी बहिन यशोदा से, विवाह का मानस बना कवि श्रीराम दवे को भोजन के लिए अपने घर आमंत्रित कर लिया। कवि की माता मथुरादेवी की अनुमति तथा यशोदा के पिता की सहमति से करांची में ही **21 वर्षीय** कवि एवं **11 वर्षीया यशोदा का विवाह** सम्पन्न हुआ। विवाह के पश्चात् सपत्नीक

श्वसुर के भवन में ही सानन्द निवास करने लगे, वहीं करांची नगर के केन्द्रीय पुस्तकालय में कार्य करते हुए, उन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय से **मैट्रिक परीक्षा प्रथम श्रेणी में** उत्तीर्ण की।

इस प्रकार **संस्कृत** और **अंग्रेजी** दोनों विषय में उपाधि एवं ज्ञान प्राप्ति पश्चात् कवि के समक्ष आजीविका की समस्या समाप्त–प्राय हो गयी। पुस्तकालय में कार्य करते हुए उनका सम्पर्क विश्वविद्यालय के विभागाध्यक्ष **श्री डोलरराम मांकड** से हुआ, अनेक विद्वानों से संपर्क तथा प्रकाशित लेखों के कारण विद्वानों में उनकी प्रशस्ति बढती गयी। फलस्वरुप करांची हाईस्कुल मे संस्कृत अध्यापक के पद पर इन्हें नियुक्ति मिली तथा इनके अध्यापन कार्य को प्रसिद्धी प्राप्त हुयी।

(ग) सेवाकाल –

''उद्योगिनं पुरुषसिहमुपैति लक्ष्मी''

वस्तुतः उद्योगी पुरुष ही लक्ष्य को प्राप्त कर पाता है।

कवि 'पं. श्रीराम दवे' का नाम उद्योगी–पुरुष के रुप में आदर के साथ लिया जा सकता है। विषम परिस्थितयों में स्वयं को संयमित रखते हुये, गुरुजनों का स्नेहाशीष शिरोधार्य कर, अथक्–परिश्रम, अद्भुत्–अध्ययन और आध्यात्मिक–अनुशीलता के बल से अपने मानस–मेदनि को सतत् उर्वरा बनाकर, अनेकानेक पद–पीठिकाओं को अलंकृत करते रहे।

उद्धरणीय होती है कतिपय ऐसी प्रतिभा, जिन्हें अध्ययन काल में ही अध्यापन का अवसर प्राप्त होता हैं। कवि श्रीदवे ने जिस विद्यालय से **प्रथमापरीक्षा उत्तीर्ण** की उसी विद्यालय में अध्यापन का अवसर प्राप्त हुआ। हैदराबाद के ही गिद्धमल–संस्कृत–पाठशाला में **सर्वप्रथम संस्कृताध्यापक** नियुक्त हुये।

अध्ययनान्तर कंराची नगर के **केन्द्रीय पुस्तकालय में सहायक पुस्तकालयाध्यक्ष के पद** पर कार्य करते हुए अपनी मेधा को महनीयता प्रदान की।

सहायक पुस्तकालयाध्यक्ष के पद पर कार्य करते हुए, हिन्दी–सिन्धी–उर्दु–संस्कृत और आंग्लभाषा का उच्चस्तरीय ज्ञान तथा पं. कालूराम द्वारा सम्पादित एंव प्रकाशित पत्रिका **'कौमुदी'** में प्रकाशित लेख ने कवि को विद्वानों में प्रशस्ति दिलाई, फलस्वरुप **करांची नगर के प्रतिष्ठित हाईस्कूल में संस्कृत के अध्यापक** पद पर नियुक्त हो अध्यापन कार्य किया। संस्कृत विषय का अध्यापन उनके लिए रुचिकर था, अतः उन्होंने शताधिक छात्र–छात्राओं को संस्कृतानुरागी बना दिया। कवि जब हैदराबाद में अध्ययनशील थे, उसी समय स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहे कतिपय राष्ट्रभक्तों के सम्पर्क में आने तथा **उन्हीं की प्रेरणा से राष्ट्रभाषा के प्रचार में संलग्न हो गये।**

भारत का विभाजन न हो इसलिए प्रयत्नपूर्वक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के स्वयंसेवक गण हिन्दुओं का सिन्ध नगर से पलायन रोकने का प्रयास कर रहे थे। कवि जिस विद्यालय के अध्यापक थे, वहां के बहुत से छात्र और अध्यापक स्वयंसेवक थे ।

स्वयंसेवक **श्री लालकृष्ण आडवाणी संघ के प्रमुख शिक्षक थे,** वे राष्ट्रभक्ति, संगठन, राष्ट्रभाषा की समृद्वि, संस्कृत भाषा के अध्ययन की अनिवार्यता, मुस्लिमलीग की बर्बरता का प्रतिकार आदि राष्ट्रीय हिन्दुवादी चिन्तन स्वयंसेवकों के समक्ष रखते थे। राष्ट्रवादी चिन्तन के पक्षधर होने के कारण कवि ने राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की सदस्यता ग्रहण कर ली। श्रीदवे चिन्तनशील प्राणी थे, लेखन मे रुचि थी अतः उन्हें **बौद्धिक प्रमुख का दायित्व दिया गया।** बौद्धिक प्रमुख के रुप मे उन्हे **'गुरुजी'** आदि के भाषणों का सार संग्रह करना होता था।

देश का विभाजन राष्ट्रनायकों द्वारा स्वीकार कर लिया गया था, करांची नगर में मुस्लिमलीग का शासन प्रारंभ हो गया था, मुस्लिमों द्वारा हिन्दुओं पर अत्याचार किये जा रहे थे, विभाजन की व्यथा से पीड़ित व्यक्ति प्राण रक्षा के लिए वहाँ से पलायन करने लग गये थे।

कवि **स्वयंसेवक** होने के कारण **पलायन नहीं कर** सकते थे, सिंघ विभाजन के **संघर्ष के लिए उन्हे वही रुक कर कार्य करना था,** अतः उन्होंने करांची से पलायन करना स्वीकार नहीं किया। किन्तु विधाता को कुछ और ही स्वीकार था। अकस्मात् उन्हें गांव समदड़ी से आया हुआ तार प्राप्त हुआ, **''माता मरणसन्न है'',** पढ़कर शून्य हो गये, कि यह कैसी महती दुविधा, एक ओर संघ का दायित्व दूसरी ओर एकसन्ततिमाता के प्रति पुत्र का कर्त्तव्य, किंकर्तव्यविमूढ़ कवि, वरिष्ठों के परामर्श से आवश्यक प्रमाण–पत्र और पत्नी को साथ लेकर **कराची से समदड़ी (बाड़मेर)** के लिए रेलयान से प्रस्थान कर **माता मथुरादेवी** के पास पहुँच गये। कुशल क्षेम के पश्चात् पुनः योगक्षेम की चिन्ता प्रारम्भ हो गयी, परिवार पालन के लिए अपेक्षित वित्त की व्यथा प्रतिक्षण व्यथित करने लगी।

आजीविका के लिए यत्र–तत्र प्रयास करने के पश्चात् गाँव के समीप ही **जसोल नामक गाँव के प्राथमिक विद्यालय में 40 रुपये प्रति माह में प्रधानाध्यापक पद पर नियुक्ति प्राप्त कर ली,** किन्तु उन्हें संतुष्टि नहीं मिली। इसी काल में करांची मे स्थित विद्यालय की स्थापना बम्बई में हो गयी। बम्बई से स्वयंसेवक बंधु अध्यापक ने कवि को पत्र लिखा, पत्र पढ़ने के पश्चात् किंचित् विमर्श के बाद बम्बई जाने का मानस बना लिया, बम्बई पहुँचकर स्वयंसेवक बंधुओं के सहयोग से **कल्याण नगर स्थित विद्यालय मे अध्यापक पद पर पुनः नियुक्त हुऐ।** इस प्रकार पुनः अध्यापन कार्य करते हुये जीवन–यापन करने लगे। प्रायः

सायंकाल इष्ट–मित्रों के साथ भ्रमणार्थ समुद्र के किनारे चौपाटी तट पर चले जाया करते थे, वहाँ विलासी जनों के विलास–हास–परिहास को देखकर मन में उद्भूत भावों को पद्यबद्ध कर आनन्दित हुआ करते थे। वहाँ की जलवायु उनके स्वास्थ्य के अनुकुल नहीं थी, फलस्वरुप खुजली रोग से पीड़ित हो गये, अन्ततः लगभग 15 महीने रहने के पश्चात् बम्बई त्यागने का निश्चय कर, बम्बई से जयपुर आ गये।

जयपुर में स्वयंसेवक बन्धुओं के सहयोग से **कवि ने हिन्दी साप्ताहिक पत्रिका का सम्पादन प्रारंभ किया,** किन्तु इस कार्य से भी संतुष्ट नहीं हुये। कवि जयपुर से जोधपुर आ गये, जहाँ उनका साला रघुनन्दन व्यास शरणार्थी व्यवस्था विभाग मे कार्यरत था, कुछ दिन वहीं व्यतीत करने के पश्चात् जोधपुर में ही नौकरी करने की अपनी इच्छा, रघुनन्दन जी के समक्ष प्रकट की।

रघुनन्दन व्यास के प्रतिवेशी बैंक कर्मी शिवनन्दन के सहयोग से **बीकानेर राज्य स्तरीय बैंक में लिपिक के पद पर** नियुक्ति मिल गयी। कवि ने सितम्बर 1950 में बैंक की सेवा आरम्भ कर दी। प्रकृति से संस्कृतज्ञ किन्तु कार्य वाणिज्य विषयक **'दुष्कर किं महात्मनाम्[1]'** को चरितार्थ करते हुए लिपिकीय कार्य मे प्रवीणता प्राप्त कर यथासमय लेखाकार के पद पर प्रोन्नत हुए ।

वित्तकोषीय सेवा के साथ–साथ प्रकृति के अनुरुप संस्कृत के विद्वानों, संस्कृतानुरागी छात्रों का साहचर्य प्राप्त कर साहित्यिक चर्चा में अभिरुचि रखने लगे। पं. श्रीदवे के मित्र एवं संस्कृत महाविद्यालय के गुरुश्रेष्ठ पं. मणिशंकर द्विवेदी तथा पं. कालुराम व्यास के प्रयास से संस्कृत के उच्चस्तरीय कार्यक्रमों में सारस्वत स्थान को सुशोभित करने लगे। इसी पठन–पाठन, लेखन–वाचन और सम्भाषण की वेला में कवि ने वाराणसी से अंग्रेजी विषय के साथ शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की, तदनन्तर जोधपुर विश्वविद्यालय से अंग्रेजी माध्यम में स्नातक एवं दर्शन शास्त्र से स्नातकोत्तर की परीक्षा उत्तीर्ण की। सकल अकादमिक उपाधि उपलब्धि पश्चात् भी उनकी सारस्वत साधना सतत् गतिमान रही। प्रातः से सायं वाणिज्य–व्यवस्था विचारों में विचरण, अनन्तर साहित्यिक, सामाजिक सदाचारों का आचरण, अद्भुत् सामंजस्य का गौरवपूर्ण उदाहरण कहा जा सकता है।

'विभज्य नक्तंदिवमस्तन्द्रिणा वितन्यते तेन नयेन पौरुषम्'[14]

वस्तुतः पुरुषार्थी पुरुष अपने पौरुष का वितान इसी प्रकार करता है। वित्तकोषीय भृत्यवृत्ति में स्थानान्तरण एक प्राकृतिक प्रक्रिया है, अतः निसर्गस्वरुप कवि का स्थानान्तरण **जोधपुर से फलौदी शाखा प्रबन्धक** के पद पर हो गया। फलौदी नगर में शाखा प्रबन्धकीय कार्यों का प्रबन्धन करते हुए वृद्धा माता मथुरादेवी की सेवा का सौभाग्य भी कवि को प्राप्त

हुआ किन्तु यह सौभाग्य किंचित् सामयिक ही रहा। ममतामयी माता का असामयिक देहावसान हो गया, नियति के नीयत को भला कौन जान सकता है ? पुत्र का शास्त्रीय दायित्व श्राद्धादि कृत्य से निवृत्त होकर सहज हो ही रहे थे कि कवि का स्थानान्तरण **फलौदी से उदयपुर हो गया** । उदयपुर मे ही सौभाग्य से संस्कृत के मूर्धन्य विद्वान पं. खड्गनाथ मिश्र से साक्षात्कार हुआ, उनके सानिध्य में विधिपूर्वक ब्रह्मसूत्र एवं शांकरभाष्य के अध्ययन का अवसर मिला।

कुछ समय पश्चात् ही उदयपुर से उदयपुर मण्ड़ल के **'आमेट नगर'** की नवीनशाखा में स्थानान्तरण हो गया। वहाँ भी उनकी भेंट संस्कृतानुरागियों से हो गयी, उन सभी के सौविध्य से प्रत्येक रविवार को **'साहित्य गोष्ठी'** का आयोजन होने लगा। एक बार कवि को परिवार नियोजन के कार्यक्रम में आमंत्रित किया गया, होलिका त्यौहार का अवसर था, **'लुपाष्टकम्'** की रचना कर उन्होंने सभी का मनोरंजन किया। इस प्रकार आमेट नगर मे बैंक सेवा के साथ साहित्य सेवा का सुखद अनुभव हो रहा था, कि कुछ समय पश्चात् ही वहाँ से भी कोटा मण्डल के शाहबाद नामक स्थान पर कवि का पुनः स्थानांतरण हो गया। चार वर्ष शाहबाद में सेवा देने के पश्चात् **बालोतरा** में पदस्थापित हुए।

बालोतरा से पुनः जोधपुर नगर मे स्थानांतरण हुआ, तीन वर्ष की सेवा पश्चात् कवि का स्थानांतरण जयपुर मुख्यालय मे हुआ। अन्ततः सेवानिवृति के समय जोधपुर आ गये।

इस प्रकार जालोरी गेट जोधपुर की शाखा से अधिवार्षिकी आयु पूर्ण कर 30 सितंबर 1980 को बैंक सेवा से निवृत हुए। तीस वर्ष तक निरन्तर बैंक में सेवा करते हुए विभिन्न प्रकार के अनुभव प्राप्त हुये। बाल्यकाल से लेकर वृद्धावस्था पर्यन्त विविध बाधाओं को पार करते हुए अनुभूत क्षणों को छन्दों में पिरोते हुए नैसर्गिक भाव से साहित्य–साधना में समा गये।

(घ) साहित्य साधना व सम्मान –

पं. श्रीराम दवे संस्कृत साहित्य के व्यापक आकाश का चमकता हुआ एक विलक्षण तारा है जिसकी साहित्य–सृजन साधना ने समाज के हर पक्ष को अलंकृत किया है, चाहे वो माघ पुरस्कृत **'मृत्याभरणम'** महाकाव्य हो या **'राजलक्ष्मीस्वयंवर'** या **'साकेतसंगरम्'**। इन सभी महाकाव्यों में काव्यविधा का प्रत्येक पक्ष उजागर हुआ है। कवि सहृदय होता है, उनके अन्तः चेतना में जो भाव होता है, कभी न कभी उद्भाषित होता ही है, कवि के खण्ड़काव्यों में तथा अनूदितग्रन्थों में इसकी झलक दिखाई देती है। बैंक सेवा से सेवानिवृत होने के उपरान्त पारिवारिक–सामाजिक–धार्मिक और राष्ट्रीय कार्यों मे संलग्न होते हुए भी, उनकी

साहित्य साधना अवरुद्ध नहीं हुई, तथा वे निष्काम योगी की भाँति साहित्य–सर्जना की साधना में सतत् निमग्न रहे।

बाल्यकाल, अध्ययनकाल एवं सेवाकाल के सुख–दुःखों को, इष्ट–मित्र–परिजनों के मनोभावों को तथा यथास्थान, यथादृष्ट उद्गारों को शब्दबद्ध एवं छन्दबद्ध करने की साधना में मानो समाधिस्थ हो गये।

सेवानिवृत्ति के सुख–दुःखात्मक बीजों से उत्पन्न क्षोभात्मक व्यंग्यप्रधान **''भृत्याभरणम्'** नामक महाकाव्य की रचना की, जिस पर **'राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर'** ने उन्हें **माघ पुरस्कार** से सम्मानित किया।

'विश्व हिन्दु परिषद्' के संस्कृत सेवी विद्वानों के सम्पर्क एवं प्रभाव के परिणाम स्वरुप 'विश्व संस्कृत प्रतिष्ठान' पाण्ड़िचेरी के अन्तर्गत राजस्थान प्रदेश प्रमुख का दायित्व मिला। इस संस्था के माध्यम से **'गृहे–गृहे संस्कृतम्'** का प्रचार–प्रसार करते हुए जोधपुर नगर में नागरिक सम्मान से सम्मानित हुये।

'विश्व संस्कृत प्रतिष्ठान में कार्य करते हुये, राजस्थान के संस्कृत विद्वानों से परिचित हुये, कवि की वाक्पटुता, लेखन–कुशलता एवं विद्वता से प्रभावित हो, जयपुर से प्रकाशित होने वाली संस्कृत की प्रतिष्ठित मासिक पत्रिका **'भारती'** के सहसम्पादक बनने का अवसर प्राप्त हुआ। भारती पत्रिका के माध्यम से कवि ने लेखन व सम्पादन के द्वारा **साहित्य साधना** करते हुए संस्कृतानुरागियों के हृदय में गौरवपूर्ण स्थान और सम्मान प्राप्त किया।

सिन्ध प्रान्त के (वर्तमान पाकिस्तान) के हैदराबाद से प्रकाशित **कौमुदी** नामक पत्रिका में प्रकाशित लेखों के माध्यम से कवि ने संस्कृत सेवा करते हुए सम्मान को प्राप्त किया। राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर की **'स्वरमंगला'** पत्रिका मे प्रकाशित विविध संस्कृत गद्य–पद्य एवं कहानियों के द्वारा संस्कृत समाज को नई उर्जा दी।

इस प्रकार संस्कृत भाषा के प्रति समर्पित, संस्कृति के अनन्योपासक, महाकवि पं. श्री रामदेव ने निर्भीक और निश्छल शैली मे यथादृष्ट भावों की श्रृंखला को साहित्य का स्वरुप प्रदान किया है, जो युगों–शताब्दियों–पीढ़ियों तक भारतीय जनमानस को नव चेतना प्रदान करता रहेगा तथा संस्कृत साहित्य में उनका योगदान उनकी यश काया को जीवित रखेगा। साथ ही उनकी साहित्य साधना का अमोघ–फल रुपी कृतियाँ संस्कृत साहित्य क्षुधा को तृप्त करती रहेगी। भारतीय ऋषि परम्परा के संवाहक संस्कृत मनीषी महाकवि पं. श्रीराम दवे की अनुपम कृतियों एवं संस्कृत सेवा में सपर्पित जीवन के लिए प्रतिष्ठित संस्थाओं द्वारा सम्मान एवं पुरस्कारों से सम्मानित किया गया।

1. दिनांक **23.12.1985 को अखिल भारतीय वेद सम्मेलन, बांसवाड़ा** में सम्मान किया गया।
2. दिनांक **06.08.1990 को राजस्थान सरकार द्वारा विद्वत् सम्मान** से सम्मानित किया गया।
3. दिनांक **14.08.1990 को जोधपुर विश्वविद्यालय संस्कृत विभाग** द्वारा सम्मानित किया गया।
4. दिनांक **29.03.1992 राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर** द्वारा **माघ पुरस्कार** से सम्मानित किया गया।
5. दिनांक **14.09.1992 को वीर सावरकर शिक्षण संस्थान** द्वारा सम्मान व पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया।
6. दिनांक **01.01.1997 राजस्थान संस्कृत परिषद्** द्वारा सम्मानित हुये।
7. दिनांक **23.03.1998 को राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर** द्वारा विद्वत सम्मान किया गया।
8. दिनांक **29.08.1998 को जोधपुर नगर** की **विविध सामाजिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं द्वारा** नागरिक अभिनन्दन किया गया।

कदापि कवि पुरस्कार या सम्मान की अपेक्षा नहीं रखता हैं, वह तो युग्बोध की भावना से कालजयी भावों को शब्दों में पिरोता है। वह युगदृष्टि, कालदृष्टि, तत्वदृष्टि की चेतना से काव्य सृष्टि करता हुआ विश्व मानस मेदनी को सारगर्भित, अद्भुत्, महनीय–कमनीय एवं अनुकरणीय योगदान देता है। कवि की सम्पूर्ण कृति संस्कृत वाङ्मय की अक्षुण्ण निधि है। सुधी पाठकों के लिए चिन्त्य है, अनुसंधाताओं के लिए अनुसंधेय है। इस प्रकार ग्राम समदड़ी में उदित होकर, अपनी ज्ञान रश्मियों से आधुनिक संस्कृत साहित्य संसार को सवंर्धित करने वाले कवि रुपी सूर्य का सूर्य नगरी (जोधपुर) में अवसान हो गया।

''जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः''

दिनांक 09 फरवरी 2013 को जोधपुर नगर में कवि का भौतिक शरीर पंच तत्व में विलीन हो गया किन्तु उनकी कीर्ति काया अनन्त काल तक जीवन्त रहेगी। क्योंकि **'कीर्ति यस्य सः जीवति'**। अतः कवि की कीर्ति का आधार उनके कृतित्व की समीक्षा नितान्त अपेक्षित है।

2. कृतित्व –

अस्माकमत्रास्ति न चार भावः
न कामिनीकुण्ठित जार भावः
न चापि तारुण्यजमार भावः
नोऽस्त्यत्र साहित्य विनोदभावः।।[15]

कवि न किसी की टोह में लगे हुये गुप्तचर होते है, न किसी कामिनी के कुण्ठित जार होते है, न ही वे तारुण्य जनित विकार के ही शिकार होते है। वे तो कविता–वनिता के साथ विहार करने वाले विनोदी साहित्यकार होते है। कविता–वनिता–विहारी साहित्यविनोदी महाकवि पं. श्रीराम दवे आधुनिक युग् के श्रेष्ठतम् काव्यकार माने जाते है। बैंक की सेवा और साहित्य की साधना का अद्‌भुत मणि–कांचन संयोग से समुत्पन्न भावों की अभिव्यक्ति ही कवि श्री दवे की कृति है। जिसमें समसामयिक विषयों, आबालवृद्धों की अन्तर्वेदनाओं को चित्रित किया गया है। अतः कवि के कवित्व की कसौटी उनके कृतित्व का समीक्षात्मक चिन्तन प्रतिपाद्य है।

पं.दवे ने अपनी अनुभूतियों को लगभग 20 कृतियों में अभिव्यक्त किया है, जिसे अधोलिखित काव्य विधाओं में विभक्त कर उनके कृतित्व का चिन्तन किया जा सकता है –

1. **महाकाव्य कृति**
2. **खण्डकाव्य कृति**
3. **अनूदित काव्य कृति**
4. **मंचीय काव्य कृति**

(क) महाकाव्य कृति –

महाकवि पं. श्रीराम दवे की लेखनी ने तीन महाकाव्यों की सृष्टि की है।

(i) भृत्याभरणम् महाकाव्य (माघ पुरस्कार पुरस्कृत)

(ii) राजलक्ष्मी स्वयंवरम् महाकाव्य

(iii) साकेत संगरम् महाकाव्य

(i) भृत्याभरणम् महाकाव्य –

बैंक सेवा के शाखा प्रबन्धक पद से सेवानिवृति के पश्चात् कवि जब घर पर आये तो उन्हें सहसा सेवा निवृत्ति के सुख का अनुभव हुआ, उन्होंने एक कविता लिखी जिसमें भृत्यवृति काल में बैंक लिपिकों, अधिकारियों तथा ग्राहकों के लेन–देन से मुक्ति का वर्णन प्राप्त होता है।

भृत्याकृत्याभिविष्टं मम हृदयमहो बन्धानादय मुक्तं,
भृत्योत्याताभितापा भृतिपति कुहुक व्याधयोऽपि प्रशान्ताः।
नो शाखा लाभ हर्षो न च ह्रदि विषमो हानिजोऽप्यद्य शोकः
नूनं भृत्यानिवृत्या धन पद विपदां वारितो भूरि भारः ।।[16]

इस प्रकार सेवा निवृति के सुख–दुखात्मक बीजों से उत्पन्न यह काव्य पादप साहित्य वाटिका का मधुर फलदायी वृक्ष बन खड़ा हो गया, जिसने **'भृत्यामरणम्'** महाकाव्य का स्वरुप ग्रहण कर लिया।

भृत्यामरणम् नामक यह काव्य 37 सर्गों वाला विशालकाय महाकाव्य है। 'भृत्या' अर्थात् 'नौकरी' इसकी प्रधान नायिका है। यह महाकाव्य नायिका प्रधान महाकाव्य है। आधुनिक युग् में नौकरी प्राप्त करना ही मानव मात्र का परम लक्ष्य बन गया है जिसे पाकर वह विविध लाभ अर्जित करना चाहता है। यह काव्य आधुनिक युग् की विडम्बना को रुपात्मक शैली में मनोरंजक ढंग से व्यंग्य प्रस्तुत करता है।

भौतिकवादिता के रंगीन प्रकाश में स्वार्थपरायणता के अट्टहास में 'त्यक्तेन भुंजीथा' की संस्कृति वाले इस देश की व्यथा कथा को पौराणिक कल्पनाओं से कल्पित कथानकों वाला पं. दवे का यह महाकाव्य युग्–प्रवृति बोधक महाकाव्य के रुप में अपनी स्वतंत्र पहचान रखता है। इस काव्य में कवि ने साक्षात् किसी की भर्त्सना नहीं की है। अपितु व्यंजना शक्ति के द्वारा स्वार्थ परायणता की भर्त्सना की गयी है।

युग् प्रबोधक इस महाकाव्य को बींसवीं शताब्दी के संस्कृत संसार में यथोऽचित प्रतिष्ठा प्राप्त हुयी है तथा राजस्थान संस्कृत अकादमी द्धारा 29.03.1992 को इसी कृति के आधार पर कृतिकार को माध पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया है।

महाकाव्य का कथानक इस प्रकार है :

देवर्षि नारद मुनि स्वतंत्र भारत के दर्शनार्थ पृथ्वी पर प्रकट होते है, पाश्चात्य प्रभाव से प्रभावित भारतीयों की दुर्दशा का आँखों देखा हाल बैकुण्ठ जाकर भगवान विष्णु को बताते है –

भुवोदास्य धोरान्धकारे प्रयाते, न तत्रोदित भाति पुण्यप्रभातम्।
स्वराष्ट्रेऽप्यहो संकरा वैजयन्ति, नवोन्मेष मुग्धाः पुराणं द्विषन्ति।।[17]

अर्थ काम प्रधान कलयुगी माया का अवतरण 'भृत्या' रुपी नायिका के रुप में होता है। वह अंग्रेज पुत्री भरत पुत्रों को रुप मोह पाश से मोहित करती हुयी कुमारी अवस्था में ही 'उत्कोच' नामक पुत्र को जन्म देती हैं। नायिका भृत्या एवं नायिका पुत्र उत्कोच दोनों मिलकर सम्पूर्ण व्यवस्था को प्रभावित कर लेते है। जिसमें सबसे अधिक प्रभावित शिक्षण संस्थायें होती है। ऋषि महार्षियों कौटिल्यादि तपस्वियों के चिन्तन रुप शिक्षा नवनीत को 'मैकाले की अवैध सन्तति स्वविषवल्लरियों से विषाक्त कर देती है'।

नौकरी प्राप्ति पदोन्नति, स्थानान्तरण, काम–काजी महिलाओं की स्थिति, यूनियन क्रिया–कलाप तथा सेवानिवृति आदि की संचिकाओं के ऊहा–पोह में अस्त व्यस्त व्यवस्थाओं

पर व्यंग्यात्मक प्रहार की मनोरमा छटा प्रस्तुत करते हुये कवि ने अन्त में व्यास के प्रयास से शारदा द्वारा माया जाल को प्रत्यक्ष कर स्थानीय सुधीजनों की आँखें खोलने का उल्लेख किया है। जिससे प्रभावित होकर लोग 'उत्कोच' का वध कर देते है। पुत्र शोक में विलाप करती हुयी भृत्या भी हिमालय की ओर चली जाती है। वर्तमान व्यवस्था की दुर्दशा का यथार्थ चित्रण कर कवि ने 'जागो भारत जागो' का संदेश दिया है। काव्य शास्त्रीय दृष्टि से यह महाकाव्य श्रेष्ठ काव्य की कोटि में आता हैं ।

(ii) राजलक्ष्मीस्वयवर महाकाव्य –

महाकवि पं. श्रीराम दवे की द्वितीय महाकाव्य–कृति **'राजलक्ष्मीस्वयंरम्'** नामक महाकाव्य है। 18 सर्गों में विभक्त इस महाकाव्य का नायक **'विष्णु'** एवं नायिका **'लक्ष्मी'** है। इन्द्र, शेष, गुरुड़ आदि देवता मनुष्य रुप में अपनी–अपनी भूमिका निभाते है।

एक बार कवि अपने चुनाव क्षैत्र के मतदान केन्द्र पर मतदान करने जाते है। जहाँ मतदाता सूची में से उनका नाम किसी कारण से हटा दिया गया था, फलस्वरुप मत देने से वंचित हो गये। प्रत्याशी के पक्षपातियों ने फर्जी नाम से वोट डालने का सुझाव दिया किन्तु कवि को स्वीकार नहीं हुआ। इस अवसर पर उन्होंने कई दोष पूर्ण दृश्य भी देखे। लोकतंत्र को कलिप्रवृति का प्रत्यक्ष रुप मानकर **'वोटेन वंचितो विप्रः'** का चिन्तन करते हुऐ लोकतंत्र में लक्ष्मी से राजलक्ष्मी की प्राप्ति की उद्‌भावना करते हुये, **लक्ष्मीस्वयंवरम्** नामक इस महाकाव्य की रचना की।

महाकाव्य के कथनाक के अनुसार भगवान विष्णु अपनी सहधर्मिणी लक्ष्मी को इस शासनतंत्र में राजलक्ष्मी की भूमिका निभाने हेतु, लीला करने को कहते है। उन्हीं की प्रेरणा से इन्द्र वल्लभभाई पटेल की भूमिका निभाते हुऐ, राजलक्ष्मी को राजतंत्र से लोकतंत्र में ले आते है। निर्वाचन रुपी राजलक्ष्मी के स्वयंवर की व्यवस्था के लिये अपने विश्वसनीय सहस्त्रफणाधर शेष को नियुक्त करते है। निर्वाचन में खड़े प्रत्याशियों को उनके दल की नीति–रीति से परिचय कराने हेतु सरस्वती राजलक्ष्मी की सखी की भूमिका निभाती है। समस्त विलास भूमियों पर कलियुग अपना अधिकार जमा लेता है।

यह काव्य स्वर्गीय प्रधानमंत्री राजीव गांधी के निर्वाचन कालीन घटना को वर्णित करता है। इसमे वर्तमान लोकतंत्र की राजनैतिक प्रवृतियों का व्यंग्य पूर्ण वर्णन है। इसमें कवि की राष्ट्रभक्ति एवं राष्ट्र के सांस्कृतिक चिन्तन को व्यक्त किया गया है। पौराणिक कथा के माध्यम से चुनाव कालीन दृश्यों का रोचक ढंग से वर्णन किया गया है, जो इस काव्य की अन्य काव्यों से विलक्षणता को प्रदर्शित करता है। एतदर्थ शास्त्रोक्त प्रतिमानों के सर्वथा अनुकूल यह एक सरस महाकाव्य है।

(iii) साकेतसंगरम् महाकाव्य –

संस्कृत प्रेमियों के लिये लोकार्पित ' **साकेतसंगरम्**' नामक यह महाकाव्य महाकवि पं. श्रीराम दवे की तृतीय कृति है।

यह श्रीराम जन्मभूमि संघर्ष का प्रत्यक्ष चित्रण करने वाला 15 सर्गात्मक विविध छन्दों में निबद्ध ऐसा महाकाव्य है जो युगों तक राम जन्मभूमि मुक्ति के संघर्ष का आँखों देखा हाल वर्णित करता हुआ इतिहास को चिरजीवन प्रदान करता है। यह वीर रस से परिपूर्ण एवं राष्ट्रभक्ति से प्रेरित है। इसमें कवि ने पाश्चात्य संस्कारों के पोषण के कारण खण्डिता होती भारतीय मानसिकता को उद्घाटित किया गया है।

इस काव्य का आरम्भ श्रीराम जन्मभूमि पर 30 अक्टूबर 1990 के संघर्ष में वीरगति को प्राप्त हुये, कवि के मित्र, विश्वहिन्दू परिषद् के प्रदेश प्रमुख कार्यकर्त्ता प्रो. महेन्द्रनाथ अरोड़ा की पुण्य–स्मृति से हुआ था, जिसकी पूर्णाहुति 6 दिसम्बर 1992 को विवादित ढाँचें के ध्वस्त होने पर की गयी थी। इस काव्य में देश के स्वतंत्र होने पर भी देश की अस्मिता की उपेक्षा पर प्रबल जनाक्रोश की अभिव्यक्ति है। देश की स्वतंत्रता के पूर्व, इस देश से फिरंगियों की सत्ता समाप्त होने पर यह देश पुनः अखण्ड रुप से स्वतंत्र होगा, ऐसा स्वप्न देखने वाले हिन्दू समाज के देखते–देखते इस भूमि के खण्डित होने की तीव्र वेदना है।

दास्यं गलिष्यति फिरंगीजनस्य नूनं
स्वांतन्त्रयामाप्स्यति धरेयमखण्डरुपा।
इत्येव चिन्तयति हिन्दूजनेऽत्र कोऽपि
हा! हन्त हन्त धरणीं शकलीचकारः।।[18]

जिस राम जन्मभूमि के लिए स्वतंत्रता से पूर्व ही हिन्दू समाज को अनेक बार संघर्ष करना पड़ा था, समस्त धर्मों का आदर करने वाले उस हिन्दू समाज को आज धर्म निरपेक्षता की आड़ में एक मिथ्या पाठ पढ़ाया जा रहा है –

दिशन्ति मार्गं स्वयेऽद्य धूकाः
काकाः पिकं गीति पथं दिशन्ति।
मृगाः मृगेन्द्रं भूवि भेषयन्ति,
बका मराला नवमानयन्ति ।।[19]

राष्ट्रीय भावनाओं को जागृत करने वाले राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का उदय तथा उसके द्वारा प्रचारित हिन्दुत्व बोध का इस काव्य में वर्णन किया गया है। संघ के आद्य सरसंघ संचालक परमपूज्य डॉ. हेड़गेवार ने अनेक निस्वार्थी जीवनव्रती कार्यकर्ताओं का निर्माण कर हिन्दू की दयनीय दशा को दूर करने का उपाय सुझाया।

जो हिन्दु संगठन के रुप मे **'विश्व हिन्दूपरिषद्'** कहलाया। इसी संगठन ने हिन्दू अस्मिता को जगाया और गंगाजल यात्रा और राम शिला पूजन का आयोजन आयोजित कर सुषुप्त भावों को जागृत किया। रामजन्मभूमि के आह्वान से युवा हृदयों में उफान आ गया, सारा हिन्दू समाज वर्ण, जाति, समाज, सम्प्रदाय, प्रान्त, भाषा, वेशभूषा के भावों को भूलाकर अपनी प्रचण्ड़ एकता का परिचय देता हुआ अयोध्या के अवरोधों को दूर करने हेतु।

मानो महावीर की शक्ति को साथ लेकर राम भक्तों की टोली लक्ष्य संधान हेतु अयोध्या पहुँचते है और इस साकेतसंगरम् में अपनी आहुति देते है, विजय पश्चात् रामजन्मभूमि रक्षा का संकल्प लेकर लौटते है। महाकाव्य के अंतिम सोपान में काव्य के नायक के रुप में उत्तर–प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री **श्री कल्याणसिंह** की प्रशंसा की जाती है। **'धन्यः कल्याणसिंहो रघुपति चरणाम्भोजभक्तिप्रतिष्ठः'**[20] इस प्रकार हिन्दू अस्मिता व्यथा कथा को सर्वथा दूर करने की भावना से शत्रुओं पर विजय प्राप्त की।

(ख) खण्ड़काव्य कृति –

महाकवि पं. श्रीराम दवे ने विभिन्न विषयक एकादश खण्डकाव्य संस्कृतानुरागियों के समक्ष प्रस्तुत किया है, जिन्हें निम्नलिखित वर्गों में वर्गीकृत कर अनुसंधेय खण्डकाव्यीय कृतित्व की समीक्षा पूर्व परिचय प्राप्त किया जा सकता है।

(i) शृंगारपरक खण्डकाव्य –

- सौन्दर्यलीलामृतम्
- मेघोपालम्भनम्
- वियोगशतकम्

(ii) भक्तिपरक खण्डकाव्य –

- ललितालहरी
- अपांगलीला
- भारतीविलास
- कामधेनुशतकम्

(iii) युगबोधक खण्डकाव्य –

- केलिभूकैतवम्
- कालकौतुकम्
- परिखायुद्धम्
- कारुण्य कादम्बिनी

(i) **शृंगारपरक खण्डकाव्य –**

- **सौन्दर्यलीलामृतम् –**

राजस्थान संस्कृत अकादमी जयपुर से प्रकाशित **'काव्यमंजूषा'** में संकलित यह खण्डकाव्य कवि की प्रथम कृति है। कवि ने इस खण्डकाव्य की रचना सन् 1949 में मुम्बई प्रवास के समय की थी। इस काव्य में 143 श्लोक है। कवि ने इस काव्य में सौन्दर्य का सत्य शिव रुप प्रस्तुत किया है। काव्य का कथानक मुम्बई की चौपाटी से लिया है, जहाँ समुद्र किनारे भ्रमण करती हुई सुन्दरियों के सौन्दर्य की विभावना की गई है। वस्तुतः सौन्दर्य चर्मराग नहीं है, ना ही यह अंगनाओं के अंग भंगिमाओं का लावण्य है। इस प्रकार कवि ने इस काव्य में सौन्दर्य की भारतीय दृष्टि को दिखाया है।

- **मेघोपालम्भनम् –**

अकाल के समय पशुओं को लेकर इधर–उधर भटकते हुए किसानों व वियोग व्यथित कृषक पत्नियों द्वारा मेघों को वृष्टि न करने पर उपालम्भ दिया गया है। इस खण्ड़ काव्य मे 102 श्लोक है आधुनिक मानव भौतिक सुख के लिये प्रकृति का दुरुपयोग कर रहा है, जिसके कारण कभी अतिवृष्टि–अनावृष्टि तथा दुर्भिक्ष की स्थिति का सामना करना पड़ता है। मेघ को उपालम्भ देते हुये कवि ने व्यंग्यात्मक शैली मे मानवों को भी सावचेत किया है।

- **वियोगशतकम् –**

'सर्वभाषाकालीदासीयम्' प्रकाशन जोधपुर द्वारा संस्कृतवर्ष 1999–2000 तमे वर्ष मे प्रकाशित यह खण्ड़काव्य कालीदास के मेघदूत के समान भावसाम्य के कारण प्रतिष्ठा को प्राप्त है। कवि अपने समवयस्क मित्र **'आसूलाल संचेती'** को अपनी पत्नी के स्वर्गवास जनित वियोग से व्यथित देखा तो कवि को कालीदास के मेघदूत मे वर्णित प्रिया विरही यक्ष का स्मरण हो उठा। यह सत्य तथ्य है कि कवि सहृदय होता है। सहृदय कवि ने अपने सुहृद के हृदय भाव को हृदयङ्म करते हुए मंदाक्रान्ता छन्द मे **'वियोगशतकम्'** की रचना की।

संचाते सुहृदि प्रियाविरहिते श्री आसुलालधिये,
शब्दब्रह्मविलासलास्य मतिना संवेदना भावितम्।
काव्यंयन्नुमया वियोगशतकं काव्यात्मना गुम्फितम्,
भूयात्तत्सुभग श्रियो हि मदनदेव्याः स्मृतावंजलिः ।।[21]

(ii) भक्ति परक खण्डकाव्य –

- **ललितालहरी –**

'ललितालहरी' नामक यह ललित काव्य कवि की अनूठी रचना है जो माँ भगवती ललिता के चरणों में समर्पित भक्ति से सिंचित जीवन भर की जमा पूंजी है। गाँव समदड़ी में कुलदेवी स्वरुपा, रमणीय छटा से अनुप्राणित, कन्दरा के मध्य प्रतिष्ठित महालक्ष्मी स्वरुपा भगवती ललिता देवी का भव्य मंदिर है। शिखरणी छन्द में रचित 63 श्लोकों वाले इस खण्ड़ काव्य में अपने इष्ट देवता ललिता की स्तुति की प्रस्तुति तथा ललिता देवी के मंदिर के प्राचीन दृश्य एवं नवीन परिवर्तन का बड़े सुन्दर ढ़ंग से वर्णन किया है।

समृद्धसौभाग्यं भजति नगरीयं समदड़ी,
स्थिताकण्ठे यस्या विमलसिकता लूणि–सरिता।
शरण्या सिंहानां लसति च गुहांका शिखरिणी,
वसत्यम्बा प्रीत्यापरिजन युता यत्र ललिता ।।[22]

इस प्रकार **ललितालहरी** में वर्णित माँ के प्रति समर्पित भाव केवल एक कवि की ही कृति नहीं हो सकती यह तो कवित्व, पाण्ड़ित्य और अनन्य भक्ति का सम्मिलित सृजन है।

- **अपांगलीला –**

अखण्ड़–कोटि–ब्रह्माण्ड़–नायिका–भगवती ललितादेवी इस सृष्टि की स्पंदन शक्ति है। इन्हीं से इस सृष्टि की उत्पत्ति हुई है। इन्हीं से इस विश्व का स्थूल और सूक्ष्म कारणभूत शरीर बना है। यह त्रिपुर में निवास करने के कारण ही **त्रिपुरसुन्दरी** कहलाती है। कवि ने **1990 में श्री विद्या की पूर्ण दीक्षा प्राप्त कर ली थी**, तब से अनवरत भगवती की साधना में रत रहते हुए भगवती त्रिपुरसुन्दरी को समर्पित यह काव्य पुष्पांजली है। कवि ने इस काव्य की रचना मे **'अश्वघाटी'** आदि नवीन छन्दों का प्रयोग किया है। इस खण्ड़काव्य में सृष्टिलीला, युगलीला, रसलीला, कृपांगलीला, व्यष्टिलीला, कृपालीला, तथा चण्ड़िकापांगलीला का वर्णन कवि ने समर्पित भाव से किया है।

- **भारतीविलास –**

विश्व के विविध प्रकार के साहित्यनिर्माण मे नाद ब्रहात्मिका अ से क्षः तक की वर्णमातृका की भूमिका पर लिखा गया हृदयाकर्षक काव्य है। यही वर्णमातृका **भारती** कही गयी है। भारती के विलास का वर्णन करने वाला यह काव्य 191 श्लोकों वाला खण्ड़काव्य है। यह भारती विविध छन्दवस्त्रों को धारण कर अपने दिव्यस्वरुप, शब्द, अर्थ को ध्वनि, रीति, रस, अलंकार आदि से मण्ड़ित करती हुयी, विश्व के वाग्व्यापार में नित्य नयी–नयी

लीलाऐं प्रकट करती हुयी, शब्द ब्रह्म को शक्ति प्रदान करने वाली विद्वद्जनों की आराध्यदेवता, वर्णविग्रहवती भगवती भारती को प्रणाम किया गया है।

- **कामधेनुशतकम् –**

गोवर्धन गोशालायाः दर्शनाद् हृदयोद्गताः।
भवन्तु स्तुतयोः भावाः काव्य बद्धोः गवां पदे।।[23]

इन पंक्तियों के लेखक पं. श्रीराम दवे द्वारा इस पृथ्वी लोक के सबसे बड़ें गोधाम के दर्शन के दौरान जो दिव्य भाव उनके हृदय में प्रस्फुटित हुये, प्रभु प्रेरणा से वे दिव्य भाव ही काव्यबद्ध होकर **'कामधेनुशतकम्'** रुप में परिणत हो गया। गायों के स्वभाव, गायों से आर्थिक समृद्धि, गौसुरक्षा आदि विषयों पर यह कव्य रचित है। यह 123 श्लोकात्मक खण्ड़काव्य है, इस काव्य में पथमेड़ा गोधाम के ऐतिहासिक एवं पौराणिक महत्वों को प्रतिपादित किया गया है।

(iii) युगबोधक खण्डकाव्य –

- **केलिभूकैतवम् –**

193 श्लोकों का यह खण्ड़ काव्य सरल भाषा मे रचित मर्मस्पर्शी काव्य है। इस काव्य में लिंगानुपात की चिन्ता की गयी है। स्वच्छन्ता प्रधान आज के इस युग में अविवाहित युवक– युवतियों का माता–पिता बन जाना तथा उनके अवैध संतानों के नारकीय जीवन की करुणा को एक कल्पित कथा के माध्यम से रोचक शैली में वर्णित है।

- **कालकौतुकम् –**

विश्वगुरु कहलाने वाले भारतवर्ष की, स्वतंत्रता के बाद जो स्थिति बनी उसका चित्रण कवि ने 169 श्लोकों मे किया है। काल की विड़म्बना को लेकर कवि के मन में जो भाव उत्पन्न हुए, समाचार पत्र आदि में जो व्यंग्यचित्र मिले, उसके आधार पर श्लेषालंकार के माध्यम से व्यंग्यात्मक काव्य की रचना की गयी है।

- **परिखायुद्धम् –**

अनन्त काल से विश्व मे प्रलय और उदय की प्रवृतियाँ रही है। युद्ध की संभावनाये सतत् सत्ताधीशों के शिरों पर मंड़राती रही है। खाड़ी युद्ध भी इसी का उदाहरण है, जिसे 127 पद्यों में कवि ने लिखा है। यह खण्ड़काव्य ईरान और ईराक युद्ध से उत्पन्न स्थिति को आधार बनाकर रचा गया है जो युग्–प्रबोधक काव्य के रुप में प्रसिद्ध है।

- **कारुण्यकादम्बिनी –**

करुण्यकादम्बिनी नामक इस खण्ड काव्य में 118 श्लोक है। इस काव्य में कवि ने अपनी माता के कष्ट भरे, वैधव्य जीवन को करुण रस में पद्यबद्ध किया है। यह करुण रस

का उत्कृष्ट काव्य है। इसमें तात्कालिक कुप्रथाओं से उत्पन्न कष्टों को प्रकाशित करते हुये अल्पव्यय की कन्याओं का विवाह पिता की उम्र के पुरुषों के साथ होने के परिणाम स्वरुप बाल–वैधव्य का जीवन, छोटे–छोटे बालक–बालिकाओं के भरण–पोषण का अधिभार एवं आर्थिक विपन्नता तथा सामाजिक कुदृष्टि आदि का स्वाभाविक चित्रण करते हुये, अपनी माता मथुरादेवी को पुष्पांजलि प्रस्तुत की है तथा माता की महत्ता को प्रतिपादित किया गया है।

(iii) अनूदित काव्य कृति –

पद्यानुवाद –

- यवनीनवनीतम्
- अकिंचनचैत्यम
- ब्रह्मरसायनम्

गद्यानुवाद –

- गीतांजलि
- निर्मला
- ध्रुवस्वामिनी

कवि पं. श्री रामदवे का सतत् ध्येय रहा है कि संस्कृत भाषा केवल इतिहास और पुराणों की भाषा बनकर न रह जाये, एतदर्थ हिन्दी, अंग्रेजी उर्दू आदि भाषाओं में रचित प्रसिद्ध कृतियों का संस्कृत भाषा में अनुवाद कर साहित्य सृजन कर एक नूतन अध्याय जोड़ दिया। अन्य भाषाओं में संयोजित ज्ञान संस्कृत भाषा–भाषियों तथा संस्कृत अध्येताओं को प्राप्त हो, इसी कामना से अधोलिखित अनुवादित काव्यों का सृजन हुआ।

- **यवनीनवनीतम् –**

उर्दू के कवि मिर्जागालिब की 117 कविताओं का पद्यानुवाद कवि श्रीराम दवे द्वारा विविध छन्दों में हुआ है। जिस प्रकार आदि कवि वाल्मीकि का शोक श्लोक मे समाहित हुआ था, उसी प्रकार सुप्रसिद्ध शायर मिर्जा गालिब का शोक **'यवनीनवनीतम्'** के रुप में काव्य में निबद्ध हुआ है। यद्यपि किसी काव्य का किसी अन्य भाषा में पद्यानुवाद कठिन कार्य है, किन्तु कवि दवे ने अपनी कौशल शक्ति से उर्दू काव्य के भावों को यथावत् संस्कृत काव्य में स्थानान्तरित कर दिया –

उर्दु – दुःख जी के पसन्द हो गया गालिब,
दिल रुक–रुक कर बन्द गया गालिब।[24]

संस्कृतानुवाद – जातं मन्ये ह्रदयमपि मे वेदना सक्तिमत्तम,

स्थायं स्थायं गतिरपि ह्रदो लक्ष्यते चावरुद्धा।[25]

उक्त अनुवादित काव्य 'यवनीनवनीतम्' राजस्थान संस्कृत अकादमी द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ काव्यमञ्जूषा में संग्रहित है। जो पृष्ठ संख्या 325 से 366 के मध्य लिखित है।

- **अकिंचनचैत्यम् –**

अंग्रेजी के अमर कवि 'टॉमस ग्रे' की कालजयी 'एलीजी रिटिन इन कंट्री चर्चचार्ड' कथ्य और शिल्प दोनों की विलक्षणता के लिए सुप्रसिद्ध है। '**इलिजी**' का अर्थ शोक गीत है इसके शिल्प मे इंग्लिस्तान के परिवेश का समावेश है, अतः उसी परिवेश मे उसका अनुवाद संस्कृत जैसी परिशुद्ध भाषा में करना सम्भव नहीं है, और ना ही उचित है।

एतदर्थ कवि श्री रामदवे ने उसका काव्यानुवाद संस्कृत की अपनी शैली में किया है। इसलिये यह अनुवादित काव्य संस्कृत के परिवेश में पठनीय बन गया है।

कवि ने आंग्ल कविता की करुणा का स्वाद संस्कृतानुरागियों को **'शार्दूलविक्रीड़ीतम्'** नामक छन्द में आस्वादित करवाया है। इस अनुवादित ग्रन्थ का प्रकाशन राजस्थान संस्कृत अकादमी द्वारा प्रकाशित काव्यमंजूषा नामक ग्रन्थ में पृष्ठ संख्या 309 से 321 के मध्य किया गया है। अनुवाद की भाषा और भावों के साथ पुरा न्याय किया गया है। अभिव्यक्ति सामर्थ्य के कारण यह श्रेष्ठ अनूदित काव्य है।

- **ब्रह्मरसायनम् –**

सिंधी भाषा के महाकवि **'शाह अब्दुल लतीफ'** सूफीमताश्रित्य महाकाव्य **'शाहजोरसालो'** के पद्यों का कवि देव ने संस्कृत श्लोकानुवाद किया है, जो विभिन्न छन्दों में प्रतिष्ठित है। इस काव्य का हिन्दी अनुवाद कवि के गुरु पं. मणिशंकर द्विवेद्वी ने किया था।

''आनन्द ब्राह्मणोरुपम्''

आनन्दानुभूति ही ब्रह्मनुभूति है। इसलिये परमार्थ दृष्टि से ग्रथित ग्रन्थ सिन्धी भाषा के अध्यात्म भाव को संस्कृत अध्येताओं के समक्ष अलंकृत शैली एवं ह्रदयानुरागी छन्दों में रखा गया है।

- **गीतांजलि –**

गुरुदेव रविन्द्रनाथ टैगौर की अमर कृति गीतांजलि का संस्कृत भाषानुवाद किया है। जो कवि की महनीयता को आलोकित करता है।

- **निर्मला –**

मूर्धन्य हिन्दी उपन्यासकार मुंशी प्रेमचन्द की कृति निर्मला उपन्यास का गद्यानुवाद करके उसकी मौलिकता में कवि देव द्वारा निखार लाया गया है। अनुवादक पं. जी ने

प्रेमचन्द की भावनाओं का सजीव चित्रण अपनी सटीक शब्दावली के द्वारा किया है, जो सहृदय रसिक जनों को मन्त्रमुग्ध करता है।

- **ध्रुवस्वामिनी –**

ध्रुवस्वामिनी हिन्दी भाषा के महाकवि जयशंकर प्रसाद की कालजयीकृति है। इस कृति का अनुवाद कर तथा यथास्थान तुकान्त गीतों का समावेश कर पं. श्रीराम देव ने इस नाटिका को जीवन्तता प्रदान की है।

इस प्रकार पं. श्रीराम देव ने एक प्रच्छन्न कवि की तरह विविध कृतियों का अनुवाद किया है। संस्कृत वाङ्मय के लिये यह अनमोल उपहार है। अनुवादक के कर्त्तव्य बोध से भरे पं.दवे ने हर काव्य को गहराई से समझने का प्रयास किया तत्पश्चात् विविध विधात्मक कालजयी कृतियों को संस्कृत भाषा का अनुवादी अंलकार पहनाकर संस्कृत समाज के समक्ष प्रस्तुत किया हैं।

(ग) मंचीय काव्य कृति –

पं श्रीराम दवे का हृदय अध्ययन काल से ही कविहृदय रहा है। अपने अनुभूत भावों को शब्दों में गूंथ कर प्रस्तुत करना उनकी अभिरुचि रही हैं। फलस्वरुप अवसर प्राप्त होने पर काव्य पाठ करते रहे, कभी–कभी हास्य पात्र कुक्कुट पाद मिश्र के नाम से कवितायें लिखते रहे। कवि ने राजस्थान संस्कृत अकादमी द्वारा प्रकाशित काव्यमंजूषा के कवितामंजरी में राजनैतिक, साहित्यिक एंव समसामयिक विषयों को व्यंग्य एवं हास्य कणिका के रुप में संजोया है। चायचषकं, आलस्यमाहात्म्यम्, राष्ट्र विभाजनवेदना, स्वागतगीतम्, केशवस्मृति, शिशिरसौन्दर्यम् आदि लघु–लघु सरस कविताओं का सृजन किया हैं। कविता मंजरी में कुल 37 कविताओं का संग्रह है, जो उनकी मञ्चीय कृति कहीं जा सकती है।

निष्कर्ष रुप में रचनाओं के विमर्श के आधार पर कहा जा सकता है कि नैतिकता, शुचिता, धर्मपरायणता, कर्मशीलता, ज्ञानपिपाशा की तृप्ति में दृढ़ तथा आधुनिक संस्कृत सर्जकों के लिए प्रेरणापुंज कवि पं. श्रीराम दवे संस्कृत साहित्य के उत्तम कोटी के कवि है। उनका चिंतन युगीन है। कवि के रुप में सभी भाषाओं का सम्मान करने वाले तथा सार–सार को ग्रहण करने वाले कालजयी कवि है। एकदेशानुसारि वर्णना में सिद्ध हस्त है। अतः उन्होंने खण्डकाव्यों की माला ही गुम्फित कर दी है। कवि के काव्यों का अध्ययन समस्त भारत का समग्र अध्ययन की तरह है, जहाँ उन्होंने प्रखर पांडित्य की प्रधानता न देकर भावों के रमणीयता, जनसामान्यों की अन्तर्वेदना, चित्तवृत्तियों का विलास तथा सांस्कृतिक परिवेश को सरल संस्कृत में साहित्यिक स्वरुप में कविता के कलेवर में प्रस्तुत किया है। संस्कृत साहित्य के संसार में शायद ही ऐसा कोई कवि होगा जो साहित्य की

समस्त विधाओं को अपनी लेखनी से लिखा होगा। विभिन्न भाषा की कालजयी कृतियों को यथातथ्य संस्कृत भाषानुवाद किया होगा। वस्तुतः कवि की कृति अनुसंधेय है।

सन्दर्भ –

1. ध्वन्यालोक – पृ–312, तृ.उद्योत कारिका – 43
2. काव्यप्रकाश – प्रथम उल्लास–श्लोक सं. – 1
3. काव्यप्रकाश – पृ.सं. – 5
4. काव्यालंकार सूत्राणि – 1/1/15
5. साहित्यदर्पण – प्रथम परिच्छेद – श्लोक सं. – 2
6. काव्यप्रकाश – प्रथम उल्लास– श्लोक सं. – 2
7. साहित्यदर्पण, प्रथमपरिच्छेद – पृ.सं.–2 (अ.पु. के सन्दर्भ में)
8. काव्यप्रकाश – प्रथम उल्लास – श्लोक सं. – 3
9. ध्वन्यालोक – प्रथम उद्योत – श्लोक सं. – 4
10. ध्वन्यालोक – प्रथम उद्योत – श्लोक सं. – 5
11. काव्यमीमांसा – पृ.सं.– 47
12. भृत्याभरणम् कवि परिचय – श्लोक सं. – 1
13. वियोगशतकम् श्लोक सं. – 105 (कविपरिचय)
14. किराताजुनीयम् – प्रथम सर्ग – श्लोक सं.–09
15. सौन्दर्यलीलामृतं – पृ.सं.–26, श्लोक सं.–5/5
16. काव्यमंजूषा पृ.सं.– 08 (आत्मनिवेदनम्)
17. भृत्याभरणम् – श्लोक सं. – 2/7
18. साकेतसंगरम् – प्रथम अध्याय – श्लोक सं. – 8
19. वहीं – श्लोक सं. – 28
20. वहीं – 15, श्लोक सं. – 32
21. वियोग शतकम् – श्लोक सं. –109
22. ललितालहरी – श्लोक सं. – 10
23. कामधेनुशतकम् – सम्पादकीय – पृ.सं. – 03
24. काव्यमंजूषा–यवनीनवनीतम् – पृ.सं.– 360
25. वही – पृ.सं.–361

द्वितीय अध्याय
खण्डकाव्यों का स्वरूप, उद्भव व विकास

1. खण्डकाव्यों का स्वरुप –

(क) खण्डकाव्य की प्राचीन परम्परा

(ख) खण्डकाव्य की आधुनिक परम्परा

2. खण्डकाव्य का उद्भव और विकास –

(क) वैदिक मत

(ख) चीन देशीय मत

(ग) पौराणिक मत

3. निष्कर्ष –

द्वितीय अध्याय
खण्डकाव्यों का स्वरुप, उद्भव व विकास

प्राचीनतम भाषा देववाणी संस्कृत समस्त ज्ञानों का आधार है। इसकी साहित्यिक विधायें वैविध्य व वैशिष्टय से परिपूर्ण है, जो वैदिक काल से लेकर अद्यतन प्रवाहमान है। संस्कृत के काव्यों में संस्कृति अपनी अनुपम गाथा सुनाती है। नाटकों में वह अपनी कमनीय क्रीड़ा दिखाती है। संस्कृति का प्राण आध्यात्मिक भावना है, जो त्याग से अनुप्राणित तपस्या से पोषित तथा तपोवन तप सा पवित्र है, जो संस्कृत भाषा के शब्दों में अपनी सुंदर झांकी दिखाता हुआ सहृदयों के हृदय को बरबस खींचता है। महर्षि वाल्मीकि–व्यास –भास–कालिदास आदि कविगण भारतीय संस्कृति के विशुद्ध रूप का चित्रण करने के कारण ही सर्वदा आदरणीय है। इनके काव्यों में स्वाभाविकता का साम्राज्य है। ये मानव हृदय के सच्चे पारखी है। अतः इन्होंने सच्ची अनुभुतियों की अभिव्यंजना ही अपने–अपने काव्यों में रसमयी पद्धति से कल्पित की है।

काव्य शास्त्रीय आचार्यों ने, काव्यशास्त्र समीक्षकों ने तथा काव्यरसचवर्णा में सतत् निरत् समालोचकों ने दोषरहित, गुणसहित, अलंकारों से अलंकृत, रमणीयार्थ, प्रतीयमानार्थ, **'रसात्मक'** शब्द, अर्थ एवं वाक्य को ही **काव्य** नाम से परिभाषित किया है।

निःसंदेह **काव्य** हृदय की सहज अभिव्यक्ति है, सहज अभिव्यक्ति ही कवि के हृदय की तरलता, कुण्ठा–संवेग या आघात के रुप में, रमणीय कमनीय काव्य कलेवर के स्वरुप में प्रस्फुटित होता है।

काव्य–शास्त्रियों के द्वारा काव्यों को विभिन्न उपाधियों में विभक्त किया गया है। जिसका विभाजन अधोलिखितानुसार दृष्टव्य है –

1. प्रयोग के आधार पर काव्य को दो भागों में विभाजित किया गया है –
   - श्रव्य काव्य
   - दृश्य काव्य
2. शैली की दृष्टि से श्रव्यकाव्य को पुनः तीन भागो मे विभाजित किया गया है –
   - गद्य
   - पद्य
   - चम्पू
3. आकार–प्रकार की दृष्टि में पद्य काव्य को पुनः दो भागों में विभाजित किया गया है–

- महाकाव्य
- खण्डकाव्य

4. खण्डकाव्य को भी रचना की दृष्टि से तीन भागो मे बांटा गया है –

- स्त्रोत खण्डकाव्य
- नीति खण्डकाव्य
- श्रृंगार खण्डकाव्य

5. श्रैंगारिक खण्डकाव्य को पुनः दो भागों में विभक्त किया गया है –

- प्रबंध खण्डकाव्य
- मुक्तक खण्डकाव्य

काव्य के उक्त भेद–प्रभेदों को निम्नलिखित चक्र से समझा जा सकता है –

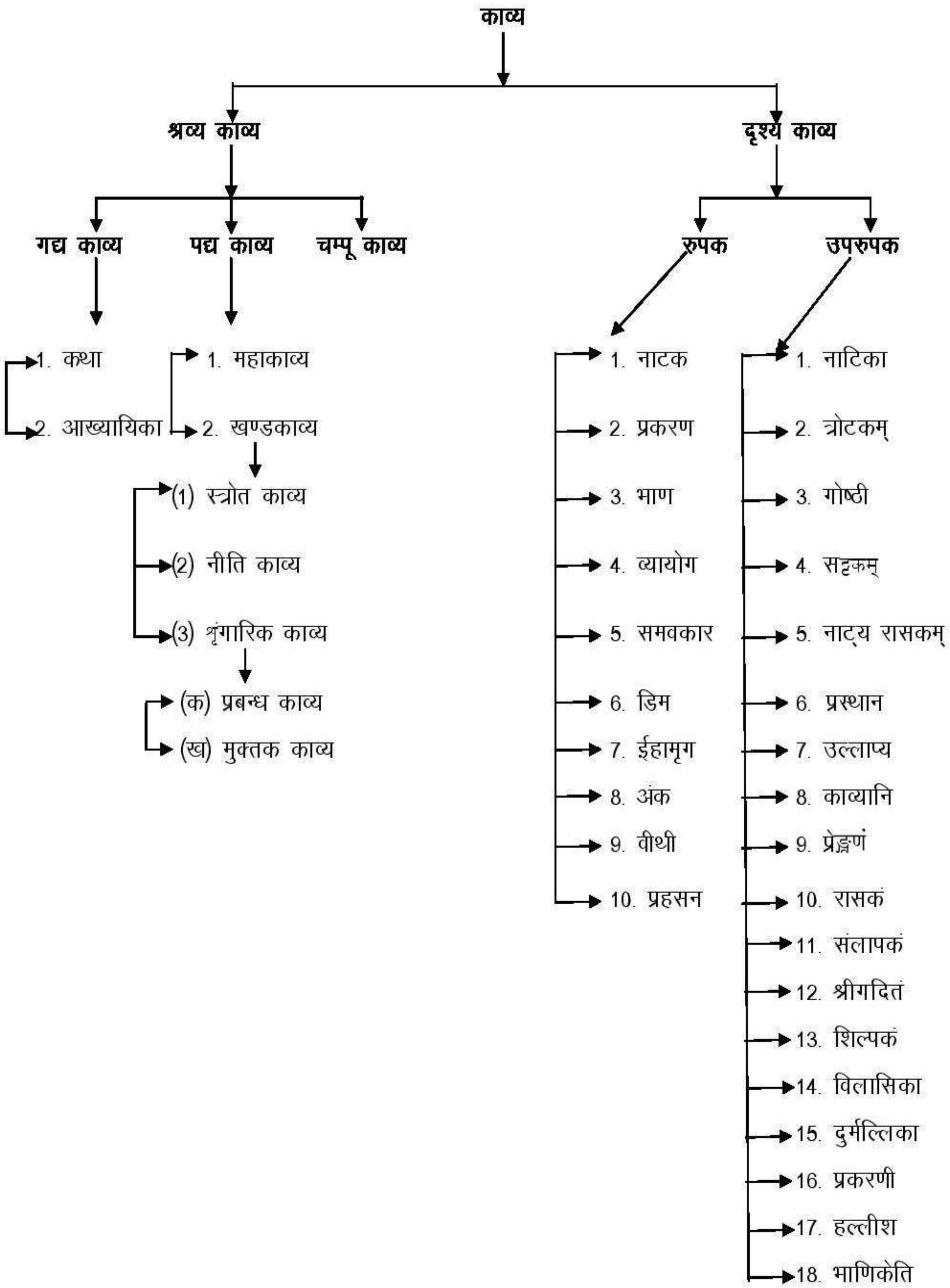
काव्य
श्रव्य काव्य
दृश्य काव्य
गद्य काव्य
पद्य काव्य
चम्पू काव्य
रुपक
उपरुपक
1. कथा
2. आख्यायिका
1. महाकाव्य
2. खण्डकाव्य
(1) स्त्रोत काव्य
(2) नीति काव्य
(3) शृंगारिक काव्य
(क) प्रबन्ध काव्य
(ख) मुक्तक काव्य
1. नाटक
2. प्रकरण
3. भाण
4. व्यायोग
5. समवकार
6. डिम
7. ईहामृग
8. अंक
9. वीथी
10. प्रहसन
1. नाटिका
2. त्रोटकम्
3. गोष्ठी
4. सट्टकम्
5. नाट्य रासकम्
6. प्रस्थान
7. उल्लाप्य
8. काव्यानि
9. प्रेङ्खणं
10. रासकं
11. संलापकं
12. श्रीगदितं
13. शिल्पकं
14. विलासिका
15. दुर्मल्लिका
16. प्रकरणी
17. हल्लीश
18. भाणिकेति

इस प्रकार अनुसंधेय खण्डकाव्य संस्कृत वाड्मय का एक परमरमणीय श्रव्य अंग है। जिसमें साज–श्रृंगार, गायन–वादन, भक्ति–भाव, आवेग–उद्वेग, अन्तः–बाह्यप्रकृति, नीति–उपदेश सूक्ति–मुक्ति आदि का समावेश रहता है। कवि अपनी रागात्मक अनुभूति तथा कल्पित कमनीय कल्पना से वर्ण्यविषयवस्तु को इतना भावात्मक बना देता है, कि उनका स्वयं का हृदय सुख–दुःखों के तीव्रतर अनुभवों से लबालब हो, कविता के रुप में छलकने लगता है। कवि का वहीं **'स्वगम्य अनुभूति'** जब **'परगम्य अनुभूति'** के रुप में परिणत हो, अभिव्यक्ति के प्रवाह में परिवर्तित हो जाता है, तब वह काव्य बन जाता है। वही काव्य जब मधुर भावापन्न रससान्द्र उक्तियों में मनोवृत्तियों को गाता है। तब वह **गीतिकाव्य** कहलाता है। गीति काव्य का ही शास्त्रीय स्वरुप किं वा द्वितीय रूप **खण्डकाव्य** कहा जाता है।

खण्डकाव्य की प्रकृति महाकाव्य जैसी नहीं होती है। महाकाव्य में मनुष्य जीवन के समस्त पक्षों का वर्णन होता है, जबकि खण्डकाव्य में मानव–जीवन के किसी एक ही प्रमुख पक्ष अथवा घटना का चित्रण होता है। इसका आकार–प्रकार भी महाकाव्यों से महनीय नहीं होता, अपितु यह तो काव्यशास्त्रीय परम्पराओं से मुक्त वैयक्तिक अनुभवों की सरलता एवं निष्कपटता से युक्त, देशकाल परिस्थितियों से संयुक्त, सहृदय–सामाजिकों की साहित्यामृत–पिपासा को आकण्ठ संतृप्त करने वाला, लध्वाकार का कमनीय काव्य होता है।

खण्डकाव्य अनेक उपनामों से जाना जाता है। गीतिकाव्य, स्त्रोतकाव्य, नीतिकाव्य, भक्तिकाव्य, लहरीकाव्य, शतककाव्य, गजलगीतिकाव्य, अनूदितकाव्य आदि समस्त एकदेशानुसारि वर्णन वर्णित पद्यात्मक खण्ड़काव्य का ही प्रकृत्यानुरुप रुप है। वह जीवन के एक खण्ड का अखण्ड परिचायक होता है। काव्यशास्त्र–सुचिंतनशील–सुधि–आचार्यों ने अपने–अपने ग्रंथो में, खण्डकाव्य के विविध स्वरुपों को लक्षणों में लक्षित करने का सुयत्न किया है, परिभाषाओं में परिभाषित करने का सुमहत् प्रयत्न किया है, जिसका चिंतन प्रसंगानुरुप नितान्त अपेक्षित है।

1. खण्डकाव्यों का स्वरुप –

खण्डकाव्य के स्वरुप का चिन्तन दो परम्पराओं में प्राप्त होता है।

(क) खण्डकाव्य की प्राचीन परम्परा

(ख) खण्डकाव्य के आधुनिक परम्परा

पं. जगन्नाथ तक की परम्परा को खण्डकाव्य की प्राचीन परम्परा नाम दिया गया है तथा पं. जगन्नाथोत्तर परम्परा को खण्डकाव्य की नवीन परम्परा माना गया है। प्राच्याचार्यों

ने तथा नवीनाचार्यों ने स्वकीय ग्रंथों में तदनुरुप ही खण्डकाव्य का स्वरुप ग्रथित किया है। जिसका विवेचन अधोलिखितानुसार प्रस्तुत है –

(क) खण्डकाव्य की प्राचीन परंपरा –

- प्राचीन आचार्यों की परम्परा में खण्डकाव्य की सर्वमान्य परिभाषा आचार्य विश्वनाथ की कृति साहित्यदर्पण के षष्ठ परिच्छेद में प्राप्त होती है, तदनुसार –

'खण्डकाव्यं भवेत् काव्यस्यैकदेशानुसारि च,'

यथा– मेघदूतादि[1]

भाषा विभाषा के नियमानुसार निर्मित एक कथा का निरुपक, पद्यबद्ध काव्य के एक अंश का अनुसरण करने वाला **खण्डकाव्य** कहलाता है। उदाहरण स्वरुप मेघदूत आदि काव्य ग्रन्थ खण्डकाव्य है।

- मेघदूतादि खण्डकाव्य को ही ध्वनिकार आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक के तृतीय उद्योत में **'प्रबंधानुवर्ति'** मुक्तक के रुप में स्वीकार किया है।

मुक्तकेषु प्रबन्धेष्विव रसबन्धाभिनिवेशिनः कवेः तदाश्रयमौचित्यम्''[2]

- ध्वनिकार ने मुक्तक को अपने आप में पूर्ण स्वतंत्र तथा उनके रसपरिपाक को आवश्यक माना है।

''पुर्वापरनिरपेक्षेणापि हि येन रस चवर्णा क्रियते तदैव मुक्तकम्''

प्रबन्धे मुक्तकेवापि रसादीनि वन्द्धुमिच्छिता''[3]

- लोचनकार अभिनवगुप्त ने **'त्वमालिख्य प्रणय कुपितां धातु रागे शिलायाम्'**[4] को प्रबंध काव्य के अन्तर्गत मुक्तक माना है। वस्तुतः कालिदास का मेघदूत प्रबंधात्मक श्रैगांरिक खण्डकाव्य है, जिसे गेयता की दृष्टि से गीतिकाव्य, पूर्वापर प्रसंग से स्वतंत्र होने के कारण **'मुक्तक'** तथा दौत्य कर्म वैशिष्ट के कारण **दूतकाव्य** कहा जाता है।

अग्निपुराण में खण्डकाव्य को मुक्तक के रुप मे वर्णित करते हुए, मुक्तक में चमत्कार को आवश्यक अंग बताया गया है। चमत्कार एकदेशीय होता है तथा उसमें भावों की प्रधानता होती है।

'मुक्तकं श्लोक एवैकश्चमत्कारक्षमः सताम्[5]

इस प्रकार विभिन्न नामों से अभिहित खण्डकाव्यों के स्वरुप में काव्य की प्रकृति, प्रसंग घटना तथा भाव आदि नियोजित होता है। खण्डकाव्य में अन्तरात्मा की ध्वनि होती है,

घनत्व होता है, एकाग्रता और तन्मयता होती है। अतएव महाकाव्य जैसे जीवन के सर्वांगीन पक्षों को प्रस्तुत करने वाली विधा से अत्यधिक लोकप्रिय है।

खण्डकाव्य विषय प्रधान होता है, इसमें कथा–वस्तु, इतिवृत्तात्मकता और बाह्य चित्रण आवश्यक अंग होता है। यहीं खण्डकाव्य जब गीतिकाव्य का रुप धारण करता है, तो वह विषयिप्रधान हो जाता है, इसमें कथावस्तु की अपेक्षा वैयक्तिक भावना मानसिक अवस्था, व्यक्तिगत सुख–दुख, हर्ष–शोक, विलास–विषाद आदि मुख्य होते हैं। इसमें कवि अपने भावों, अनुभूतियों और संवेदनाओं को कविता के माध्यम से प्रकट करता है। इस दृष्टि से सर्गबन्ध के अतिरिक्त संस्कृत भाषा के अधिकांश धार्मिक, श्रैंगारिक, नैतिक, मार्मिक, प्रेमभक्ति, प्रकृतिपरक जीवनदर्शन को अभिव्यक्त करने वाला पद्यकाव्य विविध नामधारी **खण्डकाव्य** कहलाता है।

प्राचीन परंपरा के खण्डकाव्यों में कविता–कामिनी–विलास महाकवि कालिदास के द्वारा प्रणीत प्रस्तर के ह्रदय पर बसंत का वैभव विकसित करने वाली कृति **'ऋतुसंहार'** एवं **'मेघदूत'** का नाम श्रद्धा से लिया जाता है। इसी श्रृंखला में शृंगार, नीति और वैराग्य की त्रिवेणी **'शतकत्रय'** की प्राप्ति होती है। इसमें करणीय–अकरणीय, प्रवृत्ति–निवृत्ति, स्त्रियों की रमणीयता, संसार की नश्वरता, जीवन की क्षण भंगुरता तथा भक्ति की उपादेयता का सुंदर वर्णन है।

- कवि **अमरुक** द्वारा प्रणीत **'अमरूकशतकम'** आनंदवर्धनाचार्य द्वारा भुरि–भुरि प्रशंसित खण्डकाव्य है। उसका एक–एक श्लोक, एक–एक प्रबंध के बराबर है **''अमरुककवेरेकः श्लोक प्रबंध शतायते''** शार्दूलविक्रिडितम् जैसे लम्बे छन्दों में शृंगार रस से लबालब भरा हुआ मुक्तकों से युक्त कृति है – **अमरुकशतकम्**
- **चौरपंचाशिका** नामक खण्डकाव्य के रचयिता कवि **विल्हण** है। यह काव्य पचास श्लोकों में रचित है। चोरी–चोरी कवि एवं राजकुमारी के प्रणय की निजी गाथा वर्णित है।
- कवि जयदेव की कृति गीतगोविंदम् गीतिकाव्यों में मेघदूत के बाद की श्रेष्ठकृति के मानी जाती है।
- **घटकर्पर** नामक कवि ने **'घटकर्पर'** नामक काव्य की रचना की। नवरत्नों में एक इस कवि ने वर्षाऋतु के आगमन पर एक नवविवाहिता द्वारा अपने प्रवासी पति के पास मेघ द्वारा संदेश भेजने का वर्णन किया है।
- **गोवर्धनाचार्य** ने **आर्याशप्तशती** मे आर्याछंद में सात सौ श्रैंगारिक मुक्तक की रचना की है।

- **धोयी** कवि ने मेघदुत का स्मरण करके **'पवनदूत'** नामक काव्य की रचना की, यह रचना मंदाक्रान्ता छन्द में 104 श्लोकों में की गयी है। इसमें पवन को दूत बनाकर कुवलयवती नाम की गन्धर्व कन्या राजा लक्ष्मणसेन को प्रणय संदेश भेजती है।
- **पं. राजजगन्नाथ** कृत **भामिनीविलास** मेघदूत एवं गीत गोविन्द के बाद की श्रेष्ठ कृति है। रसगंगाधरकार पण्डितराज की कुल 13 कृतियों में से 10 कृति खण्डकाव्य से सम्बन्धित है।

1. गंगालहरी
2. अमृतलहरी
3. सुधालहरी
4. लक्ष्मीलहरी
5. करुणालहरी
6. प्राणाभरण
7. जगदाभरण
8. यमुनावर्णन
9. भामिनीविलास
10. आसफविलास आदि।

खण्डकाव्य, उमंग के तरंग को तरंगित करने वाली हृदय समुद्र में हिलोरे मारने वाली रचना है, जो किसी न किसी एक प्रसंग को प्रासंगिक बनाती है।

- गीतिकाव्य
- दूतकाव्य
- संदेशकाव्य
- शतककाव्य
- पंचाशिकाकाव्य
- मुक्तककाव्य
- विलासकाव्य
- लहरीकाव्य
- श्रैंगारिककाव्य
- नीतिकाव्य
- भक्तिकाव्य

उक्त समस्त उपाधि के भेद से खण्डकाव्य का ही स्वरुप है। ईसा पूर्व से लेकर शताब्दीपर्यंत की समयावधि प्राचीन परम्परा को इंगित करती है। एतदर्थ उक्त अवधि में रचित खण्डकाव्यों को खण्डकाव्य की प्राचीन परम्परा में आमेलित किया जा सकता है। संस्कृत साहित्य के इतिहास में चर्चित विविधनामधेया प्राचीन परम्परा के खण्डकाव्यों का नाम चिन्तन अधोलिखित सारणी अनुसार अनुसंधान के आलोक में दृष्टव्य है।[6]

क्र. सं.	काव्य प्रणयनाब्दि	खण्डकाव्य	उनके प्रणेता	विधा	वैशिष्ट्य
1.	ईसापूर्व शताब्दी	शिवताण्डवस्त्रोतम् विश्वनाथाष्टकम् धम्मपद ऋतुसंहार, मेघदूत घटकर्परकाव्य, नीतिसार	'रावण' 'महर्षिव्यास' 'महात्माबुद्ध' 'महाकविकालिदास' घटकर्पर	स्तोत्रकाव्य स्तोत्रकाव्य उपदेश काव्य गीति,दूत,संदेशकाव्य संदेशकाव्य,नीतिकाव्य	शिवस्तुति शिवस्तुति उपदेशों का संकलन ऋतु वर्णन, संदेश वर्णन, प्रकृति वर्णन प्रणयसंदेश प्रेषण, नीतिगत कथन
2.	प्रथम शताब्दी	गाथाशप्तशती गण्डीस्तोत्रगाथा	'हाल' अश्वघोष	शृंगार काव्य स्तोत्रकाव्य	700 पद्य गण्डीस्तुति बौद्धधर्म चर्चा
3.	तृतीय शताब्दी	चतुस्तवः	'नागार्जुन'	स्तोत्रकाव्य	बौद्धधर्म चर्चा
4.	पंचम शताब्दी	कल्याणमंदिरस्तोत्रम् नीति द्विषष्टिका	'सिद्धसेन दिवाकर' 'सुंदरपाण्डेय'	स्तोत्रकाव्य नीतिकाव्य	जैनधर्म चर्चा नीति चर्चा
5.	षष्ठ शताब्दी	बोधिचर्यावतार	शान्तिदेव	नीतिकाव्य	बौद्ध नीति
6.	सप्तम शताब्दी	अष्टमहाश्रीचैत्यस्तोत्र सुप्रभात स्तोत्र चण्डीशतकम् सूर्यशतकम् सौन्दर्यलहरी चर्पटपंजरीकास्तोत्र कृष्णाष्टकम् आनन्दलहरी स्रग्धरास्तोत्रम् भक्तामरस्तोत्रम् मुकुन्दमाला मूकपंचशती	हर्षवर्धन हर्षवर्धन बाण मयूर आदिशंकराचार्य ''—''—'' ''—''—'' ''—''—'' सर्वज्ञमित्र आचार्यभानतुंग कुल शेखर मूक	स्तोत्रकाव्य स्तोत्रकाव्य शतककाव्य शतककाव्य लहरीकाव्य स्तोत्रकाव्य अष्टककाव्य लहरीकाव्य स्तोत्रकाव्य ''—''—'' ''—''—'' ''—''—''	बौद्ध नीति बौद्ध नीति चण्डीस्तुति सूर्यस्तुति सौन्दर्यस्तुति कृष्णस्तुति ''—''—'' शक्तिस्तुति तारादेवी जैनतीर्थ स्तुति विष्णु स्तुति कामाक्षी स्तुति
7.	अष्टम शताब्दी	भल्लट शतकम्	भल्लट	शतककाव्य	अन्योक्ति का प्रयोग
8.	नवम् शताब्दी	शिवमहिम्न स्तोत्र वक्रोक्ति पंचाशिका देवीशतकम्	पुष्पदत्त रत्नाकर आनन्दवर्धन	स्तोत्रकाव्य मुक्तककाव्य शतककाव्य	शिवस्तुति वक्रोक्ति प्रयोग देवीस्तुति

		वल्लालशतकम् भिक्षाटन काव्य चण्डीकुचपंचाशिका	वल्लाल शिवदास लक्ष्मणाचार्य	''—''—'' खण्डकाव्य स्तोत्रकाव्य	अन्योक्ति प्रयोग शृंगार वर्णन चण्डीस्तुति
9.	दशम् शताब्दी	स्तोत्रावली चन्द्रदूत	उत्पलदेव जम्बूकवि	स्तोत्रकाव्य दूतकाव्य	शिवस्तुति संदेश प्रेषण
10.	एकादश शताब्दी	पंचस्तव चारुचर्या सेव्यसेवकोपदेशः देशोपदेशः योगशास्त्र	श्रीवत्सांक ''—''—'' ''—''—'' क्षेमेन्द्रः हेमचन्द्रः	स्तोत्रकाव्य उपदेशकाव्य ''—''—'' ''—''—'' ''—''—''	लक्ष्मीस्तुति आचारशिक्षा कर्त्तव्य शिक्षा व्यंग्य प्रधान जैन कर्त्तव्य
11.	द्वादश शताब्दी	श्रीरंगराजस्तवम् गंगास्तवम् पवनदूतम् आर्यासप्तशती कृष्णकर्णामृतम्	पाराशर जयदेव धोयी गोवर्धनाचार्य विश्वमंगल	स्तोत्रकाव्य ''—''—'' दूतकाव्य स्तोत्रकाव्य ''—''—''	श्रीरंगस्तुति गंगास्तुति दूतकाव्य आर्याछन्द कृष्णस्तुति
12.	त्रयोदश शताब्दी	शान्तिशतकम् द्वादश स्तोत्रम् हंससन्देशम्	शिल्हण आनन्दतीर्थ वैंकटनाथ	शतककाव्य स्तोत्रकाव्य दूतकाव्य	वैराग्य विषयक ''—''—'' ''—''—''
13.	चतुर्दश शताब्दी	स्तुति कुसुमांजलिः	जगद्धरभट्ट	स्तोत्रकाव्य	शिवस्तुति
14.	पंचदश शताब्दी	शृंगारशतकम् दृष्टान्तशतकम्	धनद्राज कुसुमदेव	शतककाव्य शतककाव्य	शृंगार वर्णन नीतिवर्णन
15.	षोडश शताब्दी	रामकृष्णविलोम काव्य वरदराजस्तवम् नारायणीयम्	दैवज्ञ सूर्यकवि अप्पयदीक्षित नारायणभट्ट	खण्डकाव्य स्तोत्रकाव्य दूतकाव्य	रामकृष्णस्तुति वरदराजस्तुति कृष्णस्तुति
16.	सप्तदश शताब्दी	श्याम रहस्यम् भृगु सन्देशं मुकुन्द मुक्तावली चन्द्रदूतम् शिवोत्कर्ष मञ्जरी चौरपंचाशिका इन्द्रदूतम्	प्रियंवदा (स्त्रीकवि) त्रिवेणी (स्त्रीकवि) रुपगोस्वामी विमल कीर्ति नीलकण्ठ दीक्षित विल्हण विनय विजयमणि	मुक्तककाव्य गीतिकाव्य मुक्तककाव्य दूतकाव्यम् स्तोत्रकाव्य पंचाशिकाकाव्य दूतकाव्य	कृष्णकथा कृष्णस्तुति संदेश प्रेषण शिवस्तुति शृंगार के 50 पद्य शान्तरसमें वर्णित —
17.	अष्टादश शताब्दी	कवीन्द्र कण्ठाभरणम् शृंगारशतकम् अद्भुत सीतारामस्तोत्रम् कृष्णलीला तरंगिणी	विश्वेश्वर पाण्डेय जनार्दन भट्ट रामभद्र दीक्षित नारायण तीर्थ	सुभाषितकाव्य शतककाव्य स्तोत्रकाव्य मुक्तककाव्य	सुभाषित शृंगारवर्णनम् सीताराम स्तुति गेयपद्य
18.	एकोनविंशति शताब्दी	स्फुटगीतम् हनुमद् दूतम् संतानगोपाल काव्यम्	त्यागराज नित्यानन्दशास्त्री लक्ष्मीराज्ञी	गीतिकाव्य दूतकाव्य खण्डकाव्य	संगीतात्मकता संदेशप्रेषण पुत्र वर्णन

इस प्रकार ईसा पूर्व से 19वीं शताब्दी के मध्य संस्कृत भाषा में खण्डकाव्य की विविध विधा में, विपुल मात्रा में साहित्य सृजन हुआ। तात्कालिकी परिस्थिति, समसामयिक मनस्थिति, चित्तवृत्ति, भक्ति—अनुरक्ति—विरक्ति तथा संयोग—वियोग को पद्यों में बाँधकर सच्चित् के एक खण्ड को अखण्ड प्रवाह के साथ बन्ध में व्यवस्थित किया गया। फलस्वरूप

जीवनदण्ड के प्रत्येक खण्ड की पृथक सर्जना खण्डकाव्य के नाम से विश्रुत एवं लोकप्रिय हुयी।

(ख) खण्डकाव्य की आधुनिक परम्परा –

परिवर्तन संसार का शाश्वत सत्य है। जो धरा सरस्वती नदी के निर्मल–नीर से आप्लावित हुआ करती थी, आज वहीं धरा राजस्थान का रेगिस्तान है। जहाँ समतल भूमि थी वहाँ पर्वत है। इस प्रकार के भौगोलिक परिवर्तन से मनीषियों की मानस–मेदनी भी परिवर्तित हुयी, संस्कृति और सभ्यता भी आधुनिक परिधान में दृष्टि पथ में आने लगी। शिक्षा विमुक्ति[7] के लिए न होकर, नियुक्ति परक और सत्ता सामन्तों की न होकर आन्दोलन परक हो गयी। राष्ट्रीय चेतना, युगधर्म, नारी स्वतंत्रता, वेदना, विनोद, अत्याचार, अनाचार, भ्रष्टाचार आदि लेखन व चिन्तन का विषय बनने लगा। विशालाकार जीवन के समग्र पक्षों का सर्गबन्ध पद्यात्मकसाक्षी महाकाव्यों के स्थान पर एकपक्षीय पक्षों, की पद्यात्मक पृष्ठिभूमि खण्डकाव्य, गीतिकाव्य, लहरी–शतक–स्तोत्र–मुक्तक, गीति गजल, अनूदितकाव्य आदि नित–नवीन काव्य विधायें लोकप्रिय होने लगी। क्योंकि नवीनता में ही रमणीयता[8] की प्रतीति होती है।

बीसवीं शताब्दी की काव्य रचनाओं में नवीनता का उन्मेष, आधुनिकता का समावेश और विज्ञान का प्रवेश होने के कारण इस शताब्दी को ज्ञान–विज्ञान[9] की शताब्दी, नई रचनाओं[10] की शताब्दी कहा जाने लगा।

इस शती को संस्कृत साहित्य के इतिहास में एक नवीन युग का सूत्रपात कह सकते है। विदेश से सम्पर्क और नवीन राजनैतिक चेतना ने संस्कृत कविता के क्षेत्र में नयी खिड़की खोल दी। पारम्परिक विद्या में पारंगत पंडितों ने नये युग और नयी विधाओं को चुनौती के भाव से साक्षात्कार किया और रचना की नयी भूमि भी अन्वेषित की। संस्कृत पत्र–पत्रिकाओं में नये–नये काव्य विदेशी साहित्यों का अनुवाद, नये विषयों पर चिन्तन और नई विधाओं में लेखन समारम्भ हुआ। जैसे– भाषा के बाद व्याकरण, उदाहरण के बाद नियम का निर्माण होता है। पेड़ से फल पहले गिरा, फिर न्यूटन के नियमों का निर्माण हुआ होगा।

वैसे ही बीसवीं शताब्दी में लिखित काव्य ग्रन्थों के मन्थन पश्चात्, नव सिद्वान्तों की स्थापना हुयी। अभिनव काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों की उद्भावना हुयी, जो प्राचीन भारतीय काव्य शास्त्र तथा अर्वाचीन काव्य ग्रन्थों में सामंजस्य स्थापित करता है। डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी द्वारा लिखित **'अभिनव काव्यालंकार सूत्रम्'** तथा **''अभिराज राजेन्द्र मिश्र कृत**

अभिराजयशोभूषणम्'' आधुनिक काव्य परम्परा का काव्य शास्त्रीय दर्पण है, जो खण्ड काव्य की आधुनिक परम्परा को पुष्टि एवं तुष्टि देता है।

आधुनिक परम्परानुसार 'काव्य विभाजन' –

आधुनिक काव्य शास्त्र का प्रतिनिधि ग्रन्थ आचार्य त्रिपाठी कृत **'अभिनवकाव्यलंकारसूत्र'** को माना जाता है। तदनुसार काव्य की विधाओं का विभाजन, प्राक काव्याचार्यों के चिन्तन से किंचित् पृथक लोकाधारित है। उनका चिन्तन अभिनव विकासवादी है, वह इक्कीसवीं शताब्दी के द्वार पर खड़ा, साहित्य समीक्षा के नये मानदण्डों को स्थापित करता है। उनके ग्रन्थ में काव्य तथा काव्य विधाओं का लक्षण एवं विभाजन व्यावहरिक एवं सार्वभौमिक है।

सर्वप्रथम **'लोक के अनुर्कीतन'**[11] को काव्य बताते हुये, काव्य के **6 विभाजक–तत्वों**[12] की कल्पना की है।

1. भाषा के आधार पर विभाजन –
   - संस्कृत महाकाव्यम्
   - आंग्लनाटकम् इति।[13]
2. अर्थचमत्कृति के आधार पर विभाजन –
   - उत्तमोतम्
   - उत्तम
   - मध्यम काव्यादयः।
3. कविदृष्टि के आधार पर विभाजन –
   - विषय प्रधानं
   - विषयिप्रधानम् ।
4. बन्ध के आधार पर विभाजन –
   - निबद्धम् '(प्रबन्ध)
   - अनिबद्धम् (मुक्तम्)
5. रीति के आधार पर विभाजन –
   - गद्य
   - पद्य
   - चम्पूश्चेति।

6. इन्द्रिय के आधार पर विभाजन –

- दृश्यं
- श्रव्यं चेति द्वौ।

आधुनिक परम्परानुसार **काव्य** को मुख्यतः दो भागों में विभक्त किया गया है।

1. पाठ्य
2. दृश्य

प्राचीन आचार्यों ने काव्य के जिस भेद को **श्रव्य**[14] कहा, उसी को आधुनिक आचार्यों ने **पाठ्य**[15] कहा है। नवाचार्यों का तर्क है कि जिस काल में कवि गण अपने काव्यों को पढ़कर सुनाते थे, सहृदय कवि मुख से सुनकर काव्यार्थ का अधिगम करते थे, उस समय काव्य की श्रव्य संज्ञा ही उचित थी।

किन्तु वर्तमान वर्धमान युग् में मुद्रित पुस्तकों से, ई–काव्यों[16] से, सहृदय पाठक पढ़कर अर्थ का अधिगम करता है। एतदर्थ आधुनिक परिपेक्ष में श्रव्य के स्थान पर नवाचार्यों द्वारा कथित काव्यभेद **'पाठ्य'** ही समयोऽचित एवं तर्कसंगत है।

पाठ्य भेद के उद्‌गम का स्रोत आचार्य राजशेखर रचित काव्य मीमांसा से प्राप्त होता है। उन्होंने –

करोति काव्यं प्राणेय संस्कृतात्मा यथातथा।[17]
पठितुं वेति स परं यस्य सिद्वासरस्वती।।
यथा जन्मान्तराभ्यासात् कण्ठेकस्ययपिरिक्तता।
तथैव पाठ सौन्दर्यं नैकजन्म विनिर्मितम्।।

इस श्लोक के माध्यम से कवि ने उचित ही कहा है, कि संस्कृतात्मा कवि किसी प्रकार से काव्य तो रच ही लेते है, किन्तु काव्य पढ़ना उसी को आता है जिसे, सरस्वती सिद्ध हो। वस्तुतः पाठ न हो तो श्रवण और काव्यनुभूति कहाँ से होगी।

इस प्रकार **पाठ्यकाव्य** बन्ध की दृष्टि से दो प्रकार का होता है।

1. निबद्ध
2. अनिबद्ध काव्य।

1. निबद्धकाव्य के अन्तर्गत महाकाव्य[18], खण्डकाव्य आदि आते है।
2. अनिबद्धकाव्य के अन्तर्गत मुक्तक[19], गीति, गजल–गीति आदि आते है।

'आधुनिक परम्परानुसार' खण्ड काव्य का स्वरूप –

जीवन के एकदेश अथवा घटनाविशेष का निरुपण करने वाला काव्य, **खण्डकाव्य** कहलाता है । यह काव्य प्रबन्ध काव्य के अन्तर्गत, विषयप्रधान काव्य होता है। विषय जीवन

के सुख–दुःख आदि चमत्कार जनक एवं घटनासापेक्ष होता है। बीसवीं शताब्दी के पश्चात् रचित काव्यों का चिन्तन–मंथन आदि साहित्य समालोचकों के द्वारा किया, जिसमें वर्तमान शती की रचना की प्रकृति प्राचीन काव्यशास्त्रियों के लक्षण में समाहित नहीं होती थी, क्योंकि रचना युगानुकूल हुआ करती है, युग स्वतंत्रता का पक्षधर है अतः उनके प्रायः खण्डकाव्य, लक्षणों की कसौटी पर नहीं कसे जा सकते थे। अतः खण्डकाव्यों की नवीन परिभाषा नवाचार्यों द्वारा कल्पित की गई, जो प्रसंगानुसार प्रस्तुत है।

- **आचार्य डॉ राधावल्लभ त्रिपाठी प्रदत्त खण्डकाव्य लक्षण –**

'जीवनस्य एकदेशनिरुपकं खण्डकाव्यम्'[20] तद्यथा 'मेघदूतम्'

अर्थात् जीवन के एकदेश का निरुपण करने वाला काव्यखण्ड काव्य कहलाता है।

- **आचार्य डॉ. अभिराज राजेन्द्र द्वारा प्रदत्त खण्डकाव्य का लक्षण –**

कस्य चित् पुरूषार्थस्य वर्णनन्तु पदांशिकम्।
जीवनस्याथवा नेतुःखण्डकाव्यं तदुच्यते।।[21]

अर्थात् किसी पुरूषार्थ का अथवा नेता के जीवन का आंशिक वर्णन खण्डकाव्य है। इस खण्ड काव्य के अनेक भेद[22] है –

(i) संघातकाव्य

(ii) स्तोत्रकाव्य

(iii) लहरीकाव्य

(iv) सन्देशकाव्य

(v) अन्यापदेश

(vi) नीतिकाव्य

(vii) गीतिकाव्य

(i) रागकाव्य आदि।

खण्डकाव्य के अनेक विधात्मक भेदों का लक्षण तथा विवरण अधोलिखित क्रमानुसार दृष्ट्व्य एवं पृष्टव्य है –

(i) **संघात खण्डकाव्य –**

विषय विशेष को लेकर लिखा गया काव्य संघात नामक खण्डकाव्य है।

जैसेः महाकवि कालिदास प्रणीत **'ऋतुसंहार'**

इस खण्डकाव्य में षड् ऋतुओं के विषय विशेष को लिखा गया है।

विषय विशेषमादायविरचितं पद्यकदम्बकम् सद्यातः।[23]

यथा – कालिदासस्य षड्ऋतुवर्णनमादायग्रथितः इति।

(ii) **स्तोत्रकाव्य –**

इष्टदेवताओं की स्तुति जिसमें की जाती है, उसे स्तोत्र काव्य कहते है– जैसे – पुष्पदन्त का शिवमहिम्न स्तोत्र आदि।

'स्तोत्र काव्यं इष्टंदेवतास्तुत्यात्मकं।'[24]

यथा – शिवमहिम्न स्तोत्रम् मातृस्तवज्ञानकवेर्वा।

(iii) **लहरीकाव्य का स्वरूप –**

पारावारे चेतसि उदगच्छन्ति च मुहुःसंघटन्ति।
भावतरंगस्तेषां व्यक्तिकरण भवेल्लहरी।।[25]

अर्थात् चतेना रुप समुद्र में भावरुपतंरगे उठती है और परस्पर टकराती है, उनका अभिव्यक्तिकरण ही लहरी काव्य है।

(iv) **सन्देशकाव्य का स्वरुप –**

सन्देश भेजने के बहाने से जहाँ सृष्टि के सौन्दर्य का वर्णन किया जाता है और कवि की दृष्टि का उन्मीलन होता है तथा नायक और नायिका के मनोभावों का निवेदन अन्तः और बाह्य प्रकृति में समवेत होता है वह सन्देश काव्य है। जैसे मेघदूत आदि।

''सन्देश प्रेषण व्याजेन यत्र सृष्टि सौन्दर्यं कविदृष्टेश्चोन्मीलनं।
नायकस्य नायिकाया वा मनोभावनिवेदनमन्तर्बाह्य प्रकृत्योः।
समवेतत्वं तत्र सन्देश काव्यम्।''[26]

यथा – मेघदूतमुदाहृतमेव।

(v) **अन्यापदेशकाव्य –**

अन्यापदेश काव्य में अन्यापदेश से प्रकृत का प्रकाशन होता है।

जैसे – **ज्ञान कविविरचित शुकवृत्तम् एंव दश्युशुनकीयम्।**

''अन्यापदेशेन प्रकृत प्रकाशन परमन्यापदेश काव्यम्''[27]

(vi) **नीतिकाव्य स्वरुप** –

जिस काव्य में मानव जीवन में करणीय–अकरणीय तथा प्रवृत्ति–निवृत्ति का विमर्श हो उसे नीति काव्य कहते है। जैसे – 'भतृहरि का नीतिशतकम्' ''नीतिकाव्यं यथा–भतृहरेर्नीतिशतकम्''[28]

(vii) **गीतिकाव्य स्वरुप –**

अन्त्यानुप्रास और ध्रुवक से युक्त रचना **गीतिकाव्य** है।

''तदेवान्त्यानुप्रास ध्रुवकान्वितं गीतम्''[29]

यथा – गीतगोविन्दम् यथावामम् गीतधीवरम्।

(viii) **रागकाव्य स्वरुप –**

विविध रागों में गाने योग्य ध्रुवकयुक्त गीति से समन्वित काव्य **रागकाव्य** है।

"विविधैः रागैर्गेयं ध्रुवकान्वितगीति संयुक्तं रागकाव्यम्"[30]

यथा – तदैव गगनं सैवधरा

इस प्रकार खण्डकाव्य के अन्य प्रकारों में **अनिबद्ध काव्य** को भी समाहित किया जाता है जो पि◌ल छन्दों के बन्धन से मुक्त होता है तथा उसमे अन्त्यानुप्रास की अनिवार्यता भी नहीं होती है। काव्य में आधुनिकता का समावेश होता है, कवि की लेखनी स्वतंत्र होती है। अनिबद्ध काव्य की कोटि में **मुक्तक, गजलगीति** तथा **समस्यापूर्ति** आदि आते है।

- **मुक्तकखण्डकाव्य –**

कथाप्रसंग, घटना तथा इतिवृत्ति विन्यास से अनिबद्ध रचना को **मुक्तक** कहा जाता है। प्राक् आचार्यों ने भी पूर्वापर निरपेक्ष जिस काव्य से रस चर्वणा होती है, उसे ही मुक्त कहा है। आचार्य आनन्दवर्धन ने **'अमरुशतकम्'** की प्रशंसा करते हुये, एक–एक मुक्तकों को सौ–सौ प्रबन्ध के बराबर बताया है। आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी ने मुक्तक लक्षण के सम्बन्ध में कहा है –

"अनिबद्ध तु मुक्तकम्"[31]

अन्त्यानुप्रासादि विहीनं परिमुक्त पैंगलं लयान्वितं काव्य मुक्तच्छन्दम्"[32]

- **गजलगीति –**

'द्विपादिकाभिर्निबद्धा गीतिर्गजल मुच्यते'[33]

द्विपदिकाओं से निबद्ध **गीतिगजल** कहलाती है। विषय की दृष्टि से गजलगीति दो प्रकार की होती है –

एक में प्रत्येक शेर में विषय की भिन्नता होती है। **दूसरे** प्रकार की गजलगीति में समस्त पादयुगलों में एक ही विषय होता हैं। बीसवीं शताब्दी की रचनाओं में अन्य भाषाओं के समान संस्कृत भाषा में भी गजलगीति का प्रचलन बढ़ा है। उर्दू के प्रसिद्ध गजलों का संस्कृत भाषा में तद्वद् अनुवाद भी किया गया ळें

- **समस्यापूर्ति –**

'प्रदत्तपदावल्याः पूर्तौ समस्या'[34]

दी गयी पदावली का आश्रय लेकर रची गयी कविता समस्या या समस्या पूर्ति कहलाती है। गजलगीति के सामन यह भी दो प्रकार की होती है।

(1) अभिप्राय से युक्त

(2) विविध अभिप्रायों से युक्त।

इस प्रकार उक्त तीन भेद अनिबद्ध कोटिक खण्ड काव्य की श्रेणी में आता है।

आधुनिक परम्परा में खण्डकाव्यों का लेखन, उन्नीसवीं सदी के प्राच्यविधाविदों की परम्परा से ऊपर उठकर कर बींसवी शताब्दियों में परिवर्तन की तीव्र गति और तदनुसार बदलती हुई संवेदनाओं और जटिल होती परिस्थितियों का अवबोध करा रही है।

इसमें भाषा की बाजीगरी तथा दरबारी संस्कृति से प्रेरित शैली आज उपेक्षित है। आधुनिक खण्डकाव्यों में इतिहास पुराण से सम्बद्ध विषयों के अतिरिक्त आधुनिक जीवन के दृश्यों का अभिनव आलेख तथा नये प्रतीमानों के साथ नवसृजन की नित–नवीन श्रृंखला आधुनिक खण्डकाव्यों को नये रुप में परिभाषित करता है।

उदाहरणार्थ –बीसवीं शताब्दी में लिखित कतिपय आधुनिक खण्डकाव्यों का नाम चिन्तन प्रस्तुत है।[35]

आधुनिक खण्डकाव्य परम्परा की उपलब्धियाँ

क्र.सं.	आधुनिक खण्डकाव्य	काव्यकार	विधा
1	अग्निशिखा	पुष्पादीक्षित	काव्य संग्रह
2	अनुकम्पालहरी	के.आर.सुब्रह्मण्यम्	स्तोत्रकाव्य
3	अभागभारतम्	सुन्दर राज	खण्डकाव्य
4	अभिराज सप्तशती	राजेन्द्र मिश्र	काव्य
5	आरण्य विलासम्	यादवेन्द्रनाथ	खण्डकाव्य
6	इन्द्रधनुः	ओम प्रकाश ठाकुर	मुक्तक
7	ऋतु विलास	राम नारायण त्रिपाठी	खण्डकाव्य
8	गजेन्द्र मोक्ष	गोपीनाथ टण्डन	खण्डकाव्य
9	गीत कन्दलिका	हरिदत्त शर्मा	रागकाव्य
10	गीत धीवरम्	राधावल्लभ त्रिपाठी	रागकाव्य
11	गीत मन्दाकिनी	इच्छाराम द्विवेदी	रागकाव्य
12	चक्रव्यूहम्	बलभद्र शास्त्री	खण्डकाव्य
13	तदैवगगनंसैवधरा	श्री निवासरथ	काव्यसंग्रह
14	तरंगदूतम्	कृपाराम त्रिपाठी	दूतकाव्य

15	तर्जनि	दुर्गादत्त शास्त्री	खण्डकाव्य
16	दूत प्रतिवचनम्	इच्छाराम द्विवेदी	दूतकाव्य
17	नलिनी चरितम्	सुन्दरेश शर्मा	खण्डकाव्य
18	पार्वतीगीतम्	जय नारायण घोषाल	रागकाव्य
19	पौरच्छात्रीयम्	गणेश गंगाराम	खण्डकाव्य
20	प्रकृति विलास	के.एस.कृष्णमूर्ति	खण्डकाव्य
21	प्रताप विजयम्	ईशदत्त शास्त्री	खण्डकाव्य
22	भक्त विजय काव्यम्	ललिता वल्लभ	भक्तिकाव्य
23	भक्ति मीमांसा	रसिक विहारी जोशी	भक्तिकाव्य
24	भारतगाथा	दमदीनेश चन्द्र	शतककाव्य
25	भारतशतकम्	परमानन्द शास्त्री	शतककाव्य
26	भारती मंगलायतन	रामनारायण मिश्र	काव्यसंग्रह
27	भारतीवैभवम्	माधवप्रसाद	खण्डकाव्य
28	भारत सन्देशः	शिव प्रसाद	दूतकाव्य
29	भाव गीतम्	सुरेन्द्र नाथ वर्मा	काव्य संग्रह
30	भाव माला	मिथिला प्रसाद त्रिपाठी	शतककाव्य
31	भूदान यज्ञगाथा	गणपति शंकर	खण्डकाव्य
32	मधुवर्षणम्	दुर्गादत्त शास्त्री'	खण्डकाव्य
33	मन्दाकिनी	विजय सारथी	मुक्तककाव्य
34	मित्रदूतम्	इच्छाराम दिवेद्वी	दूतकाव्य
35	मिलिन्दमित्रम्	वनमाली भारद्वाज	खण्डकाव्य
36	मृत्कूटम्	भास्कराचार्य त्रिपाठी	मुक्तककाव्य
37	राधाकृष्ण रसायनम्	आ.ऊ.नम्बूदरी पाद	भक्तिकाव्य
38	रामरसायनम्	लक्ष्मण सिंह	भक्तिकाव्य
39	वकुलाभरणम्	बैंकेटराम शास्त्री	खण्डकाव्य
40	वानरसन्देशम्	परमानन्द शास्त्री	दूतकाव्य
41	विनोदलहरी	माघव कवि	लहरीकाव्य
42	विश्वनृत्यम्	डी.एन. दीक्षित	स्तुतिकाव्य
43	व्यासशतकम्	सियाराम सक्सेना	खण्डकाव्य
44	शोकश्लोकशतकम्	बद्रीनाथ भक्त	शतककाव्य

45	श्रीशंकरकथामृतम्	श्री रामपोतवाल	खण्डकाव्य
46	संगीत लहरी	जगदीश चन्द्र	लहरीकाव्य
47	साहित्य वैभवम्	भट्टमथुरानाथ शास्त्री	खण्डकाव्य
48	सिनेमा शतकम्	पद्मशास्त्री	शतककाव्य
49	स्वर्गसन्देशम्	मधुसूदन शर्मा	खण्डकाव्य
50	स्वराज्यम्	पद्मशास्त्री	खण्डकाव्य
51	हरिचरितम्	परमेश्वर भट्ट	खण्डकाव्य
52	मृगांकदूतम्	अभिराज राजेन्द्र मिश्र	दूतकाव्य
53	तरंगदूतम्	कृपाराम त्रिपाठी	दूतकाव्य
54	इन्दू सन्देशः	कुटूम्बरामशास्त्री	सन्देशकाव्य
55	धरित्रीलहरी	अभिराज राजेन्द्र मिश्र	विमानकाव्य
56	विस्मयलहरी	अभिराज राजेन्द्र मिश्र	लहरीकाव्य
57	अन्योक्तिसाहस्त्री	बद्रीनाथ शर्मा	अन्यापदेशकाव्य
58	वाग्वधूटी	अभिराज राजेन्द्र मिश्र	गीतिकाव्य
59	स्तूतिकुसुमाञ्जलिः	नारायण वेंकट रमण	स्तोत्रकाव्य
60	लघुरघुवरम्	रामभद्राचार्य	स्तोत्रकाव्य

2. खण्ड काव्य का उद्भव और विकास –

हृदय में समाहित सुख–दुःख, राग–द्वेष, आवेग–संवेग आदि भावात्मक अभिव्यक्ति की धरा काव्य को लिखने की प्रेरणा कहाँ से मिली, यह एक गवेषणा का विषय है। इस विषय में विद्वद्जन एक मत नहीं है, वे स्वानुभूत तर्कों से काव्योदगम् का पृथक–पृथक स्तर सिद्ध करते है। कुछ वैदिक मत के अनुयायी है, तो कुछ पौराणिक मतावलम्बी है। समग्र चिन्तन पश्चात् खण्डकाव्यों के उद्भव के क्रम में स्थूल रुप से तीन उपाबन्धों को देख सकते है –

1. वैदिक मत
2. चीनदेशीय मत
3. पौराणिक मत

1. वैदिक मत –

भारतीय विद्वान समस्त ज्ञान–विज्ञान का आगार वेद को ही मानते है। वेद में ही **कवि**[36] शब्द का प्रथम दर्शन होता है। अतः कवेः कर्म काव्य का भी उद्गम स्थल वेद को

ही कहा जा सकता है। काव्य का ही एक भेद खण्डकाव्य है, जिसे काव्यशास्त्रियों ने अनेक नामों से अभिहित किया है। जैसे गीतिकाव्य, स्तोत्रकाव्य, लहरीकाव्य, सन्देशकाव्य, अन्यापदेशकाव्य, नीतिकाव्य, रागकाव्य, संधातकाव्य आदि आदि।

उक्त सभी काव्यों के उद्गम का सूत्र वेदादि ग्रन्थों में मिल जाता है। अतः विविध नामधेया उक्त खण्डकाव्यों की प्रेरणा का बीज ऋग्वेद आदि वेदों में ही खोजे जा सकते है। गीतिकाव्य की श्रुति वैदिक ऋचाओं में दृष्टिगत होती है, क्योंकि वैदिक कवि या ऋषि प्रायः गायक थे। उन्होंने अपने आराध्य देवों को गा–गाकर प्रसन्न करने की रीति प्रवर्तित की। देवप्रिय गायन को उन्होंने यज्ञरुप में स्वीकार किया और अपने गान को स्तुति साम आदि नाम दिया। जैमिनी सूत्र के अनुसार 'गीति ही साम'[37] है।

वैदिक आर्य अपने आराध्य देव को सम्बोधित करके उनके प्रति अपने हृदय के भावों को गीतों में उडेल देते थे। ऋग्वेद के सर्वोत्तम गीत भावुकता की दृष्टि से उषा विषयक है, जो दृष्ट्व्य है –

'उषो देव्यर्मत्याविमाहि,
चन्द्ररथा सुनृता ईरयान्ती।
आत्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा,
हिरण्यवर्णा पृथुपाजसो यो'।।[38]

कवि सुन्दर पदार्थ के दर्शन में जब तक अपनी पृथक सत्ता का विसर्जन कर उसमें तादात्म स्थापित नहीं कर लेता, तब तक वह भावमयी कविता की सृष्टि नहीं कर सकता। वेद के महनीय मन्त्र दर्शन तथा वर्णन से स्निग्ध ऋषि की वाणी के भव्य उदाहरण है। इसमें उषा के मन्त्र काव्य की दृष्टि से नितान्त सरस, सहज तथा भव्य भावना से अभिमण्डित है। उषा को देखकर प्रत्येक भावुक के हृदय में कोमल भावना का उदय होता है। उषा मानवी के रुप में कवि हृदय के नितान्त पास आती है। हृदय में कौतुक उत्पन्न करते हुए कवियों को काव्य लेखन की प्रेरणा दे जाती है।

ऋग्वेद के दशमे मण्डल में इन्द्र ने सरमा नामक कुक्करी को असुरों के समीप दूती बनाकर भेजा। कुक्करी और असुरों के प्रश्नोत्तर विभिन्न प्रकार मन्त्रों से प्रदर्शित किये गये है। ऋग्वेद का यह **'सरमापणि'** सूक्त मनोरंजक और आकर्षक है, जो पाठकों में हास्य को जन्म देता है। सम्भव है कि कवि की कल्पना के उन्मेष के लिए यह सूक्त आधार रहा हो।

शौनक मुनि द्वारा प्रणीत 'वृहद्देवता' के पाँचवे अध्याय के पचासवें श्लोक से लेकर अस्सीवें श्लोक तक एक आख्यान वर्णित है। जिसमें अत्रि के पौत्र **श्यावाश्य** ने अपनी मन्त्र शक्ति की प्रशंसा करते हुए राजर्षि **दार्म्यरथवीति** के पास उसकी सुन्दरी पुत्री के प्रति अपने

अनुराग को व्यक्त करने के लिए 'रात्री' को दूत बनाकर भेजा था । मेघदूत आदि खण्डकाव्यों में जड़ पदार्थ को दूत बनाने की प्रेरणा सम्भवतः कालिदास को यहीं से मिली होगी।

सृष्टि के आरम्भ में जब मनुष्यों ने इस धरती पर अपनी आँख खोली होगी, तब प्रकृति के इस अद्भुत दृश्यों को देखकर कौतुहल उत्पन्न हुआ होगा। कौतुहलता वश मनुष्यों के हाथ प्रार्थना के लिए सहसा उठे होंगे। फलस्वरुप मुख से स्तुति निकली होगी। इस प्रकार वेदों में स्तोत्र साहित्य के उद्गम का बीज प्राप्त होता है। अतः अग्नि, इन्द्र आदि देवों की स्तुति ही खण्डकाव्य की विधा स्तोत्र काव्यों का उद्गम स्थल कहा जा सकता है।

2. चीनदेशीय मत –

बंगदेशीय विद्वान 'हरिहर नाथ डे' के अनुसार मेघ को दूत बनाने का श्रेय चीन के कवि **'स्यूकाङ'** को जाता है। सम्भवतः कालिदास को यहीं से यह प्रेरणा मिली हो। वैसे अभिज्ञानशाकुन्तलम् के प्रथम अंक के अन्तिम श्लोक में **'चीनांशुकमिवकेतोः प्रतिवातनीयमानस्य'**[39] के द्वारा चीन निर्मित वस्त्र की ओर संकेत किया है। अतः उस कवि की कल्पना से परिचित होना कोई असम्भव सा नहीं लगता। एतद्र्थ दूतकाव्यों के उद्भव का बीज उक्त कवि के काव्यों को जाता है।

3. पौराणिक मत –

'ब्रह्मवैवर्त' पुराण की एक कथा के अनुसार यक्षाधिपति कुबेर की हेममाली नामक यक्ष सेवा करता था। कुबेर भगवान शंकर की आराधना करते थे तथा हेममाली को मानसरोवर से पुष्पों को लाने के लिए नियुक्त किये हुए थे। इस सेवक की विशालाक्षी नामक अतीव सुन्दरी नवविवाहिता यक्षिनी पत्नी थी। अतः उसके प्रति अत्यधिक आसक्ति ने हेममाली को कर्त्तव्यच्युत कर दिया। वह समय पर कुबेर के समीप पुष्प न ले जा सका, फलस्वरुप क्रोधित होकर कुबेर ने इसे एक वर्ष तक कुष्टरोग से पीड़ित होने तथा पत्नी वियुक्त होकर रहने का श्राप दे दिया। इस प्रकार **'ब्रह्मवैवर्तपुराण'** की इस कथा से मेघदूत नामक खण्डकाव्य का उद्भव विद्वानों द्वारा स्वीकार किया गया है। महाभारत में भगवान कृष्ण का दौत्य कर्म प्रसिद्ध है। भागवत् में उद्धव भगवान कृष्ण के संदेश वाहक के रुप में विख्यात है। महाभारत के नलोपाख्यान में भी हंस का दूत बनना तथा स्वयं राजा नल का पाँचों लोकपालों का सन्देश ले जाकर दमयन्ती तक पहुँचाना भी प्रसिद्ध है। इस प्रकार के अनेक स्थल खण्डकाव्यों की उत्पत्ति का आधार प्रतीत होता है। वाल्मीकि रामायण और महाभारत में अनेक स्थलों पर राम और कृष्ण की स्तुति की गयी है। गीता के ग्यारहवें

अध्याय में भगवान श्री कृष्ण के विराट्रुप की स्तुति की गई है। भागवत् पुराण, विष्णुपुराण, नारदपुराण तथा अन्यपुराणों में उपास्य देवों की स्तुति मिलती है। अतैव कवियों को इन्हीं स्थानों से खण्डकाव्यों के विविधरुप गीतिकाव्य, स्तोत्रकाव्य, स्तुतिकाव्य, लहरीकाव्य, आदि लेखन की प्रेरणा मिली होगी।

वस्तुतः खण्डकाव्य का उद्गम ऋग्वेद से ही हुआ है। ऋग्वेद में उषा, विष्णु, इन्द्र, वरुण, सविता, अदिति और मरुत आदि देवों की अनेक सूक्तों में स्तुति की गई है और उनके गुणों का भाव विह्वलता के साथ वर्णन किया गया है। इन भावों को तथा गुणों को लोक मर्यादा की परिधि में, लौकिक पात्र तथा कथा के रुप में दूतकाव्य, गीतिकाव्य, स्तुतिकाव्य आदि बिखेरे मौक्तिकों को एक सूत्र में पिरोकर सावधान चित्त से खण्डकाव्यों का सृजन हुआ।

लौकिक साहित्य में खण्डाकाव्य परम्परा को स्वतन्त्ररुप से प्रारम्भ करने का श्रेय कालिदास को ही जाता है। खण्डकाव्यों की **विकास–यात्रा** अनवरत अबाधगति से वृद्धि को प्राप्त होती गई, अन्ततः वह काव्य संसार का हार बन गयी । आधुनिक जीवन की व्यस्तता व समयाभाव के कारण आमजन महाकाव्य जैसी दीर्धतम विधा का पठन–पाठन कर जीवन के अवलोकन का समय नहीं निकाल पाते थे। ऐसी स्थिति में खण्डकाव्य विधा देशकाल व परिस्थिति के अनुरुप सहृदय सामाजिकों की साहित्यामृत–पिपासा को तृप्त कर आनन्दित एवं आह्लादित करती रही । अतः महाकाव्य से अधिक रुचिकर खण्डकाव्य ही सामाजिकों को लगने लगी। लौकिक साहित्य का यह खण्ड़काव्य कालिदास की कमनीय लेखनी से प्रसूत होकर अनेकानेक शब्द साधकों की लेखनी का साहचर्य पाकर अद्यतन विकास रथ पर आरुढ़ हो गतिमान है।

मेघदूतम्, .ऋतुसंहारम्, गीतगोविन्दम्, भामिनी विलास अमरुशतकम्, भर्तृहरि की शतकत्रयी आदि काव्य खण्डकाव्य का मेरुदण्ड सिद्ध हो रहा है। खण्डकाव्य का अनेक रुप अपने–अपने वैशिष्टियों से अतिविशिष्ट स्थानों पर प्रतिष्ठित है। **गीतिकाव्य** के रुप में वह मधुमय मोहन रुप है तो भक्ति काव्य के रुप में वह भारती का परमरमणीय अंग है। मुक्तक के रुप में वह रसभरे मोदकों के समान है। जिनके आस्वादन मात्र से सहृदयों का हृदय सद्यः परितृप्त हो जाता है। **दूतकाव्य** के रुप में मेघदूत–नेमिदूत–पवनदूत आदि ग्रन्थ विशिष्ट अभ्युदय को प्राप्त होता हुआ प्रकृति की रमणीया छटा के साथ पर्यावरण प्रेम तथा प्रणय संदेशों का मनोहारी स्वरुप प्रस्तुत करता हुआ, अचेतन से चेतन के चित्त का विकास स्थापित करता है। **स्तोत्रकाव्य** के रुप में स्तुति की पराकाष्ठा तथा **लहरीकाव्य** के रुप में भावों के तरंग को तंरगित करता है।

इस प्रकार ऋग्वेद के युग से लेकर आजतक गीतों की रचना का सातत्य सदा रहा है। सामवेद गीतों का ही वेद है। अथर्ववेद में गीत शैली का प्रचूर परिपोषण हुआ है। अथर्ववेद का **'पृथ्वीसूक्त'** सर्वोत्तम गीतिकाव्यों में से है। किन्तु गीतिकाव्यों का विकसित रुप कालिदास के मेघदूत में ही देखने को मिलता है, जो बीसवीं शताब्दी में रचित खण्डकाव्यों की विकास यात्रा को प्रोन्नत करता है। इस शताब्दी के खण्डकाव्यों में चिन्तन का क्षेत्र बदला है। वह भारतीय द्वीप से निकलकर सम्पूर्ण विश्व की घटनाओं का चिन्तन प्रस्तुत करता है। इस प्रकार निखिल ब्रह्माण्ड की वेदना, सभ्यता, संस्कृति, ज्ञान–विज्ञान, आविष्कार, युद्ध, प्रेम, राष्ट्रवाद, आतंकवाद, शान्ति, सन्धि आदि–आदि की एक देशीय विषयवस्तु का सत्य चिन्तन सरस शैली में खण्डकाव्यों में समाहित है।

इस प्रकार राष्ट्रीय नवजागरण तथा पुनरुत्थान के प्रभाव से युक्त राष्ट्रवादी काव्यधारा ने खण्डकाव्यों की विकसित श्रृंखला ही निर्मित कर दी है। स्वराज्यम्, राष्ट्रदर्पणम् भारतसंदेशः आदि खण्डकाव्य काव्यमेधा का विकास ही प्रतिभासित होता है। खण्डकाव्य विकास का माला की सुमेरु पं. श्रीराम दवे कृत खण्डकाव्य, जो अनुसन्धेय है। भिन्न–भिन्न विषयों का अधिग्रहण करके आधुनिक ज्वलन्त समस्याओं को खण्डकाव्य की परम्परा में आलोकित किया है।

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के वैचारिक क्रान्ति में अग्रिणी भूमिका निभाने वाले क्रान्तदर्शियों ने तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति पश्चात् राष्ट्रीय नवजागरण एवं पुनुरुत्थान की भावात्मक रस धारा प्रवाहित करने वाले आधुनिक काव्यकारों ने अखण्ड भारत के दृश्य खण्ड़ों को आधार बनाकर अपनी प्रतिभा बीज को कल्पना–संवेदना–सद्भावना आदि के आत्मजल से अकुंरित कर, खण्डकाव्य पादप को पल्लवित पुष्पित कर इतना संवर्धित कर दिया है कि काव्यपिपासुओं की पिपासा तृप्ति तथा पुरुषार्थ चुतुष्ट्य प्राप्ति के निमित्त कान्तासम्मित उपदेश दात्री खण्डकाव्यश्रृंखला ही विकसित हो गयी है।

3. निष्कर्ष –

प्राचीन एवं आधुनिक आचार्यों के खण्डकाव्य स्वरुप विषयक चिन्तन पश्चात् निष्कर्ष रुप में कहा जा सकता है कि –

जीवन के एक खण्ड का पद्यात्मक वर्णन खण्डकाव्य है। इसे लघुकाव्य भी कहा जा सकता है। इसमें जीवन के किसी एक पक्ष का वर्णन होता है, किन्तु वह अपने आप में सम्पूर्ण होता है। वैयक्तिक भावों की प्रबलता तथा आत्माभिव्यक्ति की प्रधानता होती है। पात्रों की संख्या प्रायः दो या तीन होती है। महाकाव्य की तरह किसी एक रस की प्रधानता होती है। विशेषतः श्रृंगार–भक्ति और करुण रस की चरमावस्था होती है। अन्तः प्रकृति और

बाह्य प्रकृति का सामंजस्य पूर्ण चित्रण होता है। छन्द भावानुकूल एक या एक से अधिक होता है। अलंकार पात्रानुकूल सादृश्यमूलक होता है। भाषा में सरलता होती है तथा भाव में प्रवाह होता है। उदात्त भावों को जागृत करना किसी एक पुरूषार्थ को प्राप्त कराना तथा काल सापेक्ष उपदेश देना खण्डकाव्य का प्रमुख उद्देश्य होता है। इस काव्य में मंगलाचरण आशिंक होता है। श्लोकों की संख्या निश्चित नहीं होती है। काव्य शास्त्रीय मर्यादा की अनिवार्यता भी नहीं होती है।

आधुनिक खण्डकाव्यकारों की दृष्टि आधुनिक परिवेश की भावात्मक व्यवस्था पर केन्द्रित होती है। अतः युग् धर्मानुरुप नवीन जीवन मूल्यों की उपस्थापना तथा युगीन काव्य शिल्प नियामक रुप में दृष्टिगोचर होता है। जो साहित्य समृद्धि के अनेक सोपान तय करता है। सर्वविदित है कि परिवर्तन को स्वीकार कर समय की धारा में बहने वाला ही विकास के नये आयाम स्थापित कर पाता है। स्वातन्त्रता पश्चात् के खण्डकाव्यकारों ने आम आदमी से जुड़े अनेकानेक विषयों को सृजन सामग्री बनाकर, आम जनों के लिए कमनीय काव्य रुप में प्रस्तुत किया है। फलस्वरुप प्रशंसा वाक्यों से उद्गमित खण्डकाव्यों का विकास लोक चेतना तथा युग् बोध के तथ्यात्मक प्रकाश के रुप में प्रत्यक्ष है। निःसन्देह खण्डकाव्यों का स्वरुप विविध नामधेया काव्यरुप बनकर विकास पथ पर रथारुढ़ है, जो भविष्य में सर्वजन प्रिय काव्य विधा का स्थान प्राप्त कर सकेगा।

सन्दर्भ –

1. साहित्यदपर्ण – का.संख्या – 6/329
2. ध्वन्यालोक – पृ. सं. – 182
3. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास 'डॉ. कपिल देव द्विवेदी' पृ.सं. – 521
4. उत्तरमेघ – श्लोक संख्या – 42
5. अग्निपुराण – पृ.सं. – 336–37
6. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. कपिल देव द्विवेदी से संकलित।
7. विष्णुपुराण – तत् कर्म यन्न बन्धाय, सा विद्या या विमुक्तये।
   आयासायापरं कर्म विद्यऽन्या शिल्प नैपुण्यं।।
8. 'क्षणै–क्षणै यन्नवतांमुपैति तदैव रुपं रमणीयतयाः' – शिशुपालवधम्
9. संस्कृत साहित्य बीसवीं शताब्दी – पृ.सं.– 02
10. वही – पृ.सं. – 02
11. 'लोकानुकीर्तनम् काव्यम्', 'अभिनव काव्यालंकार सूत्र' 1.1.1.
12. भाषार्थचमत्कृति कविदृष्टि बन्ध रीतिन्द्रियाणि आधृत्य काव्य विभाजनं अ.का.सू. – 3.1.2
13. 'अभिनव काव्यालंकार सूत्र' पृ.सं. – 3.1.2
14. ''काव्यं द्विधा दृश्यं श्रव्यं च' – 'सहित्यदर्पण' – 6.1.
15. 'द्विविधं तत् पाठ्यं दृश्यं चं – 'अ.का.सूत्र' – 3.1.1

16. 'ईन्टनेट पर उपलब्ध साहित्य'
17. काव्य मीमांसा – पृष्ठ सं. – 73–74
18. निबद्धम् प्रबन्ध काव्यम् वा महाकाव्यं – अ.का.सूत्र– पृष्ठ 325
19. अनिबद्वम् मुक्तकम् गीतम गजलगीति – अ.का.सूत्र पृष्ठ 326
20. अ.का.सूत्र – पृ. – 328, भवन्ति चास्य सघातं–स्तोत्र काव्य–लहरी काव्य–सन्देश काव्याऽन्यापदेशकाव्यनीतिकाव्यगीति काव्यरागकाव्यादयाः भेदाः।
21. वही – पृ.सं. – 328
22. वही – पृ.सं. –328
23. वही – पृ.सं. – 328
24. अ.का. सू. – पृ.सं. 328
25. वही – पृ.सं. – 328
26. वही – पृ.सं. – 328
27. अ.का. सू. – पृ.सं. 328
28. वही – पृ.सं. – 328
29. वही – 3/1/5
30. वही – 3/1/6
31. अ.का.सू. – 3/1/7
32. वही – 3/1/8
33. वही – 3/1/9
34. वही – 3/1/10
35. बीसवीं शताब्दी – डॉ. राधाबल्लभ त्रिपाठी, पृ.सं. – 214 से 253
36. ऋग्वेद – अग्नि सूक्त
37. ऋग्वेद – जैमिनी सूत्र – 3/61/2
38. ऋग्वेद – उषस् सूक्त – 3/61/2
39. अभिज्ञानशाकुन्तलम् – 1/35

तृतीय अध्याय

समीक्ष्य खण्डकाव्यों का उपजीव्य एवं कथानक

1. श्रृंगारपरक खण्डकाव्य –

(क) सौन्दर्यलीलामृतम्

(ख) मेघोपालम्भनम्

(ग) वियोगशतकम्

2. भक्ति परक खण्डकाव्य –

(क) ललितालहरी

(ख) अपांगलीला

(ग) भारती विलास

(घ) कामधेनुशतकम्

3. युगबोधक खण्डकाव्य –

(क) केलिभूकैतवम्

(ख) कालकौतुकम्

(ग) परिखायुद्धम्

(घ) कारूण्यकादम्बिनी

4. अनुदित खण्डकाव्य –

(क) यवनीनवतीतम्

(ख) अकिंचन्चैत्यम्

(ग) ब्रह्मरसायनम्

तृतीय अध्याय

समीक्ष्य खण्डकाव्यों का उपजीव्य एवं कथानक

उत्तम कवि रत्नों की पंक्ति में हीरक–मणि के समान भास्वर कवि जिनके काव्यों में प्रवेश कर सरस्वती विविध लीला करती हुयी अपने सहज लालित्य से भावुक जनों को प्रसन्न करती है। ऐसे काव्यकार पं.श्रीराम दवे की अनुभवी लेखनी से **'सौन्दर्यलीलामृतम्'** आदि एकादश खण्डकाव्य लिखे गये। प्रत्येक खण्डकाव्य अपना स्वतंत्र एवं पृथक् महत्व रखता है। इनके खण्डकाव्यों में भारतभूमि एवं भारतीयता का समवाय–सम्बन्ध परिलक्षित होता है। समसामयिक विषय, युग्बोध परक वर्णन एवं एक आम व्यक्ति का चिन्तन झलकता है श्री दवे प्रणीत अनुसंधेय खण्डकाव्यों में।

एतदर्थ साहित्यिक समीक्षा से पूर्व, एकादश खण्डकाव्यों का परिचय पूर्वक वर्ण्यविषय एवं उनका उपजीव्य यथाक्रम प्रस्तुत किया जा रहा है –

1. श्रृंगारपरक खण्डकाव्य –

(क) ''सौन्दर्यलीलामृतम्''–

अस्मिन् मोहमयी विशाल नगरी गर्भे कुतो विश्रमः,
लीना प्रस्थ विचिन्तने तु कविता सम्भावनाऽप्यात्मनः।
विश्रान्त्यै मनसः पयोधि पुलिने प्राप्तो मनागेकदाः,
दृष्टं तत्र रसान्वितं कविहृदा यत्तन्मया वर्णितम्।।[1]

राष्ट्र विभाजन की त्रासदी से संत्रस्त, योगक्षेम की चिन्ता करते हुये परिवार पालन हेतु अपेक्षित वित्तार्जन–अन्वेषणा की गवेषणा में कवि पं. श्रीराम दवे का पदापर्ण कराँची से राजस्थान होते हुये मोहमयी नगरी (बम्बई) में होता है।

जहाँ संस्कृतशिक्षक के पद पर कार्य करते हुये उपार्जित वेतनादि से सश्रम जीवन निर्वाह करने लगते है। बम्बई की आवास समस्या सर्वविदित है, अतः कवि एक ही लघु आवास में चार पाँच समवयस्क मित्रों के साथ निवास करते हुये, दैनन्दिनी सेवा आदि कार्य निष्पादन के उपरान्त सान्ध्यबेला में रसिकमित्रों के साथ भ्रमणार्थं चौपाटी पर चले जाया करते थे।

जहाँ अनिन्द्य सुन्दरियों का सौन्दर्य, ललित ललनाओं का लावण्य तथा मोहमयी नगरी की मोहनियों के माधूर्य की मधूरिमा को स्वचित्त में स्थापित कर अपने सौन्दर्य बोध को **'विबुधविप्र'**[2] की तरह कविता वनिता में समाहित करते हुये मानव हृदय में बसने वाले

बहुतेरे भावों को कल्पना की कलम से ''सौन्दर्य लीलामृतम्'' नामक खण्ड काव्य की सर्जना की।

कवि ने यह खण्ड काव्य 1949 ई. में लिखा था, कवि को काव्य लेखन की प्रेरणा **''चौपाटी''** के चटपटी दृश्यों से, तथा जलधि–तटस्थित लावण्य–लीलास्थली पर मनसिज विलास समरांगण में स्वच्छन्द विहारिणी मनोहारिणी सरसा अपसरा की तरह, मानो विश्वसौन्दर्य सम्मेलन में, सौन्दर्य की लीला करती हुयी, ललित–लावण्य के वैभव से युक्त ललनाओं के चतुर्विध अभिनय लीलाओं से मिली थी। उसी बीज से सौन्दर्य समुपासक तथा लावण्य–वाटिका–चंचरीक युवा कवि ने **'सौन्दर्यलीलामृतम्'** रुपी कचनार वृक्ष को स्थापित किया।

काव्य का कथानक, सौन्दर्य पिपासुओं की पिपासा को संतृप्त कर सकेगा एतदर्थ कथानक प्रस्तुत है –

सौन्दर्यं शिवसत्य भाव सुभगं यत्कल्पितं सूरिभिः,
जातं तन्नवजात दूषितधियां दुर्वोध नैर्गहितम्।
ये नैषा वितताऽपकीर्ति लघुता श्रृंगार भावेऽधुना,
सानोसंलभतां कदापि ललिते! काव्ये पदे मामकं।।[3]

ऋषि महर्षियों ने जिस सौन्दर्य को शिव और सत्य के साथ जोड़ा था, वह नवजात मतिकों के कुतर्क से निन्दित हो गया, जिसके कारण इस सौन्दर्य के श्रृंगार भाव में अपकीर्ति की लघुता फैल गयी है।

आज सारा संसार सौन्दर्य की खोज में उत्कण्ठित दिखाई पड़ता है। वयोवृद्ध राष्ट्र के नेता भी सुन्दरता की प्रतियोगिता में जो सुन्दरी निर्धारित मानदण्डों में खरी उतरती है, उसे ही विश्व सुन्दरी का सम्मान प्रदान करते है।

सौन्दर्य परीक्षकों द्वारा भी केशविन्यास, गौरगण्डस्थल, विम्बाधर, कुड्मलवत्–कुचमण्डल, पीननितम्ब आदि को ही सौन्दर्य का मानदण्ड मान, सुन्दरियों का सम्मान करते है। सुन्दरी की सुषमासुधा के कण पर सारी प्रकृति मुग्ध दिखाई पड़ती है। वहीं काव्य अनुपम यशस्वी गिना जाता है, जिसमें सुन्दरी के सौन्दर्य का गुणगान किया गया हो।

नाटक भी उसकी विलास लीला से ही रुचिकर लगता है, गीत भी वहीं मधुर लगता है, जो उसके कण्ठ से निकलता हो। वस्तुतः वे सारी कलाऐं निरर्थक सी लगती है जिसमें सौन्दर्य का संयोग सम्मिलित न हुआ हो।

कला–कुशल–शिल्पकार द्वारा सजाई गयी शिल्पकला हो अथवा चतुर चित्रकारों की चित्रकला तब तक नयनाभिराम नहीं होती है, जब तक उसमें किसी ललना का विलास

विलसित न हो। वस्तुतः सौन्दर्य ही सत्य है, शिव है, तथा संसार का सार है। जब से वासनात्मक लोगों ने इस सौन्दर्य मन्दिर में प्रवेश किया है, तब से इन सौन्दर्योपासक भक्तों की कीर्ति को बड़ा आघात लगा है।

कविता–वनिता–बिहारी कवि ने सांध्य बेला में, मुम्बई की समृद्धि का मुकुर, प्रसिद्ध कामिनी–केलिप्रांगण ''चौपाटी'' स्थित ललनानिष्ठ सौन्दर्य का वर्णन करते हुये कहते है कि मानो देश–विदेश की तरुणियाँ इस लावण्यमयी पण्यस्थल पर शृंगारोत्सव मनाने आयी हों, जिन्हें देखकर वीततारुण्य वृद्ध भी सहसा तारुण्य का अनुभव करने लगते है। वीर पुरुषों का धैर्य विचलित होने लगता है, संयमी पुरुषों का पौरुष विगलित होने लगता है, मानों स्वर्ग की अप्सरायें सौन्दर्य वैभव लुटाने धरती पर उतर आयी हों।

वे यौवन–दैदिप्यमान वदना, स्निग्ध केशालंकृता, उन्नत कन्दुकों को कौशेय कंचुकों में छिपायी हुयी, कमनीय–कन्धों पर उत्तरीय लटकायी हुयी, समुद्र तट पर विचरण करती हुयी, चन्द्रिका की तरह युवक चकोरों का चित्त चुराती हुयी, नेत्र में कृष्ण उपनेत्र हाथ में आतपत्र, कन्धे पर स्यूत (पर्श) लटकायी हुयी, अनावृत कटि को मटकती हुयी, मन ही मन गुनगुनाती हुयी पालित पिल्ले के डोर को थामी हुयी, चंचला अपनी चंचल दृष्टि से दर्शकों के मन को पुरजोर झंकृत करती हुयी, उन्मुक्त गगन के विमुक्त वातावरण में स्वच्छन्द विचरण करती हुयी समुद्रतटीय सुरम्य सान्ध्य को अभिराम बना रही थी।

कहीं भ्रमणशील युवतियों के अभितः पारितः युवक भ्रमरों का गुंजार तो कहीं नितान्त एकान्त में आलम्बनों का उद्दीपन, कहीं जननी द्वारा स्त्री मर्यादा का संदेश, तो कहीं उद्‌वाह धर्मपालना के संकेत का सम्प्रेषण, कहीं **''करबन्धने विपदा आमंत्रणम्''**[4] का चिन्तन, तो कहीं सौम्य वेशधारिणी भारतीय महिलाओं द्वारा अर्णव अर्चन, इस प्रकार धीवरकन्या, भिक्षुकयुवतियों, उन्मुक्तकामा फिरंगीवामा आदि के सौन्दर्य समागम से यह विशाल नगरी मोहमयी मोहनीबाला की तरह आगन्तुकों को मुग्ध कर रही थी। वहीं एक ओर सौन्दर्य सागर के किनारे बैठी पर्वतीया कुमारी बालु के ढेर पर, अपने हाथ में अपनी ठोढ़ी रखे, मौन टकटकी लगाये अरुणवदना तरुणी के पास कोई युवक आकर अपने नयनों की वाणी से कहने लगा कि हे सुन्दरि! मौनावस्थित तुम्हें देखकर मेरे हृदय में कई संदेह उत्पन्न हो रहे है, तुम रुष्ट हो या तुष्ट ये मौन भंग होने पर ही हमारी उत्कण्ठा को शान्त करेगा।

दूसरी ओर महानगरी में अभिसारिकायें भी कई रंग दिखाती है। वे अपने बिखरे वालों को संवारती हुयी, गरम सांसों को उगलती हुयी, शिथिल साटिका को कटितट पर दृढ़ करती हुयी, अपने विट सहचर को एकान्त में मिलने का सन्देश भेजकर अपनी तीव्र गतिका कार से अभिसार हेतु अभिष्ट स्थान पर जा रही अभिसारिकायें एकान्त में कान्त का

साक्षात्कार प्राप्त कर आकाशीय बिजली के समान ऐसे ओझल होती है, मानों र्निद्वन्द–द्वन्द को रात्रि का प्रसाद मिल गया हो। इधर कोई प्यासा मधुप, संयोगवश प्रणय बन्धन में बाधा आ जाने पर निराशा लिये एकान्त में समुद्र की धूल मसलता हुआ, पूर्वघटित प्रणय प्रसंगों को याद करता हुआ, इस स्थिति के लिये विधाता को कोसता हुआ बैठा हुआ है।

उधर कोई प्रणय वंचिता कृशांगी अपने प्रणय योग सूत्र के खण्डित हो जाने पर खिन्न मना होकर चिर संचित संवेदना को आँखों से धो रही है।

अहोविचित्रः खलुरागबन्धः, जातः सकृन्नो विजहाति भूमिम्।

वहन्यजस्त्रं भूवितस्य धारा, पयोधिरुपं भजतेऽत्र चित्रम्।।[5]

प्रेम का बन्धन भी विचित्र होता है, एक बार हो जाने पर वह उस स्थान को नहीं छोड़ता है। मानो बहती हुयी प्रेमधारा ने पृथ्वी पर सागर का रुप धारण कर लिया हो, बम्बई का यह सागर जन सामान्यों के लिये भले ही लवण युक्त हों, किन्तु लावण्यमयी ललनाओं के लिये यह, प्रेममाधूर्य सागर है। इसी सागर के किनारे वैराग्य संवेदना की झलक भी दिखाई देती है। मुण्डित केशों वाले साधु समुद्र के गाम्भीर्य पर दृष्टि डालें, भोग विलास के सुख को अस्थिर मानकर, अपने पास बैठे हुये नवदीक्षित वृद्धों को सौन्दर्य की सत्यता के आलोक में भोगवती संस्कृति के दुषित दृष्टिवालों को सम्बोधित करते हुये कहते है कि ये मूढ़ लोग इन सुन्दर ललनाओं के भोग के पीछे भाग रहे है, ये वित्तविमूढ़मति कामान्धयुवक इतने धृष्ट है कि मुग्ध भौरों की तरह युवतियों के तीखे कटाक्ष वाणों से धायल होने पर भी कमलनियों का पीछा नहीं छोड़ते। ये लोग जिस स्तन का अमृतपान कर अपने तन को अद्यतन सनातन सत्य मानते आ रहे है। उसी स्तन को दुषित दृष्टि से देखते है। ये लोग नश्वर विलास में मन को डुबोकर प्रेम को भूल गये है।

एभिर्मोहमयी विलासनगरी भोगाश्रया भाव्यते,

नैषा काम कलाप लोडित धियां बोधाश्रमे विश्रमः।

पीत्वायस्य पयोऽमृतं तनुरियं तारुण्यमालम्बते,

वीक्षन्तेऽत्र तमेवदूषित दृशा वक्षोजमेते जड़ा।।[6]

ये लोग मन्मथ–वाटिका–वनिता की नाभि में रमण करते हुये पद्मनाभ की पूजा भूल गये है। वंशी की ध्वनि पर मोहित हरिण की तरह उस मधुर ध्वनि के पीछे तो भागते रहें किन्तु वंधीधर को भूल गये। जीवन के लिये व्याध के सामने गये, किन्तु मृत्युंजय को नहीं पहचान पाये।

"व्याधं धावसि जीवनाय कुमते! मृत्युंजयं नेक्षसे"[7]

इस प्रकार शब्दब्रह्म के रससागर में निकली सुधा के लेप से शोभायमान चौपाटी के किनारे विचरण करती हुयी वनिताओं के सौन्दर्य से मण्डित, रसिकों के संगम और वियोगियों की वेदना से वेष्टित एवं अन्त में वैराग्योदित ज्ञान से विराजित यह सौन्दर्यलीलामृतं है।

(ख) ''मेघोपालम्भनम्'' खण्डकाव्य –

'मेघोपालम्भनम्' नामक खण्ड काव्य राजस्थान संस्कृत अकादमी जयपुर द्वारा 2008 में प्रकाशित 'काव्यमंजूषा के पृष्ठ सं. 81 से 131 के मध्य अंकित है। इस खण्ड काव्य में अकाल के समय में पशुओं को लेकर इधर–उधर भटकते हुये किसानों और वियोग–व्यथित कृषक पत्नियों द्वारा मेघों को वृष्टि न करने पर 102 श्लोकों में उपालम्भ दिया गया है। कवि की शब्दात्मिका सृष्टि भी विलक्षण हुआ करती है, वो जड़पदार्थों में भी मानवोचित चैतन्य का सम्पादन करता है। उनके द्वारा पत्र–पुष्पों से युक्त वृक्षों को पुत्र–पौत्रादि वाले पुरुष परिवार के समान तथा सुन्दरी के मुखलावण्य को कमल के समान कल्पित किया जाता है। नायिका के केशों की उपमा घनघटाच्छादित मेघमाला तथा उसके दन्तावली की उपमा मुक्तावली से दी जाती है। कभी वृक्षों से लिपटने वाली पुष्पवती लताओं को कान्त का आलिंगन करने वाली कामिनियाँ बना देता है। तो कभी कामिनियों के भ्रू–विक्षेप को काम का धनुष। कभी कण्ठ का माधूर्य कोकिल की मधुर ध्वनि बन जाती है तो नाभि, कामलीला की स्थली बन जाती है। महाकवि माघ ने शिशुपालवधम् महाकाव्य में, वसन्त वर्णन में अलिदाम्पत्यों का बहुत ही सुन्दर मानवीकरण किया है। महाकवि कालिदास ने भी आकाश के बादल को विरहातुर यक्ष का दूत बना दिया।

इसी प्रकार अन्य कवियों ने भी हंस–शुक आदि पक्षियों को दूत पद पर बिठा दिया है। इन्हीं परम्पराओं का अनुसरण करते हुये महाकवि पं. श्री राम दवे ने भी युगानुरुप मेघों के विविध विलासों का वर्णन किया है।

कवि को मेघोपालम्भनम् खण्डकाव्य लेखन की प्रेरणा कालिदास की कृति मेघदूत के आषाढ़ मास के मेघ की प्रकृति से मिली होगी। क्योंकि महाकवि श्री दवे ने ग्रन्थारम्भ में मेघदूत की प्रसिद्ध पंक्ति **''आषाढ़स्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुः''** को ही अपने शब्दों में आवृत्ति की है।

आषाठस्य प्रथमदिवसादम्बरे कीलिताक्षी,
पन्थानं ते जलद! सततं वीक्षते भूमिरेषा।
धर्मोद्भूतैज्वलनसदृशैस्तप्त गात्रोग्रवातैः,
ने जानीषे गमयति कथं वासरान् त्वद्वियोगैः।।[8]

वस्तुतः 'मेघोपालम्भनम्'' नामक खण्डकाव्य का **उपजीव्य** मेघदूत है। जिसका कथानक निम्नांकितानुसार है –

मेघों की अनुकम्पा के बिना अकाल पीडित जनों की क्या दुर्दशा होती है। इसका मार्मिक वर्णन इसमें किया गया है। मरुभूमि में निवास करने वाली एक कृषक नवोढ़ा मेघ की प्रतिक्षा करते हुये वर्षा ऋतु में भी मेघ के द्वारा वर्षा न करने पर उसको उपालम्भ देती हुयी कहती है –

हे मेघ! आषाढ़ के प्रथम दिन से लगातार यह धरती आकाश की ओर टकटकी लगाये तुम्हारी राह देख रही है। गर्मी के कारण आग उगलती उग्र हवाओं से तप्तांगी यह तपस्विनी तुम्हारे वियोग में न जाने कैसे दिन बिता रही है। शून्य बादलों से सूना हो गया है। अचला का आँचल शीर्ण विदीर्ण हो गया है। वृक्ष और लताये सूख गई है। जलाशय जलहीन हो गया है। हे मेघ! देखो तुम्हारे वियोग में धरती पर चारों ओर हाहाकार मचा हुआ है। इधर भौतिकवादी उन्मत्त गुण्डा, तुम्हारी प्रकृति प्रिया के रुपलावण्य पर मुग्ध होकर अपने दुषित भावों से उसे पीड़ित कर रहा है। क्या इसके कारण कुपित होकर तुम अपने जल को समेट कर कहीं अन्यत्र छुपे हुये हो।

हे मेघ! आज इस धरती पर निवास करने वाले अज्ञानी लोग यज्ञीय पदार्थों से देवताओं को तृप्त नहीं करते, कहीं देवताओं ने इसी कारण तुम्हें यहाँ आने से रोक तो नही दिया है। देवतागण तो भोगवृत्ति के कारण संसार में स्वार्थी'' माने गये है, किन्तु हे मेघ तुम तो लोक कल्याण करने वाले हो।

किसी समय तुम सद्यःस्नातानिर्झरों से निर्मलांगी इस पर्वत की शिखरिणी को प्रेम भरा आलिंगन प्रदान कर, उसकी काम भावना को प्रदीप्त कर एक विट की तरह भाग जाते थे, तुम्हारी उसी कौतुक भरी लीला को देखने के लालसी कवि बड़े निराश हो रहे है। हे मेघ! जब तुम कालिदास के मेघदूत में यक्ष के दूत बने थे, तब उन्होंने तुम से कहा था, तुम ही संतप्त लोगों का सहारा हो क्या यह तथ्य मिथ्या हो जायेगा।

सन्तपप्तानां त्वमसि शरणं यद् यदुक्तं त्वदर्थे,
किं स्यान्मिथ्या तदपि सकलं कालिदासस्य दौत्ये।
दृष्टाऽवृष्टया व्यथित हृदयां भूमिमेनां विशालाम्,
चित्ते ते नोद्भवति हि तत् क्वापि कारुण्य भावः।।[9]

हे मेघ! तुम पुष्कर और आवर्तक नामक विश्वविख्यात मेघों के वंशज हो, सारे संसार को वृष्टि से तृप्त करने वाले तुम, अब क्या कुटिल किसानों से उत्कोच पाकर जल प्रदान करते हो ? क्या तुम भी दुष्टशासन में वित्तशाठ्य वाले घनाढ्य हो गये हो।

जातो वंशे भुवनाविदिते पुष्करावर्तकानाम्,
वृष्टया चक्रुर्भुवनमखिलं तर्पितं ये तु काले।
नायातः किं कुटिल कृषकोत्कोचदत्ताम्बुसारः,
किं भूपाले प्रभवति यथा वितशाढ्यो घनाढ्यः।।[10]

क्या आज का मालिन जल पीकर तुम्हारी आत्मा भी दूषित हो गई है। तुम सहसा आकाश में उमड़–धुमड़ कर आते हो और लोगों के हृदय में जलवृष्टि की आशा जगाते हो, परन्तु शीघ्र ही अपने उस रुप को समेटकर अस्त हो जाते हो। क्या तुम भी इस लोकतंत्र के शासकों की तरह लोगों से धोखा कर रहे हो।

क्या तुम भी इन्द्र से अपना अभीष्ट न पाकर कामचोर की तरह अपने कार्य से विमुख हो गये हो। हे वारिद्बन्धु! इस समय न तो यक्ष जैसे प्रणयविवश प्रेमी ही रह गये है, जो प्रिया वियोग की वेदना में प्रिया को सन्देश भेजने वाले हों। आज नानाविध भौतिक यन्त्र आ गये है, जिनके द्वारा क्षणभर में अपने प्रिय को सन्देश भेजा जा सकता है। अतः प्रणयी पुरुष कितना ही दूर क्यों न हों सन्देश भेजना कठिन नहीं होता है, इसलिए दूत के रुप में अब तुम्हारी आवश्यकता नहीं होती है। हे मेघ! इस समय भौतिक भोगों से रुक्ष इस युग में पृथ्वी पर रहने वाले लोगों का लक्ष्य, काम और भोग ही रह गया है, भोगैषणा वाले लोगों के हृदय में अब प्रणय भरे स्निग्ध भाव नहीं रहें।

अतः तुम मेरी चिन्ता छोड़ों ओर पहले अपनी प्रिया पृथ्वी का ध्यान रखों। समुद्र से अपने हाथों से निकालें हुये जल का भार उठाने वाले हे पयोधर! अपनी मधुर जल धारा से इस वसुमती को धन धान्य से पूर्ण करो, उनके सन्ताप को दूर करों, इन्हें निर्झरों का सुखद स्वर प्रदान करों। यह आकाश भी सविता के कठोर किरणों से व्याकुल है। उसका मन भी तुम्हारें संगम के लिये उत्कठित है। अतः इसे भी अपनी प्रिया सौदामिनी और इन्द्रधनुष की शोभा से मण्डित करो।

इस दुर्भिक्ष में यह तुम्हारी प्रेयसी वसुमति भिक्षुकी की तरह जल की भीख मांग रही है, किन्तु जलदाता की प्रशस्ति पाने वाले हे मेघ! प्रिया के रुदन से तुम्हारा हृदय द्रवित नहीं होता। हे मेघ! कभी–कभी तुम अतिकोप के कारण कृष्णकाय अति भयंकर हो जाते हो। आंधी के आलिंगन से तुम्हारी बुद्धि विकृत हो जाती है। तुम गर्जना–तर्जना के साथ इस पृथ्वी पर प्रवल धारा–पात द्वारा विद्युतचण्डिका के साथ अपने चमकीले अंगों से

अपना क्रोध प्रकट करते हो। तुम्हारा स्वामी इन्द्र जो देवताओं का स्वामी माना जाता है, वह भी अपनी शक्ति पर गर्व करता हुआ, क्रुद्ध होकर अतिवृष्टि द्वारा व्रज–वासियों को भयभीत करने लगा था, जिसका गर्व भगवान श्री कृष्ण ने चूर्ण कर दिया गया था।

प्रतिक्षण रुप बदलने वाले इन बादलों की लीला भी बड़ी विचित्र है। कभी तो ये आनन्द जल की धटायें बनाकर आषाढ़ के प्रथम दिन ही पृथ्वी को प्रसन्न करते हुये धरा को हरी भरी और सुन्दर बना देते है। जिससे खेतों की शोभा बढ़ जाती है। किसान प्रसन्न होते है। तालाब भी जल से परिपूर्ण हो जाता है। सूखी नदियाँ भी सलिल सुधा से तृप्ति पा जाती है। वस्तुतः वह धराधन्य है, जिसका जलाभिषेक मेघ करता है। जिसकी कोख में प्राणी प्रसन्न रहते हो, अनेक वृक्ष कन्दमूल और औषधियाँ पैदा होती हो, तथा जो सर्वदा अपने सामने बादलों की विलास लीला देखकर प्रसन्न होती रहती है।

अन्त में मेघ अपना दास्य निबन्धन प्रस्तुत करता हुआ कहता है कि धन्य है वे कवीश्वर जिन्होंने मेरे लिये अपना जीवन बिता दिया। पूज्य है वे स्वर साधक जिन्होंने मेरा यशगान किया। वन्दनीय हे वे संस्कृत विद्वान जो मुझे जीमूत, अम्बुद्, वारिद् आदि सुन्दर नामों से पुकारते है, किन्तु हे वसुन्धरे! मैं क्या करुँ इस पृथ्वी पर अनेक सज्जन बन्धु हैं जो मेरे उदय होने पर खुशी मनाते है तथा वर्षाकाल में प्यासी आँखों से मेरी प्रतीक्षा करते हैं, मेरे हृदय में भी उन मित्रों के लिये बड़ी उत्कण्ठा है, किन्तु मेरी भी एक सीमा है, मैं भी इन्द्र का दास हूँ, उसके इशारे पर चलता हूँ। वह इन्द्र भी मेरे हितकारी वचन नहीं सुनता है। उसका भी नियामक भगवान विष्णु हैं। दासता का बन्धन ही कुछ ऐसा होता है कि वह श्रेष्ठ लोगों को भी नही छोड़ता है। चाहे कवि लोग अथवा प्रसिद्ध सज्जन जन पृथ्वी पर मेरी निन्दा करें किंवा अकाल में कारण विषमविपदा में पड़ी वियोगिनियाँ हमें भला बुरा कहें, सभी लोग अपने दुःख को ही रोते है। वे हमारी विषम दशा और विवशता को नहीं जानते। यह सारी सृष्टि चलायमान है। न संध्या स्थिर न उषा की प्रभा ही स्थिर है। सूर्य हो चन्द्र हो किं वा तारे हो, सभी परिवर्तनशील है। आज युग भी परिवर्तन शील हो गया है, हे बन्धु! तुम्हें भी बदलना होगा। काल की गति देखकर ही तुम्हें भी चलना होगा।

इस प्रकार बादलों की कृपा के विना धरा की दुर्दशा का वर्णन किया गया है। साथ ही साथ चिरकाल से मेघ की प्रतीक्षा करती हुयी, कृषकांगना द्वारा मरुधरा की उपेक्षा करने वाले जलधर को कोसा भी गया है एवं मरुधरा को त्याग कर अन्यत्र अधिक वृष्टि करने वाले मेघ पर जार भाव का आरोप भी लगाया गया है। इस प्रकार कहीं कहीं पर अल्पवृष्टि, अनावृष्टि, अतिवृष्टि से विविध लीला करने वाले बादलों का मानवीकरण कर मेघ को उपालम्भ दिया गया है।

(ग) वियोगशतकम् खण्डकाव्य –

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा सम्वत् 2056, संस्कृत वर्ष 1999–2000 में **'सर्वभाषा कालिदासीयम्'** प्रकाशन से प्रकाशित 'वियोग शतकम्' नामक खण्डकाव्य पं. श्री राम दवे की उत्तम प्रकृति की कृति है। काव्य का नायक 'आसूलाल संचेती' कवि के संमित्र थे, अतः उनके हृदय का भाव सहज ही कवि के हृदय में समाहित हो गया। मित्र के अर्धांगिंनी वियोग–शोक ने उनको द्रवित किया और उनके हृदयनिर्झर से यह काव्यस्रोत उमडपड़ा जैसे आदिकवि के कोमलहृदय से **क्रोंचवध**[11] की करुणा प्रस्फुटित होकर उनकी कविता में समाहित हो गयी थी।

कवि के हृदय की सदाशयता ही कुछ ऐसी होती है, जो दूसरों के दुःखों को आत्मसात् कर काव्य का रुप दे देते हैं –

गैर के गम का अब दिल पे असर होता है।
कोई रोता है तो दामन मेरा तर होता है[12]।।

वियोगशतकम् खण्डकाव्य 'मेघदूत' का अनुगामी है, 111 मन्दाक्रान्ता छन्दों में अपने अधिवास आवास 'अल्का' से, मेघद्वारा परम–धाम–निवासिनी प्राणप्रियापत्नी को मेघ द्वारा सन्देश प्रेषण की व्यथा कथा इसमें समाहित है। जिसका कथानक कुछ इस प्रकार है :

वियोगशतकम् का कथानक –

कोई वियोगी अपनी अर्धांगिंनी के निधन पश्चात् की वेदना से व्यथित, होकर अपने उसके अतिप्रिय 'अलका' नामक निवास स्थल पर एकाकी बैठा हुआ अपनी दिवंगताप्रिया को स्मरण कर रहा था। सहसा उसने आकाश में उमड़ते हुये मेघों को देखा और उन्हें देखते ही वह उन्मत्त की तरह कह उठा, आज मेरी अलका, प्रिया के विना सूनी हो गयी है। जब मैं तुम्हें आकाश में चमक दमक वाली अपनी प्रेयसी बिजली के साथ क्रीड़ा करते हुये देखता हूँ, तो मेरे आतुर मन में यौवन काल में अनुभव किये हुये विषय उद्दीप्त हो उठते हैं। वस्तुतः **"दुःखायैव प्रभवतितरा वार्द्धके पूर्व भोगः**[13]**"** अर्थात् वृद्धावस्था में पूर्वकाल के सुखद् भोगों की स्मृति बड़ी दुःख दायी होती है।

वर्षाकाल में स्निग्ध गम्भीर गर्जना वाले जल भरे बादल उन लोगों के हृदय में आनन्द उत्पन्न करते है, जिन्हें अपनी प्रिया के संग का सौभाग्य प्राप्त है। परन्तु प्रिया वियोगी मुझ जैसे मन्द भाग्य का तो वे दिल ही जलाते रहते है। अरे, प्यारे मित्रों! जरा मेरी ओर भी देखो, मेरे हृदय की धरा प्रियावियोग से कितनी संतप्त है, जरा उस पर भी मेरी प्रिया के सन्देशों की वृष्टि करो। रामगिरि आश्रम पर बैठे मेघदूत वर्णित यक्ष का सन्देश लेकर जाते हुये वर्षा के ये बादल मेरे घर का नाम 'अलका' सुनकर यहाँ आ जाते है, किन्तु

यक्ष द्वारा वर्णित वियोग–विषाद–युक्त उस यक्षकान्ता को न पाकर, वे यहाँ से शीघ्र ही लौट जाते है। मैं समझता हूँ ये बादल भी वस्तुतः खारे समुद्र का पानी पीकर जड़ बुद्धि हो गये है, इसलिये वे केवल पृथ्वी लोक का ही मार्ग पहचान पाते है, देवताओं के मार्ग का तो उन्हें पता हीं नहीं चलता, और मैं भी प्रिया की विरह वेदना में इतना पागल हो गया हूँ कि इन घुमक्कड़ बादलों से याचना करने लगा हूँ।

हे भुवनविदित पुष्करावर्तक वंश में उत्पन्न मेघ, मेरी प्रिया कहाँ गई है ? मुझे भी पता नहीं है। शायद स्वर्गलोक गई हो, जहाँ देवता गण रहते है। उस स्वर्ग लोक का मार्ग भी बड़ा दुर्गम है। वहाँ पहुँचना आप के लिये भी बड़ा कठिन है। हे प्रिये! तुम्हें क्या बताऊँ, तुम्हारे वियोग में मेरा क्या हाल हो रहा है, पूर्व प्रणय की स्मृति को स्मरण करता हुआ, दरवाजे पर खड़ा आँसुओं को बहा रहा हूँ। मैं एकान्त में बैठा हुआ तुम्हारे प्रेम की पिपासा में व्याकुल हो रहा हूँ। किशोरावस्था में किये गये विवाह की बातों को स्मरण कर रहा हूँ। जब तुम भोली–भाली सूरत वाली नई दुल्हन बनी थी, लज्जा से अपने अंगों को सिकोड़े रहती थी, तब स्वर्ण कंगन और सुन्दर वस्त्रों को धारण की हुयी, घूंघट में मुख छिपाये मृगलोचना सी प्यारी नववधू लगती थी।

दृष्टः किन्तु त्वयि सुवदने! सङ्गमः प्रतिभक्तयोः
जातादिष्ट्या तब च विरहे यक्षतुल्या दशा में ।
येनात्मा में दयित दयिता प्रेयसी भेद शून्यः,
चित्ते पश्यत्यविरतमयं स्नेहसंदोह मूर्तिम्।।[14]

हे प्रिये! तुम्हारे अन्दर प्रेयसी का प्रेम और पत्नी की भक्ति का संगम था। सुहागिन सहेलियों के मध्य तुम्हारी सुन्दरता गर्वयोग्या हुआ करती थी, वो हेमन्त का आनन्द, शिशिर का मोदक, वसन्त का उमंग, फाल्गुन मास की जल क्रीड़ा आदि अब सारहीन प्रतीत होता है।

हे प्रिये! मैं अपने विरह की व्यथा किसे सुनाऊ, मैंने तुम्हारें साथ जिन–जिन सुखद्विषयों का रसास्वादन किया है, उन्हें प्रयत्न पूर्वक भी अपने हृदय से दूर नहीं कर पा रहा हूँ। ये वाटिका के आसन्द[15] तव गृहसखी पंजरस्थासारिका,[16] शुनकबटुक[17] (छोटापिल्ला) नवजवनिकाऽ[18]च्छादित लीला कक्ष, रम्ययुगल रचित शय्यागार[19] चारु श्रृंगारशाला आदि भी तुम्हारें वियोग में व्यथित है। हे अन्नपूर्णे! गृहिणी के बिना भी भला कोई घर होता है।

'सत्यंलोके भणति गृहणी गेहरुयां वरेण्यां'[20]

हे प्रिये! कुटिल विधाता ने चाहे तुम्हारा दृश्यरुप हरण कर लिया हो, परन्तु तुम्हारा पवित्रप्रेम आज भी मेरे हृदय में विराजमान है। तुम्हारी मनमोहिनी अमृतलहरी सी दृष्टि आज

भी मेरी स्मृति में बसी हुयी है। तुम्हारी अमृतभरी वाणी को आज भी मैं अपने कानों में सुन रहा हूँ। ये विधाता, उसे नहीं ले जा सकता।

हे प्रिये! कोई समय था जब तुम्हारा किंचित वियोग भी मेरे लिये असह्य हो जाता था परन्तु हाय! आज वहीं वियोग कुटिल विधाता ने शेषजीवन भर के लिये उपहार में दे दिया है। क्या करें, ये विरह के दिन तो अब किसी तरह बिताने ही पड़ेंगे। यह सच है कि जहाँ संयोग होता है, वहाँ कभी न कमी वियोग आता ही है।

''संयोगानां भवति सततं विप्रयोगे विरामः[21]'' हे प्रिये तुम्हारे सहयोग से फली फूली मेरी यह गृहवाटिका चाहे आज पुत्र–पौत्र और पुत्र बधुओं से हरी–भरी हो, किन्तु मेरा मानना है कि, तुम्हारे चले जाने से मेरे गृहरत्नागार में कौस्तुभमणि का अभाव हो गया है।

जैसे क्षीर सागर में सोये विष्णु के वाम भाग से लक्ष्मी अदृश्य हो गयी हो, मानसरोवर से हंसिनी कहीं अन्यत्र चली गयी हो।

मैं क्या करुँ इस वृद्धावस्था में समझदारों को स्त्री के लिये रोना भी अच्छा नहीं माना जाता है, इसलिये हृदय की इस वेदना को मैं एकान्त में बैठकर–अपनी लेखनी को सुनाता हूँ। धन्य हे वह पति जिसे तुम्हारे जैसी विशुद्धचरित्र वाली गृहलक्ष्मी मिली हो, कान्तोचित्त–विलास, मधुरवाणी, रतिमदहरारुपवती, गुणगौरवशाली, सीता सी शीलवती, पार्वती सी भाग्यशाली, मध्येक्षामा, पक्वविम्बाधारोष्ठी, शशधरमुखी, पद्मिनी–स्वरुपा तुम जैसी स्त्री इस संसार में दुर्लभ है। ऐसी नारी से वियोग किसी अभागे पुरुष का ही होता होगा।

तुम जैसी–नारी तो अपनी कार्यकुशलता से इस पृथ्वी पर, अपने घर को एक नया स्वर्ग बना देती है। ''स्वर्गचंक्रुः सदनमवनौ दुर्लभास्ता गृहिण्यः''[22]

तुम जैसी पार्वती का सानिध्य पाकर ही शिव पूजे जा रहे है, तुम जैसी लक्ष्मी का सानिध्य पाकर ही विष्णु भी पूजित हैं।

जो पुरुषों को आनन्द का अनुभव कराती हो, जो अपने पुत्र, पौत्रों से कुल की वृद्धि करती हो, यश बढ़ाती हो, जिसकी वाणी में कठोरता, बुद्धि में मन्दता, चरित्र में चपलता, गुणों में कालिमा का अभाव हो, जो अपने गर्भ से महापुरुषों का उत्पन्न करती हो, जिसके विना पुरुष भाग्यहीन कहलाता हो। ऐसी नारी भला किसे प्रिय नहीं होगी।

'कास्या भीष्टा भवति न जनस्याङ्नासाऽनवद्या'[23]

जिसका विवाह नही हुआ हो वही आत्मवंचक पुरुष ज्ञान के दम्भ में स्त्री को सदा निन्द्यनामों से पुकारता है।

''वामावामी वदति सततं वंचकोज्ञानदम्भः''[24]

हे प्रिये! तुम्हारे अभाव में अब तो सुन्दरियों के प्रति कोई सौन्दर्य भाव ही न रहा है। चाँद भी अंगारे जैसे लगते है। मैं ही नहीं ये पुत्रवधुऐं, कृपादृष्टि से वंचित बेटे, पोते, ये दास–दासियाँ भी बड़े दुःखी दिखाई देते है। आज तुम्हारे विना घर आंगन श्रीहीन सा लगता है।

हे प्रिये! तुम अपने पुण्यप्रताप से ऊर्ध्व लोक में जा रही हो, चन्द्रसखी रोहिणी से मित्रता हो गई होगी, तुम सुन्दर सिंहासन पर बैठी होगी, अमृत की प्याला पी रही होगी, चन्द्रमा के अनुचर नक्षत्र गण तुम्हारे सम्मान के लिये हाथों में हार लिये खड़ी होगी।

गन्धर्व कन्याऐं तुम्हारे गुण और यश के गीत गा रही होंगी। इन्द्राणी ईष्या भाव से देख रहीं होंगी, कि मृत्युलोक से आयी नारी अपने प्रबल पुण्य प्रभाव से मेरा देवी पद तो नहीं छीन लेगी। मुझे डर है, कि अति उष्ण आदित्य मण्डल को कैसे पार करोगी ? हे प्रिये! तुम्हें अपने पुण्य फलों के कारण ही देवताओं की वस्ती स्वर्ग मिला है, देवता भी राग द्वेष से पीड़ित होते है। इन्द्र भी तुम्हें किसी न किसी षडयन्त्र द्वारा दूषित करने का प्रयास कर सकता है।

हे प्रिये! मैंने योगी जनों से सुना है कि पृथ्वी पर रहने वाले प्राणियों के पिण्ड के बीच में भी स्वर्ग है, जो पूर्व जन्म के पुण्यों से मिलता है, जिसे त्रिपुरनाथ की पत्नी की कृपा से ही प्राप्त किया जा सकता है। अतः तुम तो यहाँ आने के लिए दयालु ह्रदया अम्बा जी से प्रार्थना करना, ताकि हमारा मिलन हो सकें।

संजाते सुहृदि प्रिया विरहिते श्री आसुलालाभिधे
शब्दब्रह्मविलासलास्यमतिना संवेदना भावितम्।
काव्यं यन्नु मया वियोग शतकं काव्यात्मनागुम्फितम्,
भूयान्तत्सुभगश्रियो हि मदन देव्याः स्मृतावंजलिः।।[25]

अन्त में कवि कहते है कि मेरे मित्र भी आसूलाल जी की पत्नी के दिवंगत होने पर, उनके विरह में उन्हें वियोगाकुल देखकर संवेदना के कारण जो भाव पुष्प मेरे ह्रदय में उदित हुये, उन्हें शब्द ब्रह्म का विलास मानकर मैंने 'वियोग शतकम्' नामक काव्य गुम्फित किया है। यह काव्य सौभाग्यवती दिवंगता मदन कुँवर की पुण्य स्मृति में मेरी पुष्पांजली बने, इसी भावना के साथ यह काव्य समाप्त करता हूँ।

2. भक्ति परक खण्डकाव्य –

(क) ललितालहरी खण्डकाव्य –

"**ललितालहरी**" नामक खण्डकाव्य कवि की अनूठी कृति है, जो माँ ललिता के चरणों में समर्पित उनकी भक्ति से सिंचित जीवन भर की जमा पूँजी है। विलक्षण है माँ

ललिता के प्रति ऐसी अगाध श्रद्धा। जीवन की हर कठिन परीक्षा में माँ की परम कृपा से जो सफलता मिली उसे कवि ने भगवती की परम अनुकम्पा माना और अपने व्यवस्थित जीवन की इस शाम में माँ के गुणगान स्वरुप **'ललितालहरी'** की रचना करने का मानस बनाया। ''मग जी बा'' द्वारा गाया भजन– 'धिन–धिन समदड़ी रा भाग[26] .... ललिता विराजे वन की डूंगरी' से प्रेरणा लेकर 63 श्लोकों में कुलदेवी स्वरुपा भगवती ललिता देवी की स्तुति की है।

अतः प्रकृत खण्डकाव्य का उपजीव्य श्री विद्या की दीक्षा से उत्पन्न भाव तथा **'मग जी बा'** का भजन के भाव को कहा जा सकता है। जिसका कथानक अधोलिखित है –

समृद्धं सौभाग्यं भजति नगरीयं समदड़ी,
स्थिता कण्ठे यस्या विमल सिकता लूणि सरिता ।
शरण्यां सिंहाना लसति च गुहाङ्का शिखरिणी,
वसत्यम्बा प्रीत्या परिजन युता यत्र ललिता।।[27]

मरुधरा की पुनीता सरिता लूणी नदी से नातिदूर, पहाडियों की तलहटी में अवस्थित प्राकृत सम्पदाओं एवं वन्य पशुओं से समृद्ध समदड़ी की कन्दरा में भगवती ललिता देवी का मन्दिर है।

मन्दिर के मध्य में महालक्ष्मी स्वरुपा भगवती ललितादेवी, दक्षिण भाग में महाकाली की प्रतिमा, दूसरी और महासरस्वती का प्राचीन विग्रह तथा आगे के भाग में गजानन और त्रिशूलधारी बटुक भैरव प्रतिष्ठित है। मन्दिर के बाहर के भाग में सघन वृक्षावली, विविध लताओं की हरीतमा से श्यामला शिखरिणी है। शिखरिणी के इतस्ततः स्वच्छन्द निर्द्वन्द विचरण करते हुये सिंह–हरिण–खरगोश आदि वन्य प्राणियों का अवैर भाव वाला मनोरम दृश्य दिखाई देता है। पुष्परसपान करने वाले भौंरो का झुण्ड भी चारों ओर धूमता दिखाई पड़ता है।

वर्षा ऋतु में गुफा से बहता हुआ पानी का झरना भगवती ललिता देवी के चरणों से निकलती हुई अमृत–धारा के समान प्रतीत होता है, जो चारों ओर फैले वृक्ष और लताओं का पोषण करती हुई धरती को शस्य–श्यामला बनाई हुयी है। अम्बा ललिता के स्नान के लिए पहाड़ी के नीचे जल कुण्ड बना हुआ है, जो सिंह आदि पशुओं की प्यास बुझाता है, तथा मरुधरा को भी संतृप्त करता है।

कन्दरा में बैठी–बैठी जगदम्बा ललिता सकल संसार का नियंत्रण कर रही है। उनके पुत्र गणपति सज्जनों के समस्त विघ्नबाधाओं को दूर करते है। महाकाली अंगरक्षक की तरह विराजमान है तथा सरस्वती देवी अपनी कृपा कटाक्ष से भक्तों की जड़ता को दूर

कर रही है। त्रिशूल धारी बटुक भैरव विकट सैनिकों का सेनापति बनकर राज्य रक्षा में सन्नद्ध है। चौसठ योगिनियाँ जगत पालिका ललिता देवी की आज्ञा पाकर नाना रुप धारण करके चारों ओर विचरण करती हुयी कुशल गुप्तचरों का काम करती है। हे माँ! तुम्हारी सखी महाकाली भी शिशुओं का मनोरंजन करने में बड़ी कुशल है। कभी गणपति को नृत्य के लिये प्रेरित करती है, तो कभी चपलता करने पर उसका कान मरोड़ देती है।

हे माँ! तुम्हारे निकट विराजमान ब्रह्माजी की गृहिणी सरस्वती भी कभी घण्टा बजाकर तो कभी शंख ध्वनि द्वारा तो कभी वीणा के तारों के झंकार से तुम्हारे लाड़ले गणेश को छेड़ती रहती है।

वसन्त और शरदऋतु की नवरात्रि में द्विजवर तेरी प्रसन्नता पाने के लिये अर्चना करते है। सामन्त भी तुम्हारे अनुग्रह से शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते है। वैश्यजन तुम्हारी उपासना से अपने व्यापार में विपुल वित्त का लाभ प्राप्त करते है। अन्य जन भी तेरी कृपा से अनन्त वैभव का लाभ उठाते है। मारवाड़ के सिरमौर वीरव्रती दुर्गादास ने भी तुम्हारी शरण में तपस्या करके सन्मार्ग का मार्ग अपनाया।

तुम्हारे यहाँ पूर्णिमा तिथि को बड़ा मेला लगता है। सोलह कलाओं वाला चन्द्रमा भी पूर्णिमा के दिन शिर झुकाकर तुम्हारे आदेश की प्रतीक्षा में कन्दरा द्वार पर खड़ा रहता है। दर्शनार्थ आता हुआ जन प्रवाह तुम्हारी जय–जय कार करता है। कोकिलकण्ठी सुहागिने मधुर गीतात्मक स्तुतियों से महोत्सव मनाती है। कुमारियाँ नृत्य करती है। भोग प्रसाद का आयोजन होता है, धूप–दीप–गन्ध–पुष्प नानाविध नैवेद्य आदि से पूजन पश्चात् अद्भूत आनन्ददायिनी आरती की जाती है। रत्नजटित–मुकुट, केशर–कस्तूरी तिलक सुगन्धित भाल, कनक कलिता मौक्तिक युक्ता नासावाली (नथ) ग्रीवा में ग्रैवेय (हार) आदि अलंकारों से अलंकृत तुम्हारे विग्रह के दर्शन से आनन्दित हो भक्त समुदाय प्रसन्नता को प्राप्त करता है। हे जननी! सूर्य चन्द्र मगंल आदि ग्रह भी तुम्हारे आदेश से ही इस संसार की सेवा के लिये तत्पर रहते है। आकाश भी तुम से ही विस्तार को प्राप्त होते है। तारा गण भी तुम्हारे प्रकाश से ही प्रकाशित होते है। यह सारा संसार जानता है कि तुम भक्त हितकारिणी हो। यह सकल संसार तुम्हारे ही संकेतों पर चलता है। जब तुम सिंह पर सवार होकर युद्ध के लिये कमर कस कर करकमलों में धनुष, खड्ग पाश, वज्र आदि धारण करती हो, उस समय मुख पर क्रोध की लाली देखकर देवता भी चकित हो उठते है।

हे देवताओं पर शासन करने वाली, राक्षसों के दर्पों का दमन करने वाली, तुम्हारे पति महादेव है, तुम्हारा पुत्र गणेश है, फिर भी तुम्हें अपनी गुरुता का गर्व नहीं है। तेरे द्वार पर आया कोई भी व्यक्ति कभी निराश होकर नही जाता है। हे माँ! तांत्रिक सिद्धी प्राप्त

करने के लिये चाहे तुम्हारे किसी रुप की उपासना करते हो, लेकिन मुझे तो तुम्हारी दिव्य सौम्य मूर्ति ही अच्छी लगती है। तुम्हारी कृपा दृष्टि का ही यह परिणाम है कि मुझे पं. रुद्रनाथ देव से ''श्री विद्या'' की दीक्षा प्राप्त हुयी। जिसमें तुम ही पराशक्ति ललिता के रुप में उपास्य देवता बनी।

अतः हे ललिते माँ! अन्त में यही प्रार्थना है कि –

न मे जातू दीयाज्जननि! फलितेच्छाऽर्चनविधौ,
न वा विद्यादर्पो भवतु न विसर्पोऽप्यवमतेः।
सपर्या सौभाग्यं लसतु सततं स्वस्थमनसि,
त्वदङ्के देहोऽयं विलयमपि चान्ते चलभताम्।।[28]

अर्चना में फल की इच्छा जागृत न हो, मन में विद्या का अभिमान न हो, मन स्वस्थ रहें, अन्त में यह नश्वर शरीर तुम्हारी गोद में समा जाये।

इस प्रकार ललितादेवी की स्तुति में लिखी गयी लहरी काव्य को भक्ति भाव से पाठ करने वाले भक्तों को गणेश जननी ललिताम्बा की वात्सल्य पूर्ण कृपा दृष्टि को प्राप्त करेगा।

(ख) अपांगलीला खण्डकाव्य –

विविध भाषा–विभाषा के ज्ञान से अभिमण्डित काव्य सुचिन्तन धरा पर अधिष्ठित, भक्ति पीयूष पान पण्डित महाकवि श्री राम दवे की अनुपम भक्तिकाव्यकृति अपांगलीला नामक खण्ड काव्य है। कवि श्री विद्या में दीक्षित होने के पश्चात् भगवती त्रिपुरसुन्दरी की समाराधना में समर्पित, सतत् संसार की स्पन्दनस्यन्दिनी शंक्ति सच्चिदानन्दस्वरुपा, भगवती ललिताम्बा के विषय में चिन्तन–मनन के फलस्वरुप कवि के सत्चित् में जो भावों का स्पदन हुआ, वहीं छन्दबनकर काव्य के रुप में प्रस्फुटित हुआ। वस्तुतः यह प्रस्फुटन् अपनी आराध्या देवी को अर्पित काव्यकुसुमांजलि रुप कविकृत नमस्कारांजलि है। जिसका प्रकाशन 2004 ई. में हंसा प्रकाशन, जयपुर द्वारा किया गया । इसमें भगवती के 10 अपांगलीलाओं का अनुपम वर्णन 184 श्लोंको में किया गया है। जिसका कथानक कुछ इस प्रकार है –

अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायिका भगवति ललिता देवी इस सृष्टि की स्पन्दन शक्ति है। उसी से इस सृष्टि की उत्पति हुयी है। विश्व का स्थूल–सूक्ष्म–कारणभूत शरीर का कारण भी यही है। व्यावहारिक जीवन में धरा में धैर्य, जलधि में गाम्भीर्य, वियति में विशालता, वह्नि में दाहकता, सूर्य–चन्द्रमा में प्रकाश, प्रभुता तथा प्रकृति में विकृति आदि भगवती की कृपा कटाक्ष की ही अद्भुद्लीला है।

अयन–मास, पक्ष तिथि घटि पल आदि का भेद, समय की कौतुहलता आदि का अनायास आभास भी ब्रह्माण्ड नायिका की ही अपांगलीला है।

पृथ्वी सगन्धा सलिले रसोदयो,

वेगश्च वायौ ज्वलने च तेजः।

प्राणाः शरीरे खलु पंचभूतैः,

प्रकल्पिताः वै कृपया तवैव।।[29]

हे जननी! यह पृथ्वी तुम्हीं से गन्धवती है, जल में रस, पवन में वेग, पंचभूतकाया में प्राण तुम्हारी ही कृपा से है। नवरसों में शृंगार का आधिपत्य, गद्यों में कलालालित्य कवियों की कविता में नवोक्तिप्रतिभा तुम्हारी ही करुणा है। वर्णाश्रम की सुभग व्यवस्था, तापसगणों की तपोबल में निष्ठा, आगमोक्त विविध प्रयोग, शिष्यों में श्रद्धा गुरुओं में गुरुता, सुधियों में प्रज्ञा, कवियों में प्रतिभा आदि तुम्हारी कृपा कटाक्ष से ही प्राप्त करने योग्य है।

शिष्येषु श्रद्धा गुरुता गुरुणां, प्रज्ञा बुधानां प्रतिभा कवीनाम्।

कुशाग्रबुद्धिः श्रुतिशास्त्र बोधे, कृपा कटाक्षै स्तवलम्भनीया।।[30]

शिशुओं में सुकुमारता, युवकों में उत्साह, वृद्धवयस्कों में सौम्यभाव, सुरपति का ऐश्वर्य, वृहस्पति में मति दितिपुत्रों में व्यामोह, कुबेर में धन वैभव, अप्सराओं में ललित लावण्य, विष्णु में महाबल, शिव में रुद्र, विविधलोक, निखिल ब्रह्माण्ड आदि तुम्हारी ही सृष्टि लीला है।

सत्ये सत्यपरायणा हि मनुजाः शास्त्रोपदिष्टं निजं,

चक्रुः स्वात्मधियैव कृत्यमखिलं कामानपेक्षाः सदा।

नो राज्ञः खलु दण्ड भीति विवशाः धर्मेरतास्तेऽभवन्,

सर्वेषां निज कर्म पालन रुचिः स्वाभाविकी चामवत्।।[31]

हे मां! यह तुम्हारी ही युग्लीला है कि सत्युग में लोग सत्य परायण, शास्त्र विहित कृत्यों की साधना में रत रहा करते थे। उनका जीवन धर्मरत था, उन्हें राजभय नहीं सताता था, तथा उनमें निजकर्मपालन की रुचि स्वाभाविकी थी।

त्रेता युग में धर्मनीतिव्रत तथा द्वापर युग में दण्ड के भय से आज्ञापालन होता था। कलियुग में काम, अर्थ के प्रेरक सुलभ भोगों में लीन मानव भौतिकयन्त्रशक्ति के गौरव का गुणगान करने वाले है। आज वही धरा है, वही मानव है, पंचभूत संघात भी वहीं है किन्तु राजाओं के राज चले गये नव प्रजातन्त्र का शासन आ गया यह सब तुम्हारें ही अपांग की माया है। हे ललिते! तुम्हारी युग्लीला भी अतिविचित्र है। इस कलियुग में मनुष्य तो मनुष्य, देवता भी युगप्रभाव से प्रभावित है।

वरदा शारदा हो या अमला कमला मतिभ्रष्टों के साथ विलास को विवश है। ब्रह्म–विष्णु–महेश भी प्रज्ञा से दीन प्रतीत हो रहे है। धर्मशील शासक मर्यादा हीन हो गये

है। नव–नटनटियों के रम्य चित्रों से साधुजनों का चित्त प्रदूषित हो गया है। आबालवृद्ध छद्मजाल से छलित है। हे अम्ब! राम–कृष्ण–सीता–राधा आदि सभी तुम्हारी ही लीला है। परा–अपरा आदि तुम्हारे ही रुप है। बुद्धिजन्य स्मृतियाँ चंचल मन, विषय–विषयी तुम्हारी ही विमला लीला है।

अतः हे करुण लोचने! इस बालक को अपने अंक में आसन दे दो क्योंकि आपके कृपा कटाक्ष के सिवाय कहीं भी हमारी गति नहीं है।

कटाक्षपातं करुणेक्षणायाः विहायनान्यास्ति गतिर्मदीया।
अतोऽम्ब! डिम्भं दयितं त्वदीयं करावलम्बेन निधेहि चांके।।[32]

हे जगत् मोहिनी! श्रीपुरवासिनी हरिहरार्जिता, दनुजदामिनी शक्तिरुपा ललिते! आपके जिस विचित्र अपांगलीला से यह बहुरुपा सृष्टि उदित है, उसी लीला का एक रुप पंचप्रकृति गजमुखाम्बिका शिवा, कृष्णवल्लभारसिकाराधिका, सरसिजासनाविष्णुवल्लभा, जनकनन्दिनी रामभामिनी, वागधीश्वरीशारदा आदि पंच देवियाँ है।

विविध ललित लीला मण्डितासृष्टिरेषा।
जनयति ह्रदिभावान् शब्दबद्धान् विधातुम्।
परमियमतिमन्दा मामकीना हि मेधा,
कथमलमयि! भूयात्वत्प्रसादाद् विना में।।[33]

हे माँ! तेरी लीला से मंडित इस सृष्टि में ह्रदय के भाव ही शब्दों में व्यंजित होते है। जो आपकी कृपा के बिना सम्भव नहीं है। मेरा चंचल मन ध्यानमार्ग में नहीं लगता, पूजनवृत्ति की प्रवृत्ति नहीं है। अतः अपने चपल चित्त के रंजन हेतु रचित यह काव्य माँ आपके चरणों में समर्पित करता हूँ।

लगति नहि मनो में चंचलं ध्यान मार्गे,
विशति च न हि वृतिर्व्याकृता पूजनेऽपि।
विकृति विकल चेतो रंजनार्थं निबद्धं,
भवतु जननि! काव्यं तेऽर्चना रुपमेतत्।।[34]

माँ! आपका विविध रुप एवं आपकी विविध लीला, से सम्पन्न भावों को शब्दों में पिरो कर भक्तिमाला स्वरुपा अपांगलीला नामक खण्डकाव्य आपके ही श्रीचरणों में समर्पित करता हूँ।

(ग) भारतीविलास खण्डकाव्य –

भारतीविलास नामक खण्डकाव्य का प्रकाशन राजस्थानीग्रन्थागार जोधपुर से जुलाई 2002 में हुआ। यह 191 श्लोकात्मक खण्डकाव्य है। जो कवि की उत्कृष्ट एवं अलौकिक रचना है इस काव्य में शब्दब्रह्म की मायामातृका रुपधारिणी **भारती** की लीला का विलास वर्णित है। व्यावहारिक जगत् में विद्यारम्भ वर्णमातृका से ही प्रारम्भ होता है। प्राचीन समय में अक्षरारम्भ के समय **"सिद्धों वर्णः समाम्नातः"** पढ़ाया जाता था। वस्तुतः वर्ण ही सम्पूर्ण सृष्टि में ज्ञान का समवाय कारण सिद्ध है। इसके द्वारा ही ''वर्णाः पदम्[35] 'पदोऽचयवाक्यं'[36] वाक्योऽचयोमहावाक्यं'[37] के क्रम से साहित्य का निर्माण होता है। साहित्य–संगीत–कला–विज्ञान आदि समस्त ज्ञान साहित्य का मूल वर्णमातृका ही है। जिसे आगमों में भारती कहा गया है। विश्व की विविध भाषाऐं उनका विविध वाग्विलास साहित्य आदि इसी अलौकिक शब्दब्रह्म की ही अनन्त कलाऐं है। एक ही अकार उच्चारण में एक सा होते हुए भी विश्व की अनेक भाषाओं विविध लिपियों के माध्यम से भिन्न–भिन्न रुप धारण किये हुए है। उस शब्द ब्रह्म से ही वाक् सृष्टि का निमार्ण होता है और लोकव्यवहार प्रारम्भ होता है। शब्द की अनेक विधाएं है। नाना प्रकार से उन्हें अभिव्यक्त किया जाता है। कभी वह कविता के रुप में कवि के मुख से प्रकट होकर रसिक जनों के हृदयों को आह्लादित करता है, तो कभी प्रबुद्धजनों की सधी हुयी वाणी के माध्यम से परम तत्व का बोध करता है तो कभी वैज्ञानिकों के माध्यम से नवीन आविष्कार के रुप में परिवर्तित हो जाता है, तो कभी किसी विचारक के ओजस्वी भाषण के माध्यम से सामाजिक क्रान्ति ले आता है। यहीं शब्दब्रह्म, अपनी मायाशक्ति से नानालिपियों का आवरण ओढ़कर भाषाओं के रुप में प्रकट होता हुआ, प्रान्त, प्रदेश और राष्ट्र की भाषाओं का अहंकार धारण कर लेता है। यही इस शब्द ब्रह्म की सृष्टि प्रक्रिया है।

''नराणां नारीणां बालानां बालिकानां नटानां नायकानां, गुरुणां शिष्याणांच इयं भारती एवं मतिं मोटयति इति न वयं ज्ञातुं प्रभवामः। अनिर्वचनीयम् अस्याः वाग्विलासिन्याः लास्य वैभवम्। अस्याः प्रेरणयैव गुम्फितम् इदं काव्यं अस्याः एव चरणेषु पुष्पाञ्जलिरुपेण समर्पये।''[38]

वस्तुतः भारती विलास नामक खण्डकाव्य लेखन की प्रेरणा वाग्विलासवैभवा वर्णमातृका के साक्षात्कार से कवि को मिली होगी एतदर्थ राजशेखर प्रणीत काव्य मीमांसा का अध्ययन, भतृहरि कृत वाक्यपदीयम् का चिन्तन एवं वर्णवैभववैविध्य का मन्थन इस **खण्डकाव्य का उपजीव्य** है।

भारती विलास नामक खण्ड काव्य का कथानक 13 भागों में विभक्त है, जिसका आरम्भ **'भारतीलीलायितम्'** से किया गया है। तदनुसार वर्णविग्रहवती भगवती भारती शब्दब्रह्म को जीवन शक्ति प्रदान करने वाली तथा विद्वज्जनों की आराध्य देवता है। जो

विविध छन्दवस्त्रों को धारण कर, अपने दिव्यशरीर को शब्द–अर्थ ध्वनि, रीतियुक्त–रस–अलंकारों से मण्डित करती हुयी, विश्व के वाग्व्यापार में नित्य नई–नई लीलाऐं प्रकट करती रहती है। भारती ने ही अपनी पचास वर्णवारिकणिकाओं से अथाह शब्दसागर रच दिया, जिसके वर्णवाष्पजल से इस संसार में विविध शास्त्रवारिद उत्पन्न होते रहते है, और वे अपना मधुर जल बरसाते हुये अपनी जल धारा की मेधा को अभिसिञ्चित करते रहते है। सम्पूर्ण संसार में विख्यात पाणिनी के शब्दशास्त्र का शिवसूत्रजाल, पाणिनी के सूत्रों पर रचा गया पतञ्जलि का भाष्य, भारती के निर्मल ऐश्वर्य का वैभव है।

यह परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी के रुप में वर्ण मातृका रुप धारण करती है। यही संगीत शास्त्र में मन्द्र मध्यम और तार स्वरों से आरोही–अवरोही स्वर वैभव को प्रकट करती है। यही लिपिवस्त्र पहनकर देवनागरी, तमिलजा, बंगाली, अंग्रेजी, अरबी आदि भाषा भेद के द्वारा संसार में अपनी माया फैला रही है। यही प्रकृति के मास, पक्ष, दिन आदि पंचांग के पाँचों अंगो को मण्डित करती है। इसके अन्दर शास्त्ररत्नों के भण्डार का आधार छिपा हुआ है जिसकी आत्मानन्दतरंगों से गंभीर नाद का उदय होता है। इसी ने विशाल ब्रह्माण्ड को मनुष्य के लधुपिण्ड में समाहित कर रखा है। इसी ने प्रचण्डसूर्य को मनुष्यशरीर में आत्मा बना दिया है। चन्द्रमा को मन का स्वामित्व प्रदान कर रखा है। गगनबिहारी सभी ग्रह अदृश्य रुप से इस मनुष्यशरीर के बन्दी बने हुये है। तुम्हारी कृपा से यह क्रूर सूर्य भी पूज्य पदवी को प्राप्त कर रहा है। तुम ही मधुर कविता कामिनी का रुप धारण कर अपने स्नेह भरें भावों से लोगों के हृदय सागर में आनन्द की हिलोंरे पैदा करती हो। तुम ही अपनी लावण्यलीलाओं से शब्द ब्रह्म को भी मोहित कर देती हो।

नायिका बनकर माधूर्य बरसाती हो, शृंगार से सजाती हो, अभिधा, लक्षणा, व्यंजना रुप धारण कर वाणी का मर्म बन जाती हो। तुम ही शृंगार, हास्य, करुण, रौद्रादि रस, गुरुलधु सूत्रों में ग्रथित छन्द, शब्द और अर्थों में सुसज्जित अलंकार हो, तुम्हारा संयोग भाग्यहीनों को नहीं मिल पाता है। तुम्हारी कृपा से ही वाल्मीकि व्यास कालिदास आदि कवियों का अस्तित्व है।

जब हृदयसागर में कल्पना की ऊँची लहरें उठती है तब तुम्हारा कविता रुप प्रादुर्भूत होता है। तुम शब्दब्रह्म की सहोदरा हो, नादब्रह्म का अंश हो, उषा तुम्हें वस्त्रों से सजाती है। तेरे ज्ञान सागर में विष और अमृत दोनों विराजमान है। विषपान करने वाला मृत्युंज्य हो जाता है। और जो अमृत पान करते हैं वे देवता बनकर स्वर्ग में अप्सराओं के साथ आनन्द भोगते है।

यन्त्रारुढ़ा–कलयसि नवां भौतिकीं सृष्टिमद्य
गेहे गेहे सुलभ मखिलं साधनं भोगभूतेः।
विश्वं सर्वं नटति सदने यन्त्रितं यंत्र तंत्रे,
मन्ये व्यूढं कलिहित कृते नव्यलीलायितंते।।[39]

तुम ही यन्त्रों के माध्यम से नये–नये भौतिक आविष्कारों की सृष्टि कर रही हो, मानों कलियुग के हितार्थ ही ये नई लीलाऐं दिखा रही हो। पहले दूर बैठा वियोगी बेचारा इन जड़ मेघों के द्वारा अपनी प्रेयसी को सन्देश भेजने का पागलपन दिखाया करता था। अब तो समुद्र पार बैठा व्यक्तिक्षणभर में अपने प्रियजनों से बात कर सकता है। तुम्हारी कृपा से कामिनियाँ अपने कक्ष में बैठी–बैठी दूरस्थ अपने प्रियजन के दर्शन तक कर सकती है।

हे भारति! आज का भौतिकवादी जन विस्मयकारक इस तुच्छ भौतिक चाकचक्य पर इतना मुग्ध हो गया है कि वह अपनी बुद्धि से भौतिकशास्त्र निर्मित अणुअस्त्र को तो बहुत मानता है, परन्तु मुनिजनों द्वारा मन्त्रशक्तिनिर्मित ब्रह्मास्त्र पर विश्वास नहीं करता। आज प्रत्यक्ष के प्रबल प्रभाव से परोक्ष की विभूतियों पर भी विश्वास नहीं होता। ये नवीन भौतिकवादी, अपने नूतन आविष्कार और उपलब्धियों में अपनी विलक्षण बुद्धि का गौरव मानते है। वे अपनी बुद्धि का चमत्कार मानने वाले अनीश्वर वादी मूर्ख यह नहीं जानते कि यह सब तुम्हारी प्रेरणा का ही फल है।

हे भारती! तुमने ही नाना प्रकार के तर्क विर्तकों के जाल से जटिल शास्त्रों के माध्यम से द्वेत अद्वेत विशिष्टाद्वेत केवलाद्वेत आदि भेदों के द्वारा उस अव्याकृत ब्रह्म को भी व्याकृत बना दिया। तुमने अपने बल्लभ ब्रह्मा को नाना मतों का मण्डन पहना कर ऐसा बना दिया कि वह निर्द्वन्द भी, लोगों के बीच में द्वन्द करने वाला नायक प्रतीत होता है। तुम ही सत् असत् रचनाओं की स्वामिनी बनकर समय–समय पर लोगों में मतिभ्रम करती हो, जिसके कारण अपनी बुद्धि का अहंकार करने वाले बुद्धिजीवी, संसार के मूल कारण, अचिन्त्य स्वरुप तुम्हारे पति की ही निन्दा करने लगते है। नये–नये नास्तिकों के नेता अपने भौतिक ज्ञान के धमण्ड में प्रायः देवपूजा की निन्दा किया करते है, वे ही मेधाप्रमत्तलोकायत जब कभी असंभावित संकटों में फंस जाते है, तब सारे बौद्धिक तर्क भुलाकर मन्दिरों की धूल चाटने लगते है।

चाहे मन्द बुद्धि हो या चतुर विद्वान, सबके स्वपनों का तुम ही संचालन करती हो, मूकों का भी तुम ही मौन वाणी हो। मनुष्य के हस्त–पाद और भाल की रेखाओं का तुम ही लेखा–जोखा रखती हो, इस विषय में मनुष्य अपनी बुद्धि का व्यर्थ में ही अभिमान करता है।

चराचर जीवों को धारण करने वाली, कामदुधा वसुन्धरा, आज विदारक यन्त्रों से विदीर्ण की जा रही है, शास्त्रों में गाय के शरीर में समस्त देवताओं का निवास माना गया है। गोबर में लक्ष्मी का निवास तथा उसके पंचगव्य में शरीर के समस्त दोषों के निवारण का गुण माना गया है। आज उसी की दुर्दशा भारत भूमि पर तुम्हारी आखों के सामने हो रही है। आज समाचार पत्रों में प्रकाशित विविध विज्ञापनों के माध्यम से लोगों का मन आकृष्ट करती हुयी निःसार वस्तुओं को भी सारवान बता रही हो। हे भारती आश्चर्य तो इस बात का है कि यह विमल वसना कुन्दधवला विद्या की अधिष्ठात्री शारदा नीर–क्षीर विवेकी हंस वाहन को छोड़कर मेकॉले रुपी बगुले पर सवार होकर चल रही है। इन फिरंगी गीदड़ों के बनावटी रंग पर मोहित हुई सी सरस्वती की बुद्धि भी अपना गणित इन गौरों की पद्धति से बैठा रही हैं। वह सिंह की पहचान ही मानों भूल गई है।

अहो! वीणापाणि र्विमलवसना कुन्दधवला,
मरालं त्यक्त्वैषा भजति बक मेकालकलितम्।
फिरंगी फेरुणां कपट धृतरागस्य वशगा,
सरस्वत्या मेघा हरिमपि न हा संकलयते।।[40]

हे भारति! यह संसार तुम्हारे अक्षरचन्द्र की ज्योत्सना सुधा से आप्लावित है तुमने लोक कल्याण के लिये भौतिक तत्वों में भी देवत्व का विधान किया है। आप सिद्ध मातृका है, आप के सूत्रों से सारा संसार गुथा हुआ है, फिर भी आश्चर्य है कि इस यन्त्र युग में आपका वैभव क्यों क्षीण होता जा रहा है। आज वर्ण वैभवधारी वेद भी वहीं है। सुन्दर अक्षरों में मुद्रित उन वेदों के स्वर भी विद्यमान है परन्तु उनके पाठक द्विजवर अब सुलभ नहीं है। इस विशाल भारत में भाष्य युक्त गीता भी दुर्लभः नहीं है। परन्तु ज्ञान के पिपासु अर्जुन और उसके बोधक कृष्ण सुलभ नहीं है। गायत्री सावित्री सभी अनादरित हो रहे है। तुम्हारी कृपा से वरतन्तु जैसे गुरु एवं कौत्स जैसे शिष्य भी देखे किन्तु आज शुल्कदास गुरुओं को भी देख रहे है और अनुशासनहीन शिष्य भी तथा व्यापार की मण्डी गुरुकुल भी। आज परशुराम के वंशज तपोबलविहीन दीन हो गये है। शिखाधारी ब्राह्मणों का ब्रह्मतेज समाप्त हो गया है। भारतीय संस्कृति का पोषण करने वाली तुम्हारी सखि सुरगिरा भी आज उपेक्षित हो रही है।

एषा संस्कृति पोषिणी तव सखी यातास्त्युपेक्षापदम्,
मुग्धा गौरगिराननने ननुतया संयोषिता पण्डिताः।
नास्याः दृष्टिपथं नयन्ति तनयान् मुग्धानवोन्मेषितेः
कुर्वन्त्योपि च कीर्तनं हि सततं वाचा तु तस्या भृशम्।।[41]

शिक्षा में संस्कृति में किंवा जीवन के उत्सवों में, खान–पान एवं अभिवादन में भाषा–भूषण–भाषण में शासन पद्धति में भी पाश्चात्य पद्धति का अनुकरण करने में हमें थोड़ा भी संकोच नहीं होता । खेद है कि विश्वगुरु कहलाने वाले देश को अपनी गौरव गाथा का जरा भी स्मरण नहीं हो पा रहा है।

हे भारती हम यह अभ्यर्थना करते है कि इस भारत भूमि पर पुनः ब्राह्मणों का ब्रह्मवर्चस्व जागृत हो, क्षत्रियों का शोर्य, धनिक वैश्य त्यागी हो, शूद्र सेवा परायण बने, हमारे पूर्वजों द्वारा संकल्पित विश्वगुरुत्व का गौरव पुनः इस पुण्यभूमि भारत को प्राप्त हो। नानाविधाओं के वैभव की जननी समस्त देव विभूतिधारिणी, सृष्टि स्थिति संहार कारक ब्रह्मा, विष्णु, महेश, स्वरुपा नव युगोन्मुखी, वह सिद्ध मातृका भगवती भारती हम पर सदा अपनी सौम्य दृष्टि बनाये रखें।

इस प्रकार इस खण्डकाव्य के कथानक में शब्दब्रह्म की मायामातृका रुपधारिणी वर्णस्वरुपा भगवती भारती की लीला का विलास वर्णित है।

(घ) कामधेनुशतकम् खण्डकाव्य –

धेनूनां परिरक्षणाय सततं सिद्धात्मनो योगिन,
गोक्षीरामृतपानजीवन जुषो गो सेवकोप कृतेः।
पूज्य श्री गुरुदेव दत्त शरणानन्दस्य पुण्यात्मनः,
काव्यं प्रेरणयैव में विरचितं तस्यांघ्रि पद्मऽपये।।[42]

आर्यावर्तीय सुचिन्तन धरा में धेनु को 'मातरः सर्व भूतानां' के अभिधान से अभिहित किया गया है, जिसमें समस्त देवताओं, ऋषियों और तीर्थों का निवास बताया गया है। वही धेनु हमारे धर्म दर्शन और हमारी संस्कृति का मूलाधार है, जो गंगा–गोमती, गायत्री–गीता–गोवर्धन एवं गोविन्द की भाँति पवित्र है। जिनकी सेवा के लिये स्वयं परमात्मा को इस धरा पर मनुष्य के रुप में आना पड़ा था, ऐसी पूजनीया वन्दनीया एवं सेवनीया गोमाताओं की साम्प्रतिकी दुःस्थिति ने स्वामी दत्त शरणानन्द महाराज के मर्म को आहत किया, तदुपरान्त उन्होंने गोहत्या पूर्ण प्रतिबन्ध का संकल्प लेकर गोवंश संवर्धन की सद्भावना से आनन्दवन–पथमेड़ा साँचोर (राज.) में **गोपाल गोवर्धन गोशाला** की स्थापना की जो उत्तरोत्तर दिव्यता और भव्यता को प्राप्त करते हुए, उद्देश्य की शत प्रतिशत पूर्ति की ओर अग्रसर आज भी यथावत संचालित है।

काव्य लेखन से पूर्व कवि पं. श्रीराम दवे को इस आदर्श गोधाम के दर्शनार्थ पथमेड़ा जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस पावन स्थली की ऐतिहासिक महत्ता एवं गोसेवा की अनुपम व्यवस्था को देखकर कवि के हृदय में मरुधरा धरोहर धेन्वानुराग उत्पन्न हुआ, और

सहसा काव्य सृजन की स्फुरणा हुयी। पूर्व पठित रघुवंशमहाकाव्य के नन्दिनी–दिलीप प्रसंग की स्मृति स्मरण पथ में समाहित हो गयी। दोनों प्रसंगों को उपजीव्य मान **'कमधेनु शतकम्'** नामक खण्डकाव्य की संरचना कवि द्वारा की गयी जो गोत्व विमर्श की महत्वपूर्ण कड़ी के रुप में प्रसिद्ध हुयी। जिसका कथानक ग्रन्थानुसार प्रस्तुत हैं –

गो–गरिमा से गौरवान्वित कवि श्री दवे ने काव्य का आरम्भ ''जयति पथमेडावनितलम्'' नामक शीर्षक से किया है, जिसमें धेनुधाम पथमेड़ा की पावनता धार्मिकता तथा ऐतिहासिकता का वर्णन प्राप्त होता है। तद्नुसार जिस भूमि पर किसी समय वेदोक्त श्रौतयज्ञ–यागादि हुआ करते थे, जहाँ भक्ति–ज्ञान–और कर्म की त्रिवेणी बहा करती थी। जिसे भगवान श्री कृष्ण के चरण रज का सौभाग्य प्राप्त था, जहाँ सिन्धुजल का प्रवाह था। जो गोलोक के समान था, जिसका विशाल भू–भाग, वृक्ष, लता, फूलों से भरा हुआ था।

ऐसी पूर्ववैभवविलुप्त नगरी की दिव्या वसुन्धरा सम्प्रति पथमेड़ा के नाम से विश्व–विश्रुत है। यह वसुमति पुनः गोधन से परिपूर्ण सुखदायिनी है तथा गुरुदेव दत्तशरणानन्द जी महाराज के सतत् प्रयासों से आनन्द वन में बनी यह गोवर्धन गोशाला आज तीर्थ भूमि बन गयी है।

दिष्ट्यैते परिरक्षणाय हरिणा संप्रेरिता वै गवाम,
संप्राप्ता गुरुदेवदत्त शरणानन्दा स्तपो मूर्तयः ।।[43]
येषां वै सततायासैः आनन्दवनवासिनी।
गोवर्धन गौशालैषा जातातीर्थसमाधुना।।[44]

तीर्थभूमि–पथमेड़ा के गोशाला में सेवित धेन्वावतंश उसी कामधेनु का अंश है, जिस कामधेनु की कृपा से गुरुवशिष्ठ को ब्रह्मशक्ति और प्रतिव्रता पत्नी अरुण्धति की प्राप्ति हुयी थी। राजा सौदास को गोत्व का ज्ञान हुआ था। उसी की अकृपा से राजा दिलीप को संतान हीनता का शाप मिला था। पुनः उसी कामधेनु की पुत्री नन्दिनी की प्रसन्नता से रघुनामक प्रतापी पुत्र की प्राप्ति हुयी थी। इसी गो की सेवा से राजा ऋतुम्भर को सत्यवान नामक श्रेष्ठ पुत्र की प्राप्ति तथा सत्यकाम–जावाल को ब्रह्म विद्या की प्राप्ति हुयी थी। वस्तुत –

धर्मस्य मूलं गणिता हि गावः,
त एव मूलं निज संस्कृतेश्च।
सर्वेऽपि देवा वपुषि प्रतिष्ठाः
इति श्रुतौ नो भणितं हि तस्याः।।[45]

धन्य है वे लोग जो गो की रक्षा में लगे हुये है। भ्रष्ट बुद्धि है वे लोग जो कलियुग के कपट में बंधे हुये है, वे अर्थ काम के लोभी विषय भोगी है, जो कामदुधा गो माता की विभूति को नहीं जानते, जो पुज्या गौमाता को सामान्य पशु मानते हुये उनके वध में संकोच भी नहीं करते।

यह सुरनन्दिनी, कामदुधा गोमाता अपनी मधुरसुधा से देवताओं को प्रसन्न करती है, विपुलधन देकर लोगों का रंजन करती है, अपनी असीम कृपा से कृषि का वर्धन करती है। यह यदुनन्दन नन्दिनी अपने पंचगव्यों से सर्वजनकल्याणकारिणी है। इसीलिये इस कामधेनु—कानन में देवी—देवता, मानो कामधेनुकुल की सेवा करने के लिये ऋषि मुनि एवं मनुष्य का रुप धारण कर विचरण कर रहे है ।

मानो गो सुक्त के प्रवक्ता महर्षि अत्रि अपने पुत्र दत्तात्रेय के साथ गोरक्षा के लिये विराजमान है। गुरु वशिष्ठ, मुनि याज्ञवलक्य, मार्कण्डेय मुनि, मुनि अंगिरा, आदिकवि वाल्मीकि विश्वामित्र, च्यवन ऋषि, धौम्यशिष्य उद्दालक, परशुराम, वैद्य धन्वतरि, बलराम, कृष्णभक्त उद्धव सहदेव नन्दीगण अपने मन्त्रबल भुजबल शास्त्र और शस्त्र बल से गौशाला की सुरक्षा में तैनात से प्रतीत हो रहे है। कृष्णप्रिया कामदुधा गो की सेवा में माता यशोदा कृषक माता का रुप धारण कर दधि मन्थन में लीन है। मानो बलभद्र हलधर किसान के रुप में यहाँ हल चला रहे हो। कृष्ण भक्त उद्धव जी भी पुण्यतीर्थ व्रजभूमि को छोड़कर यहीं निवास कर रहे है। जगत् प्रसिद्ध अष्ट भुजाधारिणी भगवती वैष्णवी देवी भी गो हितार्थ मनुष्यरुप धारण करने वाले देवताओं को प्रेरणा देती हुयी अपनी लीला दिखा रही है।

विधि की विचित्र विडम्बना देखिये कि संसार का उपकार करने वाली, धरा सी पवित्र, तीर्थ स्वरुपा नन्दा, समुद्रा, सुरभि, सुशीला तथा बहुला नामधेया 'पंचगावः'[46] आज अपने प्राणों की रक्षा के लिये पुकार रही है।

विश्वोपकर्त्ती जनपोषयित्री, स्वाहावषट्कार हविर्विधात्री।
मूलंचलक्ष्म्याः दुरितापहन्त्री सा नन्दिनी क्रन्दति साम्प्रतं हा।।[47]

जिसके पिण्ड में देवताओं का निवास माना जाता है, जिसकी कीर्ति कथा वेद पुराणों में वर्णित है। उसी कामधेनु की नन्दिनी स्वरुपा संतति के संताप को यदुनन्दन गोपाल अपनी ही भूमि पर कैसे देख रहे होंगे। वृषभध्वज विश्वनाथ के होते हुये वृषभकुलगरिमा मृत्यु भयाकुला क्यों है ? अंग्रेजों के दुष्ट शासन के हट जाने पर भी, अपने ही शासन में गौ की निर्मम हत्या हो रही है।

वित्तलोभी मांसभक्षी मलिनमानसवाले दुष्टराक्षसमनुष्यों का मन बछड़ों की हत्या करने पर भी व्यथित नहीं होता। हे भारतवासियों अब गोवध बन्द करो, जिसके मस्तिष्क में सर्वदा

पृथ्वीपालक–सागर में उठती हुयी लहरों के समान गोरक्षा की धुन लगी हुई है। ऐसे प्रसन्नमनस्क, केवल गोदुग्ध का ही आहार करने वाले, भगवाँ दुपट्टा धारण किये हुये श्वेत कंचुकधारी गोशाला के प्रहरी के सम्मान कोई दत्तात्रेयावतारी महापुरुष इस गोवंश की रक्षा के लिये रात–दिन चिन्तन करते हुये भ्रमण कर रहे है। यह योगीश्वर इस धरा के गोवंश की रक्षा के लिये व्यकुल सा नित्य उनके योग क्षेम की चिन्ता करता रहता है। इस गोहत्या के विरोध में किये गये आन्दोलन में कई महापुरुषों ने, वीर क्षत्रियों ने, मुनियों, गुरू पासक सिखों ने, धर्मरक्षक आचार्यों ने अपने प्राण संकट में डाल दिये और कई निर्दयता पूर्वक मारे भी गये, फिर भी गौ हत्या रोकने के लिये रघुकुलवंशियों का शौर्य नहीं जाग रहा है,

स्वतंत्रतासंग्राम में अपना जीवनसुख लुटाने वाले भी सत्ता पर बैठने के कारण मौन है। सुरेश्वर इन्द्र का वज्र भी गोवध रोकने के लिये प्रदर्शन नहीं कर रहा है। हुताशन भी गोवधिकों के कुल को भस्म करने हेतु अपनी उग्रज्वाला प्रज्ज्वलित नहीं कर रहे है। सम्भवतया इस धराधाम से राजा परीक्षित का तेज चला गया है। रघुवंशियों का प्रभाव अस्त हो गया है। मनुष्यों में मलेच्छों का भाव आ गया है।

अतः हे भरत पुत्रों! उठो अपनी गोपालशक्ति को जगाओं तथा सनातनसम्पदा कामधेनु संतति के संताप को शांत करों।

3. युगबोधक खण्डकाव्य –

(क) केलिभूकैतवम् खण्डकाव्य –

महाकवि पं. श्रीराम दवे दृष्टकवि की श्रेणी में आते है। उन्होंने जो कुछ अपनी आँखों से देखा, उसे अपने काव्य का विषय बनाया। **''क्लब संस्कृति''** एवं अवैध सम्बन्धों से उत्पन्न बालकों की दुर्दशा देखकर भावुक कवि के मन में जो भाव उपजे, उन्हें इस काव्य में सार्थकता के साथ समावेश किया। बैंक सेवा में रहते हुये कवि ने अपना आश्रय जोधपुर नगर को बनाया। जोधपुर नगर में बने एक अनाथालय में कवि का एक बार जाना हुआ, वहाँ बालकों की विचित्र अवस्था को देखकर जो वेदना उत्पन्न हुयी, उसे कल्पना के सुनहरे शब्दों में पिरों कर क्लब संस्कार के विकार की व्यथा से व्यथित अवैधसन्तति कथा को कथानक में कल्पित कर 193 श्लोकों वाला खण्डकाव्य का स्वरुप दिया है। यह **''केलिभूकैतवम्''** नामक खण्डकाव्य राजस्थान संस्कृत अकादमी जयपुर द्वारा प्रकाशित **'काव्यमञ्जूषा'** में संकलित है। इसका **उपजीव्य** कवि की दृष्ट संवेदना को कहा जा सकता है। इसका कथानक अधोलिखित है– इस खण्ड काव्य का नायक **कौत्समिश्र** है जिसे किसी ने अवैध शिशुगृह में फैंक दिया था। उसे एक अविवाहित मन्दिर के पुजारी ने गोद

ले लिया पाला पोसा और संस्कृत विद्यालय में पढ़ाया। अन्त में वह पुजारी अपनी पूजा वृति उसे देकर स्वर्ग चला गया।

कश्चित् कान्ता रुचिरवदना गर्भजातः कुमार्यः
प्राप्तोऽनाथालय शिशुकुलातदेव लेनात्मजार्थम्।
लब्ध्वा शिक्षां गुरुकुल गुरोर्देव भाषा विदोऽयम्
स्वर्गयाते निजगुरुजने तत्पदे देवलोऽभूतः।।[48]

नायक देवस्थान में पिता द्वारा प्रदत्त देवालय वृत्ति को निन्दनीय समझकर शिक्षित होते हुये भी दुःखी था तथा युवक–युवतियों की युगल चर्या को देखकर उसका हृदय अपने कुंवारेपन को कोस रहा था।

एक दिन वह प्रातःकाल पूजा करके अकेला प्रसन्न भाव से भगवान के समक्ष नतमस्तक हो, आंखे बन्द किये भक्ति पूर्वक हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा। हे लक्ष्मी पति! आप तो यहाँ भी अपनी पत्नी लक्ष्मी के साथ प्रतिदिन रमण करते है, किन्तु आपकी गोद में बैठा गृहिणी हेतु व्याकुल युवक क्यों नहीं दिखाता। मुझे दाम्पत्य सुख से युक्त क्यों नहीं करते । भोग विलास भरें इस युग में नये–नये श्रृंगार करने वाली विलासिनियों के समूह में रहता हुआ, अपनी चित्तवृत्ति को रोककर, किस तरह से अपना समय बिता पाऊँगा। मेरे गुरुजी युवावस्था में, अविवाहित दशा में, अंगनाओं के कटाक्ष बाणों का प्रहार सहते–सहते, उनके वियोग में युवावस्था बिताकर चले गये, क्या ? मेरी भी यही दशा होगी। इस प्रकार मुग्ध भाव से की जा रही प्रार्थना को कोई तरुणी आँख बन्द करके ध्यान पूर्वक बैठी–बैठी सुन रही थी, सहसा उठकर धीरे–धीरे कहने लगी, इस मूक एवं बहरे देवता से क्या मांग रहे हो, वे भक्तों की अन्तर्वाणी को नहीं सुनते ।

पूर्वयुग में लोग विद्यालय के बटुकों को भी अपनी कन्या दे देते थे, परन्तु आज जिसे युग का ज्ञान नहीं है, उसे कोई भी अपनी लड़की नहीं देता है। आज दैनिक समाचार पत्रों में विवाह के विज्ञापनों का जाल बिछा रहता है, उसमें अपने गुणों की योग्यता प्रकाशित करवाकर, अपने योग्य पत्नी प्राप्त कर सकते हो। विज्ञापनों के पश्चात् भी पौरोहित्य वृति से अपना जीवन निर्वाह करने वाले इस रमणीयाकृति युवक को कोई भी अपनी लड़की नहीं देना चाहता था। अपने इस अविवाहित जीवन से खिन्न उस बेचारे ने अनेक कन्यापिताओं से कन्यादान के लिये प्रार्थना की परन्तु कोई कन्यापिता उसे अपनी कन्या देने को तैयार नहीं हुआ।

क्योंकि उसने अंग्रेजी नहीं पढ़ी थी, केवल संस्कृतज्ञ होने से वह नौकरी के योग्य नहीं था, इसलिये कोई उसे अपनी कन्या नहीं देना चाहता था। समान व्यवसाय वाले पुजारी भी इस भाग्य हीन को लड़की नहीं देना चाहता था। **'पत्नी मनोरमां देहि'** मन्त्र से सम्पुटित दुर्गा पाठ से भी दुर्गादेवी ने उसे भार्या रुप फल नहीं दिया। इससे अतिखिन्न हो वह समाचार पत्रों के विवाह विज्ञापन पढ़कर वहाँ भी प्रयास करने लगा कि मैं युवा हूँ, अच्छा विद्वान हूँ , कामदेव के समान रुपवान हूँ तथा मैं समस्त प्रकार के कन्याओं की वरमाला के योग्य हूँ। मैंने कौमुदी का अध्ययन किया है। मैं पंचांग देखने में भी कुशल हूँ। तन्त्रमन्त्र में भी निष्णात हूँ और दहेज नहीं चाहता, मैं तो केवल नारीलक्षणयुक्ता कन्या मात्र चाहता हूँ।

भार्या रुपवतीशत्रुः शास्त्रेषु पठितंमया।
अतो न कामये रुपं कन्या चिन्ताकरैः परम्।।[49]

मैनें शास्त्रों में पढ़ा है रुपवती भार्या शत्रु होती है। अतः कन्या के लिये अधिक चिन्ताजनक रुप भी नहीं चाहता, चाहे वह कलावती हो या लीलावती, चण्डी हो या शीतला मैं उसे सुशीला ही मानूंगा।

इस प्रकार काम मन्दिर में आने वाली क्लब–कुट्टिनी की प्रेरणा से सुन्दर युवकों को अपने पाश में फसाने की योजना बना रही सुन्दरी उस ललनालालसी भोले–भाले युवक को अपना सुन्दर चित्र भेजती है। आवक्षचित्र देख चकित–चकोर पुजारी कल्पना के लहरों में लहराते हुये कभी उसे चित्रलेखा कभी उवर्शी कभी देवकन्या के रुप में देखता हुआ, सुषमासागर का रत्न, यौवन का चन्दन हार पहनी हुयी नीलाम्बर कंचुकावृता पयोधरों से शोभायमान सौन्दर्य वाटिका के कुसुमों का उपहार सा मान उस जड़चित्र को देख कर प्रसन्न हो रहा था।

चित्र के साथ पत्र भी था, पत्र में सप्तपदी प्रतिज्ञाओं के समान वाम भाग में स्थान ग्रहणार्थ वामा की **सात शर्ते (आधुनिक सप्तपदी)** भी थी।

केशः सदा कंकत संस्कृतास्युः, स्नेहाभिषिक्ताः मलवारणाढ्या।
शिखापि गुर्वी रुचिरा न शीर्षे, एषः पणों में प्रथमोऽस्ति भावः।।[50]

आपके बाल सदा कंधे में ठीक किये गये हो, शिर पर लम्बी चोटी न हो। ललाट पर भस्म, मुख पर मूंछे, आंलिंगन में बाधक वक्षस्थल पर जनेऊ न हों। पाँव में जूते हों, ब्राह्मणवृति न करें, सुरा के रसास्वादन में अवरोध न हो। प्रेममिलन गन्धर्व विधि से हो। ये अभीष्ट सप्तपदी यदि आपको मान्य हो, तो इन शर्तो के साथ संगम कर सकती हूँ। अतः

आप मेरे अनुरुप, रुप बनाकर पूर्णिमा के शुभावसर पर इस केलिगृह में आ जाऐं, ताकि हमारा शीघ्र मिलन हो सकें, कौत्स मिश्र किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो चिन्ता में पड़ गया।

एक तरफ ब्राह्मणत्व की माया, तो दुसरी तरफ कामिनी की कंचन काया, अन्ततः उस ललना के लावण्य पर मुग्ध वह भोला पुजारी अपनी इच्छा के विरुद्ध उसकी शर्ते भी स्वीकार करता है तथा उसके द्वारा निर्दिष्ट स्थान पर उसकी रुचि का रुप धारण करके जाता भी है। संयोगवश वह कुट्टनी उस समय किसी अन्य पुरुष के पाश में निबद्ध होने के कारण यथा समय उस स्थान पर नहीं पहुँच पाती है। उस कुट्टनी की इस दुष्टयोजना को वहाँ काम करने वाली नौकरानी जानती थी, जो किसी अनाथालय से ही लायी हुई, यहाँ काम करने के लिये रखी गयी थी।

वह दासी, उस कुट्टनी के संकेत पर आये हुये उस युवक को उसके पाश से बचाने के लिये गुप्तमार्ग से अन्यत्र ले जाती है। संयोगवश भोला भाला युवक कौत्स भी उस कपट से बचकर उसके साथ सुदूर चला जाता है।

वे दोनों अनाथ, दैवयोग से शिववालय में आये हुये अपने माता–पिता से मिलकर सनाथ हो जाते है। वह पुजारी अपने माता–पिता और अपने अनुरुप गृहिणी को भगवती की आराधना का फल समझकर अपना शेष जीवन सुख से व्यतीत करने लग गया तथा पुजारी का पद छोड़कर ब्राह्मणों में अग्रगण्य धनिक विष्णु शर्मा हो गया। वह बालिका भी सौभाग्य के उदित होने पर दिव्य धनाढ्य के धर की पूजनीय लक्ष्मी बन गई।

कौत्सोऽपि देवल पदं परिहाय जातो, विप्राग्रगण्य धनिको नव विष्णु नामा।
लब्धात्म पूज्य पितरौ तपसः प्रभावात्, गातोऽग्रजेषु विदितो विदुषां वरेण्यः।।[51]
कुटिन कुलनिवासा दासिका दूतिकानाम्, निरयसम निवासे यापयन्ति दिनानि।
उदितवति सुदिष्टे हर्म्य मासद्य दिव्यम्, धनपति गृहलक्ष्मी पूजनीया बभूव।।[52]

वस्तुतः स्वछन्दता प्रधान आज के युग में अवैध सन्तान का जीवन सन्ताप भरा होता है। उसके साथ कोई भी विवाह नहीं करना चाहता है। परम्परा और प्रथा की जकड़न से यह समस्या और दुरुह हो गयी है। परम्परागत धारा से शिक्षितों पर आधुनिक शिक्षा की स्वच्छन्दता भरी चाकचक्यता हावी है। कथानक युग बोधक व्यंग्यों से ओतप्रोत मर्मस्पर्शी है।

(ख) कालकौतुकम् खण्डकाव्य –

समयएव करोति बलाबलं प्रणिगदन्त इतीव शरीरिणाम्।
शरदि हंसरवाः परुषीकृतस्वरमयूरमयूरमणीयताम्।।[53]

वस्तुतः समय के प्रभाव से ही प्राणी बलवान तथा निर्बल होता है। इस काल चक्र में पड़े किसी भी वस्तु, व्यक्ति एवं व्यवस्था का शाश्वत अस्तित्व नहीं होता है। इस काल की

अज्ञातकलना को कोई जान भी नहीं पाता। बड़े–बड़े तपस्वी सिद्ध योगी किं वा अमरता पाने वाले देवता भी अपने को काल के ग्रास से नहीं बचा पाये। इस विषय में भतृहरि ने ठीक ही कहा है –

''काल इस भुवन पीठ पर पाशों से चौपड़ का खेल खेलता रहता है''

इस धरा पर वेद व्यास जैसे मनीषी जिन्होंने पुराणों और महाभारत जैसे विशाल ग्रन्थों की रचना की वे भी काल के प्रभाव से अर्थ और काम की प्रधानता को देखकर कहने लगे– ''अरे लोगों धर्मपूर्वक अर्थ और काम का उपभोग करो, परन्तु इस बात को कोई नहीं सुनता।''

अपने पुण्य–फल से स्वर्ग पाने वाले देवता भी काल के प्रभाव से उत्पन्न दैत्यों द्वारा स्वर्ग से निर्वासित कर दिये गये। बलि जैसे भक्त दैत्य को भी वामन के पदाघात से पाताल में जाना पड़ा। सूर्य–चन्द्र–वंशी बलवान राजा भी दूर से आये यवनों से पराजित हो गये। चिरकाल तक भारत पर शासन करने वाले यवनों को भी अंग्रेजों के अधीन होना पड़ा। अंग्रेजों को भी विना शस्त्र की लड़ाई में भारत छोड़कर जाना पड़ा।

स्वतन्त्रता संग्राम के नायक महात्मा गांधी ने कहा था कि ''मेरा शरीर खण्डित भले ही हो जाये परन्तु भारत को खण्डित नहीं होने दूंगा।'' परन्तु वही भारत गांधी जी के सामने ही खण्डित हो गया। काल के प्रभाव से जो प्रजातन्त्र विश्व में प्रारम्भ हुआ, उसका उदय भारत में भी हो गया। धर्म प्रधान वर्ण व्यवस्था भी खण्डित हो गयी। धर्म प्रधान विश्वगुरु कहलाने वाले भारत में भी विदेश से आई धर्म निरपेक्षता ने अपना पांव जमा लिया।

इस प्रकार अनन्त काल से चली आ रही नश्वरता की अनिवार्यता को भूलकर आधुनिक शासनलोलुप नेता अपने को मृत्यंजय मानते हुये, अपने अखण्ड साम्राज्य की स्वपनिल स्थापना के लिये उचित अनुचित मार्ग अपनाने लगे मतपत्र को मण्डन मानने वाले इस तन्त्र में योग्यायोग्य का विचार कैसे हो सकता है। अपूज्य पूज्य बन जाते है, पूजनीय ठुकरा दिये जाते है, इसका फल भी तो राष्ट्र को ही भोगना पड़ता है।

काल की लीला भी विचित्र होती है। विश्वगुरु का पद पाने वाले देश में आज मलेच्छों की बात प्रामाणिक मानी जाती है। अपने राष्ट्र के महापुरुषों के सद्‌वचनों पर ध्यान नहीं जाता है। भ्रष्टचार से धन संग्रह करने वाले परोपदेशकुशल नेताओं के मन में अपने असंख्य दोषों पर भी ग्लानि नहीं होती है।

इसी काल की विडम्बना को लेकर कवि के मन में जो भाव उत्पन्न हुये, समाचार पत्रों से जो व्यंग्य चित्र मिलें, शिशुपालवधम् एवं किराताजुनीयम् महाकाव्यों के कथानक से

जो 'समय एव करोति बलाबलम्'' का भाव ग्रहण हुआ, इसी को आधार बनाकर इन्हीं से प्रेरणों लेकर ''कालकौतुकम्'' खण्डकाव्य लिखा। वस्तुतः उक्त सन्दर्भ ही कालकौतुकम् खण्ड काव्य का **उपजीव्य** है।

कवि ने **एकादश शीर्षकों** में अपने भावों को प्रकट किया है –

1. धर्मनिरपेक्षता कौतुकम्
2. नवोन्मेष कौतुकम्
3. नवता कौतुकम्
4. तन्त्र कौतुकम्
5. बलवान कुरसिका मोहः
6. दोष दर्शन निरपेक्षता
7. भग्न मनोरथाः
8. गृहिण्याः गृहवेदना
9. तरुकृतं लताकुत्सनम्
10. इन्द्रः प्रस्थं समीहते
11. लीलायितं सकलमम्बतवैव मान्ये

इस प्रकार इस खण्ड काव्य में 169 श्लोकों में काल के कौतुक को प्रस्तुत किया गया है। जिसका कथानक अधोलिखितानुसार प्रस्तुत है।

''लोकास्तोदयकारिणे भगवते कालायतस्मै नमः''।।[54]

संसार का उदय अस्त करने वाले ''काल'' को नमस्कार कर ग्रन्थ का आरम्भ करते कि काल का कौतुक देखिये जिसने द्यूत के बहाने पाण्डवों को द्वेतवन दिखा दिया, शास्त्र विशारद चाणक्य मन्त्री पद से हटा दिये गये, संविधान–ज्ञान–शून्य, कपट–निर्वाचित व्यक्ति मंत्री पद पीठिका पर आसीन हो गये। राजा धर्म विमुख हो गये, राष्ट्र विधर्मियों के हाथ में चला गया। जिन्हें सिंह समझकर राजपद पर बिढाया, वे श्रृगाल हो गये। देवता दानवों से दण्डित, स्वर्ग में विप्लव, बृहस्पति भयभीत, एवं मतिमान राजलक्ष्मी मद में मूर्छित हैं। बुद्धिमती अभिनेत्री भाग्यहीना ललिता जो कल मुख्यमन्त्री पद पर विराजमान थी, वह आज कारावास बन्दी है। फूलन देवी अपना यौवन दिखा रही है। नट–नायिकायें वन्दनीया हो गई है और कुलवधुएं निन्दनीयाँ हो गयी है। काल का कमाल इससे और अधिक क्या हो सकता है।

हमारे इस राष्ट्र में धर्म निरपेक्षता का एक नया कौतुक खड़ा हो गया है। जिससे यह धर्म भूमि धर्मनिरपेक्ष हो गयी है। इस नये तन्त्र में शासन कर्ता भी अपने ही कुलवृक्षों को काट रहें है। आज यशस्वनी–अयोध्या, प्रसिद्ध निर्मल–जलवाली सरयू भी वहीं है, फिर भी वह धर्मधरा अतिसंकट ग्रस्त है, संक्रमण काल में सारे नैतिक मूल्य अनैतिकता के भँवर में समाहित हो गये है, ज्ञान और शान्ति का मार्ग दुर्लभ हो गया है।

आज काव्य से छन्द हट गये है, ऋतुओं का तारुण्य लुप्त हो गया है, समुद्र का अगम्य गाम्भीर्य गम्य हो गया है तथा धरा का धैर्य धाराशायी हो गया है। नित्य नवोन्मेष से मायावी विष्णु भी विस्मित है। व्योम बिहारी विमानों से ग्रहमण्डल भी उद्विग्न है।

भौतिक वैभव की व्यापकता में आध्यात्मिक आनन्द अस्त हो गया है तथा वत्सोत्सवदर्शिनी पीनपयोधरा पयस्विनी गो के पालक अर्थ कमी हो गये है। आज विश्वधरा पर एक नया विचित्र वसन्त उदित हुआ है, जो प्रकृति को अपनी इच्छा के अनुसार नचाता रहता है। आज की वल्लरी वृक्ष की सहायता के बिना ही विकसित हो रही है। विटप शाखायें भी वसन्त–बहार के बिना ही फलीभूत हो रही है। पुष्पों के अभाव में लता प्रसन्न प्रतीत हो रही है तथा नवता के मोह में प्रकृति भी पुराने बन्धन तोड़ चुकी है। कृत्रिम कुसुमों में कुलीनता की सुगन्ध नहीं है, हतभाग्य भ्रमरों के भाग्य में मधुर मकरन्द नहीं है, चन्दन की सौरभ को भुजंगों ने रोक रखा है, कामिनियों के कटाक्ष भी अभिनय बुद्धि निबद्ध हो गया है। धनिकाराधित क्लबवाटिका में नवकालिकाओं का अभिसार समृद्ध हो रहा है। गुरु गरिमाहीन शिष्य शासनाधीन हो गये है।

प्रविष्टा नेदिष्टा अपि कुमति विष्टा रिपुकुलम्,
वदन्त्येते शिष्टा अपि विगत पुण्यानिवचनः।
दिशं नो जानीमो धनतिमि विष्टावयमपि,
समुद्धर्तुं भ्रष्टान् रचयनव नाकं भगवति।।[55]

हमारे समीप रहने वाले बन्धु भी कुमति के कारण शत्रुपक्ष में चले गये है जो हमें पुण्यहीन कह रहे है। अतः हे भगवति! अब तो हम पतितों के उद्धार हेतु तुम नये स्वर्ग की रचना करों।

कुछ लोग कहते है कि यह तो काल का कौतुक है लोग चाहे जैसा करते है, वे जो करते है, उन्हें करने दे, आप तो दोष दर्शन में निरपेक्ष भाव रखते हुये, इसे काल कौतुक समझें। मेरा मनोरथ भग्न हो गया है, हृदयगत आशाएं खण्डित हो गयी है, मन निराशा से व्याकुल है, घर में अन्न का कण नहीं है, अकेले वेलन से गृहस्थधर्म घन्य होने वाला नहीं है। हे भगवती ललिते! तेरी लीला बड़ी विचित्र है। प्याज जैसे बटुक भी इस युग

में शाकपार्थिव हो गये है। पापी भी मत से पद पाकर पुण्यशील बन गये है, वे पूज्यपुरुषोत्तमों का मार्गदर्शन करते है। इस प्रकार मानवीय–उत्थान–पतन–परिवर्तन–परिवर्धन काल के भाल का अतिमाल है।

(ग) परिखायुद्धम् खण्डकाव्यम् –

शिलातैलाप्त सम्पतिः प्राचार्योन्मदमानसः।
ईराकश्चकमे कर्तुं कुवैतं स्ववर्शेबलात्।।[56]
दृष्ट्वेदमेरिकाराष्ट्रमीराकस्य दुराग्रहम्।
तद्वीर्यनिग्रहार्थःसः पावकास्त्राणि प्रैष्यत्।।[57]
निशम्य परिखायुद्धम् ईराकाक्रमणोद्भवम्।
वैकुण्ठे भृशमुद्विग्ना बभूवुदैवतांगना।।[58]

126 श्लोकत्मक परिखायुद्धम् नामक यह खण्डकाव्य राजस्थान–संस्कृत–अकादमी के आर्थिक सहयोग से 2006 में प्रकाशित हुआ। जिसमें खाड़ीयुद्ध–विभीषिका के पोषकपक्ष, प्रतिपक्ष शासनाध्यक्षों की माया का मायावी दंभनाद की व्यंजना, ईश्वरीय माया के माध्यम से की गयी है।

उदय और अस्त प्रकृति की अनिवार्य प्रवृत्तियाँ होती है। आना–जाना संसार का शास्वत नियम होता है। अनेक शासन आये और चले गये। दुर्योधन दुःशासनादि दुर्मद शासकों के दुर्व्यवहार से विनाशकारी महाभारत हुआ था। भगवान कृष्ण के देखते–देखते अनेकवशं नष्ट हो गये। उसके बाद शासन पर बैठे क्षत्रियों के धर्महीन होने पर यवनों का प्रवेश हुआ, राजा पराजित हो गये, दूर से आये यवन राज सिंहासन पर बैठ गये, युद्ध के कारण यह धरा रक्त रंजित हो गयी। राणा प्रताप, शिवाजी आदि धर्मात्मा राष्ट्र भक्त वीरों ने यवन शासन का विरोध भी किया। कालान्तर में सुल्तान भी सुरा सुन्दरियों में लीन हो अंग्रेजों की सेना से पराजित हो कर चले गये। कालचक्र में भारतीयों के स्वतन्त्रता युद्ध में अंग्रेज भी पराजित होकर चले गये।

संसार के चारों ओर प्रजातन्त्रात्मक प्रशासन के व्याप्त होने पर भी युद्ध की प्रवृतियाँ नहीं रुकी। अपनी प्रभुता की रक्षा वहाँ भी समाप्त न हुयी। इस तंत्र में भी प्रलयंकारी अणुशस्त्र प्रकट हो गये। प्रजामण्डल राष्ट्रों में परमाणु शस्त्रों को बढ़ाने की होड़ लग गयी। भौतिक उन्नति का नायक अमेरिका विश्वविनाशक शस्त्रों से सम्पन्न हो गया। जापान देश

ने इसके परमाणु शस्त्रों के प्रहार का विनाशकारी फल भी भोगा। इधर इस भौतिक उन्नति के युग में मरुस्थलवासी ईराक के लोग भी भूमि से निकले पेट्रोल से समृद्ध हो गये और अन्य राष्ट्रों को तुच्छ समझने लगे। ईराक के शासक सद्दाम हुसैन ने अपने निकटवर्ती कुवैत राज्य को अपनी शक्ति से अपने अधीन करने का निश्चय कर लिया।

अमेरिका के राष्ट्रपति द्वारा समझाने पर भी ईराक के राष्ट्रपति ने अपना हठ नहीं छोड़ा। इसीलिये सभी पश्चिमी राष्ट्रों ने मिलकर ईराक पर आक्रमण कर दिया।

ईराक में चारों तरफ हुयी अग्नि गोलों की वर्षा से समुद्र के तेल कूपों में अग्नि ज्वाला भड़क गयी। इसी भीषण विभीषिकापरक लोमहर्षक पूर्व धटनाओं का चिन्तन परिखायुद्धम् नामक **खण्डकाव्य का उपजीव्य** बना। समुद्र में प्रलयंकर अग्नि के भड़कने से समुद्र में शेष शैय्या पर सो रहे भगवान विष्णु का क्या होगा ? यह मिथ्या चिन्ता कवि के मन में उठी जो इस काव्य के रुप में प्रकट हुयी।

''समुदिते पयोधौ प्रलयंकरे पावके किं भविष्यति सागरे शेष शय्या।
मधिरुढ़स्य भगवतो नारायणस्य, इयं चिन्ता मम मनसि समुद्‌भूता।।[59]

कथानक के रुप में कवि द्वारा वही कल्पित कथा निम्नानुसार है –

भगवान विष्णु कलियुग के प्रभाव को चारों ओर फैला हुआ देखकर उस पर नियंत्रण करने के लिये देवताओं को नियुक्त करके स्वयं समुद्र में शेष शय्या पर सो गये। कलियुग में देवताओं के सहयोग से भौतिक वैभव भी नाना प्रकार से बढ़ने लगा जो लोगों के लिये बड़ा विस्मयकारी था। युगप्रवृत्ति का निर्वाह करने के लिये भगवान विष्णु की प्रेरणा से इन्द्रादि देवता, वृहस्पति आदि देवगुरु भी इस भौतिक युग् में इनकी आज्ञा पालन करते हुये व्यवहार कर रहे है। देवलोक में बैठी देवांगनाएं युद्ध की घटनाऐं सुनने के लिए लक्ष्मी के पास आती है। रुद्राणी, मृडानी, इन्द्राणी सभी पद्मजाकान्त को युद्ध के लिये दोषी ठहराती है, कि इस कलियुग में तो जगत् का नायक भी अपनी प्रतिज्ञा को भूलकर विमुख हो गया है। सत्ययुग में जो साधुजनों के उपकार में लगा हुआ था, वही आज कलियुग में उनके विरुद्ध हो गया है। जो देवताओं को समझाने में कुशल माने जाते थे, वे ही आज निन्दनीय मार्ग पर खड़े है। अतः यदि आज का जननेता मार्ग से भ्रष्ट हो जाये तो क्या आश्चर्य है।

विस्मृत्यात्मपणं कलौहि विमुखो जातो जगन्नायकः,
सत्ये साधुजनोपकार निरतो वृतो विरुद्धः कलौ।
ख्याता ये सुर बोधनेऽति कुशलमार्गे विनिन्यते स्थिताः,
किंचित्रं जन नायक यदि पथो भ्रश्यन्ति वै साम्प्रतम्।।[60]

युद्ध को विनाश कारक जानते हुये भी, उसके प्रति जो प्रेम है, उससे वे ग्लानि अनुभव नहीं करते। यह सर्वविदित है कि महाभारत के धोरयुद्ध में भारत का कितना वैभव नष्ट हो गया था, फिर भी संसार में विनाशकारी युद्ध नही रुके। पहले हिटलर नाम का जर्मनी का राष्ट्रपति हुआ था, वह दर्पी दैत्य भी अन्त में नष्ट हो गया। ईराक का राष्ट्रपति सद्दाम भी अब अपनी शक्ति के अहंकार में उसी मार्ग का अवलम्बन कर रहा है।

इस से पूर्व भी सागर का मन्थन हुआ था और उससे अमृत पाया था और वहीं देवदानव के संधर्ष का कारण बना था।

पयोधिर्मथितः पूर्वं पीयूषं प्रददेमधुः।
देवदानव संघर्षे तदेवाभूच्च कारणम्।।[61]

तेल से अर्जित धन के कारण सद्दाम भी अदम्य पराक्रमी बन गया है। वह भस्मासुर की तरह शम्भू के वर की परीक्षा करने लग गया है। उसने पश्चिम बलशाली राष्ट्रों से युद्ध करके, रावण के समान घमण्ड करने वाले उसने अपनी ही लंका को जलाया है। यह दुर्मद ईराक अपनी शक्ति के दर्प में भले ही कुछ समय रह जाय, किन्तु मृत्यु के मुख का ग्रास अवश्यक बनेगा। पहले भी भगवान विष्णु ने अनेक दुष्टों को मारा है। अतः हे देवांगनाओं ! लोक हित में लगे हुये मेरे पति की निन्दा मत करो, वे जो कुछ करते है, उसमें सबकी भलाई छिपी रहती है।

सद्दाम रुपी रावण ने समस्त सुख सुविधा से सम्पन्न वातानुकूलित स्वर्णमयी लंका का ऐसा निर्माण करवाया है कि उसमें उस दैत्यराज की आज्ञा के विना पवन भी प्रवेश नहीं कर सकता तथा शत्रुओं के वज्र का प्रहार भी उसे हिला नहीं सकता है। देवसेनाओं का प्रवेश भी सहज नहीं है। मेरे पति भगवान विष्णु की लीला को सर्वज्ञदेवता भी नहीं जान सकते तो हम देवांगनाओं का सामर्थ्य ही कितना है।

इस प्रकार लक्ष्मी के निवास पर देवांगनाओं के वाद–विवाद के समय ही सहसा नारद मुनि आते हुये दिखाई देते है। सभी देवांगनाऐं कौतुहलतावशात् सत्कार सम्मान के सदाचार को भूल युद्ध के प्रत्यक्षदर्शी नारद मुनि के श्रीमुख से युद्ध का समाचार सुनने की उत्कण्ठा लिये प्रश्न पूछना प्रारम्भ करती है, कि देवता गण कुशल तो है ? समुद्र में निवास करने वाले विष्णु तो कुशल है। नारद ने भी युद्ध का विस्तार पूर्वक वर्णन किया और देवियों को सम्बोधित करते हुये कहा कि आप लोग देवताओं के विषय में चिन्ता न करें, जिनके नेता मायावी विष्णु है। उनका भला शत्रु क्या कर सकता है। यह युद्ध भगवान की माया से प्रारम्भ हुआ था, और अब वह शान्त भी हो गया है।

हे देवियों! आप लोग प्रकट हुये इस रक्तबीज का नाश करने के लिये तैयार हो जाओं, जिससे वे असुर नष्ट हो जायें। इस प्रकार नारद के मुख से सारी धटना सुनकर उनका मन आश्वस्त हो गया। वे कड़वी मीठी बातों की गोष्ठी से अपना मनोरंजन करती गयी हुयी पुनः आशंकित युद्ध में अपनी भूमिका पर विचार करती हुयी, पति की चिन्ताओं से मुक्त होकर अपने घर लौट आयी।

प्रायः लोक में देखा जाता है कि प्रभुता की सिद्धी में सहयोगी जन भी विनाशकारी संकट के समय उपालम्भ को ही ढ़ाल बना लेते है।

(घ) कारुण्यकादम्बिनी खण्डकाव्य –

कारुण्यामृत की अविरलवृष्टि करने में परमप्रवीणलेखनी के धनी महाकवि पं. श्रीराम दवे की कविता किशोरी अपने शब्दों की संवेदना एवं भावों की अभिव्यंजना से पत्थर के ह्रदय पर बसन्त का वैभव विकसित करने का सामर्थ्य रखती है।

अपने सन्तान के लिये सर्वस्व समर्पित कर देने वाली विश्व की समस्त माताओं की करुणा को 118 श्लोकों में समेट कर कवि ने कारुण्यकादम्बिनी नामक उत्कृष्ट कोटिक खण्ड काव्य की रचना की है। प्रकृत खण्डकाव्य के लेखन की प्रेरणा कवि को अपनी माँ के करुणामय संधर्ष के दृश्य से प्राप्त हुयी थी। वस्तुतः 6 वर्ष का बालक जिसके शिर से पिता का वरदहस्त हट चुका हो, उदरभरण के लिये अर्थ की कोई व्यवस्था नहीं हो, परिवार की कष्टदायक स्थिति से अपनी माँ को जूझते हुये देखा हो, ऐसे पुत्र कवि के ह्रदय में कारुण्य कादम्बिनी के बीज का अंकुरण स्वाभाविक सा लगता है। कवि ने इस काव्य में माँ की महनीयता का मार्मिक मन्थन जन्य नवनीत प्रस्तुत किया है। माँ की सद्प्रेरणा से ही कवि को विकट परिस्थितियों में भी अध्ययन एवं स्वावलम्बी बनने का मार्ग मिला तथा अपने ज्ञान दीप को भी माँ के स्नेह से ही आलोकित किया। जिस प्रकार मूलाधार में कुण्डलनीशक्ति निहित होती है, उसी प्रकार कवि के इस बहुआयामी व्यक्तित्व का मूलाधार उसकी माँ मथुरा देवी है। माँ सम्पूर्ण सृष्टि की सृजनात्मक शक्ति का नाम है। हर युग में पुरुष की प्रेरक शक्ति उसकी माँ ही रही है। माँ एक ऐसा उर्वर क्षेत्र है, जहाँ से उत्तम बीज अंकुरित होकर पल्लवित पुष्पित होता है, और समाज को विशिष्टता देता है। जैसे राम की मर्यादा में कौशल्या की ममता, कृष्ण के योग में यशोदा का वात्सल्य, अर्जुन के शौर्य में कुन्ती का बलिदान और शिवाजी की वीरता में जीजाबाई का स्वाभिमान निहित है, वैसे ही महाकवि पण्डित श्री राम दवे के व्यक्तित्व में ममतामयी माँ मथुरा देवी का संघर्ष समाहित है। अतः माँ के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन निमित्त उनके कारुण्य स्वरुप को दर्शाते हुए श्लोक समर्पित किया है –

पुरीपुण्याधन्या मधुरिपु–निवासासिमथुरा,
दरी सिद्धाराध्या हरिभजन संसेवन परा।
तरी संसाराब्धेस्तरणयतिते लग्नहृदया,
भृतिस्त्वं मातर में मृदुमधुर वात्सल्य वसुधा।।[62]

अपि च –

मातृस्नेह निबन्धन स्मृति कणैः प्रज्ञोदितैगुम्फितं,
काव्यं में करुणापयोधिजसुधासम्प्लावितामाम्बिकाम्।
वार्धक्येऽपि शिशुत्व भाव जननीं वात्सल्य संवेदिनीम्,
भक्त्याहं हि समर्पये स्वजननीं कारुण्यकादम्बिनीम्।।[63]

कवि कहते है कि मेरी माँ **मथुरादेवी** अपने नाम के अनुरुप कृष्ण की निवास भूमि पवित्र मथुरा पुरी सी थी। वो संसार सागर को तैरने के इच्छुक जनों के लिये नौका के समान थी। मेरे लिए मेरी माता कोमल मधुर वात्सल्य धरा का आधार थी। ऐसी करुणा सागर की सुधा से आप्लावित वृद्धावस्था में भी शिशुत्व जगाने वाली वात्सल्यसंवेदनी, कारुण्यवर्षिणी मेघमाला सी माँ को, मेरी बुद्धि में उदित हुए मातृस्नेह के स्मृतिकणों से गुम्फित इस काव्य को भक्तिपूर्वक अर्पित करता हूँ।

कारुण्यकादम्बिनी के कथानक का आरम्भ मातृवन्दना से की गयी है :

"वन्दे तां मथुरां तपोऽतिमधुरां तीर्थोपमांमातरम्"[64]

जिसका दूध पीकर मेरी दुबली–पतली काया सरस बनी, तथा जिसने अपने हार्दिक स्नेह सिंचन से इस प्राणदीप को प्रज्ज्वलित किया, ऐसी वात्सल्य सुधावर्षिणी, मंगलमयी गंगा सी निर्मल, तपोमूर्ति पुण्यात्मा मथुरानामधेया मां को मैं प्रणाम करता हूँ। जो गोद में उठाकर प्रसन्न होती थी, अपने संस्कार युक्त वाणी से अज्ञान के अन्धकार को हटाती थी तथा पौष्टिक भोजन को प्रेम पूर्वक परोसती थी, ऐसी अन्नपूर्णा सी, स्मृति मन्दिर में विराजमान माँ को, वृद्धावस्था में भी नहीं भूल सकता हूँ। जिस माँ को मैंने अपने बचपन में सौभाग्यवती, सद्गृहिणी के रुप में देखा था, वो गो सेवा परायणा हम भाई–बहिनों का धी–दूध से स्नेह पूर्वक पोषण करती हुयी पिताजी के कामकाज में हाथ बटाती तथा अपनी वृद्धा सास की भी भक्ति पूर्वक सेवा किया करती थी। ऐसी सुन्दर खुशी के फूलों से सजी, धान्यों से हरी–भरी वसन्त सी मनोहर गृहवाटिका, पिताजी के निधन से सहसा उजड़ गई।

दीनता की दाह से उस घर की सुखसुषमा जाती रही, वह लता आश्रयहीन हो गयी, पितृवंशीय स्वजनों ने भी मुख मोड़ लिया, उस समय हम लोगों के लिये माँ का

आँचल ही एक मात्र शरणस्थली था। विषम विषाद सागर में डूबी हुयी विकट वैधव्यव्यथा से व्यथित पुत्र संतति के सहारे श्रीहीन जीवन को येन केन प्रकारेण जी ही रही थी कि, दोनों ही ज्येष्ठा विवाहिता सुता का अकस्मात् दुर्दैवशात् स्वर्गवास हो गया, जिससे माँ का साहस टूट गया और शेष जीवन बहुत ही कष्ट से बिताया।

उसने अपनी दीनता की काँटों भरी घड़ियों में भी मुझे ब्राह्मणों की भिक्षावृति नहीं करने दी। श्रम के द्वारा अपना जीवन निर्वाह करते हुये भी मुझे शिक्षा के लिये सुदूर हैदराबाद भेजा। उसने तो अपना मातृत्व धर्म पूर्ण रुप से निभा दिया परन्तु मैं उसे एक भी तीर्थ न करवा सका, जिसके लिये आज भी मैं उसका ऋणी हूँ।

ऐसी देवी तुल्या मेरी माँ ईश्वर का ध्यान करती हुयी चाहे स्वर्ग चली गयी हो, परन्तु वह देवता स्मृति रुप में आज भी मेरे हृदय में विराजमान है। उसने अपनी दुर्बल देह को जनहित में लगाया, उसने अपने मधुर कण्ठ के गीतों से समाज का उपकार किया, अपना वात्सल्य भाव शिशुओं में बाँटा, शुभाशीर्वाद से सौभाग्यवतियों को प्रसन्न किया। यद्यपि वह विद्यालय में पढ़ने नहीं गयी, तथापि उसने विद्वानों से सम्मान पाया, अकिंचन होती हुयी भी वह धनिकवर्ग एवं सामन्तकुलों में वन्दनीया मानी जाती रही। उन्होंने दीनताभरी विषादबेला में भी साहस का परिचय देते हुये, घर के एक कोने में बैठने की स्थिति में भी कोर्ट के माध्यम से अपना घर गिरवी रखकर पूर्व ऋण का समाधान किया। वह नारियों को स्त्री धर्म, युवकों को सभ्याचरण, बालकों को विनय, नवोढ़ातरुणियों को लज्जा और शील तथा प्रौढ़ों को परम्परा पालन का निर्देश निर्भयता पूर्वक दिया करती थी इसलिए वह अपनी वस्ती में एक शिक्षिका सी मानी जाती थी।

नारीणां निजधर्म पालन कृते यूनाञ्च सभ्यव्रते,
बालानां विनये नवोढ़ तरुणीवर्गे च शीलत्रपाम्।
प्रौढ़ानांच परम्परा परिचये सम्बोधिनी निर्भयम्,
आसीत सा वसतौ स्वगुरुता–भावेन वै शिक्षिका।।[65]

वह धर्माचरणपरायण सतोगुणीवृति का सदाचरण करने वाली गृहस्थधर्मव्रती थी। उसके गृहद्वार पर आने वाले पशु–पक्षी, साधु–सन्यासी कभी अनादरित नहीं होते थे। मेरी (कवि) मगंल कामना के लिये गांव के सभी मन्दिरों में सभी देवताओं की आराधना, सिद्ध पुरुषों की पूजा अर्चना तथा यथासमय नदी के निर्मलजल से पितरों को तृप्त किया करती थी।

वह प्रतिदिन रामद्वारे में जाकर सन्तों के मुख से रामकथा सुनती, मन्दिरों में मीरा सूरदास आदि भक्तजनों के भजनों से स्वयं को संतुष्ट करती थी। उसके जीवनसंकटों को

तो गाँव की पहाड़ी पर बैठी हुयी भगवती ललिता, ब्रह्मपुरी के बीच विराजमान गणेशादि देवता तथा बावड़ी तीर अधिष्ठित भीड़भंजन महादेव ही जानते होंगे, जिनके समक्ष करुणा भरे शब्दों से हमारे कल्याण की याचना किया करती थी।

माँ की महिमा एवं उसके त्याग का वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता है, वो जाड़े के दिनों में स्वयं फटी गुदड़ी ओढ़ती और हमें कम्बलों से ढ़कती, गर्मी में स्वयं पसीने से तर होकर भी हमें हाथ पंखे से हवा करके सुलाती, न जाने हमारे लिये कितने–कितने संकट झेले होंगे।

शीते कन्थावृत कृशतनुः कम्बलैश्च्छादयन्ती,
ग्रीष्मे स्विन्ना व्यंजन धुनितैर्नोमुदा बीजयन्ती।
शुष्कै भौज्यैरुदर भरिणी चात्मनो नः कवोष्णैः,
नो जाने सा कतिकति रुजोऽस्मत्कृते हा प्रसेहे।।[66]

वह लज्जाभूषणवती कुलवती दीन होकर भी धनवती थी। उसकी सादगी में आर्यनारी की सुन्दरता थी। सबके हृदय में निवास करने वाली श्लाघनीय गुणों वाली अत्यन्त अकिंचन होकर भी

गृहस्थाश्रम की शोभा थी। उसने अपनी पुत्रवधू को भी अधिक श्रम वाले कार्यों में नहीं लगाया, जो कार्य कष्टकर होता था, वह स्वयं ही कर लेती थी। उसकी सेवा तो गाँव के घर की दीवारें ही जानती थी, जिन्हें उसने अपने हाथों से लीप कर उजला किया था। उसकी सेवा आंगन में बंधी गायें ही जानती थी, जिनके लिये सुदूर तालाब से पानी लाकर प्यास बुझाती थी। हे माँ! तुम्हारी कृपा से ही मुझे विद्या, मान और प्रतिष्ठा प्राप्त हुआ है। जब मैं बैंक मेनैजर बना तो तुम ही सर्वाधिक प्रसन्न हुई थी, परन्तु तुमने मेरे चपरासी को भी अपनी सेवा का अवसर नहीं दिया और अपनी निर्मल कीतिकाया को छोड़कर शीघ्र वैकुण्ठधाम चली गई।

अम्ब! त्वत्कृपयैव चास्मिगमितो विद्याप्रतिष्ठापदम्,
दृष्ट्वा मां महति प्रबन्धपदके प्रीता त्वमासीः भृशम्।
सुश्रुषावसरः परं नहि विधेयायापिदत्तः क्वचित्,
कीर्त्या शुभ्रकलेवरा द्रुततरं मौनेव यातादिवम्।।[67]

हे माँ! तुम्हारी कृपा भरे आशीर्वाद से ही मुझे जगदम्बा का आश्रय मिला है, दुर्लभ श्रीविद्या का लाभ मिला है, चाहे वे व्यतीत किये हुये अतीत पल उन पुराने लोगों के साथ चले गये हो, गाँव अब नगर हो गया हो, तात्कालिकी सांस्कृतिक झलक के दर्शन दुर्लभ हो

गये हो, किन्तु उनकी स्मृतियाँ आज भी मेरे ह्रदय आंगन में विराजमान है। जो मेरी लेखनी को प्रेरित कर रही है।

हे माँ ! जिसके वात्सल्य के आगे देवता, ज्ञानी, ऋषि, मुनि भी झुक जाते है, उसके वात्सल्य की महिमा का वर्णन किस वाणी में करुँ।

वात्सल्यस्य तवाम्ब! केन वचसा वर्ण्येत वैवैभवम्,
देवाः ज्ञानजुषो यतीन्द्र मुनयोऽप्यस्याग्रतोव्यानताः।
कामं सन्तु युगे प्रमत्त मतिका मातुः कृतघ्नाः सुताः,
नो माता परितापितापि विषमे भूयात् कुमाता परम्।।[68]

माँ शैशव काल में अपने कन्धों पर पुत्र का भार उठा कर चलती है। कुछ बड़ा होने पर उसकी पुस्तकों का भार उठा कर विद्यालय पहुँचाती है, युवा होने पर बहु–बेटे जन्य गृहकार्य का भार उठाती हुयी अपने को सौभाग्यशाली समझती है। पुत्र यदि थोड़ा सा भी बीमार हो जाय, तो मां को उसकी चिन्ता में रात भर नींद नहीं आती है, यदि वह किंचित दृष्टि से दूर हो जाय तो वह ममता से व्याकुल हो जाती है। मां साक्षात् वात्सल्य की मूर्ति है, वात्सल्य सुधा की पिपासा लिये देवताओं को भी इस धरा पर अवतार लेना पड़ता है।

किन्तु इसी धरती पर माँ के नाम पर कलंक लगाने वाली किंचित नारियाँ भी है, जो अपने सद्यःजात शिशुओं को निस्तब्ध सड़कों पर विसर्जन कर देती है।

धिक्तां कलंक कलनां जननीं धरिण्याम्,
वात्सल्य मूर्ति मुदरोद् भवमात्मनो वै।
स्तन्यामृतेन परिवञ्चित वक्त्रपद्यम्,
त्यक्त्वा प्रयाति पथि यात्म कृताधभीता।।[69]

यह भारत भूमि है, जिसे शास्त्रों में विश्ववन्द्या देव भूमि कहा गया है। जिसकी सौरभ भरी संस्कृति को छोड़कर ये मन्द मति दुर्वासना की ओर भाग रहे है तथा शास्त्रवर्णित अपनी कुल परम्परा को भूल कर ये अन्धबुद्धि वन्ध्यवनिता सी विदेशी संस्कृति के पीछे भाग रहे है। इस युग में शीलरक्षा का भी ह्रास हो रहा है। नवजात शिशु स्तन्यामृत से वंचित हो रहे है।

अवैध शिशुओं को माँ की गोद का वात्सल्य सुख भी प्राप्त नहीं हो रहा है। हे शिवे! आप मनुष्यों के ह्रदय में दया का भाव भरें, जिससे वे इस पुण्यधरा के कुत्सित कृत्यों को दूर करने में समर्थ हों।

कवि अतीत का स्मरण करते हुये कहते है कि **'ते हि नो दिवसाः गताः'** सुख दुःख भरे वे दिन तो चले गये जिन्हें देखा और भोगा था। वहाँ स्नेह भरा दीपक था परन्तु उसमें

प्रसन्नता का प्रकाश था पर उसकी प्रकाश भरी छोटी शिखा भी अंधकार पर शासन करती थी, परन्तु आज बिजली के प्रकाश भरे दीपक भी उस अन्धेरे को नहीं हटा पा रहे है। आज लज्जा के अभाव में नारी बहुमूल्य वस्त्राभरण पहन कर भी नग्न सी प्रतीत होती हैं। साक्षरता का अहंकार शील रक्षण को नहीं रोक पा रही है। कुछ उल्लू अंधकार के अनुरागी है।

वे चन्द्र की निन्दा करते है। वे बिजली के अहंकार में चन्द्र को तुच्छ मानते है। सहयोग की प्रवृति, काल के प्रभाव से, पवित्र अमृत बरसाने वाली मेघमाला नये युग के प्रभाव से लुप्त हो रही है तथा संस्कृति की साधना के फूलों की सुगन्ध अब अर्थ और काम परायणता के कुभाव से विलुप्त हो गयी है। लोक गीत अब अस्त हो गये है, वसन्त को वैराग्य हो गया है तथा ऋतुओं के रस भरें उत्सव भी अब मानो वीतराग से हो गये है। मंगल गीतों के अभाव में प्रकृति भी रुष्ट सी लगती है। जिस माँ ने नौ मास तक उदर में पाला और कष्ट भोगे, तथा प्रसव पीड़ा सही उस मां को वे पुत्र याद भी नहीं करते, पुत्र सुत, आत्मज आदि संज्ञाओं को अपने दुष्ट चरित्रों से कलंकित कर रहे है, ऐसे पुत्रों को धिक्कार है।

धिक्तान् पुत्र सुतात्मजादि सुभगे संज्ञापदे संस्थितान्,
ये निन्द्यैः कलितैर्निजैः पदमिदं कुर्वन्त्यहो पंकिलम्।
या धृत्वा नव मासमात्व जठरे यं वै स्थिता संकटे,
वार्धक्ये समुपागते हि सहसा तेनैव सोपेक्ष्यते।।[70]

धिक्कार हे उन पुत्रों को जो स्वयं तो सुन्दर भवन में निवास करते है और माता–पिता वृद्धाश्रम में जीवन बिताते है तथा पुत्र–पौत्रों के रहते हुये भी अनाथ की तरह अकेले अपना समय अनाथालय में व्यतीत करते है।

उन वृद्ध लोगों की दृष्टि अवस्था के कारण चाहे मन्द हो गयी हो पर उनकी प्रज्ञा चक्षु मन्द नहीं होती । बुढ़ापे के कारण चाहे वे ठीक प्रकार से सुन न सकते हों, परन्तु उनका श्रुतज्ञान कम नहीं होता, वार्धक्य के कारण शरीर भले ही दुबला हो गया हो, पर उनका विवेक विचलित नहीं होता अतः वृद्ध जनों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये।

मैं तो आत्मभाव से यही प्रार्थना करता हूँ कि भारत की माताओं में वात्सल्य भाव निरन्तर बना रहे। पुत्र माता–पिता के प्रति श्रद्धा भाव रखे, बहुएं सास की सेवा करें तथा सासु पुत्र बधुओं के साथ प्रेम भरा व्यवहार करें। बन्धुओं में निर्मल सौहार्द बना रहे तथा कन्याओं के विवाह में कुटिल दहेज बाधक न बने।

यत्रत्याः सुजनाः स्वसाधु चरितैः ख्याताजगत्यां चिरात्,

यस्याः प्राङ्गणरिंगणोंत्सुकुहृदो देवा! अपि स्वर्गतः।
नार्यश्चापि निजेन तीव्रतपसा वन्द्याः सुराणामति,
सेयं विश्व गुरुत्व गौरव युता भूयोधरा जायताम्।।[71]

जिस धरा के सज्जन अपने शील और चरित्र के कारण संसार में प्रख्यात है। जिस धरती पर देवता भी बालक बनकर खेलने को उत्सुक रहते है। जहाँ की नारियाँ अपने कठोर तप के कारण देवताओं की भी वन्दनीय बन जाती है। ऐसी यह भारत भूमि पुनः विश्व गुरुत्व का गौरव धारण करने वाली बने यही मेरी कामना है।

एवं प्रकारेण कवि ने काव्य के माध्यम से माँ के करुणा ऋण से कोई भी कभी उऋण नहीं हो सकता यही समझाने का प्रयास किया है। इस माध्यम से कवि आशान्वित है कि काव्य को पढ़कर लोग माँ शब्द की गरिमा का बोध करेंगे और उसकी शीतल छाया का स्पर्श पाकर आह्लादित होंगे।

4. अनूदित खण्डकाव्य –

पं. श्रीराम दवे का काव्य, ऐतिहासिक कथानक अथवा कविकल्पित कथानकों के इतस्ततः घूमने वाला काव्य नहीं है। इनका काव्य समसामयिक विषयों पर केन्द्रित, युगबोध परक तथा राष्ट्रधर्म चिन्तक काव्य है। आपकी सर्जना में नया अध्याय तब जुड़ा जब संस्कृत काव्य लेखन परम्परा की लीक से कुछ हटकर हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी आदि भाषाओं में रचित प्रसिद्ध कृतियों का संस्कृत भाषा में पद्यानुवाद किया। कवि का मानना है कि, संस्कृत भाषा केवल इतिहास और पुराणों की भाषा बनकर ही न रह जाय। विश्व प्रसिद्ध कृतियों का अनुवाद संस्कृत भाषा में होना चाहिये ताकि, संस्कृत के अध्येताओं को अन्य भाषा के प्रसिद्ध कृतियों के ज्ञान विज्ञान का लाभ प्राप्त हो सकें। इन्हीं भावनाओं से ओत–प्रोत होकर पं. श्रीराम दवे ने एक प्रच्छन्न कवि की तरह विविध कृतियों का संस्कृतानुवाद कर संस्कृत वाङ्मय को अनमोल उपहार दिया है। जिसका मूल्य वर्षो तक सहृदय रसिक जन अपने सुकर आनन्द से चुकाते रहेंगे।

यद्यपि किसी काव्य का किसी अन्य भाषा में पद्यात्मक अनुवाद दुस्कर कार्य है, परंच **''दुष्करं कि महात्मनाम्''** श्री दवे ने अपनी कौशल शक्ति से भावों को संस्कृत शब्दों में पिरोकर विविध भाषी श्रेष्ठ कवि होने का परिचय दिया है।

कवि का संस्कृत, हिन्दी, सिन्धी, उर्दू एवं अंग्रेजी भाषा पर समान अधिकार था। कवि हृदय होने के कारण विभिन्न भाषा में रचित काव्य ग्रन्थों का रसास्वादन भी स्वाभाविक ही था। कवि की कुछ परोक्ष अपेक्षाऐं थी कि संस्कृत साहित्य ऐसा प्राणवान हो, जिससे

भारतीय भाषाओं के साहित्य में संस्कृत की मानक स्थिति बनें। भाषाओं की संवेदनाओं को संस्कृत में समाहित करने के उद्देश्य से कवि ने अनूदित काव्यों की सर्जना की।

श्री दवे ने तीन भाषा के काव्यों का संस्कृत पद्यानुवाद किया है जिसे अनूदित खण्डकाव्य के नाम से जाना जाता है।

1. यवनीनवनीतम् –उर्दू भाषा के कवि मिर्जा गलिब के उर्दू पद्यों का संस्कृत पद्यानुवाद है।
2. अकिंचन चैत्यम्– आंग्ल भाषा के कवि 'टॉमस ग्रे'' की ऐलिजी का संस्कृत पद्यानुवाद है।
3. ब्रह्मरसायनम् – सिन्धी भाषा के महाकवि ''शाह अब्दूल लतीफ के **''शाहजोरसालों''** का संस्कृत श्लोकानुवाद है।

जिनका संक्षिप्त परिचय अधोलिखित है।

(क) **''यवनीनवनीतम्''**

उर्दू भाषा के प्रसिद्ध कवि मिर्जा गालिव की कविताओं का विविध छन्दों में कवि श्री दवे द्वारा पद्यानुवाद किया गया जिसे **''यवनीनवनीतम्''** नाम दिया गया हैं।

''यवनीनवनीतम्'' के नामकरण में उर्दू को यवनी के रुप में निर्दिष्ट किया गया है, तथा उसके लालित्य को नवनीत नाम दिया गया है। जिस प्रकार से आदि कवि वाल्मीकि का शोक श्लोक रुप में उद्भूत हुआ था। उसी भाँति उर्दू के सुप्रसिद्ध कवि मिर्जागालिब का भी शोक ही काव्य प्रेरणा का कारण बना। मिर्जा गालिब का जीवन भी कष्टमय ही रहा, बचपन में ही उनके पिता का देहावसान हो गया। नौ वर्ष की अवस्था में निकाह हो गया। उनके सात पुत्र हुये किन्तु एक भी जीवित नही बचा। कुछ काल के पश्चात् उनकी पत्नी का भी देहावसान हो गया। अपने वैदुष्य के कारण उन्हें राज्याश्रय भी मिला किन्तु वह भी अधिक समय तक नही रहा। 1857 की जनक्रान्ति में उन्होंने कारावास के संकट भी भोगे, जीवन के इन्हीं दर्दों ने मिर्जागालिब को महाकवि गालिब बना दिया। **पं.श्रीराम दवे** ने भी अपने जीवन में इसी प्रकार के दारुण कष्ट को बहुत नजदीक से देखा और भोगा भी था, फलस्वरुप मिर्जागालिब के काव्य में छिपी हुई करुणा को आत्मसात् कर उनके काव्याशों का संस्कृत में अनुवाद करना प्रारम्भ कर दिया। कवि ने उर्दू के गजल के भावों को संस्कृत के शब्दों में स्थान्तरित कर गुणग्राही श्रेष्ठ कवि होने का परिचय दिया है।

''उर्दूगजल'' **कहते हो न देंगे हम दिल अगर पड़ा पाया।**
दिल कहाँ के गुम कीजे हमने मुद्दा पाया।।[72]

संस्कृतानुवाद : **कथयसि नहि दास्ये चित्तमेतत्त्वदीयम्।**
निपतितमिह मार्गे क्वापि दैवान्नुलब्धम्।।[72]

गजल – दिल मेरा सोजे निहां से
बे महाबा जल गया।
आतिशे खामोश की
मानिन्द गोया जलगया।[73]

संस्कृतानुवाद – अदृश्य वह्निनादग्धम्,
सर्वथा हृदयं मम
अवेद्यो भस्मनाऽऽछन्नः
पाककोऽन्तः स्थितोऽस्ति में।।[73]

इस प्रकार पं. दवे ने मिर्जागलिब के 95 गजलों का संस्कृतानुवाद किया है। जिससे शब्दानुवाद एवं भावानुवाद दोनो का ही सम्मिश्रण है। कवि के शब्द और भाव दोनों ही मानव हृदय के अन्तस्थल की करुणा को प्रकट कर रहे है।

(ख) अकिंचन् चैत्यम् –

अंग्रेजी साहित्य में **'टामस ग्रे'** का नाम आदर से लिया गया है। इन्होंने 18वीं सदी के मध्य में एक कालजयी रचना रची। जिसका नाम ''एलिजी रिटिन इन ए कंट्री चर्चयार्ड (ELEGY WRITTEN IN A COMUNTRY CHURCHYARD) है। यह काव्य कथ्य एवं शिल्प दोनों की विलक्षण कसावट के लिये प्रसिद्ध है। प्रखर आलोचक डॉ. सेम्यूअल जॉनसन ने भी इसकी भूरि–भूरि प्रशंसा की थी। आज भी इस कविता की लोकप्रियता एवं प्रासंगिकता में न्यूनता नहीं आयी है। यही कारण है कि इसका अनुवाद कई भाषाओं में हो चुका है। पं. श्रीराम दवे ने भी इस शोकगीत का पद्यात्मक अनुवाद **'शार्दूलवीक्रीडितम्'** छन्द में किया है। जिसका प्रकाशन राजस्थान संस्कृत अकादमी जयपुर द्वारा प्रकाशित ''काव्यमंजूषा में 'अकिंचन्–चैत्यम्' शीर्षक से किया गया है। 32 श्लोकों वाला यह अनूदित काव्य संस्कृत के परिवेश के अनुरुप पठनीय है।

पं. श्रीदवे द्वारा किये गये पद्यानुवादित कविता की कथा भी सूक्ष्म है। कवि एक ग्रामीण शमशान स्थल के माध्यम से निर्धन ग्राम्य जनों के कठिन किन्तु संतुष्ट जीवन की ओर इंगित करता है। साथ ही मानव जीवन की क्षण भंगुरता एवं नश्वरता का भी हृदय स्पर्शी वर्णन करता है। इस प्रकार कविता में सार्वभौमिकता सार्वजनिकता व्याप्त है। जिसमें शोक, करुण एवं माधुर्य झलकता है।

(ग) ''ब्रह्मरसायनम्'' –

कवि पं. श्रीराम दवे के अध्ययन–अध्यापन का स्वर्णिम काल सिन्धप्रान्त के विभिन्न क्षेत्र में व्यतीत हुआ। संस्कृत–हिन्दी–अंग्रेजी के साथ सिन्धी भाषा को सीखने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ तथा सिन्धी भाषा–भाषियों के साथ साहचर्यवशात् उनसे आत्मीय अनुराग भी हो गया, एतदर्थ सिन्धी भाषा का प्रवाह नैसर्गिक रुप से उनकी जिह्वा में समाहित हो गया।

सिन्धप्रदेश में सिन्धीकाव्य के क्षेत्र में उस समय ''शाह अब्दुल लतीफ'' का नाम बड़ी श्रद्धा से लिया जाता था। वे सूफी सन्त थे, सिन्ध की लोक कथाओं को गाते थे तथा वहाँ के हिन्दू–मूसलमानों की भाषा का प्रतिनिधित्व करते थे। वे बाल्यकाल से ही ईश्वरोन्मुखी, चिन्तन प्रिय थे। पार्थिव सुखों में उसकी रुचि नगण्य थी। स्वभाव के अनुरुप महाकवि शाह अब्दुल लतीफ के ''शाहजोरसालो'' नामक सूफीमताश्रित महाकाव्य लिखा। इस काव्य का स्वर प्रायः सभी सन्त और रहस्यवादी कवियों के स्वर से मिलता है। कबीर, तुलसी, सूर, जायसी, बिहारी आदि की कविताओं में जो प्रेम की अभिव्यक्ति की गयी है, वह ''शाह'' के काव्य में भी मिलती है।

संस्कृतभाषा के कवि पं. श्रीराम दवे भी मूलतः ईश्वरोन्मुखी एवं चिन्तनशील कवि थे, शाहलतीफ के काव्य को पढ़कर अभिभूत हुये, चिन्तन–मनन पश्चात् ''शाहजोरसालो'' के भावों को, तथा रहस्यवादी ज्ञान को संस्कृत पाठकों के समक्ष लाने का निश्चय किया, फलस्वरुप उनके पद्यों का विभिन्न छन्दों में संस्कृत श्लोकानुवाद किया है।

''आनन्द ब्राह्मणोरुपम्'' आनन्द की अनुभूति ही ब्रह्म है। अतः ब्रह्माज्ञानियों के लिये यह ग्रन्थ रसायन है। एतदर्थ कवि ने शाहजोरसालो ग्रन्थ के संस्कृतानुवादित ग्रन्थ का नाम ''ब्रह्मरसायनम्'' रखा है। भाषा और भाव में कितना ही अन्तर क्यों न हो, साहित्य में स्थान पाकर भावात्मक एवं विचारात्मक रुप से वह एकता की स्वर लहरी झंकृत किये बिना नहीं रहते।

जो भाव संस्कृत साहित्य में है उन्हीं भावों को शाहलतीफ ने अपने ढंग से अपने काव्य में प्रकट किया है।

सिन्धी – **जा बाहुद में बहु, ता तूॅं मच्छ! ना मोटिएं।**
काए में कोहु करिएं, पाई मोटण जो पाहु।।

संस्कृत – **भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्व संशयाः।**
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि, तस्मिन् दृष्टे परावरे।।[74]

शाह के काव्य में ऐसे भी अनेक पद्य है, जिनका भाव गुरुमुख से पढ़े बिना नहीं बताया जा सकता है। इनकी कविता हिन्दु राग–रागनियों में ढली हुयी है। तथा यमन,

कल्याण, श्री राग आशा, राम कली आदि 30 स्वरों में निबद्ध है कवि दवे ने अपने अनूदित काव्य में इसको यथावत स्थान दिया है। शाहलतीफ के सूफी सिद्धान्त को दृष्टि में रखते हुये धर्मनिष्ठ विद्वान कवि ने सामान्य जन के हृदय में ईश्वर के प्रति श्रद्धा जागृत करने के लिये भक्ति के माध्यम से शास्त्रों में वर्णित अनेक देवी देवताओं की उपासना का मार्ग प्रकट किया है। इस प्रकार कवि देव ने सिन्धी भाषा के महाकवि शाह अब्दुल लतीफ द्वारा लिखित ''शाहजोरसालो'' काव्य के 296 पद्यों का संस्कृत पद्यानुवाद किया है। जो ग्राह्य एवं श्लाधनीय है।

कवि ने हिन्दी साहित्य की तीन श्रेष्ठ कृत्तियों का गद्यानुवाद भी किया है।

1. जयशंकर प्रसाद कृत ''ध्रुवस्वामिनी'' का संस्कृत गद्यानुवाद।
2. मुन्शी प्रेमचन्द्र रचित ''निर्मला उपन्यास'' का संस्कृत गद्यनुवाद।
3. रविन्द्र नाथ टैगौर निर्मित ''गीतांजलि'' का संस्कृत अनुवाद।

इस प्रकार कवि की अनुवादित गद्य–पद्यात्मक कृतियाँ भी संस्कृत साहित्य को गौरवान्वित करती है।

सन्दर्भ :

1. सौन्दर्यलीलामृतम् – पुरोवाक् – पृ.सं.–29
2. वहीं – पुरोवाक् – पृ.सं.–28 कवयोविबुधा विप्राः प्रकृत्या सह योषिताम्।
अंगानां धर्म सम्बन्धं कुर्वते साधुचेतसा।।
3. वहीं – पृ.सं. 35, श्लोक – 3
4. वहीं – पृ.सं. 44, श्लोक – 14
5. वहीं – पृं. सं. 75, श्लोक – 35
6. वहीं – पृ.सं. 76 श्लोक – 3
7. वहीं – पृ.सं. 80 श्लोक – 12
8. मेघोपालम्भनम् – श्लोक सं. – 1
9. वहीं – श्लोक सं. – 17
10. वहीं – श्लोक सं. – 18
11. मा निषाद् प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चं मिथुनादेकमवधीः काम मोहितम्।।
12. 'वियोगशतकम्' – कविनिवेदन – पृ. सं. – 11
13. वहीं – श्लोक सं. – 3
14. वहीं – श्लोक – 28
15. वहीं – श्लोक – 48
16. वहीं – श्लोक – 49
17. वहीं – श्लोक – 50
18. वहीं – श्लोक – 51
19. वहीं – श्लोक – 52

20. वहीं – श्लोक – 53
21. वहीं – श्लोक – 56
22. वहीं – श्लोक – 72
23. वहीं – श्लोक – 85
24. वहीं – श्लोक – 89
25. वहीं – श्लोक – 109
26. ललितालहरी – पृ.सं.–13
27. ललितालहरी – श्लोक सं. – 1
28. वहीं – श्लोक सं. –
29. अपांगलीला –पृष्ठ –18, श्लोक सं.–23
30. वहीं – पृष्ठ 20, श्लोक सं.– 27
31. वहीं – युगलीला–श्लोक सं.– 1
32. वहीं –पृष्ठ –61, श्लोक सं. 12
33. वहीं – पृष्ठ–69, श्लोक – 01
34. वहीं –पृष्ठ –70, श्लोक सं. 03
35. साहित्य दर्पण द्वितीय परि. कारिका सं. 02, ''वर्णाः पदं प्रयोगार्हानन्वितैकार्थबोधकाः''।
36. वहीं – कारिका सं. 01, ''वाक्यं स्याद्योग्यताऽऽकांक्षासक्तियुक्तःपदोच्चयः''।
37. वहीं – कारिका सं. 01, ''वाक्योच्चयो महावाक्यं''।
38. भारतीविलास – पृ.सं. – 02
39. वहीं– श्लोक सं. – 81
40. वहीं – श्लोक सं.–149
41. वहीं– श्लोक सं. – 178
42. कामधेनुशतकम् – पृ.सं. – 15
43. वहीं – श्लोक सं. – 13
44. वहीं – श्लोक सं. – 14
45. वहीं – श्लोक सं. – 27
46. वही – श्लोक सं. – 75
47. वही– श्लोक सं. – 71
48. केलिभूकैतवम् – श्लोक सं. – 1
49. वहीं – श्लोक सं. – 24
50. वहीं – श्लोक सं. – 29
51. केलिभूकैतवम् –श्लोक सं. – 36
52. वहीं – श्लोक सं. – 37
53. शिशुपालवधम् – 6/44
54. कालकौतुकम् – पृ. सं. 192, श्लोक सं.–6
55. वहीं– पृ.सं.– 219 श्लोक 16
56. परिखायुद्धम्–श्लोक सं.–6
57. वहीं – श्लोक सं. – 7,

58. वहीं – श्लोक सं. – 8

59. वहीं – पृ.सं. – 2

60. वहीं –श्लोक सं. – 30

61. वहीं –श्लोक सं. – 47

62. कारुण्यकदम्बिनी समपर्णम् – पृ.सं.– 01

63. वहीं – पृ. सं. – 01

64. वहीं – श्लोक सं. – 01

65. वहीं – श्लोक सं. – 15

66. वहीं – श्लोक सं. – 36

67. वहीं – श्लोक सं. – 50

68. वहीं – श्लोक सं. – 53

69. वहीं – श्लोक सं. – 66

70. वहीं – श्लोक सं. – 96

71. वहीं – श्लोक सं. – 118

72. यवनीनवनीतम् – पृष्ठ सं.–329, श्लोक सं. – 1

73. वहीं –पृष्ठ सं. – 331 श्लोक सं. – 01

74. ब्रह्मरसायनम् – श्लोक सं. – 7

चतुर्थ अध्याय

पं.दवे कृत खण्डकाव्यों की साहित्यिक समीक्षा

1. हृदय पक्ष –

(क) रस स्वरूप

(ख) रसास्वादन

(ग) रसाभिव्यक्ति के साधन

(घ) रस प्रकार विमर्श

(ङ) समीक्ष्य खण्डकाव्यों में रस

(i) शृंगाररस प्रधान खण्डकाव्य –

- सौन्दर्यलीलामृतम्
- वियोगशतकम्
- केलिभूकैतवम्
- मेघोपलम्भनम्

(ii) करुणरस प्रधान खण्डकाव्य –

- कारुण्यकादम्बिनी
- कामधेनुशतकम्

(iii) भक्तिरस प्रधान काव्यम् –

- ललितालहरी
- अपांगलीला
- भारती विलास

(iv) वीररस प्रधान काव्यम् –

- परिखायुद्धम्

(v) अद्भुतरस प्रधान काव्यम् –

- कालकौतुकम्

(vi) अनूदित काव्य –

भक्तिरस प्रधान –

- ब्रह्मरसायनम्
- अकिंचनचैत्यम्

शृंगार प्रधान –

- यवनीनवनीतम्

2. बुद्धि पक्ष –

   (क) गुण–गरिमा

   (ख) रीति निरुपण

   (ग) छन्द प्रयोग

   (घ) अलंकार योजना

   (ङ) भाषा शैली

3. निष्कर्ष –

चतुर्थ अध्याय
पं.दवे कृत खण्डकाव्यों की साहित्यिक समीक्षा

काव्यशास्त्रीय परम्परा में निबद्ध संस्कृत कवियों का कर्म उनकी संवेदनाओं का अद्‌भुत् तरंग है। उसका दायित्व केवल 'इतिवृत'[1] का वर्णन मात्र नहीं होता, वह तो अपनी सफल तूलिका से ऐसा तथ्य सहृदय सामाजिकों के लिये प्रस्तुत करता है, जिससे पाठकों को वेद्यान्तर– सम्पर्कशून्य, अलौकिक–आनन्द की अनुभूति हो सके। जगत् की असारता और उद्‌वेगजनकता को देखकर महाकवियों ने लोकोत्तर आनन्द की उपलब्धि पुरस्सर चतुवर्ग फलप्राप्ति के लिये काव्यात्मिका सारस्वतीसृष्टि का निर्माण किया है। इसीलिए प्रभुसम्मित वेदशास्त्रादि तथा सुहृत्सम्मित पुराणेतिहास से विलक्षण सत्कवियों की मंजु भाषिणी–भणिति–कामिनी की भाँति मानव मन को आह्लादित करती हुयी, अपूर्व अलौकिक आनन्द की उपलब्धि कराती है। इस सन्दर्भ में आनन्दवर्धन का यह कथन सर्वथा उपयुक्त है –

सरस्वती स्वादुतदर्थवस्तु,
निष्यन्दमाना महतां कवीनाम्।
अलोक सामान्यमभिव्यनक्ति,
परिस्फुरन्तं प्रतिभा विशेषणम्।।[2]

अतिशय रमणीय तत्वों को प्रवाहित करती हुयी महाकवियों की वाणी, सरस जनवाणी की गीति के रुप में उसकी विलक्षण प्रतिभा को सूचित करती है। वस्तुतः कवि जन प्रतिनिधि होता है, उसके विचार सबके विचार होते है, इसलिए उसकी अनुभूति ललितपदकदम्बक के रुप में सहृदयों के हृदय में प्रविष्ट होकर जड़–चेतनात्मक जगत् से उसका तादात्म्य करा देती है।

जहाँ स्वकीय और परकीय की क्षोदीयसी भावना समाप्त हो जाती है। जिससे सहृदय सामाजिक अपने अन्तः स्थित रत्यादिभावों का आस्वादन करता है। यह आस्वादन ही काव्य की परा उपनिषद् है। ऐसी अनुभूति कराने में सक्षम कवि ही रससिद्ध कवीश्वर की उपाधि पाते है। जिसके द्वारा पुण्यवान–व्यक्ति ब्रह्मस्वाद–सहोदर की अनुभूति करता है।

''पुण्यवन्तः प्रमिण्वन्ति योगिवद्रससन्ततिम्।[3]

इस प्रकार सहृदय सामाजिकों को आकण्ठ काव्यरस से संतृप्त करने वाली कवि–कृतियों को सामान्य दृष्टि से काव्य कहा जा सकता है। **'कवेः भावः, कर्त्तव्यकर्म वा इति काव्यम्'** अर्थात् जो कवि का भाव है अथवा कर्त्तव्य कर्म है उसे काव्य कहते है।

अथवा

'कविना प्रोक्तं इति काव्यम्' अर्थात् जो कवि द्वारा प्रोक्त है, वह काव्य है।

पं. श्रीराम दवे एक विद्वान कवि है, उनका खण्डकाव्य उनके हृदय के श्रेष्ठ विचारों का समूह है, कर्त्तव्य कर्म का निर्देश कारक है। अतः यह काव्य कोटि में आता है।

इन्हीं काव्यग्रन्थों को कविकोविद् सहितभाव से भरित होने कारण **'साहित्य'** भी कहते है। क्योंकि **'हितं शब्दार्थ समुदायः हितकारकत्वात् हितेन सहितः, सहितस्य भावः इति साहित्यम्'** अर्थात् शब्दार्थ समुदाय को हित कहते है क्योंकि वह लोकहित और आत्महित करने वाला होता है, हित से जो युक्त है वह सहित कहा जाता है और सहित के भाव को ही साहित्य कहा जाता है। पं. श्रीराम दवे का खण्डकाव्य यथार्थ में काव्य है, क्योंकि उनका साहित्य ग्रन्थ लोकहित और आत्महित करने वाला है।

अथवा

'साहित्यं सम्मेलनं' इस विग्रह के अनुसार रस, छन्द, अलंकार, गुण, रीति आदि के माध्यम से जहाँ पर शब्दार्थों का उचित सम्मेलन हो, उसे **साहित्य** कहते है। समीक्ष्य खण्डकाव्य छन्द, रस, अलंकार, गुण, रीति आदि से समन्वित शब्दार्थों का श्रेष्ठ सम्मेलन है, अतएव दवे की कृति साहित्य कोटिक कृति है।

अथवा

'परस्परसापेक्षाणां तुल्यरुपाणां युग्पदेक क्रियान्वयित्वं साहित्यं इति' परस्पर सापेक्ष तुल्य शब्दार्थों का एक साथ योग्य क्रियाओं के साथ सम्बन्ध जिस ग्रन्थ में होता है, उसे साहित्य कहते है। समालोच्य खण्डकाव्य में साहित्य का उक्त लक्षण अक्षरशः घटित होता है। इसलिये इनके काव्य साहित्य कहलाने के योग्य है।

अथवा

'विज्ञमनुष्य कृत श्लोकमय ग्रन्थ विशेषः साहित्यं' अर्थात् जिस ग्रन्थ में विद्वानों द्वारा श्लोकों का सृजन किया गया हो उसे साहित्य कहते है। इस दृष्टि से सुन्दर श्लोकों का समन्वय स्थल आलोच्य खण्डकाव्य समवाय साहित्य ग्रन्थ है।

साहित्य की उक्त सभी व्याख्याओं से यह सिद्ध होता है कि महाकवि साहित्य–शिरोमणि पं. श्रीराम दवे का सकल खण्डकाव्य उत्कर्षाधायक एवं जीवनाधायक काव्यावयवों से अभिमण्डित सद्साहित्य है। एतदर्थ श्रीराम दवे के विशद् सद्साहित्य की समीक्षा पद्यपीयूषपान उत्कण्ठित पण्डितों के लिये अति अपेक्षित है।

वस्तुतः काव्य शास्त्रीय सिद्धान्तों की कसौटी पर सद्साहित्यों की सत्यता की प्रतिबद्धता सिद्ध करना ही साहित्यिक समीक्षा है। समीक्षा के विषय में अज्ञात विद्वान का चिन्तन प्राप्त होता है, जो इस प्रकार है –

समीक्षा नाम सा दृष्टिर्यथा भावो निषेव्यते,
कवेर्काव्यस्य भावं या स्पष्टीकरोति लीलया।।
हृत्पक्षं बुद्धिभावंच ज्ञातुं काव्ये स्थितं रसम्,
बोद्धुं भावान् अलंकारान् समीक्षा वै अभिप्स्यते।।
हृदयेन हृदयं ज्ञात्वा बुद्ध्या बुद्धिंच सारतः।
क्रियते काव्यततत्वज्ञैर्समीक्षा भावगर्भिता।।

अनुसंधान का ध्येय कवि के खण्डकाव्यों की साहित्यिक समीक्षा है। जिसके अन्तर्गत कवि के चित्त की चेतना एवं काव्य कला कौशल का निदर्शन अपेक्षित है। नवरसकलित, रीति–गुण–भाषा–अभिराम, छन्द, अलंकार आदि काव्यावयवों से अलंकृत श्रुतिसुखवहा खण्डकाव्यों की समीक्षा के दो पक्ष प्रबल होते है। प्रथम अनुभूति पक्ष तथा द्वितीय अभिक्यक्ति पक्ष। अनुभूति पक्ष को ही हृदयवादी सहहृदय जन हृदय पक्ष कहते है तथा अभिव्यक्ति पक्ष को ही समीक्षकगण बुद्धि पक्ष कहते है। अतः समीक्षा के आलोक प्रथम पक्ष प्रस्तुत है –

1. हृदयपक्ष –

भावों का प्रवाह स्थल, काव्य गंगा की गंगोत्री, अन्तरंग–तरंगों का तरल स्थल तथा संस्कार जन्य वासना रुप स्थायी भावों का आगार है हृदय। जहाँ से अनुभूत भाव छन्द रुप में प्रस्फुटित होते है। वही जन–मनरंजन में समर्थ कवि की कवितामयी वाणी प्रमाताओं को अलौकिक हृदयाहलाद प्रदान करती है। वही हृदयाह्लादक भाव जब रस के रुप में परिणत हो जाता है तब काव्य का आत्मस्थानीय तत्व बन जाता है। वस्तुतः रस ही काव्य की आत्मा है। जीवनाधायक है–

'रस एवात्मा सार रुप तया जीवनाधायको यस्य'[4]

जिस तरह प्राण शरीर के अन्दर अवस्थित रहकर स्वयं को प्रकाशित करता है, वैसे ही रस शब्दार्थ के अन्दर अवस्थित रहकर काव्य जीवन को प्रकाशित करता है तथा उसकी अन्तः चेतना को तुष्टि देता है। काव्य का प्रमुख पक्ष होने के कारण ही रस को हृदय पक्ष कहा जाता है। हृदयवादी आचार्य हृदयदर्पणकार भट्टनायक ने हृदय की पूर्णता से काव्य का उद्भव माना है।

'एतदेवोक्तं हृदयदर्पणे–यावत् पूर्णो न चैतेन तावन्नैव वमत्मयम्'[5]

अर्थात् जब तक हृदय भाव से परिपूर्ण नहीं हो जाता, तब तक पद्य के रुप में वह उसे उद्गीर्ण नहीं कर सकता। एवमेव आचार्यों ने काव्यात्मतत्व रस को काव्य का हृदय पक्ष स्वीकृत किया है।

इसे अंगी रुप में अंगीकार किया गया है। काव्य में वाग्वैदग्ध्य की प्रधानता होने पर भी रस को ही जीवन माना गया है।

'वाग्वैदग्धप्रधानोऽपि रस एवात्र जीवितम्'[6]

वस्तुतः काव्य का हृदय रस वहीं तत्व है जिसे पं. जगन्नाथ ने रमणीयार्थ, ध्वन्यालोककार ने प्रतीयमानार्थ तथा आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य नाम दिया है।

निःसन्देह काव्य हृदय की अभिव्यक्ति है। वह हृदय से सहज ही प्रस्फुटित होता है। यह प्रस्फुरन हृदय की तरलता, कुण्ठा या संवेग से सम्भावित होता है।

काव्य जगत् का प्रजापति कवि अपनी आनन्द पिपासु प्रजारुपी सहृदय की पिपासा का शमन करने के लिये जीवन और जगत् को अपनी नवनवोन्मेष प्रज्ञा द्वारा नितनूतन रुप में अभिव्यक्त करता है, और उसकी यह अभिव्यक्ति जनमनरंजन में समर्थ होती है। कवि की वाणी से प्रस्फुटित नूतन–नूतन उद्गार प्रमाता को आहलाद्कता प्रदान करते है और यह अह्लादता काव्य शास्त्रियों की दृष्टि में रस कहलाती है। रस वस्तुतः काव्य का प्राण है।

यद्यपि काव्य मीमांसाकार आचार्य राजशेखर नन्दिकेश्वर को **'रस'** का मूल व्याख्याता मानते है[7] तथापि प्रामाणिक रुप से काव्य का आत्मतत्व रस का इतिहास आचार्य भरत के नाट्य शास्त्र से ही प्रारम्भ होता है। भरत से पूर्ववर्ती आचार्यों ने रस के स्वरुप पर पर्याप्त विवेचनात्मक दृष्टिपात किया है। यह तथ्य स्वयं भरतमुनि के आनुवंश्य श्लोकों तथा कुछ वैकल्पिक विचारों के उपस्थापन से स्पष्ट होता है। निश्चय ही भरतमुनि ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों की रस विषयक अवधारणा का पूर्ण उपयोग किया है। आचार्य भरत द्वारा प्रदत्त रस–सूत्र पूर्वकालिक आचार्यों की रस विषयक मान्यताओं का ही सार प्रतीत होता है, किन्तु इस विषय में भरत के नाट्य शास्त्र में उपलब्ध आधारों के अतिरिक्त अन्य कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होने से नाट्यशास्त्रकर्त्ता आचार्य भरत मुनि को ही रस स्वरुप का प्रतिपादक आचार्य माना जाता है।

(क) रस स्वरुप –

रस स्वरुप के विवेचन की दृष्टि से भरत ने दो आनुवंश्य श्लोकों को उपस्थित किया है।

यथाबहुद्रव्ययुतैर्व्यजनै बहुर्भियुतम्,
आस्वादयन्ति भुंजानां भक्तं भक्त विदो जनाः।

भावाभिनय सम्बद्धान् स्थायि भावांस्तथा बुधाः,

आस्वादयन्ति मनसा तस्मान्नाट्य रसाः स्मृताः।।[8]

इस प्राचीन मान्यता के आधार पर ही भरत ने अपना रसस्वरुप निम्नशब्दों में पर्यालोचित किया है –

"**तत्रविभावानुभावव्यभिचारिसंयोगात् रस–निष्पत्तिः।**" को दृष्टान्तः? अत्राह यथा हि नाना–व्यंजनौषध– द्रव्य–संयोगात् रस निष्पतिः तथा नाना भावोपमाद्रस–निष्पत्तिः। यथा हि गुडाभिर्द्रव्यैर्व्यंजनैरौषधिभिश्च षाडवादयोरसानिर्वत्यन्ते, तथा नाना भावोगत अपि स्थायिनो भावा रसत्वमाप्नुवन्तीति। अत्राह रसइति कः पदार्थः ?

उच्यते – आस्वाद्यत्वात्। कथमास्वाद्यते रसः तथाहि नानाव्यंजनसंस्कृतमन्नं युंजानां रसनास्वाद्यति सुमनसपुरुषाहर्षादिश्चाधिगच्छन्ति, तथा नाना भावाभिव्यंजिता वागंग सत्वोपेतान् स्थायीभावानास्वादयन्ति सुमनसः प्रेक्षकाः हर्षादिश्चाधि गच्छन्ति तस्मान्नाट्य रसा इत्यभिव्याख्याता"[9]

उपर्युक्त पर्यालोचित अंश के अनुसार रस निष्पत्ति का सर्वप्रथम उल्लेख भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में किया है। वही सारे रस सिद्धान्तों की आधारभित्ति है। भरतमुनि के रससूत्र की व्याख्या में ही उत्तरवर्त्ती आचार्यों ने अपनी शक्ति लगायी और उसी के परिणाम स्वरुप –

1. उत्पत्ति वाद 2. अनुमिति वाद
3. भुक्तिवाद 4. अभिव्यक्तिवाद

इन चार सिद्धातों का विकास हुआ। विभाव, अनुभाव तथा संचारीभाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। इस भरत सूत्र में जो **निष्पत्ति** शब्द आया है, उसके भी चार अर्थ होते है।

भट्टलोल्लट के मत में 'निष्पत्ति का अर्थ 'उत्पति'

श्री शंकुक के मत में 'निष्पत्ति का अर्थ 'अनुमिति'

भट्टनायक के मत में 'निष्पत्ति का अर्थ 'भुक्ति'

अभिनवगुप्त के मत में 'निष्पत्ति का अर्थ 'अभिव्यक्ति' है।

अभिनव गुप्त की रस विषयक इसी व्याख्या के आधार पर ही आचार्य मम्मट ने रस के स्वरुप का विश्लेषण इस प्रकार किया है –

आलम्बन विभाव से उद्बुद्, उद्दीपन से उद्दीप्त, व्यभिचारी भावों से परिपुष्ट तथा अनुभावों द्वारा व्यक्त हृदय का स्थायी भाव ही रस दशा को प्राप्त होता है। काव्य को पढ़ने,

सुनने व उसका अभिनय देखने पर विभावादि के संयोग से निष्पन्न होने वाली आनन्दात्मक चित्तवृत्ति ही रस है।

कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च,
रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः।
विभावा अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः,
व्यक्तः स तैर्विभावद्यैः स्थायी भावो रस स्मृतः।[10]

इस कारिका में विभाव, अनुभाव, व्यभिचारिभाव तथा स्थायी भाव से रस की निष्पत्ति का वर्णन करते हुये यह बताया गया है, कि लोक में रति आदि स्थायीभाव के जो कारण, कार्य और सहकारी होते है, वे यदि नाटक या काव्य में प्रयुक्त होते है, तो क्रमशः विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव कहलाते है और उन विभाव आदि कारण, कार्य तथा सहकारी से व्यक्त रति आदि स्थायी भाव ही **रस** कहलाता है।

आचार्य विश्वनाथ ने **कोऽयं रसः** की जिज्ञासा को शांत करते हुये इसके स्वरुप पर इस प्रकार प्रकाश डाला है–

विभावेनानुभावेन व्यक्तः संचारिणा तथा।
रसतामेतिरत्यादिः स्थायी भावः सचेतसाम्।।[11]

अर्थात् सहृदय पुरुषों के हृदय में स्थित, वासनारुप, रति आदि स्थायी भाव ही विभाव, अनुभाव और संचारी भाव द्वारा अभिव्यक्त होकर रस के स्वरुप को प्राप्त करते है।

'व्यक्तो दध्यादिन्यायेन रुपान्तर परिणतोव्यक्तीकृत एव रस'[12]

काव्यादि के सुनने से अथवा नाटकादि के देखने से आलम्बन, उद्दीपनविभावों, भ्रूविक्षेप कटाक्षादि अनुभावों और निर्वेद, ग्लानि आदि संचारी भावों के द्वारा अभिव्यक्त होकर सहृदय पुरुषों के हृदय में स्थित वासना रुप रति, हास, शोक आदि स्थायी भाव, श्रृंगार, हास्य और करुण आदि रसों के स्वरुप में दध्यादिन्याय से (दुग्ध से दधि आदि की तरह दूसरे रुप में परिणत) परिणत होते है।

जिसका मुख्य लक्ष्य सहृदयों के हृदय में आनन्दानुभूति को उद्भावित करना है। इस आनन्दमय अनुभूति को ही **रस** कहते है।

(ख) रसास्वादन –

रसास्वदन के प्रकार पर प्रकाश डालते हुये आचार्य विश्वनाथ कहते है कि –

सत्वोद्रेकादखण्ड स्वप्रकाशानन्द चिन्मयः,
वेद्यान्तर स्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वाद सहोदरः।

लोकोत्तर चमत्कार प्राणः कैश्चितप्रमातृभिः,

स्वाकारवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रसः।।[13]

अर्थात् रस का हेतु सत्वोद्रेक है और कुछ प्रमाता लोग अपने आकार की अभिन्नता से उस रस का आस्वादन करते है। वह रस अखण्ड, स्वप्रकाशानन्द, चिन्मय, इतरज्ञान से शून्य ब्रह्मानन्दसहोदर, और लोकोत्तर चमत्कार युक्त होता है। विश्वनाथ के इस कथन से रस की निम्नलिखित नौ विशेषतायें स्पष्ट होती है।

1. रस सत्वगुण के उद्रेक से प्रकट होता है। रजोगुण और तमोगुण से अस्पृष्ट अन्तःकरण को सत्व कहा गया है। सामान्य शब्दावली में यह सांसारिक राग द्वेष से मुक्त चित्त की वैशद्य की स्थिति है और इस स्थिति में ही रस का आस्वादन होता है।
2. रस प्रमाता द्वारा ही आस्वाद्य है – केवल सहृदय सामाजिक ही काव्य नाट्य के श्रवण–दर्शन से रसानुभूति कर सकते है। सर्वसाधारण (वासना शून्य) नहीं।
3. रस अखण्ड है – इसमें एक तो विभावानुभाव की पृथक्–पृथक् प्रतीति नहीं होती, दूसरे रस की अनुभूति में परिणाम का भय नहीं होता।
4. रसानुभूति वेद्यान्तर स्पर्श शून्य होती है – रसानुभूति अन्य ज्ञान से अर्थात् देशकाल एवं स्व–पर तटस्थ की भावना से रहित होती है।
5. रस स्व प्रकाशानन्द और चिन्मय होता है – रस में संवेद और संवेग दोनों की स्थिति पयार्य से रहती है। विभावों के कारण संवेद (ज्ञान) और संचारीभाव, अनुभाव तथा स्थायी भाव के कारण संवेग की स्थिति रहती है।
6. रस लोकोत्तर चमत्कार प्राण है – रस से उत्पन्न होने वाला आनन्द बाह्य इन्द्रियगत अनुकूल संवेदजन्य आनन्द से सर्वथा भिन्न प्रकार का है। वह मानस प्रत्यक्ष कहा जाता है। इसकी अलौकिकता के आधार पर ही विभावादि को इस हेतु न कहकर उन्हें विभावादि जैसा नाम दिया गया है।
7. रस ब्रह्यस्वाद सहोदर है – रसानुभूति विषयानन्द से भिन्न है, क्योंकि वह इन्द्रियों का विषय नहीं, चैतन्य आत्मा का विषय है, तथापि ब्रह्मानन्द और काव्यरस में अन्तर है। प्रथम स्थायी है और द्वितीय अस्थायी। इसीलिये आचार्य विश्वनाथ ने काव्य रस को ब्रह्मानन्द न कहकर ब्रह्मानन्द–सहोदर कहा है।
8. रस आस्वाद्य पदार्थ है : विश्वनाथ के अनुसार रस चखा जाता है। **'रस्यते इति रसः'**[14]।

अभिनव गुप्त की कल्पना है कि रस स्वयं आस्वाद है, आस्वाद्य नहीं। परवर्ती आचार्यों ने इसी मत का अनुसरण किया है। व्यवहार में रस का आस्वादन किया जाता है ऐसा प्रयोग प्रचलित है। यदुक्तंलोचनकारै –

'रसाः प्रतीयन्त इति त्वोदनं पचतीति वद् व्यवहारः'[15]।

9. रसास्वाद में सहृदय की तन्मयता होती है – रसानुभूति के समय जानी हुयी या जानने योग्य सभी प्रकार की वस्तुओं का ज्ञान विलीन हो जाता है और इतनी तन्मयता आ जाती है, कि प्रमाता की आत्मसत्ता भी रसमय ही प्रतीत होती है।

(ग) रसाभिव्यक्ति के साधन –

साहित्य शास्त्र में रस निष्पति के तीन साधन स्वीकृत किये गये है।

1. विभाव
2. अनुभाव
3. व्यभिचारी भाव।

इन तीनों का संयोग रस निष्पति का कारण कहा जाता है। सहृदयों का स्थायीभाव इन तीनों विभावादि का संयोग प्राप्त कर ही रस रुप में निष्पन्न होता है। दूसरे शब्दों में स्थायीभाव साधन नहीं है, क्योंकि विभावादि के संयोग को आपन्न स्थायीभाव का ही दूसरा नाम रस है। प्रसंगानुसार स्थायी भाव तथा उक्त तीनों साधनों विभाव–अनुभाव–संचारी भाव का स्वरुप प्रस्तुत है।

(i) स्थायीभाव –

रस के उन्मीलन तथा रुप को जानने के लिये हमें अपने ही चित्त के 'भावों' को समझना आवश्यक होता है। सहृदयों या सामाजिकों के हृदय में भावों का सदा निवास रहता है। दैनिक जीवन में हम इसी प्रकार के विविध भावों का अनुभव किया करते है। अचेतन मन के अन्तराल में छिपने वाला भाव बहुत देर तक रहता है और इसी कारण वह **स्थायीभाव** कहलाता है। रत्यादि वासना रुप स्थायीभाव जिन सहृदयों के हृदय में होता है, उन्हें ही रसास्वाद प्राप्त होता है। जिनमें वासना नहीं ऐसे लोग तो रंगशाला के स्तम्भ, दीवार और पाषाण के समान होते है।

अतः सहृदय के अन्तः करण में जो संस्कार वासनारुप में सदा विद्यमान रहते है तथा जिन्हें कोई भी अविरुद्ध या विरुद्ध भाव दबा नहीं सकता उन्हें **स्थायीभाव** कहते है। यही रसरुप आस्वाद का अंकुरकंद है।

अविरुद्धा विरुद्धा वा यं तिरोधातुमक्षमाः।
आस्वादाङ्कुरकन्दोऽसौ भावः स्थायीति संमतः।।[16]

यह भाव अन्त तक अवस्थित रहने वाला भाव है और इसी में रस के अङ्कुरण की मूल शक्ति निहित रहा करती है।

सजातीय विजातीयैरतिरस्कृत मूर्तिमान्,

यावद्रसं वर्तमानः स्थायीभाव उदाहृतम्।।[17]

स्थायी भावों की संख्या सामान्यतया नौ मानी जाती है। रति, हास, शोक, उत्साह, क्रोध, भय, जुगुप्सा, विस्मय और निर्वेद। आचार्य विश्वनाथ निर्वेद को स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार स्थायी भावों की संख्या आठ ही है किन्तु नवें स्थायीभाव शम का भी उल्लेख किया है।

रति र्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहो भयं तथा।

जुगुप्सा विस्मयश्चेत्थमष्टौ प्रौक्ताः शमोऽपि च।।[18]

नौ रस के ये नौ स्थायी भाव सतत् सुषुप्तावस्था में विद्यमान रहते है। जो कार्य कारण सहकारी का साहचर्य प्राप्त करके रस के रुप में परिणत होते है।

अग्निपुराणकार ने आठ प्रकार के स्थायी भावों का निरुपण किया है –

1. **रति** – मनोऽनुकूलोऽनुभवः सुखस्य रतिरिष्यते।[19]

अर्थात् सुख का मनोऽनुकूल अनुभव रति है।

2. **हास** – हर्षादिभिश्च मनसो विकासो हास उच्यते।[20]

अर्थात् हर्षादि से मन का विकास होना हास है।

3. **शोक** – मनोवैक्लव्यमिच्छन्ति शोकमिष्टक्षयादिभिः।[21]

अर्थात् प्रिय वस्तुओं के विनाश से उत्पन्न मन की विकलता शोक है।

4. **क्रोध** – क्रोधस्तैक्ष्ण्य प्रबोधश्च प्रतिकूलार्थ कारिणे।[22]

अर्थात् प्रतिकूल तथा विरोधियों के प्रति उत्पन्न तीक्ष्णता क्रोध है।

5. **उत्साह** – ''कार्यरम्भेषु संरम्भः स्थेयानुत्साह उच्चते''[23]।

अर्थात् पुरुषार्थ की समाप्ति के लिये किया गया उद्योग उत्साह है।

6. **भय** – ''चित्रादि दर्शनाच्चेतो वैक्लव्यं ब्रुवते भयम्''।[24]

अर्थात् चित्र आदि भयानक दृश्य देखने से उत्पन्न चित्त की विकलता भय है।

7. **जुगुप्सा** – जुगुप्सा च पदार्थानां निन्दा दौर्भाग्यवाहिनिम्''[25]

अर्थात् घृणास्पद वस्तुओं की निन्दा जुगुप्सा है –

8. **विस्मय** – विस्मयोऽतिशयेनार्थनाच्चित्त विस्मृत्तिः।[26]

अर्थात् लोकातिशायि वस्तुओं को देखने से उत्पन्न चित्त की विस्मृति विस्मय है।

केचन आचार्य **निर्वेद** को नवाँ स्थायी भाव मानते है, आचार्य विश्वनाथ ने नवाँ स्थायीभाव **शम** को माना है।

''प्रोक्ता शमोऽपि च''[27]

9. शम – 'शमोनिरीहावस्थायां स्वात्मविश्रामजं सुखम्।

अर्थात् निस्पृहता की दशा में संभूत अन्तः करण की अन्तर्मुखता को **शम** कहा जाता है।

इस प्रकार स्थैर्यशील चित्तवृत्तियों को स्थायीभाव कहा जाता है।

(ii) विभाव –

रसानुभूति के कारणों को विभाव कहते है। लोक में जो पदार्थ सामाजिकों के हृदय में वासना रुप में स्थित रति, शोक, उत्साह आदि भावों के उद्बोधक है, वे नाट्य–काव्य में वर्णित होने पर शास्त्रीय शब्दों में विभाव कहलाते है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार –

'रत्याद्युद्बोधकाः लोके विभावाः काव्य नाट्ययोः'[28]

नाट्याचार्य भरत मुनि ने विभाव का अभिप्राय प्रकाशित करते हुये कहा है कि –

बहवोऽर्था विभाव्यन्ते वांगाभिनयाश्रयाः।

अनेन यस्मात्तेनायं विभाव इति संज्ञितः।।[29]

अभिनय का समस्त रहस्य जिसके जानने से जाना जा सकता है वह विभाव है।

धीरोदात्तद्यवस्थायां रामादिः प्रतिपादकः।

विभावयति रत्यादीन स्वदन्ते रसिकस्य ते।।[30]

अर्थात् काव्य, नाटक के क्षेत्र में जनकतनयादि विशेषताओं से शून्य, वस्तुतः साधारणीकृत सीतादि को विभाव कहा जाता है। ऐसा इसलिये क्योंकि इसी से सामाजिकों के हृदय में रत्यादि वासनायें स्फुरित हुआ करती है।

इस प्रकार विभाव का अर्थ है **कारण** । विभाव सामाजिकों के हृदय में स्थित रत्यादि स्थायी भावों को उद्बोधित करते है। उनका विभावन करते हैं। उन्हें आस्वादनीय बनाते है। इस रुप में ये रसाभिव्यक्ति के कारण कहे जाते है।

विभाव दो प्रकार के होते है। आलम्बन विभाव और उद्दीपन विभाव।

- **आलम्बन विभाव :**

'आलम्बनं नायकादिस्तमालम्ब्य रसोद्गमात'[31]

आलम्बन विभाव का अभिप्राय काव्य, नाट्य में वर्णित नायकादि से है, क्योंकि इन्हीं के सहारे, इन्हीं के साथ, साधारणीकरण होने के कारण सामाजिकों के हृदय में रस का संचार हुआ करता है।

इस प्रकार काव्यादि में वर्णित जिन पात्रों का आलम्बन करके सामाजिकों के रत्यादि स्थायीभाव रस रुप में अभिक्यक्त होते है, उन्हें **आलम्बन विभाव** कहते है। जैसे श्रृंगार रस में नायक–नायिका तथा वीर रस में नायक – प्रतिनायक आदि।

आलम्बन विभाव दो भागों में विभक्त है – **विषय** और **आश्रय**

जिस पात्र के प्रति किसी के भाव जागृत होते हो, वह **विषय** कहलाता है। विषय का ही दूसरा नाम **आलम्बन** है। जिस पात्र में किसी के प्रति भाव जागृत होते है वह **आश्रय** कहलाता है। उक्त विषय एवं आश्रय मूलक प्रधान चरित्र काव्यादि में **आलम्बन विभाव** के नाम से जाने जाते है।

जैसे – सीता को देखकर राम के मन में और राम को देखकर सीता के मन में रति की उत्पत्ति होती है, और उन दोनों को देखकर सामाजिक के भीतर रस की अभिव्यक्ति होती है। इसलिये सीता राम आदि श्रृंगार रस के **आलम्बन विभाव** कहलाते है।

'आलम्बनोनायकादिस्तमालम्ब्यरसोद्गमात्'।[32]

- **उद्दीपनविभाव –**

रत्यादि स्थायीभावों को उद्दीप्त करके उनकी आस्वादन योग्यता को बढ़ाते हुये, उन्हें रस दशा तक पहुँचाने में सहायक विषय–वस्तु **उद्दीपन विभाव** कहलाते है। उद्दीपन का शाब्दिक अर्थ होता है, वह भाव, वह वस्तु, वह स्थान, जो रति–हास–शोक–उत्साह आदि को अतिजागृत करें, चित्त को उदीप्त करें, सुषुप्त भाव को प्रदीप्त करें, रस चर्वणा में चरमोत्कर्ष लाये आदि–आदि। उद्दीपनविभाव भी द्विधात्मक है, प्रथम आलम्बनगत चेष्टायें, द्वितीय बाह्य वातावरण। दोनों अद्वैत भाव से प्रमाता को उद्दीप्त करते है। चन्द्रिका, उद्यान, एकान्तस्थान, युद्ध का मैदान, शत्रुललकार, रणभेरी, धनुषटंकार, खड्ग की खनखनाहट आदि नायक–नायिका की रति को तथा पक्ष–विपक्ष के उत्साह को उदीप्त करने के कारण ये शास्त्रीय शब्दावली में **उद्दीपनविभाव** कहलाते है।

उद्दीपन विभावास्ते रसमुद्दीपयन्ति ये।
आलम्बनस्य चेष्टाद्या देशकालादयस्तथा।।[33]

(iii) अनुभाव –

'अनु पश्चात् भवन्ति इत्यनुभावाः' जो रसानुभूति के पश्चात् जायमान स्मितवदन–मधुर–कथन–भ्रूविक्षेप–कटाक्षादि–रोमहर्षण–शिरःकम्प–दीर्धनिश्वास–प्रकम्पितचरण –हृदयकम्पन आदि–आदि चेष्टाविशिष्ट भावों का अनुभव **अनुभाव** कहलाता है। लोक में जिसे कार्य कहते है, उसे काव्य में अनुभाव कहते है। जिनके द्वारा रत्यादि भावों का अनुभव होता है, जो रसानुभूति से उत्पन्न शारीरिक, मानसिक व्यापार के रुप में गम्य है वह

अनुभाव है। वास्तविक जीवन में जिन आंगिक वाचिक आदि चेष्टाओं से भीतर के जागे हुये भाव बाहर प्रकट होते है, उन्हें काव्य और नाट्य में **अनुभाव** कहते है।

जैसे – किसी नव युगल के चित्त में परस्पर प्रेम उत्पन्न होता है, तो वे एक–दूसरे को एकटक देखते है, पुनः चोरी–चोरी, चुपके–चुपके दृष्टिपात् कटाक्षाभिघात करते है, मुड़–मुड़ कर नयनाभिराम करते है, मुस्कुराते है, इठलाते है, कदाचित युवती आँखें झुका लेती है, मुख फेर लेती है, अंगूठे से धरती कुरेदने लगती है, आँचल एवं लटों को सम्भालने लगती है, प्रेम को छुपाने के लिये युवक से किंचित दूर जाने की चेष्टा करती है, परंच काचित् ब्याजवशात् रुक जाती है। एतावती चेष्टाजन्य भाव को कवि–कोविद् अनुभाव कहते है।

जैसे – अभिज्ञानशाकुन्तलम् में दुष्यन्त के प्रति प्रथम प्रणयानुभूति पश्चात् शकुन्तला की नयनचातुरी **"दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे"**[34] की चेष्टा का उपक्रम आदि, अनुभाव का प्रशस्त निदर्शन है। इस प्रकार अनुभाव दिल का राज खोल देता है।

'Face is the Index of mind'

'मुखाकृतिरेन व्यनक्ति भावान्'

अर्थात् चेहरा मन का अभिसूचक है। अनुभाव के ही भाव को हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि रहीम जी ने कहा है –

"खैर खून खाँसी खुशी, बैर प्रीति अभिमान।

रहिमन दाबे ना दबै, जानन सकल जहान।।

एक शायर ने इन्हीं अनुभावों के विषय में कुछ इस प्रकार कहा है –

कौन कहता है कि मुहब्बत के जुबाँ होती है।

ये वो हकीकत है, जो निगाहों से वयां होती है।।

इस अनुभव का लक्षण साहित्यदर्पणकार ने इस प्रकार दिया है –

उद्बुदं कारणैः स्वैः स्वैर्वहिर्भावं प्रकाशयन्।

लोके यः कार्यरुपः सोऽनुभावः काव्यनाट्ययोः।।[35]

सीता आदि आलम्बन तथा चन्द्रादि उद्दीपन कारणों से रामादि के हृदय में उद्बुद् रत्यादि को बाहर प्रकाशित करने वाला, लोक में जो रति का कार्य, अंगज, स्वभावज, सात्विक भाव तथा रत्यादि अन्य चेष्टायें अनुभाव कहलाती है।

भरत मुनि ने अनुभाव का लक्षण निम्नलिखित प्रकार किया है –

वांगाभिनयेनेह यतस्वर्थोऽनुभाव्यते।

शाखांगोपांग संयुक्तस्त्वनुभावस्ततः स्मृतः।।[36]

अर्थात् जो वाचिक या आगिंक अभिनय के द्वारा रत्यादि स्थायी भाव की आन्तर अभिव्यक्ति रुप अर्थ का बाह्य रुप में अनुभव कराता है। उसको अनुभाव कहते है। अनुभाव प्रत्येक रस में अलग–अलग होते है। वैसे अनुकार्य की दृष्टि से भी वे रसानुभूति के बाह्य प्रदर्शक होते है।

वस्तुतः अनुभाव आन्तर रसानुभूति की बाह्य अभिव्यंजना के साधन होते है और उसमें शारीरिक व्यापार की प्रधानता होती है। इसके द्वारा अनुकार्य राम आदि की रसानुभूति का अनुभव सामाजिकों को कराते है, इसलिये ये अनुभाव कहलाते है।

अनुभाव के चार रुप माने गये है –

1. आंगिक 2. वाचिक 3. आहार्य 4. सात्विक ।

1. आंगिक से तात्पर्य शरीर सम्बन्धी चेष्टायें है।

2. वाचिक से तात्पर्य वाग्व्यापार है।

3. आहार्य से तात्पर्य वेशभूषा, अलंकरण तथा साज–सज्जा है।

4. सात्विक से तात्पर्य : सत्व–रजोगुण–और तमोगुण से अस्पृष्ट के योग से स्वतः उत्पन्न कायिक चेष्टाएं है। इनकी संख्या आठ मानी गयी है – स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वर भंग, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय।

- **संचारीभाव (व्याभिचारी भाव)**

"विविधम् आभिमुख्येन रसेषु चरन्तीति व्यभिचारिणः"[37]

जो रसों में नाना रुप से विचरण करते है और रस को पुष्ट कर आस्वाद के योग्य बनाते है। उनको **व्यभिचारी भाव** कहते है।

संचारी शब्द का अर्थ है साथ–साथ चलना, संचरणशील होना, अस्थिर मनोविकार अथवा चित्तवृतियाँ संचारीभाव कहलाते है। ये प्रत्येक स्थायीभाव के साथ विशेष रुप से अभिमुख होकर उसके अनुकूल चलते है। ये शरीर के धर्म नही, मनोविकार है, जो जलतरंगवत् आविर्भूत तथा तिरोहित होते रहते है ये, वे सहंकारी कारण हैं जो रसावस्था तक साथ चलते है।

विशेषादाभिमुख्येन चरणा द्वयभिचारिणः।
स्थायिन्युन्मग्न निर्मग्नास्त्रिंशच्च तद्भिदाः।।[38]

संचारीभाव अनन्त है तथापि उनकी परिगणित संख्या तैंतीस है। निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, मद, श्रम, आलस्य, दीनता, चिन्ता, मोह, स्मृति, धृति, क्रीडाचापल्य, हर्ष,

आवेग, जड़ता, गर्व, विषाद, औत्सुक्य, निद्रा, अपस्मार, स्वपन, विबोध, अवमर्ध, अवहित्था, उग्रता, मति, व्याधि, उन्माद, मरण, त्रास और वितर्क।

आचार्य मम्मट ने काव्यप्रकाश में 33 व्यभिचारी भावों के नाम गिनाये है, किन्तु लक्षण नहीं बताये है। अग्निपुराण नाट्यशास्त्र, साहित्यदर्पण आदि ग्रन्थों में इसके लक्षण विस्तार से बताये गये है। अग्निपुराण में उनके नाम और क्रम में अन्तर पाया जाता है। वहाँ **शम** को व्यभिचारी भाव कहा गया है। किन्तु यह शान्त रस का स्थायी भाव भी है। इसी प्रकार काव्य प्रकाश में **निर्वेद** की व्यभिचारी भावों में भी गणना है और उसे शान्त रस का स्थायीभाव भी कहा गया है। इस प्रकार रस सहकारी अंग, संचरणशील भाव, विविध रसों में निरुपण करने के कारण **व्यभिचारीभाव** कहलाता है।

(घ) रस प्रकार विमर्श –

रस आस्वाद रुप में एक होने पर भी उपाधि भेद से मुख्यतः आठ प्रकार का है। नाट्यशास्त्र में द्रुहिण[39] नामक प्राचीन महात्मा के नाम पर आठ रसों का उल्लेख प्राप्त होता है। किन्तु नाट्य शास्त्र के एक संस्करण में शान्त रस को मिलाकर नवरस की प्रतिष्ठापना की गयी है।

श्रृंगार हास्य करुणरौद्रवीर भयानकः।।
वीभत्सादभुतं संज्ञौ चेत्यष्टौ नाटयेरसाःस्मृता।।[40]

यह कारिका मूल रुप से भरत मुनि के नाट्यशास्त्र की है, जिसे आचार्य मम्मट ने यथावत् स्वीकार किया है। प्रायः आचार्यो ने नाटक में श्रृंगार–हास्य–करुण–रौद्र–वीर–भयानक–वीभत्स तथा अद्भुत् नामक अष्ट संख्यात्मक रस को ही आत्मसात् किया है, परंच काव्यादि में शान्तरस की पृथक सत्ता स्वीकारते हुये नवरस की संकल्पना भी की है।

बड़ौदा से प्रकाशित **'अभिनव भारती'** व्याख्या से युक्त भरत नाट्यशास्त्र के द्वितीय संस्करण के सम्पादक श्रीराम शास्त्री शिरोमणि ने लिखा है, कि शान्तरस की स्थापना सबसे पहले भरत नाट्यशास्त्र के टीकाकार 'उद्भट्ट' ने अपने 'काव्यालंकारसंग्रह' नामक ग्रन्थ में की है। इसके बाद आनन्दवर्धन तथ अभिनव गुप्त ने उनका समर्थन किया है। आचार्य मम्मट और आचार्य विश्वनाथ भी शान्त रस के समर्थक है। राजानक मम्मट के अनुसार –

"निवेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमोरसः"[41]

आचार्य विश्वनाथ ने भी कुछ इसी प्रकार कहा है –

श्रृंगार हास्य करुण रौद्र वीर भयानकाः।
वीभत्सोद्भुत इत्यष्टौ रसाः शान्तस्तथामतः।।[42]

इस प्रकार दण्डी ने आठ रस, उद्भट ने नौ रस, रुद्रट ने प्रेयान् रस की अभिवृद्धि से दश रस, धनञ्जय ने काव्य में नौ रस तथा नाट्य में अष्ट (शान्त रस को छोड़कर) अभिनव गुप्त ने नौ, भोज ने नायकत्व के आधार पर प्रेयान्, शान्त, उदात्त एवं उद्धत चार रसों की, रामचन्द्र–गुणचन्द्र ने व्यसन, दुःख और सुख की गणना करते हुये इनका अन्तर्भाव नौ रसों में माना है।

आचार्य विश्वनाथ ने वत्सल रस को स्वीकार करते हुये रसों की संख्या दस मानी है। रुप गोस्वामी आदि कतिपय आचार्यो ने भक्ति रस की स्वंतत्र सत्ता स्वीकार की है किन्तु साहित्यदर्पणकार ने देवता विषयक रति मानकर **भाव** के अन्तर्गत ही इसका अन्तर्भाव किया है। इस प्रकार विभिन्न आचार्यों ने आठ से लेकर ग्यारह रस तक की संख्या स्वीकार की है। कुछ आचार्यों ने प्रधानता और अप्रधानता की दृष्टि से अलग–अलग मूल रसों की कल्पना की है। स्वयं भरत मुनि ने आठ रसों में से श्रृंगार, रौद्र, वीर तथा वीभत्स इन चार रसों की प्रधानता स्वीकार कर शेष चार रसों की उत्पत्ति उक्त चार रसों से ही मानी है।

काव्यकारों में **एक रस–वाद** की प्रवृति भी दृष्टिगोचर होती है, किसी एक ही रस को मूलरस मानने की प्रकृति साहित्यशास्त्र में पायी गयी जाती है।

1. महाकवि भवभूति ने – 'एकोरसः करुण एव निमित्तभेदात्'[43]
2. आचार्य भोज ने – 'श्रृंगार प्रकाश में **'श्रृंगार रस'** को ही मूलरस बताया है।
3. नारायणपण्डित ने – 'सर्वत्राप्यद्भुतोरसो' अद्भुत रस को ही मूलरस माना है।
4. अभिनव गुप्त ने – अभिनव भारती में **'शान्तरस'** को ही एक मात्र रस माना है।

एवं प्रकारेण संस्कृत काव्यशास्त्र में जहाँ रसों के विस्तार के प्रयत्नों के दर्शन होते है, वहाँ समाहार की चेष्टा भी मिलती है। श्रृंगार, करुण, अद्भुत, शान्त तथा भक्ति को एक मात्र रस मानने तथा अन्य रसों के उस रस विशेष में अन्तर्भाव करने के प्रयत्न उपलब्ध तो अवश्य है, परन्तु इस विस्तार और परिहार अथवा समाहार के प्रयत्नों को आदर प्राप्त नहीं हुआ।

(ङ) मित्ररस एवं अमित्ररस –

आचार्य आनन्दवर्धन मित्र एवं अमित्र रसों पर चर्चा करते हुये कहते है कि –

विवक्षिते रसे लब्धप्रतिष्ठे तु विरोधिनाम्।
बाध्यानामंग भावं वा प्राप्तानामुक्तिरच्छला।।[44]

अर्थात् विवक्षित रस के परिपुष्ट हो जाने पर बाध्य रुप अथवा अंगरुपता को प्राप्त विरोधियों का कथन दोषरहित होता है। विरुद्ध रसों के अंग भी प्रकृत रसों से अभिभूत

होकर उस रस के परिपोषक ही हो जाते है। प्रधान रस का अंगभाव को प्राप्त हो जाने पर तो विरोध ही समाप्त हो जाता है।

आचार्य मम्मट ने भी रसदोष पर प्रकाश डालते हुये, रस विरोध के अनेक कारणों में से एक विरोधी रस सम्बन्धी विभाव आदि का ग्रहण किया है।

परस्पर मित्र रसों में – शृंगार रस और हास्य रस
शृंगार अद्भूत् रस
करुण और शान्त रस
भयानक और वीभत्स रस–

उक्त रस परस्पर **मित्ररस** माने जाते है।

परस्पर अमित्र रसों में –

– **शृंगार** के विरोधी करुण, वीभत्स, रौद्र, वीर, भयानक तथा शान्त रस माने जाते है।
– **हास्य रस** के अमित्र रसों में भयानक और करुण रस माना गया है।
– **करुण रस** के विरोधियों में हास्य और शृंगार ।
– **रौद्र रस** के विरोधियों में हास्य और भयानक माना जाता है।
– **भयानक रस** के अमित्र रसों में शृंगार, वीर, रौद्र, हास्य, शान्त।
– **वीर रस** का अमित्र रस शान्त रस है।
– **शान्त रस** के विरोधी रसों में शृंगार, रौद्र भयानक और हास्य रस समाहित है।

आचार्य आनन्दवर्धन के अनुसार यदि विरोधीरस अंगी के बाह्य के रुप में वर्णित हो, तथा यदि विरोधी रस अंगी रस के अंग भाव को प्राप्त कर वर्णित हो, तो विरोधी रसों का परिहार सम्भव है। आचार्य मम्मट का मानना है, कि प्रकृत रस के विरोधीरस यदि बाह्य रुप में वर्णित हो तो वे **गुण** बन जाते है।

खण्डकाव्यों की रस विषयक शास्त्रीय अवधारणा –

प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रसवादी क्रान्तदर्शी आचार्यों ने काव्य के कमनीय कलेवर को कल्पित करते हुये, रस विषयक दृष्टिकोण पर विशेष बल दिया है। उन्होंने खण्डकाव्य एवं महाकाव्य में ध्वनि की स्थिति पर प्रकाश डालने का तथा उसकी महाकाव्य में अनिवार्यता व उपादेयता के विचार से कुछ भी नहीं कहा है। इसके मूल में सम्भवतः यह कारण रहा है, कि आचार्यों ने ध्वनि की अपेक्षा रस को अधिक महत्व दिया है। आनन्दवर्धन के ध्वनिसिद्धान्तों का विशदीकरण करने वाले ध्वन्यालोकलोचनकार तथा रस सम्प्रदाय के प्रवर्तक भरत मुनि के नाट्य सिद्धान्तों का गम्भीर दार्शनिक व्याख्या करने वाले

अभिनवभारतीकार अभिनवगुप्त ने दोनों ही सम्प्रदाय को अन्योनाश्रित मानते हुये, अनुभूति और कल्पना को बलाबल की कसौटी पर कसते हुये रस के प्रति आग्रह स्पष्ट किया है।

''तेन रस एव वस्तुतः आत्मा, वस्तु अलंकार ध्वनि तु सर्वथा रसं प्रति पर्यवस्येते इति''

भारतीय काव्यशास्त्र में रस–सिद्धान्त सर्वाधिक प्राचीन एवं प्रधान काव्य सिद्धान्त है। ध्वनि तथा औचित्यादि आत्मवादी सम्प्रदायों का रस सिद्धान्त के साथ प्रत्यक्ष एवं धनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण काव्य की आत्माध्वनि एवं ध्वनि की आत्मा रस को स्वीकार किया गया है। इसलिये ध्वनि और रस सिद्धान्त प्रायः एकाकार हो गये है। एतदर्थ काव्यशास्त्रीय चिन्तना में आत्मस्थानी अवधारणा में ध्वनि औचित्यादि अंतरंग तत्वों को रस में समाहित मान काव्यों में रस की अनिवार्यता को आत्मसात् किया गया है।

जहाँ तक खण्डकाव्यों में रस विषयक शास्त्रीय अवधारणा का प्रश्न उत्थापित होता है, वहाँ काव्यशास्त्र मौन है। महाकाव्य में रस निरुपण के प्रसंग में अंगांगी रसों का जो विधान किया गया है, उसी अंगांगी रसों से रसान्वित खण्डकाव्य भी माना जाता है। क्योंकि काव्य के समस्त भेद–उपभेदों में महाकाव्य के रस विषयक कतिपय लक्षण समाहित किये गये है। साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ भी इसी तथ्य को स्वीकार करते हुये कहते हैं कि –

''खण्डकाव्यं भवेत् काव्यस्यैकादेशानुसारि च''[45]

अर्थात् महाकाव्य के कतिपय लक्षणों से युक्त पद्य प्रबन्ध ही खण्डकाव्य कहलाता है। जिसमें एक घटना, एक विषय तथा एकदेशानुसारि वर्णन होता है। उदाहरण स्वरुप रस सिद्ध कवि की रसमयी रचना मेघदूत को लिया जा सकता है, जिसमें एक देशानुसारि वर्णन के साथ महाकाव्य के रस विषयक प्रायः कतिपय किं वा समस्त लक्षण विद्यमान है। जो महाकाव्य के सन्दर्भ में निर्दिष्ट अंगी रसों में से एक शृंगार रस के प्रवाह को प्रवाहित करने वाला खण्डकाव्य है। महाकवि कल्पनाशीलता की व्यापकता को लिये हुये, मानवीय सर्वांगता के एक अंग, पक्ष या खण्ड से काव्य को कमनीय रमणीय बनाता है तो वह शास्त्रीय शब्दों में **खण्डकाव्य** कहलाता है। जो रसानुभूति से रसोदय तथा स्वानुभूति से आत्मानन्द को स्थापित करता है। खण्डकाव्यों में महाकाव्यों की भांति ही प्रमुख रसों में से किसी एक रस की प्रधानता होती है। जो पाठकों को ब्रह्मानन्द की पराकाष्ठा की ओर अग्रसर करती है। प्रासगिंक कवि पं. श्रीराम दवे रसवादी आधुनिक संस्कृत कवि है, जिन्होंने काव्यशास्त्रीय मान्यताओं के अनुसार रसों की सरस संयोजना की है। उनका खण्डकाव्य उनके हृदय की वैयक्तिक्ता अर्थात् उनके हास–अश्रु, सुख–दुःख के साथ–साथ उनके भावों की स्वाभाविकता से अभिराम है तथा हृदयरंजक भावाभिव्यंजक काव्य रसों से रसवान है। एतदर्थ उनके

खण्डकाव्यों में काव्यात्मस्थानीय तत्व रस की साहित्य शास्त्रीय समीक्षा शोध के लिये अभीष्ट है।

समीक्ष्य खण्डकाव्यों में रस –

खण्डकाव्य कविता–वनिता–हृदयहार महाकवि पं. श्रीराम दवे ने **एकादश मौलिक खण्डकाव्यों** का तथा **तीन अनूदित खण्डकाव्यों** का प्रणयन किया है, जिन्हें रस प्रधानता के आधार पर अधोलिखित प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. शृंगाररस प्रधान खण्डकाव्य –	1. सौन्दर्यलीलामृतम्
	2. वियोगशतकम्
	3. केलिभूकैतवम्
	4. मेघोपलम्भनम्
2. करुणरस प्रधान खण्डकाव्य –	1. कारुण्यकादम्बिनी
	2. कामधेनुशतकम्
3. भक्तिरस प्रधान काव्यम् –	1. ललितालहरी
	2. अपांगलीला
	3. भारती विलास
4. वीररस प्रधान काव्यम् –	1. परिखायुद्धम्
5. अद्भुतरस प्रधान काव्यम् –	1. कालकौतुकम्
6. अनूदित काव्य – भक्तिरस प्रधान –	1. ब्रह्मरसायनम्
	2. अकिंचनचैत्यम्
– शृंगार प्रधान –	1. यवनीनवनीतम्

जिसमें रस संयोजन के साहित्यशास्त्रीय प्रतिमानों को स्वीकार किया गया है। आधुनिक युग् की आधुनिकी व्यथा को सहृदय–संवेद्य कथा में समाहित करते हुये रसासिक्त पद्यबन्धों में सहज भाव से सृजित खण्डकाव्यों में प्रधान रसों के संयोजन का निर्दशन प्राप्त होता है। तदर्थ आलोच्य काव्य ग्रन्थों की रसविषयक समीक्षा के आलोक में समीक्षा प्रस्तुत है –

1. शृंगाररस –

शृंगार शब्द **'ऋ'** गतौ धातु से निष्पन्न हुआ है। 'शृंगं प्राधान्यं इयर्ति इति शृंगारः' शृंग अर्थात् कूट भावना के उच्च शिखर पर पहुँचने वाला **शृंगाररस** कहलाता है।

'शृंगे प्रभुत्वे शिखिरे चिन्हे क्रीडाम्बु यन्त्रकैः'[46]

श्रृंगार रस को अनेकों आचार्यों ने परिभाषित किया है जो प्रसंगानुसार दृष्टव्य है –

'स्त्रीपुंसयोर्मिथोरागः वृद्धि श्रृंगार उच्यते'[47]

साहित्य दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ के अनुसार कामदेव का उद्भेद **श्रृंग** कहलाता है। उसके आगमन का कारण श्रृंगाररस प्रायः उत्तम प्रकृति वाले कथापात्रों में होता है। इस श्रृंगार में परकीया तथा अनुराग शून्या वेश्या को छोड़कर अन्य सभी नायिकाऐं तथा दक्षिण, अनुकूल, धृष्ट तथा शठादि नायक आलम्बन विभाव होते है। चन्द्रमा, चन्दन और भ्रमर की झंकारादि को **'उद्दीपनविभाव'** माना गया है। नायक–नायिका के कटाक्षादि 'अनुभाव' कहे गये है। उग्रता, मरण, आलस्य और जुगुप्सा को छोड़कर अन्य सभी निर्वेदादि भाव **'व्याभिचारीभाव'** होते है। रति स्थायीभाव है। यह रस श्यामवर्ण वाला, विष्णु देवता वाला कहा गया है।

श्रृंग हि मन्मथोदभेदस्तदा गमन हेतुकः,
उत्तम प्रकृति प्रायो रसः श्रृंगार इष्यते।
परोठा वर्जयित्वा तु वेश्यां चानुरागिणीम्,
आलम्बनं नायिकाः स्युदक्षिणाद्याश्च नायकाः।।
चन्द्रचन्दनरोलम्बरुताद्युद्दीपनं मतम्,
भ्रूविक्षेप कटाक्षादिरनुभावः प्रकीर्तितः।
त्यक्त्वौग्र्यमरणालस्य जुगुप्साव्यभिचारिणः,
स्थायिभावोरतिः श्यामवर्णोऽयं विष्णुदैवतः।। [48]

आचार्य धनंजय के अनुसार परस्पर अनुरक्त नायक–नायिका के हृदय में रम्यदेश, काल, कला, उपभोग आदि के सेवन द्वारा आत्मा की जो प्रमुदित अवस्था जागृत होती है, वह रति स्थायीभाव है और यही रति जब नायक–नायिकाओं के अंगों की मधुर चेष्टाओं द्वारा चर्वणा का विषय बनती है, तब श्रृंगाररस कहलाती है।

रम्यदेश कलाकाल वेश भोगादिसेवनैः,
प्रमोदात्मा रतिः सैव यूनोरन्योन्योरक्तयोः
प्रहृष्यमाणा श्रृंगारो मधुरांग विचेष्टितैः।।[49]

शारदातनय ने भाव प्रकाशन में कहा है कि श्रृंगार के लिये ललित भाव अपेक्षित होते है। उन्हीं में सुखानुबन्धी मानसविकार उदित होता है, जिसमें सत्व और रजस् दोनों का संस्पर्श होता है। यही सुखानुबंधी विकास श्रृंगार है और इसी का आस्वादन होता है –

विभावाललिताः सत्वानुभावव्यभिचारिभिः,
यदा स्थायिनी वर्तन्ते स्वीयाभिनय संश्रया।

तदा मनः प्रेक्षकाणां रजस्सत्वव्यपाश्रयि,

सुखानुबन्धी तत्रत्यो विकारो यः प्रवर्तते।

सः श्रृंगारः रसाभिख्या लभते रस्यते च तैः।।[50]

सिंह भूपाल के अनुसार – विभाव, अनुभाव, सात्विक भाव, और संचारी भावों द्वारा सामाजिकों के हृदय में रस्यमानता को प्राप्त रति ही श्रृंगार है।

विभावैरनुभावैश्च सात्विकैः व्यभिचारिभिः।

आनीयमाना स्वाद्यत्वं रतिः श्रृंगारः उच्यते।।[51]

भानुदत्त के अनुसार – युवक–युवतियों के परस्पर परिपूर्ण प्रमोद को प्राप्त रतिभाव ही श्रृंगार है।

यूनौ परस्परं परिपूर्णः प्रमोदः सम्यग् पूर्ण रति भावो वा श्रृंगारः।[52]

रति की छः उत्तरोत्तर विकासावस्था मानी गयी है।

1. प्रेम
2. मान
3. प्रणय
4. स्नेह
5. राग
6. अनुराग

रति का ही उत्तरोत्तर यह विकास 'श्रृंग' शब्द का निर्देश है और इसी श्रृंग अथवा उत्तरोत्तर विकसित रतिभाव का अभिव्यंगय सम्पूर्ण स्वरुप श्रृंगार रस है।

भाव प्रकाशन के अनुसार रति अथवा स्त्री पुरुष का परस्पर स्वसंवेद्य ही श्रृंगार रुप में आस्वादित हुआ करता है।

परस्पर स्वसंवेद्य सुख सम्वेदनात्मिका।

याऽनूभूतिर्मिथः सैव रतिर्यूनौः सरागयोः।।[53]

इस प्रकार कामी जनों के हृदय में रति आदि स्थायीभाव रसावस्था को प्राप्त होकर काम की वृद्धि करता है, इसी कारण से इसका नाम श्रृंगार है। श्रृंगार रस को काव्याचार्यों ने सर्वोपरि स्थान दिया है। अग्निपुराण में अन्य सभी रसों का श्रृंगार से ही प्रादुर्भाव माना है।

व्यभिचार्यादिसामान्यछृंगार इति गीयते।

तद्भेदाः कामतिमिरे हास्याद्याः अप्यनेकशः।।[54]

ध्वनिकार ने भी कहा है –

शृंगार रसो हि संसारिणां नियमेनानुभव विषयत्वात् सर्व रसेभ्यः कमनीयता प्रधानभूतः।[55]

महाराज भोज ने शृंगार **को ही एक मात्र रस** स्वीकार किया है :

'वयंतु शृंगार मेव रसनाद् रसनाम् नाम'[56]

शृंगार की महिमा का हिन्दी के रीति काव्य में और भी विस्तार हुआ है – केशव, चिन्तामणि, देव आदि आचार्य कवियों ने मुक्तकण्ठ से शृंगार को रस राज घोषित किया है। केशव और देव ने प्रधान रस के अतिरिक्त मूल एवं एकमात्र रस के रुप में भी इसकी साग्रह प्रतिष्ठा की है।

सबको केशवदास हरिनायक है शृंगारः।[57]

वस्तुतः भारतीय काव्य–नाट्य में वर्णित उत्तमप्रकृति के परस्परानुरक्त नायक–नायिकाओं की अनुराग मयी चेष्टाओं का साक्षात्कार करने से सामाजिकों का जो रतिभाव उद्‌बुद होकर आनन्दात्मक अनुभूति में परिणत हो जाता है। वह रसराज **शृंगाररस** कहलाता है। यह रस सहृदय श्रोता एवं काव्यरस–पिपासु–पाठकों को सर्वाधिक प्रभावित करता है तथा ब्रह्मानन्द सहोदर अनुभूति कराने वाला सहज किन्तु सशक्त रस होता है। काव्यकारों ने इस रस को अंगीरस के रुप स्वीकार किया है।

समीक्ष्य कवि पं. श्रीराम दवे ने भी अपने खण्डकाव्यों में इस रस को आत्मस्थानी स्थान दिया है। जिस प्रकार महाकवि कालिदास ने अपनी कालजयी खण्डकाव्यकृति **'मेघदूतम्'** में शृंगार की स्वपनिल शय्या सजायी है, तद्‌वत् कवि श्रीदवे ने भी अपने 'वियोगशतकम्' आदि खण्डकाव्य में शृंगार रस का चूडान्त निदर्शन किया है।

शृंगार रस के भेद–उपभेद –

रसराज 'शृंगार' को काव्यकोविद–काव्याचार्यों ने दो भागों में विभक्त किया है।

1. **सम्भोग शृंगार या संयोग शृंगार।**
2. **विप्रलम्भ शृंगार या वियोग शृंगार।**

आचार्य मम्मटानुसार – ''तत्र शृंगारस्य द्वौ भेदौ सम्भोगो विप्रलम्भश्च[58]

आचार्य विश्वनाथानुसार – विप्रलम्भोऽथ संभोग इत्येष द्विविधो मतः[59]

आचार्य जगन्नाथानुसार – तत्र शृंगारो द्विविधः संयोगो विप्रलम्भश्च' [60]

आचार्य भरत ने शृंगाररस के दो भेद अवस्थाओं के अनुसार किये है, किन्तु इन्हें भरत ने भेद न कहकर 'अधिष्ठान' कहा है और आचार्य अभिनव ने इसका स्पष्टीकरण करते हुये कहा है कि **'शृंगार रुप से अधिष्ठित होती है,** इसलिये गोत्व के 'शावलेयत्व'

(दुरंगापन) और बाहुलेयत्व (बहुरंगापन) के समान ये दोनों शृंगार रस के भेद नहीं है, अपितु उन दोनों दशाओं को समान रुप से विद्यमान जो आस्वादात्मक रति है, उसका आस्वद्यमान रुप शृंगार रस होता है।[61]

पुनः भरत ने अभिनय की दृष्टि से शृंगार के तीन भेद किये है –

1. वचनात्मक 2. वेषात्मक 3. क्रियात्मक[62]

तथा – पुरुषार्थ की दृष्टि से भी तीन भेद किये है –

1. धर्म शृंगार 2. अर्थ शृंगार 3. काम शृंगार [63]

किन्तु उक्त भेद मान्य नहीं होने के कारण लुप्तप्राय हो गया, जिसका उल्लेख नाट्यदर्पण और शृंगार प्रकाश में किया गया है।[64]

इस प्रकार प्रथम दो अधिष्ठान ही शृंगार भेद के रुप प्रचलित हुये। भरत के बाद रुद्रट ने संभोग और विप्रलम्भ को यथावत स्वीकार किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने शृंगार के दो और भेद किये है –

1. प्रच्छन्न 2. प्रकाश ।

जिसका अनुसरण भोज ने भी किया है। धनंजय ने मूल भेदों में थोड़ा–सा परिवर्तन करते हुए दो के स्थान पर तीन भेदों की उद्भावना की है।

1. अयोग 2. विप्रयोग 3. सम्भोग ।

इस प्रकार प्रामाणिक काव्याचार्यों ने शृंगाररस के भेद–उपभेदों की चिन्तना प्रस्तुत की है। आचार्य भरत से लेकर आचार्य विश्वेश्वर तक के सभी लक्षणकारों ने शृंगाररस के प्रमुख भेदों का सांगोपंग निरुपण अवश्य किया है।

जिसका दिग्दर्शन महाकवियों के महाकाव्य–खण्डकाव्य तथा नाटक आदि में सहजता से होता है। समीक्ष्य महाकवि पं. श्रीराम दवे के खण्डकाव्यों में भी शृंगार के भेदोपभेद के उदाहरण प्रत्यक्ष होते है। अतः प्रमुख भेदों का विवेचन साहित्य शास्त्रानुसार प्रस्तुत है।

1. सम्भोगशृंगार –

'सम्' उपसर्ग पूर्वक पालनार्थक कौटिल्यार्थक, अभ्यवहारार्थक (भोजनार्थक),

अनुभावार्थक 'भुज्' धातु से धञ् प्रत्यय करने पर सम्भोग शब्द निष्पन्न होता है। तात्पर्य यह है कि, प्रेमी–प्रेमिका के हृदय में उत्पन्न रतिभाव का परिपालन, प्रेम की कुटिल चाल में प्रेमी–प्रेमिका का पारस्परिक प्रेम भोग, प्रेमी–प्रेमिका का उत्कण्ठापूर्वक रति सुखलाभ और प्रेमी–प्रेमिका का निर्द्वन्द–प्रेमानन्दानुभव ये चारों विशेषतायें **'सम्भोग'** की उत्तरोत्तर विकासावस्थायें है। सम्भोग के 'पूर्वरागान्तर', 'मानानन्तर' और 'करुणानन्तर' प्रकार क्रमशः

इन्हीं चारों विशेषताओं के उत्तरोत्तर स्वरुप का विकास है। पूर्वराग विप्रलम्भ के बाद का सम्भोग 'संक्षिप्त' मान विप्रलम्भ के बाद का सम्भोग **'संकीर्ण'** प्रवास विप्रलम्भ के बाद का सम्भोग **'सम्पूर्ण'** और **'करुण'** विप्रलम्भ के बाद का सम्भोग **'समृद्ध'** हुआ करता है। इस प्रकार रति सुख के अनुभव की संक्षिप्ता, संकीर्णता, सम्पूर्णता और समृद्धि ही वस्तुतः सम्भोग के चतुर्विध प्रकारों का नियामक तत्व है। जैसाकि सरस्वती कण्ठा भरणकार ने कहा है–

भुजिः पालन कौटिल्याभ्यवहारानुभूतिषु।
भुनक्ति भुग्नो भुक्तेऽन्नं भुक्तेसुखमितीष्यते।।
समीचानार्थ संपूर्णात्ततो घञ् प्रत्यये सति।
भावे वा कारके वापि रुपं सम्भोग इष्यते।।
स संक्षिप्तोऽथ संकीर्णः सम्पूर्णः सस्यगृद्धिमान्
अनन्तरोपदिष्टेषु सम्भोगेषूपपद्यते।।[65]

साहित्यदर्पणकार का कथन है कि 'जहाँ एक दूसरे के प्रेम में अनुरक्त विलासी नायक–नायिका परस्पर दर्शन, स्पर्शन अधरपान, परिचुम्बन, आलिंगन आदि का सेवन करते है वह संयोग शृंगार है।

दर्शन स्पर्शनादीनि निषेवते विलासिनौ।
यत्रानुरक्तावन्योन्यं संभोगोऽयमुदाहृतः।।[66]

उनकी दृष्टि में सम्भोगशृंगार के भेद–प्रभेदों की गणना नहीं की जा सकती है। देश, काल, परस्परावलोकन, आलिंगन, अधरपान, परिचुम्बन आदि के कारण सम्भोग के अनन्त भेद हो सकते है। इसलिये कवि–कोविदों ने यह माना है कि इस शृंगार प्रकार का एक ही रुप है, और वह है **संभोगशृंगार।**

संख्यातुमशक्यतया चुम्बन परिरम्भनादि बहुभेदात्।
अयमेक एव धीरैः कथितः संभोग शृंगारः।।[67]

फिर भी आचार्य विश्वनाथ ने सामान्यतः संभोगशृंगार के चार भेदों का वर्णन किया है।

''कथितश्चतुर्विधोऽसावानन्तर्यातुपूर्वरागादेः''[68]

1. पूर्वरागान्तर संयोग।
2. मानान्तर संयोग ।
3. प्रवासान्तर संयोग।
4. करुण विप्रलम्भान्तर संयोग।

उसका यह भी मत है कि विप्रलम्भ के अभाव में संयोगशृंगार **चर्वणा** का विषय नहीं होता है।

''न विना विप्रलम्भेन संयोगः पुष्टिमश्नुते''[69]

काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट का मत भी विश्वनाथ के मत का समर्थक है –

''तत्र शृंगार रसस्य द्वौ भेदौ, सम्भोगो विप्रलम्भश्च। तत्राद्यः परस्परावलोकनालिंगनाधरपान–परिचुम्बनाद्यन्त भेदत्वात् परिच्छेद्य इत्येक एक गण्यते''[70]

रसगंगाधरकार पण्डितराज जगन्नाथानुसार –

'रतेः संयोगाकालवछिन्ने प्रथमः'

अर्थात् जब स्त्री पुरुषों के संयोग काल में रति उपभुक्त होती रहती है, तब संयोग शृंगार होता है। इस प्रकार नायक–नायिका के परस्पर अवलोकनादि से रति सुख की अनुभूति जन्य अलौकिक चिन्मयानन्द संयोग शृंगार रस कहलाता है। न केवल मनुष्य जाति में अपितु सभी जातियों में मुख्य प्रवृति के रुप में रति या काम पाया जाता है और सबको उसके प्रति आकर्षण होता है, इसलिये इसे प्रथम स्थान दिया गया है। यह सापेक्ष आशामय रस है, क्योंकि यहाँ नायक–नायिका का मिलन होता है तथा दोनों को एक–दूसरे की अपेक्षा रहती है।

2. विप्रलम्भश्रृंगार –

शृंगार रस का द्वितीय किन्तु प्रमुख भेद विप्रलम्भ या वियोग शृंगार है। वियोग शब्द की व्युत्पति **''विगता योग वियोगः''** अर्थात् मिलन का अभाव, जहाँ अनुराग तो अत्यन्त उत्कट हो किन्तु प्रिय समागम न होता हो वहाँ **विप्रलम्भ** या **वियोगश्रृंगार** होता है। काव्यानुशासनकार ने **विप्रलम्भ** की निरुक्ति इस प्रकार की है –

'संभोग सुखास्वादलोभेन विशेषेण प्रलभ्यते आत्माऽत्रेति विप्रलम्भः''[71]

अर्थात् नायक–नायिका के परस्परानुराग में मिलन–नैराश्य ही विप्रलम्भ है। विप्रलम्भ का अर्थ होता है – संभोगसुख के आस्वाद से नायक–नायिका का विशेष रुप से वंचित रहना। भोज ने विप्रलम्भ की परिभाषा देते हुये कहा है कि, ''जहाँ **रति** नामक **भाव** प्रकर्ष को प्राप्त कर लें परन्तु अभीष्ट को प्राप्त न कर सकें, वहाँ विप्रलम्भ होता है।

भावोदया रतिर्नाम प्रकर्षमधिगच्छति।
नाधिगच्छति चाभीष्टं विप्रलम्भस्तदोच्यते।।[72]

आचार्य विश्वनाथ के मतानुसार –

जहाँ नायक–नायिका की रति तो प्रगाढ़ होती है किन्तु परस्पर मिलन नहीं हो पाता, वहाँ **विप्रलम्भ** होता है।

यत्र तु रतिः प्रकृष्टाः नाभीष्टमुपैति विप्रलम्भोऽसौ।
स च पूर्वरागमानप्रवास करुणात्मकश्चतुर्धास्यात्।।[73]

विप्रलम्भ श्रृंगार भी चार प्रकार का हुआ करता है –

1. पूर्वराग विप्रलम्भ
2. मान विप्रलम्भ
3. प्रवास विप्रलम्भ
4. करुण विप्रलम्भ

'भोज' तथा 'रुद्रट' ने भी उक्त चार भेदों को ही स्वीकार किया है। मम्मट ने विप्रलम्भ के पाँच प्रकार बताये है –

1. अभिलाषाहेतुक
2. विरहहेतुक
3. ईष्याहेतुक
4. प्रवासहेतुक
5. शापहेतुक।

"अपरस्तु अभिलाष विरहेर्ष्याप्रवास शाप हेतुक इति पंचविधः"[74]

इसमें विरहहेतुक नया उपभेद है। अभिलाषाहेतुक पूर्वराग है। ईष्याहेतुक मान है, शापहेतुक को कुछ ने करुण में तो कुछ ने प्रवास के अन्तर्गत माना है। आचार्य हेमचन्द्र ने करुण विप्रलम्भ को करुण ही माना है, श्रृंगार का भेद नहीं, जबकी उनके परमशिष्य रामचन्द्र ने मम्मट के पाँचों भेदों को यथावत स्वीकार किया है। साहित्य दर्पणकार ने विप्रलम्भ के भेदों को कुछ विस्तार देते हुये पूर्वराग के भी तीन उपभेद किये है –

1. नीली पूर्वराग।
2. कुशुम्भपूर्वराग।
3. मंजिष्ठा पूर्वराग।

इस प्रकार विभिन्न काव्याचार्यों ने स्वप्रतिभाबलात् विप्रलम्भ श्रृंगार के उपभेदों को कल्पित करते हुए साहित्यशास्त्र को समृद्ध किया है।

समीक्ष्य काव्य में श्रृंगार रस –

कवि पं. श्रीराम दवे मूलतः श्रृंगाररस के कवि है। उनका काव्य सह्रदय श्रोता और पाठकों को सर्वाधिक प्रभावित करता है। इसलिए ब्रह्मानन्द सहोदर की अनुभूति कराने वाले **श्रृंगाररस** का सशक्त रुप इनके काव्यों में देखा जा सकता है।

"श्रृंगारवीरशान्तानामेकोंऽगी रस इष्यते"।[75]

काव्य–शास्त्रीय परम्परा का निर्वहण करते हुये कवि ने शृंगार रस से अनुप्राणित कतिपय खण्डकाव्यों का प्रणयन किया है, जिन्हें शृंगार प्रधान खण्डकाव्य के नाम से अभिहति किया जा सकता है।

(i) शृंगार प्रधान खण्डकाव्य –

शृंगार प्रधान खण्डकाव्य के अन्तर्गत प्रमुख रुप से अधोलिखित चार खण्डकाव्य आते है –

- सौन्दर्यलीलामृतम्।
- वियोगशतकम्।
- केलिभूकैतवम्।
- मेघोपालम्भनम्।

जिनकी ग्रन्थाधारित समीक्षा प्रस्तुत है।

- **''सौन्दर्यलीलामृतम्''** –

'सुन्दुं राति इति सुन्दरं तस्य भावः सौन्दर्यम्'

सौन्दर्य ईश्वरप्रदत्त एक अनुपम अलंकरण है, जिसे देख दृष्टा अपूर्व आनन्दानुभव करता है। गोचर सौन्दर्य अपने मूल रुप में परब्रह्म के अखण्डसौन्दर्य का ही सहोदर है, वह आत्मनिष्ठ होता है, उसकी अनुभूति मानसिक और आनन्ददायी होती है। यही आनन्द सहृदयों के हृदय में जब रस का रुप धारण कर लेता है, तो रसराज शृंगार के नाम से जाना जाता है।

शृंगार रस से शृंगारित कवि की कमनीय कृति **'सौन्दर्यलीलामृतं'** है। जिसके अन्तर्गत मोहमयी नगरी (मुम्बई) की चारु चौपाटी पर ललित–लावण्य–वैभवा ललनाओं की सौन्दर्यलीला तथा सौन्दर्यान्वेषी युवकों की उत्कण्ठा परक क्रिया–कलापों का सुन्दर चित्रण है। यह कृति कवि की प्रथम कृति है, जिसकी रचना उन्होंने 1949 में बम्बई में रहते हुये की थी।

युवा कवि अपने समवयस्क मित्रों के साथ सायंकालीन भ्रमण के निमित्त समुद्रतट स्थित **'चौपाटी'** पर जाया करते थे, जहाँ भिन्न–भिन्न प्रान्तों एवं देशों के युवक–युवतियाँ उनमुक्त भाव से अभिसार किया करते थे। कवि के एक मित्र रसिक प्रवृत्ति के थे, जो वहाँ के दृश्यों को रसिक भाव से देखा करते थे और अपने मनोभावों को कवि से साझा करते थे। कविहृदय पं. दवे ने वहाँ के मनोरम दृश्यों को उनकी आधुनिकता को तथा कुत्सित सौन्दर्य भावना को कल्पना के साथ संयुक्त कर काव्यबद्ध कर दिया। सौन्दर्यविभावना, सौन्दर्यलीला, मौनामृतम्, अभिसारिका, विवशाःविरहिणः, वैराग्यसंवेदना उक्त छः भागों में

विभक्त 143 श्लोकात्मक इस खण्डकाव्य में श्रृंगार रस के दोनों पक्षों का मनोहारी चित्रण प्राप्त होता है।

सौन्दर्य के उपासक कवि ने उस सौन्दर्यस्थली को विश्वसुन्दरी प्रतियोगितास्थल उद्भावित करते हुये, भ्रमणार्थ आये हुये आगन्तुकों को सौन्दर्य की खोज में उत्कण्ठित व्यक्ति के रुप में वर्णित किया है। वहीं नारी नरव–शिख सौन्दर्य का चित्र उपस्थापित करते हुये उनकी भाव भंगिमा का ऐसा दृश्य दिखाया है, मानो युवक संसर्गाभिलाषी कोई चपला समुद्रतट पर भ्रमणमान युवकों को तृषित नेत्रों से निहार रही हो। इन वर्णनों में श्रृंगार रस की उत्तम अभिव्यक्ति हो रही है।

काचिद् वै प्रेम वार्ताऽध्ययन रतिकथोद्दीपिता नंगभावा,
तारुणोन्मत्तचिता युवक जन रसोत्कण्ठिता चंचलांगी।
हस्ताभ्यां वीजयन्ती कठिन कुचयुगं सान्त्वयन्तीव मारम्।
तीरस्थान यूना एषा स्मर तृषितदृशा वीक्षते वैजयन्ती।।[76]

सान्ध्यवेला में प्रेम कथाओं के अध्ययन से कामोद्दीप्त हुयी यौवन से उन्मत्त मतिवाली, युवक–संसर्गतृषिता कोई चपलता युवती हाथ पंखे से कठिन स्तनयुगल की उष्णता को शान्त करती हुई सी अपनी प्रदीप्त स्मराग्नि को मानो पुनः प्रज्ज्वलित करती हुयी सी इस समुद्र तट पर भ्रमण कर रही है और यहाँ पर टहलते हुये युवकों को तृषित नयनों से निहार रही है।

यहाँ नायक–नायिका विषयक रति 'स्थायीभाव' है, कश्चिद् युवती आलम्बन विभाव है। समुद्र तट का उन्मत्त वातावरण **'उद्दीपनविभाव'** है। हाथों से हवा करती हुयी, स्तनयुगल की उष्णता को शान्त करने की चेष्टाविशेष द्वारा तृषित नयनों से युवकों को निहारना **अनुभाव** है।

औत्सुक्य, तृषा आदि संचारीभाव है। इस प्रकार उक्त श्लोक में **विभावानुभाव संचारी** के संयोग से सहृदयों के हृदय में स्थित भाव की अनुरागात्मक परिणिती रुप **श्रृंगाररस** है।

दृष्ट्वाऽभीष्टं सहचर वरं लग्नमन्यप्रसंगे,
काचित तन्वी गमन मतिका दूरमेकान्त देशम्।
कृत्वा किंचिन्मिषमिह दृशा दत्त संकेत भावा,
यूना सार्धं व्रजतिमिषतो वंचयन्ती वयस्यान्।।[77]

कवि ने सौन्दर्यलीला में लग्न ललना की अन्तर्दशाओं को सूक्ष्मता से प्रतिपादन करते हुये, तरुणी का अपने अभीष्ट तरुण के साथ एकान्त में मिलने की उत्कण्ठा लिए,

कोई बहाना बनाकर अपने साथ चल रहे साथियों को वंचिका देकर, संकेतानुसार चलते हुये इष्टप्राप्ति हेतु अभीष्टमित्र के साथ हो जाती है। यहाँ अभीष्ट तरुण समागम की अभिलाषा से नायिका के हृदय में **'रतिभाव'** का बीज अंकुरित होता है। साहचर्य पाकर नायक भी अनुरक्त होता है। एकान्त स्थान दोनों को उद्दीप्त करता है, अनुगमन आदि चेष्टा तथा उत्कण्ठा, हर्ष के द्वारा संयोग को पुष्ट करता है।

काव्य परम्परा में प्रचलित नख–शिख आदि वर्णन के साथ ही श्रृंगार रस को उद्दीप्त करने वाले नयन, नाभि, त्रिवलि, उरज आदि अंग–प्रत्यंगों का वर्णन प्राप्त होता है, किन्तु आधुनिक संस्कृत साहित्य के कवि पं. दवे ने **"सौन्दर्यलीलामृतम्"** में आधुनिक परिधान, सज्जोसामान से सुसज्जित अंग प्रत्यंगों का झलक दिखाते हुये श्रृंगार रस की अनेक अवस्थाओं का सुरम्य उद्घाटन किया है जो अधोलिखित श्लोकों में दृष्ट्व्य है –

मंजिष्ठरागांचित हस्तिदन्त खणच्लत्सद् वलयाभिरामा।
स्वर्णांगदा भासित बाहुसन्धिः नग्नोदरा याति च कान्त मग्ना।।[78]
सूक्ष्मावगुण्ठोल्लसदम्बुजाक्षी, स्मितोलसद्दाडिमबीजदन्ता।
कांची क्वणन्तीषति कापि कान्ता, रसालवक्षोजभराव नम्रा।।[79]
मदोन्मदायाः कमलाननायाः, गौरे कपोलेऽस्ति च दारुचिन्हम्।
घनालकैः संवृत चारुवक्त्रम्, तिरस्करोतीन्दुमिवाभ्रवृत्तम्।।[80]
स्मराजिराच्छादन मात्र कच्छा, स्तनोद्धति स्तम्भनबद्धवेष्टा।
असंवृतांगैः सलिलं धुनन्ती, सोद्वेलयत्यम्बुधि धैर्यबन्धम्।।[81]

अर्थात् नग्नोदरा नागरी अपने कान्त की स्मृति में मग्न होकर कमल–नेत्रों तथा दाडिम–दशनों से सुशोभित, रसाल स्तन भार में झुकी हुयी, तिल युक्त गौरकपोल एवं सघन बालों से आच्छादित कामिनी–कान्त अवलोकन, आलिगंन, उपभोगात्मक इष्टपूर्ति रुप संभोग श्रृंगार का मनोहारि वर्णन किया गया है। इस प्रकार सौन्दर्य की नगरी, सूर्य–चन्द्र मिलन की वेला, अभिनवयौवन, यौवनतरंग को झंकृत करने वाला समुद्र का तरल तट, चौपाटी की चटपटी चेष्टायें, कामोद्रेक, परस्पर दर्शन–स्पर्शन आदि की वर्णना द्वारा "जलकेलिवनविहार"[82] के अतिरिक्त चौपाटी–विहार की नवीन उद्भावना करते हुये वहाँ के क्रिया कलापों में सम्भोग श्रृंगार की सज्जा सुसज्जित कर कवि ने अपनी श्रैंगारिक शक्ति को प्रदर्शित किया है।

विप्रलम्भश्रृंगार –

सौन्दर्यलीलामृतम् के **'विवशाःविरहिणः'** भाग में विप्रलम्भ श्रृंगार का हृदयहारी वर्णन प्राप्त होता है। कोई प्यासा मधुप प्रिया के साथ पूर्व में घटित अपने प्रयण–प्रसगों को याद

करता हुआ विधाता को कोस रहा है, तो कोई प्रणय वंचिता कृशांगी अपने प्रणयी के सुदूर चले जाने पर खिन्न मन से पूर्व प्रणय–प्रसंगों का स्मरण करती हुयी अपने को ही अपने हृदय की पीड़ा सुना रही है।

काचित्तन्वी प्रणय सुभगे खण्डिते योग सूत्रे,
दूरंयाते प्रियतम जने संगमोत्सुक्यपूर्णान्।
प्रीत्युत्सेकान् हृदयजलधेर्वीचिभिर्भावयन्ती,
आत्मानं वै कथयति रुजं स्वात्मनो निश्वसन्ती।।[83]

करुण विप्रलम्भ की छटा प्रकट करते हुये, प्रिय दर्शन के सुखदायक क्षण पुनः इस जीवन आ पायेगें क्या ? क्या कभी उनकी मधुर ध्वनि सुनने का सौभाग्य प्राप्त हो सकेगा –

नीतास्ते बहवो मनोद्रवकरा धन्याः प्रतीक्षाक्षणाः,
येष्वन्तर्वहति स्म कापि मधुरा संवेदना वाहिनी।
दिष्ट्या ते तडिदास्थिरं समभवत् पुण्येन सद्दर्शनम्,
हा हा! तन्नहि जीवने सुखमहो भूयः समायास्यति।।[84]
त्वंजानासि यदा मदीय मखिलं वृत्तं तदोक्तेन किम्,
चित्ते मे विरहानलो ज्वलनयं प्राणा अमी व्याकुलाः।
नायातः प्रिय! बोधितोऽपि नु वरम् तत् साम्प्रतं कथ्यताम्,
सो धन्यो मम जीवने ननु कदा भूयः समायास्यति।।[85]

उक्त श्लोकों में उत्कृष्ट अनुराग होते हुये भी प्रिय समागम नहीं हो रहा है। नायिका पूर्वराग का स्मरण कर रही है। प्रेमाश्रु से सने मन की चिरसंचित संवेदना को सुनाने का अवसर तलाशते हुये विरहानल से संतप्त हो रही है। प्राण व्याकुल हो रहे है। मिलन की वेला पुनः जीवन में कब आयेगी।

''आश्वस्तं कुरुते न कोऽपि हृदयं मेधोपदेशामृतैः''[86]

आश्वासन भरे उपदेशों की प्रतीक्षा में कालयापन कर रही है। इस प्रकार श्रृंगार रस की दोनों अवस्थाओं का मनोरम वर्णन से सौन्दर्यलीलामृतम् ग्रन्थ का आत्मस्थानी भाव प्रकट होता है। अतः श्रृंगाररस को इस खण्डकाव्य का अंगी रस कह सकते हैं –

अंगरस के रुप में इसी खण्डकाव्य के अन्तिम सोपान **''वैराग्यसंवेदना''** में शान्त रसाप्लावित पद्यों की प्राप्ति होती है। जहाँ श्वेतवस्त्रधारी साधु समुद्र के गाम्भीर्य पर दृष्टि डाले हुये वैराग्य भाव के कारण भोग विलासत्मक स्वभाव वाले व्यक्तियों को तथा नवदीक्षित वृद्धों को ज्ञानोपदेश दे रहे है –

कश्चिच्चात्र सिताम्बरा वृततनुर्लूनालकः श्रावकः,
वर्षीयान् विपणाधिपोऽपि जलधेर्गाम्भीर्य मुद्भावयन्।
मत्वा भोग विलास सौख्य चलतां वैराज्य भाग्योदयात्,
पार्श्वस्थं नवदीक्षितं हि जरठं ज्ञानं दिशन् तिष्ठति।।[87]

यहाँ रागद्वेष से रहित शम चित्तवृत्ति वाला श्रावक भोगविलास के सुख को अस्थिर बताता हुआ वैराग्य भाव से शाश्वत सत्य का ज्ञानोपदेश दे रहा है। जो शान्तरस की प्रकृति को परिपुष्ट करता है। क्योंकि जिस वर्ण्यविषय में सुख न हो, न दुःख हो, न कोई चिन्ता हो, न राग हो, न द्वेष हो और न कोई इच्छा ही शेष हो उसे मुनीजन **शान्तरस** कहते है।

इसका स्थायी भाव **शम,** आश्रम उत्तम पात्र, वर्ण कुन्द पुष्पवत् तथा चन्द्रादिवत् शुक्ल और देवता भगवान् लक्ष्मीनारायण है। अनियतत्व, दुःखमयत्व आदि रुप से सम्पूर्ण संसार की असारता का ज्ञान अथवा परमात्म स्वरुप आलम्बन–विभाव, ऋषियों के आश्रम, पवित्र तीर्थ, रमणीय एकान्त वन तथा महात्माओं का संसर्ग आदि **उद्दीपनविभाव** होता है। रोमाञ्च आदि इसके अनुभाव होते है। निर्वेद–हर्ष–स्मरण–मति–प्राणियों पर दया आदि संचारी भाव होते है।

न यत्र दुःखं न सुखं न चिन्ता, न राग द्वेषो न च काचिदिच्छा।
रसः स शान्तः कथितो मुनीन्द्रैः, सर्वेषु भावेषु शम प्रधानः।

इस प्रकार कवि की इस प्रथम कृति में संयोग, वियोग और वैराग्य का समन्वय प्राप्त होता है।

- **वियोगशतकम् –**

पं. श्रीराम दवे की कृति वियोगशतकम् का अध्ययन महाकवि कालिदास की अमरकृति मेघदूतम् का स्मरण कराता है। मेघदूतम् और वियोगशतकम् में अत्यधिक साम्यता दृष्टिगोचर होती है। विद्वान लोग वियोगशतकम् को मेघदूतम् की अनुकृति कहते है। दोनों में छन्द मन्दाक्रान्ता तथा श्लाकों की संख्या 111 है। प्रतीक और प्रयोग तो मेघदूत के है ही, इसका मूल स्वर भी वही प्रिया वियोग जनित है। कवि को इस काव्य की प्रेरणा अपने समवयस्क मित्र श्री आंसूलाल संचेती को पत्नी के देहावसान जनित वियोग से व्यथित देखा तो उन्हें कवि कालिदास के मेघदूत में प्रिया–विरही यक्ष का स्मरण हो आया।

कश्चित् कान्ता विरह गुरुणा शोकतापेनतप्तः,
एकान्तस्थो निजसहचरी सेव्यमानालकायाम्।
काले–काले मधुर विषयान् संस्मरण पूर्वभुक्तान्,
दृष्ट्वा मेघान् वियति सहसा सोऽब्रवीन्मुग्धचेताः।।[88]

यहाँ **कश्चित्** वियोगी नायक, अपनी नायिका **'कान्ताविरहगुरुणा'** अर्धांगिणी के शोक ताप से सन्तप्त, अलका नामक निवास स्थान पर एकाकी बैठा पूर्वभुक्त मधुर विषयों का स्मरण करता हुआ, आकाश में उड़ते हुये मेघों को देखा और उन्हें देखते ही वह उन्मत्त की तरह कह उठा –

दृष्वा त्वां भो जलद! तडिता सार्धमाकाशः मार्गे,
प्रकीडन्तं वियति चपलाद्योतनाऽऽमोद भावैः।
उद्दीप्यन्ते मनसि विषया यौवनांकेनुभूताः,
दुःखायैव प्रभवतितरां वार्द्धके पूर्वभोगैः।।[89]

"हे जलद्! जब मैं तुम्हें आकाश में चमक–दमक वाली अपनी प्रेयसी बिजली के साथ क्रीड़ा करते हुये देखता हूँ, तो मेरे आतुर मन में यौवन काल में अनुभव किये हुये विषय उद्दीप्त हो उठते है। वस्तुतः इस वृद्धावस्था में पूर्वकाल के सुखद भोगों की स्मृति बड़ी दुःखदायी होती है। उक्त श्लोकों में पूर्वभुक्त मधुर विषयों का स्मरण, तथा उनके आतुर मन में प्रेयसी बिजली के साथ क्रीड़ा करते हुये मेघ को देख विषयों के प्रति उद्दीप्त होना किन्तु इष्ट की प्राप्ति न होना, वियोगश्रृंगार को अभिव्यक्त करता है।

आचार्य विश्वनाथ ने विप्रलम्भश्रृंगार के जिन चार भेदों का उल्लेख किया है, उनमें चतुर्थ भेद है – करुणविप्रलम्भ। प्रस्तुत काव्य में इसी करुणविप्रलम्भ का बहुधा प्रयोग किया गया है। करुणविप्रलम्भ में नायिका आलम्बनविभाव, विलासों का स्मरण, प्रणय, कोपादि उद्दीपनविभाव, इच्छापतन आदि अनुभाव तथा अभिलाषा, क्रतान्त के प्रति आसूयादि व्यभिचारीभाव होते है। इन सभी के द्वारा रति स्थायीभाव उद्भूत होकर करुण विप्रलम्भ रस के रुप में परिणत होता है। अपनी स्वामिनी के वियोग में पंजरस्थ मैना की विरह व्यथा का मार्मिक चित्रण करते हुये कहा है –

एषा स्निग्धा तवगृहसखी सारिका पंजरस्था,
जल्पानल्पैर्विवध विषयैस्त्वनमनो रंजयन्ती।
यातायां वै त्वयि दिवमितो दूयमाना वियोगे,
हा हा मौनं भजति रुदति प्रेक्ष्य मां खिन्नवक्त्रं।।[90]

हे प्रिये! इस वाटिका के पिंजरे में चुपचाप बैठी अपनी प्रियसखी सारिका को तो देखो। जो तुम्हारें सामने बहुत बोला करती थी तथा अनेक विषयों से तुम्हारा मन बहलाया करती थी। हाय! आज देखो इसकी क्या इसकी क्या दशा हो गयी है ? तुम्हारे चले जाने पर तुम्हारे वियोग में यह सदा दुःखी रहती है और अपना मुँह लटकाये मुझे देख देख कर चुपचाप रोती रहती है।

इसी प्रकार स्वामिनी के वियोग में श्वान–शावक की करुण दशा का चित्र पं. दवे ने इस प्रकार चित्रित किया है–

पश्यैनं हा शनुक बटुकं त्वत्प्रियोत्संगलुब्धम्,
अन्विष्यन्तं ललित गतिकां स्वादुभोज्य प्रदात्रीम्।
उद्यद्वक्त्रं व्यथित मनसा भूयशः क्रन्दमानम्,
शोकोद्विग्नं विरत भषितं वाटिका कोण संस्थम्।।[91]

स्वामिनी के वियोग में प्रकृति भी श्रीहीन एवं विरह वेदना से उद्विग्न दिखाई पड़ता है :

पादस्पर्शैस्तव मृदुतमैः संस्तुता वाटिकेयम्,
एतारम्याः कुसुम कालिका पालिताश्चातिप्रीत्या।
एतत् काम्यं विविध लतिका पुंजपूर्णनिकुंजम्,
शोकोद्विग्नं तुदति ह्रदयं मूर्च्छितं मे प्रकामम्।।[92]

प्रिया वियोग में व्याकुल मन के वैचित्र्य का वर्णन कवि ने सहज भाव से किया है। वियोगजन्य संलाप की पराकाष्ठा का उदाहरण प्रस्तुत करते हुये कहा है कि –

अस्तंयाता धृतिरपि ह्रदौ विच्युतोरागबोधः,
गीतिर्वीता श्रुतिसुखकरा नोत्सवास्ते ऋतुनाम्।
नाऽलंकारेऽप्यभिरुचिरतः शून्यता भाति गेहे,
हा! जातोऽहं विरस ह्रदयो निष्ठुरसत्वद्वियोगे।।[93]

हे प्रिये! तुम्हारी इस विरह पीड़ा में अब तो ह्रदय का धैर्य भी टूट गया है। रागबोध भी जा चुका है, गीतों में अब रुचि नहीं, ऋतूत्सव अच्छे नहीं लगते, शरीरालंकरण में आशक्ति नहीं रही । घर भी शून्य लगता है, तुम्हारे वियोग में अब तो ये ह्रदय भी निष्ठुर प्रतीत होता है। यहाँ करुण विप्रलम्भ की सद्य प्रतीति हो रही है। नायक अपने वियोग की व्यथा की तुलना कालिदास के विरही यक्ष, लैलामजनू एवं गालिव से करते हुये कहता है कि –

सम्प्रत्येव व्यथित ह्रदये यक्षपीड़ा प्रतीतिः,
ज्ञाता लैला–प्रणयि मजनोर्वेदना प्रेमबन्धाः।
भावा पूरे प्रणय जलधौ गालिबस्यापि काव्ये,
बुद्धोऽवाच्यो विरहजरुजा स्वाद एषोधुनैव।।[94]

विरही यक्ष की विरह व्यथा कैसी रही होगी। मजनू की प्रेम पीड़ा कैसी थी, मिर्जा गालिब की अवर्णनीय वेदना कैसी होगी, उसका अनुभव तो मुझे आज हो रहा है।

वस्तुतः विरही एव जानाति विरहीजनोव्यथा।

नायक–नायिका का स्वपन में मिलन की उत्कट अभिलाषा, कौतुक एवं पुनर्मिलन हेतु आश्वस्त होने का मार्मिक वर्णन कवि द्वारा प्रस्तुत किया गया है, जिसे करुण विप्रलम्भ का सर्वोत्तम उदाहरण कहा जा सकता है।

दिष्ट्यादृष्टा त्वमसिसुभगे! स्वप्न पत्न्पेऽद्यह्वधे,
आश्लेषोत्का हसित वदना देव लोकाप्तरुपा।
प्रक्रीडन्ती कुहक कुशला मीलनोन्मीलनाक्षम्,
आश्वस्तोऽहं त्वमसि निकषा ब्याजलीनेवमुग्धे।।[95]

"आश्वस्तोऽहं" त्वमसि निकषा" इत्यादि पंक्ति के द्वारा, तुम मुझसे दूर नहीं गयी हो, ब्याज लीलावशात् छिपने का बहाना कर रही हो, मैं पूर्णतः आश्वस्त हूँ की पुनर्मिलन होगा। यहाँ नायिका मदन कंवर के निधन के पश्चात् नायक आसूलाल दुःखी है, स्वपन में ही नहीं अपितु साक्षात् मिलन को भी आश्वस्त है। इसी अवस्था को साहित्य दपर्णकार ने करुण विप्रलम्भ कहा है।

यूनोरेकतरस्मिनगतवतिलोकान्तरं पुनर्लभ्ये।
विमनायते यदैकस्तदा भवेत् करुण विप्रलम्भाख्या।।[96]

नायिका के प्रणय विलासों का स्मरण नायक को उद्दीप्त कर देता है और उत्कण्ठादि संचारी भावों के द्वारा करुण विप्रलम्भ की मनोरम अनुभूति होने लगती है। जिसका दर्शन हमें काव्य के एक पद्य में इस प्रकार होता है।

रत्युत्कण्ठा चपलनयना त्वं हि सौभाग्य रात्रौ,
श्रृंगाराढ्या ललित वसना पुष्पशय्याधिरुढा।
बद्धे जानौ निहित चिबुका कुंचिता पद्मिनीव,
यत्नाज्जातोन्नमित वदनाम्भोज पीयूष वर्षा।।[97]

उक्त पद्य में नायक अपनी विवाहिता स्वकीया नायिका को स्वप्न में देखता हुआ कहता है कि, हे प्रिये! तुमने सौभाग्यरात्री में प्रिय समागम की उत्सुकता में मंजुल वस्त्रधारण की हुयी, पुष्पशय्या पर बैठी हुयी, चंचल नेत्रों से इतस्ततः देखती हुयी, ज्यों ही तुमने मुझे देखा त्यों ही स्वाभाविक लज्जावशात् अंगों को संकुचित कर मुख को हाथों से जकड़ कर

घुटनों में रखकर बैठ गयी। मेरे द्वारा अनुनय–विनय करने के पश्चात् अपने मुखकमल को उठाया और सुधावर्षण किया।

''इन्द्रजाले च चित्रे च साक्षात् स्वप्ने च दर्शनम्''[98]

साहित्यदर्पण के अनुसार स्वप्न में प्रिया का दर्शन, सौन्दर्यादि का सुखद अवलोकन प्रणय विलास का स्मरण आदि–आदि वर्णन के कारण **'राग'** नामक विप्रलम्भश्रृंगार की छटा प्रस्फुटित हो रही है। अनुनय–विनय पश्चात् मुखदर्शन, सुधावर्षण की वर्णना **'मान'** नामक विप्रलम्भ को ध्वनित करता है। वस्तुतः प्रिया के वियोग में सारा संसार ही जंगल सा प्रतीत होता है।

''प्रिया नाशे कृत्स्नं किल जगदरण्यं हि भवति''

प्रिया के वियोग में जीवन, धूप लगने पर फूल की तरह मुरझा जाता है। कवि के मित्र आसूलाल संचेती का जीवन पत्नी के स्वर्गवास जनित वियोग रुपी धूप से फूल की तरह मुरझा गया है। उसका जीवन संसार जंगल सा हो गया है। उत्तररामचरितम् के नायक श्रीराम की दशा, कालीदास के यक्ष की विरह वेदना का अनुगामी वियोगशतकम् किंचित् वास्तविकता कथंचित कविकल्पना–कल्पिता मित्र के विधुरता से उत्पन्न शोक का मूर्त रुप करुण विप्रलम्भ रस की सरिता है। श्री दवे का यह अभिनव वाङ्मय अपनी उपस्थिति से सहृदयों के हृदय की पीड़ा हरण करने वाला तथा प्रिया वियुक्त **'अलका'** के स्वामी एवं भावुक जनों को काव्यानन्द (सचेत सामनुभवः प्रमाणं तत्र केवलं) देने वाला है।

- **केलिभूकैतवम् –**

राजस्थान संस्कृत अकादमी द्वारा प्रकाशित **''केलिभूकैतवम्''** नामक खण्डकाव्य युगबोधक काव्य है। कल्पित कथानक के माध्यम से केलिक्रीडा का रोचक वर्णन इसमें किया गया है। मूलरुप से युवक–युवतियों की दशा और दिशाओं का व्यंग्यात्मक चिन्तन प्रस्तुत किया जाता है। आधुनिक कालिकाल की महती समस्या विवाह बन्धन है। कहीं यौतुकाभाव (दहेत के अभाव) में तो कहीं भृत्याभाव में युवक–युवतियों का उद्वाह नहीं हो रहा है।

वे स्वच्छन्दता के इस युग में शरीर की सहज पिपासा की तुष्टी निमित्त पथच्युत हो रहे है। अविवाहित युगल अवैध अनाथ के जैविक माता–पिता बन रहे है। अनाथ–शिशु–गृहों में इनकी शोचनीया एवं दयनीया स्थिति हृदय विदारक हो रही है। इन सबका बीज **'केलि'** है, अतः उसका चिन्तन करते हुये, अनाथों की दयनीया दशा को देखते हुये कवि हृदय पं. दवे ने यथा दृष्ट–दृश्यों का तथा उनके मनोभावों का, आधुनिकतावादी चिन्तन का, अपसंस्कृति की संरचना का, सहज–सरस एवं मनोहारी वर्णन 193 श्लोकों वाले इस खण्डकाव्य में किया है। केलिक्रीडा का प्रतिफल **कौत्स** खण्डकाव्य का धीर प्रशान्त नायक

है, नायिका आधुनिक स्वच्छन्दगामिनी कुट्टनी है। यद्यपि नवदीक्षिता युवतियाँ पुराणपंगु पति नहीं चाहती किन्तु उन्हें अपने लावण्य के कपट से आकर्षित करती है अवश्य। विवाह हेतु आधुनिक सप्तपदी द्वारा प्रतिज्ञा करवाती है। इस कल्पित कथा के पद्यों में प्रायः सभी रसों का वर्णन प्राप्त होता है, किन्तु अंगी रस के रुप में श्रृंगार रस का मनोरम वर्णन किया गया है। श्रृंगार प्रधान प्रकृत खण्डकाव्य में अंगरसों के रुप में करुण, हास्य, भयानक, रसों का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

कवि ने श्रृंगार रस का अति सुन्दर वर्णन प्रस्तुत करते हुये चिर काल से कामिनी–कामी नायक द्वारा नायिका के सौन्दर्य का वर्णन इस प्रकार किया गया है –

दृष्ट्वा सुवनिता चित्रं चिरवण्ठः स्मारातुरा।
साक्षादिव समायातं मन्यमानो मुमोद सः।।[99]
मुखाब्जगुंजच्चिकुरालिवृन्दे,
नवोदिताऽखण्ड शशांक वक्त्रे।
पीयूष पात्राधर पल्लवाढ्ये,
कस्यासि रत्नं सुषमाम्बुराशेः।।[100]
प्रालेय राशि द्रवलिप्त भाले!
तारुण्य भावामृत सिन्धु–सारे।
नीलाम्बरालम्बि पयोधराढ्ये,
कस्याधिभाग्ये लिखितासि बाले।।[101]
तारुण्य पाटीर ललाम हारे,
लावण्य–वाटी कुसुमोपहारे।
रुपासवापानविघूर्णिताक्षी,
कस्यांगणे त्वं भवितासि लक्ष्मीः।।[102]

नायक सुन्दरी का चित्र देखकर कामातुर हो गया और उसे साक्षात् उपस्थित मानता हुआ अति प्रसन्न मुद्रा में हृदयगत भावों को प्रस्तुत करता हुआ इस प्रकार कहता है, कि जिसके मुखकमल पर काले केश रुपी भंवरे मंडरा रहे है, जिसका मुख नवोदित अखण्ड चन्द्रमा सा देदीप्यमान है, जिसके भाल पर चन्द्र किरणों सा द्रव लिप्त है, जो यौवनरुपी अमृत के सागर का सार है, जो नीलाम्बर से ढ़के पयोधरों से शोभायमान है। जिसने यौवन का चन्दन हार पहन रखा है, जो सौन्दर्य वाटिका के कुसुमों का उपहार है, जिसका नेत्र रुप का आसव पीकर चलयामान है। ऐसी हे बाले! तुम किस भाग्यशाली के भाग्य में लिखी हो, किसके आंगन की लक्ष्मी बनने जा रही हो। उक्त चारों पद्य में नायक–नायिका

आलम्बन, चित्र दर्शन में अंग सौष्ठव उद्दीपन, रुप वर्णन तथा रुप दर्शन से कामातुर होने का चेष्टा विशेष अनुभाव एवं हर्ष आदि व्याभिचारी भाव होने से श्रृंगार रस का सुन्दर निदर्शन है। इसमें नायक का नायिका के उपर आसक्ति भी ध्वनित होती है।

''कस्याधिभागे लिखितासिवाले'' ठीक ऐसा ही निदर्शन अभिज्ञान शाकुन्तलम् की नायिका शकुन्तला के सौन्दर्य वर्णन में प्राप्त होता है –

''न जाने भोक्तारंकमिहसमुस्थास्यति विधिः''[103]

इसी भाव को भर्तृहरि ने इस प्रकार कहा है –

''अधरमधु वधूनां भाग्यवन्तः पिबन्ति''

उक्त पंक्तियों से नायिका के प्रति नायक की सम्भोग लालसा श्रृंगार रस के रुप में अभिव्यंजित हो रहा है।

भयानक रस –

''केलिभूकैतवम्'' खण्डकाव्य में अंगरस के रुप में अनेक स्थलों पर भयानक रस की चवर्णा हुयी है। अग्निपुराण के अनुसार जिस रस के प्रारम्भ में **भय** वीर रस का अनुसरण करता है, वह भयानक रस है, उसका स्थायीभाव **भय** है और उसके तीन भेद होते है – कृत्रिमभय, अपराधजन्य भय, तथा विभासिक भय। अभिनय की दृष्टि से इसके दो भेद होते है। वाक् क्रियात्मक और नैपथ्य क्रियात्मक।

साहित्य दर्पण के अनुसार भयानक रस का स्थायीभाव **भय** है। इसके देवता काल, वर्ण कृष्ण तथा आश्रय पात्र स्त्री व नीच व्यक्ति होते है। जिससे भय उत्पन्न हो वे सिंहादि इसमें आलम्बन विभाव और उनकी चेष्टायें उद्दीपन विभाव मानी जाती है। विवर्णता, गद्गद्भाषण, मूर्च्छा, स्वेद, रोमांच, कम्प तथा इधर–उधर दृष्टिक्षेप आदि इसके अनुभाव होते है। जुगुप्सा, आवेग, मोह, त्रास ग्लानि, दीनता, शंका, अपस्मार, संभ्रम तथा मृत्यु आदि इसके व्याभिचारी भाव होते हैं।[104]

''केलिभूकैतवम्'' में भयानक रस सम्यग् रूपेन अभिव्यक्त है, यथा – क्रूर कुटिल कुट्टिनियाँ मनुष्यों के भोले भाले मन को चुराकर विषलताओं सी अपनी आलिंगन बन्धन से प्राण हरण कर लेती है कहीं ये दुष्टा मेरे प्राण भी हरण ना कर लें आशंका से व्याकुल हो रहा हूँ ।

कुट्टिन्यः कुटिला क्रूरा, हृत्वामुग्ध मनोनृणाम्।
हरन्ति विष वल्लर्यः प्राणानाश्लेष वन्धने।।
किं स्विदेषापि रुपेण मोहयित्वा मनोखला।
हृतार्थ मे हरेत्प्राणान इत्याशंकाकुलोऽब्रजत्।।[105]

निम्नलिखित पद्य में भयानक रस का आस्वादन हो रहा है, मृत्यु एवं प्रेतयोनि का भयानक भय अभिव्यंजित हो रहा है –

हा हा मन्दः स्मरहत मर्तिवंचितः क्वागतोऽहम्,
हन्युश्चेन्मां कुटिलवनिताः बन्धना बद्धपिण्डम्।
गर्ते कृत्वा ह्यविदित गतिं धुन्धकारीवकामी,
नूनं यायाम् दुरित पतितः पातकी प्रेत योनिम्।।[106]

हास्यरस –

इस खण्डकाव्य में हास्यरस की अभिव्यक्ति है। आचार्य भरत ने हास्यरस के दो भेद किये है, आत्मस्थहास्य तथा परस्थहास्य। अपने ही विकृत वेषादि को देखकर स्वयं हसना आत्मस्थहास्य है तथा परगत विकृत वेषादि को देखकर स्वयं हँसना परस्थ हास्य होता है।

अग्नि पुराण में हास्यरस के निम्न भेद बताये है –

- स्मित
- हसित
- विहसित
- अवहसित
- अपहसित
- अतिहसित

अभिनय की दृष्टि से इसके दो भेद होते है –

- वाक् क्रियात्मक
- नेपथ्य क्रियात्मक।

साहित्य दर्पणकार के अनुसार **स्मित** तथा **हसित** उत्तम पुरुषों में, **विहसित** तथा **अवहसित** मध्यम पुरुषों में तथा **अपहसित** एवं **अतिहसित** नीच पुरुषों में पाये जाते है। ज्ञातव्य है कि जहाँ नेत्रों में कुछ विकास हो और औष्ठ ज़रा से फड़क रहे हो, वह **स्मित** कहलाता है। यदि **स्मितगत** क्रियाओं के साथ कुछ–कुछ दाँत भी दिखाई दे तो वह **हसित** कहलाता है। इन सब के साथ यदि **मधुर** शब्द भी हो तो **'विहसित'** और यदि कंधे शिर आदि में कंप–कपी हो तो वह **अवहसित** कहा जाता है। इन क्रियाओं के अतिरिक्ति हास के दौरान यदि आँखों में पानी आ जाए तो उसे **अपहसित** कहते हैं और जिसमें इधर–उधर हाथ–पैर भी पटकने लग जाये तो वह **अतिहसित** कहलाता है।

साहित्य दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ हास्यरस का आविर्भाव विकृतआकार, वाणी, वेष तथा चेष्टा आदि से मानते है। इसका स्थायी भाव हास है, हास को उद्बुद करने वाली विकृत आकृति, वाणी तथा वेषादि आलम्बन विभाव उसकी चेष्टाएँ उद्दीपन विभाव होते है। नयनों का मुकलित हो जाना तथा वदन का विकसित होना, अनुभाव होते है तथा निद्रा आलस्य आदि **संचारिभाव** होते है।

विकृताकारवांवेष चेष्टादेः कुहुकाद्भवेत्।
हास्यो हास स्थायिभावः श्वेतः प्रथम दैवतः।।
विकृताकार वाक् चेष्टं यमालोक्य हसेज्जनः।
तदत्रालम्बनं प्राहुस्तच्चेष्टोद्दीपनं मतम्।।
अनुभावोऽक्षिसकोंच वदन स्मेरतादयः।
निद्रालस्यवहित्थाद्या अत्रस्युः व्यभिचारिणः।।
ज्येष्ठानां स्मित हसिते मध्यानां विहसितावहसिते च।
नीचानामपहसितं तथाति हसितं तदेष षडभेदः।।
ईषद्विकासिनयनं स्मितं स्यात् स्पन्दिताधरम्।
कंचिल्लक्ष्यद्विजं तत्र हसितं कथितं बुधैः।
मधुर स्वरं विहसितं सांसशिरः कम्पमवहसितम्।
अपहासितं सास्त्राक्षं विक्षिप्तागं च भवत्यतिंहसितम्।।[107]

केलिभूकैतवम् खण्डकाव्य के निम्न पद्य में वेश्या के विवाह कौतुक में बन्दर बने प्राणी को देखकर मुख पर हास्य से हास्याभिव्यक्ति हो रही है –

पण्याजीवायुतककुतके मर्कटीभूतमेनम्।
दृष्ट्वा हास्यं कमल वदने स्फारयन्तीतमूचे।।[108]

करुणरस –

दुःख की दशाओं के वर्णन में करुण रस होता है। काव्य में वर्णित विषयानुसार जब अनेक युवक–युवतियों द्वारा अवैध बालकों को जन्म दिया जाता है, तो लोक–लाज के भय से वे शिशुओं को त्याग देते है। उन अवैध बालकों को शिशु सुरक्षा गृह में रख लिया जाता है, किन्तु उनकी दशा दयनीया हो जाती है, का वर्णन करते हुये कवि ने करुण रस की सरिता बहा दी है।

नग्ना धूसरगात्र चीर वसना लम्बोदराः भिक्षुकाः,
चेटी पीत पयोऽवशेषचषका उच्छिष्ट भोज्याशना।

कीटाकृष्ट कलेवराऽमययुता भूम्यम्बिाकांगाश्रया,

मृत्योः क्रोऽमुपागता अपि हतास्तेनाप्यहोतर्जिता।।[109]

इस प्रकार केलिभूतकैतवम् में श्रृंगार, भयानक, हास्य और करुण रस का समन्वय दृष्टिगोचर होता है।

- **मेघोपालम्भनम्** –

महाकवि कालिदास की कृति मेघदूतम् की किंचित अनुकृति **'मेघोपालम्भनम्'** नामक खण्डकाव्य में अकाल की स्थिति में विरहिणी कृषक नवोढ़ा का मेघों के प्रति उपालम्भ (उलाहना) वर्णित है। मेघों की कृपा के बिना धरा रुपी प्रिया की दुर्दशा आदि के वर्णना में कवि दवे ने रसों की मन्दाकिनी को प्रवाहित किया है।

यह खण्डकाव्य **वियोगश्रृंगार** प्रधान काव्य है। अंगरस के रुप में, भयानक रस का संयोजन सहज प्राप्त होता है। धरती रुपी तप्तांगी तपस्वनी नायिका, नायक मेघ के वियोग में किस प्रकार काल यापन कर रही है। निम्न पद्यों में वियोगश्रृंगार का मनोहारी दृश्य उपस्थापित किया गया है –

आषाठस्य प्रथम दिवसादम्बरे कीलिताक्षी,
पन्थानं ते जलद! सततं वीक्षते भूमिरेषा।
धर्मोद्भूतैः ज्वलन सदृशैस्तप्तगात्रोग्रवातैः,
नो जानीषे गमयति कथं वासरान् त्वद्वियोगे।।[110]
दीर्णोत्संगा विकल ह्रदय दीनवक्त्राधरित्री,
शैलाः शून्याः जल–कल–कलैः रेणुरुक्षास्तटन्यः।
शुष्काः सर्वा विटपलतिकाः पल्वला वारिशून्याः,
हाहाकारोऽस्त्यवनि विततो वारिद! त्वद् वियोगे।।[111]

विदेश गये हुये प्रेमी नायक को कोई विरहिणी नायिका मेघ के माध्यम से उपालम्भ देती है, कि वियोग में व्याकुल तुम्हारी प्रेयसी बड़े कष्टों में अपना जीवन बिता रही है।" एतद् द्वारा वियोगश्रृंगार की सुन्दर सर्जना की गयी है, जिससे पाठकों को अनायास ही रसास्वाद की अनुभूति हो रही है।

यातो गौरावनितलमसौ क्वास्ति नाहं विजाने,
गौरांगीणां प्रणयपति तेनाप्यहं विस्मृतास्याम्।
ज्ञात्वा त्वेतन्निज सुरबलाद् बोधयेन सुबन्धों!
जीवत्येषा कथमपि गृहे त्वदवियोगे विषण्णा।।[112]

भयानक रस –

यंत्रो की विभीषिका तथा प्रकृति के विकृत रुप के निदर्शन से भयानक रस की सुन्दर प्रतीति निम्नलिखित पद्यों में हो रही है –

यन्त्राणां वै वियति विततो घूमपूरोऽस्ति घोरः,
मेघोप्येनं ब्रजति सलजो वीक्ष्य भीतोऽतिदूरम्।
दृष्ट्वा यन्त्रैः दलित वपुषः पर्वतान् रम्यरुपान्,
जीमूतोऽयं व्यथित ह्रदयों जायते नेतिचित्रम्।।[113]

यन्त्रों का धूआँ आकाश में चारों ओर फैल रहा है, पहाड़ों के अंग भी खण्डित हो रहे है। आदि भयावह स्थिति का उत्तम चित्रण भयानक रस को अभिव्यंजित करने वाला है। अति कोप के कारण कृष्णकाय अतिभयंकर मेघ की गर्जना एवं अतिवृष्टि की विभीषिका में भयानक रस का आस्वादन हो रहा है।

जीमूत! त्वम् क्वचिद् निरुषा कृष्णकायोतिचण्डः,
व्रात्याऽऽश्लिष्टो विकृत मतिको गर्जना झम्पनायैः।
वर्षन्नीरं भुविच परितश्चोग्र धारा प्रपातैः,
स्वीयं कोपं दिशसि चपला चण्डिका द्यौतितांगैः।।

इस प्रकार मेघोपालम्भनम् खण्डकाव्य काव्य शास्त्रीय रस प्रवाह की दृष्टि से उत्तम कृति है।

(ii) करुणरस प्रधान खण्डकाव्य –

- **कारुण्यकादम्बिनी –**

कवि पं. श्रीराम दवे के कारुणरस प्रधान खण्डकाव्यों में कारुण्यकादम्बिनी का नाम आदरपूर्वक लिया जाता है। नाम के अनुरुप ही इस काव्य में करुण रस की अविरल सरिता प्रवाहित हुयी है। कवि ने अपनी माता के कष्ट भरे वैधव्य जीवन की करुणा को करुण रस में श्लोकबद्ध किया है। इस खण्डकाव्य में 118 श्लोक है। सम्पूर्ण काव्य में करुणरस की ही प्रधानता है। परिवार की कष्टदायक स्थिति से मां को जूझते हुये देख, माँ के उसी करुणामय संघर्ष से इस कारुण्य कादम्बिनी का उदय हुआ। इस काव्य में वर्तमान समय में माँ की दयनीया अवस्था का कारुण्य वर्णन है। शोक अथवा दुःख की दशाओं के वर्णन में करुण रस होता है।

साहित्य दपर्ण के अनुसार इष्ट के नाश तथा अनिष्ट की प्राप्ति में **'करुणरस'** की उत्पत्ति होती है। यह कपोत वर्ण वाला होता है तथा इसके देवता यमराज होते है। इसका **'स्थायीभाव'** शोक होता है तथा विनष्ट बन्धु आदि शोचनीय व्यक्ति आलम्बन विभाव, उनका

दाहादि कर्म **'उद्दीपनविभाव'** होता है। इसके अतिरिक्त प्रारब्ध की निन्दा, भूमिपतन, रोदन, विवर्णता, उच्छवास, स्तम्भ और प्रलाप इस रस में अनुभाव होते है। निर्वेद, मोह, अपस्मार, व्याधि, ग्लानि, स्मृति, श्रम, विषाद, जड़ता, उन्माद तथा चिन्ता आदि इसके **व्यभिचारीभाव** होते है –

इष्टनाशादनिष्टाप्तेः करुणाख्यो रसो भवेत्,

धीरैः कपोतवर्णोयं कथितो यम दैवतः।

शोकोऽत्र स्थायि भावः स्याच्छोच्यमालम्बनं मतम्,

तस्य दाह्ययादिकावस्था भवेदुद्दीपनं पुनः।।[115]

ग्रन्थ के आरम्भ में पिता की मृत्यु से उत्पन्न परिस्थितियों में कवि स्वयं के घर की स्थिति का वर्णन करते हुये कहते है –

वैधव्योदित वेदनाति विकला शून्याश्रिया वाटिका,

दैन्यप्लुष्ट–समस्त सौख्य सुषमा भग्नाश्रय वल्लरी।

दुर्भाग्योदितझंझया कलिलतां यातारजोव्यापृताः,

धृत्वा डिम्भ निवन्धनं हि कथमप्येषा दधे जीवनम्।।[116]

पिताजी के निधन से, मेरी मां की वैधव्य वेदना के कारण गृहवाटिका श्री हीन हो गयी है। दीनता की दाह से उस धर की सुख–सुषमा जाती रही। वह लता आश्रय हीन हो गई। पितृवंशीय स्वजनों ने भी मुख मोड़ लिया। उस समय हम लोगों के लिये माँ का आँचल ही एक मात्र शरण स्थली था। यहाँ पिता की मृत्यु से उत्पन्न शोक स्थायी भाव है, शोकाकुल माता आलम्बन, **'श्रीहीनता'** उद्दीपन, 'विकल' होना अनुभाव तथा विषाद आदि दैन्यता व्यभिचारी भाव से निसृत करुण रस का सुन्दर निदर्शन है।

आधुनिक समय की भीषण करुणा को रेखा◌ित करते हुये पं. दवे ने अनाथालयों में पल रहें एवं माँ के दूध से वञ्चित शिशुओं की वेदना को करुण रस में इस प्रकार उजागार किया है

नारीणामपि शील रक्षा बलं संक्षीयते सर्वतः,

येनेदं निज पिण्ड जातममृतं वात्सल्यमुत्क्षिप्यते।

धात्री पंकिल पाणिपात्रपतितं मातुः स्तनैः वंचितम्,

डिम्भैर्दीन गृहे स्वजीवनमिदं संवाध्यते संकटे।।[117]

माता–पिता, बन्धु, भगिनी, भ्राता से विहीन भाग्यहीन अवैध शिशुओं की वेदना को कुछ इस प्रकार कहा है –

नो माता न पिता न चापि भगिनी भ्राता न वा गोत्रजा,
मातुः क्रोड सुखं न दीन जनुषा धात्रापि भालेंकितम्।
मातस्तव मृदुमानसासि जगतो मौनं स्थिता मन्दिरै,
एतान् किंशुक कोमलान् हि तनयान हाहा कथं नेक्षसे।।[118]

जिस माँ ने नौ मास तक उदर में पाला, प्रसव पीड़ा सही, मल–मूत्र से भरें शरीर के साथ रातें कष्टों में बितायीं, पाला–पोसा, पढ़ाया, सुन्दर पत्नी लाकर दी, उसी मां को अपनी स्वतंत्रता में बाधक मानते हुये, कलियुगी पुत्रों ने मुख मोड़ लिया, वृद्धाश्रम में यातना भोगते हुये मरने के लिये छोड़ दिया। कवि ने इस करुणा को निम्नलिखित श्लोकों में समाहित करते हुये करुणरस का निदर्शन किया है –

बाल्येमुत्र पुरीष–संवृत तनुः कष्टेन निन्येनिशाः,
कृत्वा लालन पालनंच महता यत्नेन यो वर्धितः।
दत्ता रुपवती प्रिया च वनिता तारुण्यभावं गते,
तस्याः वै जरया गते तु वपुषि क्लान्तिस्थितौऽवाङ्मुखः।।[119]
धिक्ते पुत्र पदाः सुचारु सदने वासं भजन्तो मुदा,
येषां वै पितरौ वसन्ति सदने दानेन वै निर्मिते।
एते जीवित पुत्र पौत्र कुलजाः जाता अनाथा अहो,
कालं कष्ट कुले नयन्ति जरठा एकाकिनोधिक्कृता।।[120]

सेवानिवृत्ति पश्चात् पिता द्वारा समस्त अर्जित धन–स्वर्ण आदि पुत्र को सौंप दिया गया, धार्मिक कार्य के लिये पिता द्वारा जब पुत्र से किंचित् धन की अपेक्षा की गई, तो पुत्र ने उपेक्षा दिखाई, असमर्थता व्यक्त की। असहाय, अकिंचन्, अतिवृद्ध, माता–पिता के दुःख का वर्णन कवि ने इस प्रकार लिया है –

भृत्या संचित–वित्तहेम–सदनं–निवृतौ निजम्,
प्रीत्या प्रार्पितमात्मजाय सकलं विश्वास भावात्मना।
वार्धक्ये विहितुंच धार्मिक विधि वित्तव्ययेकांक्षितेः,
जाते प्रत्ययिते परीत मतिके पित्रा सुते खिद्यते।।[121]

कवि की लेखनी कारुण्यामृत की अविरल वृष्टि करने में परम प्रवीण है, वह पत्थर के हृदय को भी पिघलने के लिये विवश करने का सामर्थ्य रखता है। माँ की गरिमा एवं करुणा के माध्यम से कवि पाठकों में हृदय परिवर्तन के लिये आशान्वित है।

'एको रसः करुण एवं निमित्त भेदात्' के मानकों पर सिद्ध, कारुण्यकादम्बिनी नामक खण्डकाव्य है।

इस काव्य में करुण के अतिरिक्त वात्सल्य रस का उदाहरण भी प्राप्त होता है। साहित्य दर्पणकार ने नवरसों के अतिरिक्त वात्सल्य रस को भी स्वीकार किया है। वात्सल्य में **स्नेह** स्यायीभाव है, पुत्रादि आलम्बन–विभाव, उसकी चेष्टायें खेलना, कूदना, दया आदि उद्दीपन विभाव है। आलिंगन, अंगस्पर्श, शिरोचुम्बन, देखना, रोमांच, आनन्दाश्रु आदि अनुभाव है तथा अनिष्ट आदि की आशंका, गर्व हर्ष आदि संचारीभाव माने गये है।

कमल के गर्भ की कान्ति के समान शुभ्रपीत इसका वर्ण तथा गौरी आदि सोलह लोक माताएँ अधिष्ठात्री देवियाँ है।[122]

कारुण्य कादम्बिनी खण्डकाव्य के वात्सल्य वैभवम्'' के अधोलिखित पद्यों में वत्सल्य रस का सुन्दर निदर्शन है। परिस्थितियों में, कष्ट उठाते हुये भी अपने पुत्र के प्रति नित्य शुभकामना करती है –

वृद्धाभग्नं कटिः सुमन्दगतिकादण्डाश्रया जर्जरा,
निर्वाहं कुरुते स्वकार्य निरता पत्युर्व्यथा वाहिनी,
पक्वापक्वमवाप्य भोजनमियं कष्टेऽपि तुष्टान्तरा,
सादूरं वसतो सुतस्य तु हृदा नित्यं प्रियं काम्यति।

चिर प्रतीक्षित पुत्र के धर आने पर वार–वार हाथ फेरना, आँखों से अमुधारा, पुत्र दर्शन हर्षातिरेक के कारण कुछ बोल न पाना वात्सल्य रस का स्वाभाविक एवं हृदय हारी निरुपन दृष्ट्व्य है।

प्राप्तं मां सदनं निशम्य सहसारुग्णापि स्वस्थाऽभवत्,
वात्सल्यामृवर्षि नेत्रयुगला पादावनम्रं मुदा।
मामाश्लिष्य शिशूपमं मम मुखं संलालयन्ती मुहुः
अश्रुभिर्हृदयोद्‌गतां निजमुदं व्यांजीत्तु मौनैवसा।।[123]

मां की करुणा एवं सन्तति स्नेह की मञ्जु चित्रशाला है कारुण्य कादम्बिनी नामक खण्डकाव्य, जिस में करुण एवं वात्सल्य रस का सुन्दर समन्वय किया गया है। साथ ही साम्प्रतिकी माता–पिता और सन्तति की अपेक्षा उपेक्षा भाव को ध्वनित किया जाता है।

- **कामधेनुशतकम् –**

भारतीय ऋषि परम्परा के संवाहक संस्कृत मनीषी कविवर पं. श्रीराम दवे ने **'कामधेनु शतकम्'** काव्य के **114 श्लोकों** को विविध छन्दों अलंकारों और रसों से निबद्ध कर संस्कृत साहित्य के कला पक्षीय मानदण्डों द्वारा पूरित भाव से एक ऐसा काव्य पाठ तैयार किया है जो शताब्दियों तक भारतीय जन मानस को नव चेतना प्रदान करता रहेगा। भारतीय चिन्तन धरा में गोपालन, गो संरक्षण, गोदान की उत्कृष्ट परम्परा रही है। दुर्भाग्य है

कि इतनी पूजनीया, वन्दनीया, सेवनीया गो माता का आजाद भारत में वध किया जा रहा है, कत्लखाना व्यापार का हिस्सा बनता जा रहा है।

गोवंश संरक्षा की स्वप्रेरणा तथा उनकी दयनीया स्थिति की करुणा के आत्मबोध से प्रभावित होकर हृदयगत भावों को करुण रस प्रधान इस खण्डकाव्य में अभिव्यंजित किया है। कवि ने **'सा नन्दनी क्रन्दयति'** तथा **'क्रन्दतीयं कामधेनुः'** अध्यायों के माध्यम से जो गोवध–वेदना, कामधेनु का विलाप और पुकार का वर्णन किया है, उसमें भारतीय जनमानस के मानस–मेदनी को झकझोकर देने वाली करुणरस की अविरलधारा प्रवाहित हुयी है।

गायों की वर्तमान स्थिति तथा उनके क्रन्दन की करुणा को प्रकट करते हुये कवि ने कहा है –

विश्वोपकर्त्री जन पोषयित्री,
स्वाहा वषट्कार हविर्विधात्री,
मूलंच लक्ष्म्याः दुरितापहन्त्री,
सा नन्दनी क्रन्दति साम्प्रतं हा ।।[124]

तथा च

यस्याः कीर्ति कथा पुराण भणिता वेदेषु सा वर्णिता,
या मातेति मता पयोदधिघृतैः सम्पोषिणी प्राणिनाम्।
यस्या गात्र तले वसन्ति विबुधाः या चाध्वरेऽप्यर्चिता,
सैषा क्रन्दति कामधेनुरवला हा हन्य मानाधुना।।[125]

जिसकी कीर्ति कथा वेद और पुराणों में वर्णित है। जो प्राणियों का पोषण करने वाली माता मानी जाती है, जिसके शरीर में देवताओं का निवास माना गया है, जो यज्ञों में पूजी जाती है। वहीं कामधेनु दुर्भाग्य से आज इस देश में निर्मम हत्या के कारण चिल्ला रही है। यहाँ अवला कामधेनु का वंशनाश के कारण क्रन्दन, करुण रस का द्योतक है।

अपने वत्सों को गोवधशाला में ले जाते हुये देखकर दुःखाग्नि से संतप्त कातरवीक्षणा गोमाताओं के वर्णन में करुणरस का अभिव्यंजन हो रहा है –

गो मांस सादन मोदनाः हतधियः कामं न पश्यन्तिवमा,
गावः कातर वीक्षणाः हति मुखं हा नीयमाने निजे।
स्निग्धे तर्णकमण्डले परिमिमाः काले मनागागते,
धक्ष्यन्यात्म विषाद वह्निवलये गोधातकानां कुलम्।।[126]

इस काव्य में अंगी रस करुणरस के अतिरिक्त भयानक आदि अंगरस का भी सन्निवेश किया गया है, शोणित–मांस–भक्षियों के हाथ में लवित्री (चाकू) देखकर भय से कांपती हुयी गाय के वर्णन में भयानक रस की प्रतीति हो रही है –

धृतं पुरीष दधि दुग्ध मूत्रम्
यस्या मतं वै परमं पवित्रम्।
सैवाद्य हा शोणित मांस भक्षिणाम्,
प्रकम्पते वीक्ष्य करे लवित्रिम्।।[127]

अपि च – भारत भूमि पर गो–हत्या करने वाले प्राणियों के आगे भरतवंशी भयभीत हो रहे हैं –

द्विज कूले विदिता क्रतुसाधिनी,
श्रुतिमते प्रथिता सुरभाविनी।
कथमहाऽद्य नु भारत भूतले,
भजति हिंसक पाणितले भयम्।।[128]

वीररस का भी निदर्शन दृष्ट्व्य है –

गोवंश की रक्षा में लगे हुये भगवान दत्तात्रेय अपनी भुजा उठाकर घोषणा कर रहे है, कि अब गोवध बन्द करो । गोवंश की रक्षा के लिये प्रहरी के समान चिन्तन भ्रमण आदि वीररस को द्योतित कर रहा है।

गोशाला प्रहरीव कोऽपि लहरीं गोपाल पाथोधिजाम्,
मेधायां निवहन् प्रसन्न मनसा गोदुग्ध मात्राशनः।
काषायोत्तर वाससा वलयितो घृत्वासितं कंचुकम्,
धेनूनां कुलरक्षणाय सततं संचिन्तयन् भ्राम्यति।।[129]

(iii) भक्तिरस प्रधान काव्य –

'कामधेनुशतकम्' खण्डकाव्य की इकाई **जयतिपथमेडावनितलम्** में पथमेड़ा गोशाला भूमि की वन्दना तथा **'जयति कामदुधा सुरनन्दिनी'** इकाई में कामधेनु की स्तुति में भक्ति रस की अभिव्यक्ति हो रही है। पथमेड़ा की पुण्यधरा की भावपूर्ण वन्दना करते हुये–जिस भूमि पर किसी समय श्रौतयज्ञ–याज्ञादिक हुआ करते थे, जहाँ भक्ति, ज्ञान और कर्म की त्रिवेणी बहा करती थी, जिसे भगवान श्रीकृष्ण के पवित्र चरण–रज का सौभाग्य प्राप्त था, तथा जिस धरती पर गो–धन की भरमार थी। ऐसी इस पथमेड़ा की धरा की जय हो।

त्रयीवेयं श्रौत क्रतु विधि विधानोदय करी,

क्रिया भक्ति ज्ञान त्रिविध धृतधराऽमृतझरी।
सुपूता कृष्णास्यामल चरणं पांसुश्रितियुता,
गवां सौभाग्येडा जयति पथमेड़ावनिरियम्।।[130]

गौ की वन्दना करते हुये –

मधुरया सुधया सुरतोषिणी विपुलया रमयाजनरंजिनी।
परमया कृपया कृषिवर्धिनी जयति कामदुधा सुरनन्दिनी।।[131]

यद्यपि **भक्ति** को धनंजय ने **सामान्य भाव,** अभिनव गुप्त ने **संचारिभावों** के अन्तर्भूत तथा भानुदत्त ने **स्वतंत्ररस** के रुप में स्वीकृत किया है। इसे स्वतंत्ररस के रुप में **रुपगोस्वामी जी** ने स्वीकार किया है। आचार्य मम्मट तथा विश्वनाथ ने **'देवादिविषयोरतिर्भावः'** देव विषयक रति कहकर **रस** नहीं **भाव** कहा है।

इस प्रकार कामधेनुशतकम् में मुख्य रुप से करुण रस का प्रवाह है तथा आनुषांगिक रस के रुप में भयानक, वीर तथा भक्ति (भाव) रस का मनोहारी चित्रण हुआ है। रस चवर्णा की दृष्टि से यह काव्य उत्तम कृति कही जा सकती है।

- **ललिता लहरी –**

दुःखत्रय के ताड़न से त्रस्त होकर जब मानव दुःख से मुक्ति के लिये सर्वशक्ति सम्पन्न भगवान की शरण में जाता है और अपने हृदय की बातें उसके सम्मुख निःसंकोच भाव से प्रकट कर उसकी महिमा के वर्णन में अपनी दीनता को व्यक्त करता है, तभी स्तोत्र काव्य का जन्म होता है। भक्त कवियों द्वारा अपने इष्ट देवता विशेष की स्तुति में प्रणीत स्तोत्रों में मोहकता तथा चित्त को द्रवित करने की अमोघ शक्ति निहित होती है। पं. श्रीराम दवे का नाम भक्त कवियों में आदर से लिया जाता है। उन्होंने **(1) ललितालहरी (2) अपांगलीला** तथा **(3) भारती विलास** नामक **तीन भक्तिरस प्रधान खण्डकाव्य** का प्रणयन किया है।

कवि की कृति ललिता लहरी में, कवि की इष्ट देवी ललितादेवी की भव्य स्तुति है। यह देवीस्तोत्र शंकराचार्य प्रणीत सौन्दर्यलहरी के शिल्प पर आधारित शिखरिणी छन्द में रचित **शिवेत्तरक्षतये** प्रयोजन मूलक भक्ति साहित्य है। यह भक्तहृदय–कविसहृदय को भाव, शान्ति एवं करुणा प्रदान करता है। अतैव भक्ति, शान्त एवं करुणरस की प्रधानता लहरी आदि स्तोत्रपरक काव्यों में देखी जाती है। प्रायः आचार्यो ने **'श्रृंगार एव मधुरः परः प्रहलादनो रसः'**[132] इस सिद्धान्त के अनुसार श्रृंगार को रसराज मानकर रसों में श्रृंगार को प्रधान मानने वाले संस्कृत कवियों ने स्तोत्रकाव्य की रस धारा को प्राचीन काल से ही प्रवाहित किया है।

जिस प्रकार से स्तोत्रकारों ने लौकिक साहित्य में उपलब्ध शृंगाररस के मांसल रुप का स्पर्श नहीं किया है, उसी प्रकार कवि दवे ने भी देवादि विषयक रति[133] भाव को ही आत्मसात् किया है।

रति का अर्थ अनुरक्ति, अनुराग अथवा प्रेम है, साहित्य शास्त्रियों ने भक्ति का स्थायी भाव **रति** ही माना है, क्योंकि भक्ति का उद्भव व विकास अनुराग से ही होता है। शृंगार और भक्ति में तत्वतः भेद यह है कि शृंगारगत रति स्त्री–पुरुष विषयक अनुराग व प्रेम पर आधारित होता है। प्रत्युत भक्तिगत रति का विषय आराध्य देवी–देवता होते है। यह रति वासना से सर्वथा अलिप्त अन्तस्थल के शुद्ध भाव से संलिप्त होती है।

आचार्य रुपगोस्वामी ने भक्तिरस को स्वतंत्ररस के रुप में सर्वाधिक पोषित किया है। भक्ति और रस में अन्तःसम्बन्ध होता है –

न भाव हीनोऽस्ति रसो न भावो रस वर्जितः।
परस्पर कृता सिद्धिरनयो रस भावयो।।[134]

भाव के विना रस नहीं और रस के विना भाव भी नहीं होते इन रस और भावों की सिद्धि एक दूसरे पर निर्भर है। अतः भक्ति का आधार भाव है और भाव ही रस है। **भक्तिरसामृतसिन्धुकार** ने भक्तिरस के अधीन कुल 12 रसों का विवेचन किया है। प्रस्तुत सन्दर्भ में इसी को आधार मानकर प्रमुख रसों का विवेचन किया जायेगा। समीक्ष्य ग्रन्थ ललितालहरी स्वाभाविक रसोद्रेक के कारण आकण्ठ रस प्रवाह से प्रवाहित है। श्रोताओं के मन में रहने वाली सौन्दर्याभिकांक्षा की सम्पूर्ति करने के लिये श्री दवे जी ने जगदम्बा ललिता का नानाविधशृंगार परक उपमाओं के साथ नखशिख सौन्दर्य प्रस्तुत किया है –

प्रसन्नं ते वस्त्रं शिरसि मुकुटं रत्नजटितम्,
ललाटे कस्तुरी सुरभि तिलक केशरयुतम्।
तव स्निग्धा दृष्टिः परमकरुणाम्भोधिलहरी,
समस्तं सन्तापं शमयति शुचां जीवनगतम्।।[135]

अपि च –

तवास्येन्दु ज्योत्सनां तृषित नयनश्चातक इव,
स्थितोऽहं मातस्ते पुर इह जडो मुग्धधिषणः।
भृशं पायं पायं मुदित मनसा दर्शन सुधाम्,
भजेऽमन्दं मोदं मधुप इव मतोऽङ्घ्रिकमले।।[136]

ललिता लहरी काव्य में वात्सल्य रस की भी निर्वाध सरिता वहीं है, जिसमें शिशुलीला पर मुग्ध मां के मन्दस्मित के माधुर्य से शोभायमान मुख का वर्णन हुआ है –

शिशु क्रीडा मुग्धं तववदनमालोक्य जननि,
न में प्रत्येत्यन्तः स्मित–जनित–माधुर्य सुभगे।
रुषारुण्यं रक्षोगण कुटिल कृत्येन वदने,
उदेतीति स्तम्वबेरमजननि वात्सल्य विभवे।।[137]

हे मां तुम्हारा तो इस धरती पर जन्मे सभी भक्तों पर एक जैसा वात्सल्यभाव है, सच भी है कि माता के हृदय में वर्ण भेद के कारण पुत्रों के प्रति कोई भेदभाव नहीं होता, भक्तिभाव पूर्ण वात्सल्य का भावात्मक निदर्शन अधोलिखित पद्य में अतिसहजता से किया गया है –

समं ते वात्सल्यं धरणिजनिते भक्तनिवहे,
जनन्यां वैषम्यं भवतु च कथं वर्णभिदया।
परं क्रोडारुढं तनयमपरं वीक्ष्य सहसा,
शिशोरन्यस्थात्मा भवति सहज द्रोह विषमः।।[138]

उदार हृदया करुणामयी मां की करुणा का वर्णन करते हुये कवि निम्नलिखित पद्य में कह रहे है, कि है मां! तुम्हारे इस दिव्य स्थान की सुन्दरता तथा स्थिरता बढ़ाने वाले पत्थरों को भी लोगों ने खोद–खोद कर विकृत कर दिया है फिर भी तुम्हारे मुख पर रोष की तनिक भी रेखा नहीं दिखाई दे रही है, मानो अपनी सम्पत्ति लुटाकर भी प्रसन्न हो रही है –

खनन्तः पाषाणान् तव सदन सौन्दर्य निचयान्,
हरन्तोवृक्षाणां श्रियमपि च निष्कोष निरताः।
प्रदुष्टां कुर्वन्तः प्रकृतिमपि जीवोपकरिणीम्,
अजानन्तो मूढ़ास्तव जननि! कारुण्य कलनाम्।।[139]

इस प्रकार भगवति ललिता के दिव्य विग्रह को देखकर कवि हृदय में लौकिक–अलौकिक लीला के अनेक भाव उठ रहे है, जिन्हें कवि ने भक्ति जनित शृंगारवात्सल्य में ललितालहरी को प्रकट किया है। शैल वासिनी मां ललिता के प्रति कवि की भक्तिसिक्त भावना रसचर्वणा की दृष्टि से अनुपम है।

अन्त में समर्पण भाव को व्यक्त करते हुये कवि कहते है – हे मां ललिते आपकी अर्चना में फल की इच्छा जागृत न हो, न मन में विद्या का अभिमान हो, न कभी पूजा में अरुचि हो, मेरा मन सदा स्वस्थ रहे, तुम्हारी सपर्या का सौभाग्य निरन्तर मिलता रहे और

अन्त में यह नश्वर शरीर भी तुम्हारी गोद में समा जाये। कवि का भाव शान्त रस को परिपुष्ट करता है। अतः शान्त रस जनित भक्ति रस की यह उत्तम कृति है :

- **अपांगलीला –**

अपनी आराध्या देवी भगवती ललिता की कृपा कटाक्ष संप्राप्ति के लिये कवि द्वारा लिखित भक्ति रस से समन्वित खण्डकाव्य अपांगलीला में भी पं. दवे की रस–निर्झरिणी अविरल रुप से प्रवाहित है। जिसमें दस लीलाओं का 184 श्लोकों में वर्णन है।

सर्व प्रथम सृष्टिलीला में चराचर जगत् की उत्पत्ति का आधार माता ललिता को मानकर, जगत् की सम्पूर्ण क्रिया–कलापों की जननी को आद्याशक्ति के रुप में स्वीकार किया है। कवियों की वाणी में, कविता के मर्म में जो कुछ भी है, वह उनकी ही करुणा है –

रसेषु श्रृंगार रसाधिपत्यं,
गद्येषुलालित्य कला प्रसिद्धिः।
पद्ये नवोषि प्रतिभा कवीनाम्,
तवैव मातः करुणाधिगम्यः।।[140]

द्वितीय युगलीला में कवि ने जनमानस की युगीन प्रवृत्तियों का वर्णन किया है, सतयुग, त्रेता, द्वापर युग का वर्णन करते हुये कलि के वैभव वर्णन में भक्ति की रस धारा फूट पड़ी है –

सैवेयं वसुधा त एव मनुजा स्तान्येव भूतान्यपि,
सर्वैचैक पदे परीत गतिकं जातं हि नः पश्चातम्।
जाता संहृत शासनाः नृपतयः प्राप्तं प्रजाशासनम्,
मन्ये सर्वमिदं तवैव ललिते! दृष्टेर्हि लीलायितम्।।[141]

रासलीला में पर–अपर रुप धारण करती हुयी तथा अपनी कटाक्ष दृष्टि से जगत् का उपकार करने वाली ललिता देवी का वर्णन किया गया है। देवता भी गोपी का वेष धारण कर वृन्दावन के रास में मिलन हेतु उत्कण्ठित होते है। अपने राजसी वैभव एवं कुलधर्म को छोड़कर श्रीमाता के प्रेम में निमग्न हो जाते है। हे माँ आप कृष्ण के अधरों की वेणु के छिद्रों में बहता हुआ नाद रसिक रव है। आप ही रास ईश्वरी में नृत्य देखने के सुख हेतु गोपी रुप धारण कर ब्रज में गोपाल के देह का आश्रय लेकर देवों का मनोविनोद करती है –

वंशी तदीय मुख पदमाभिराम–मधुपानाति मुग्ध ह्रदया,
छिद्रेनिबद्ध नवनादोपकारि–रसनिस्यन्द–निर्झरवती।

गोपीजनस्य ह्रदि चक्रे अतिऽमोहनमियं श्रीनिवासवदने,

आह्लादिनी वससि लीलासु तस्य किल नीलांगमोहवशगा।।[142]

श्रृंगाररस में भक्ति समन्वित करते हुये शिव के विवाह के समय उनके दिव्य रुप पर सुरललनाओं की मुग्धता के वर्णनम् में भक्तिरस का सम्यग् निदर्शन हुआ है :

शम्भो! त्वदीयललितं ह्रदयापहारि,

रुपं विवाह समये प्रविलोक्य दिव्यम्।

जता विमुग्धमतयो ललनाः सुराणां,

तत्वं कथं नु सततं कुरुषे विरुपम्।।[143]

इस प्रकार अपांगलीला में भक्ति रस कौशल का अनुपम परिपाक हुआ है।

- **भारतीविलास –**

साहित्य, संगीत, कला आदि समस्त ज्ञान साहित्य का मूल वर्ण मातृका है, जिसे आगमों में **भारती** कहा जाता है। इस काव्य में शब्द–ब्रह्म की माया–मातृका रुप धारिणी भारती की ही विलास लीला वर्णित है। विश्वसाहित्य निर्माण में नाद ब्रह्मात्मिका अ से क्ष तक की वर्णमातृका की भूमिका पर लिखा गया ह्रदयाकर्षक इस खण्डकाव्य में रसों का मंजुल सम्मिश्रण किया गया है।

सर्व प्रथम भगवती भारती को कामिनी के रुप में प्रस्तुत करते हुये कवि कहते है कि – हे भारती इस संसार में तुम मधुर कविता कामिनी का रुप धारण कर अपने स्नेह भरे भावों से लोगों के ह्रदय–सागर में आनन्द की हिलोंरे पैदा करती हो। वस्तुतः विविध भावों से भरी, गुणवती तुम जैसी सुन्दरी का संगम पाकर, कौन ऐसा रसज्ञ होगा जो तुम पर मुग्ध न हो। इस प्रकार श्रृंगार रस की अभिव्यक्ति द्वारा भक्ति का निदर्शन दृष्ट्व्य है –

धृत्वा लोके मधुर कविता कामिनीरम्य रुपम्,

स्निग्धैर्भावैर्जन यासि नृणां मोदपुरंह्रदब्धौ।

विज्ञैर्वन्द्या बहुगुण युता भावपूर्णा सुवर्णा,

त्वामाश्लिष्य प्रभवति नरः को नु मुग्धो रसज्ञाः।।[144]

श्रृंगार रस के इसी भाव को कवि कालिदास ने मेघदूत में इस प्रकार कहा है –

'ज्ञाता स्वादो विवृत जघना को विहातुं समर्थः'।[145]

इस प्रकार अपनी लावण्य लीलाओं से शब्द ब्रह्म को मोहित करती हो, अपनी शोभा से नानाविधभाव जागृत करती हो, सुन्दर कविता का रुप धारण कर, नव–नव अंलकारो से रमणीय बनकर रसिक विद्वद्जनों का मन मोह लेती हो, कभी शकुन्तला बन कर दुष्यन्त का, तो कभी लैला नूरजहाँ बनकर प्रणयीजनों का मन चुराती हुयी, प्रणयोपहार के लिये

कविता के रुप में अपनी चमक दिखाती हो। श्रृंगार रस के इस भव्य वर्णन में भक्ति का दिव्य रुप अभिव्यंजित है।

शब्द ब्रह्म विमोहिनी! त्वमसि हे! लावण्य लीलावती,
नानालंकृति मण्डिता नव–नवान भावान श्रियोद्स्त्राविनी।।[146]
नित्यं नूतन नायिका प्रणायिनी भूत्वा मधुस्यन्दिनी,
जाता क्वापि शकुन्तला हरसि भो दुष्यन्त चेतः श्रिया।
लैला नूर जहाँ ललाम यवनी सम्मोहिनी वा क्वचित्,
स्निग्धांगी प्रणयोपहार सुभगा काव्यांकिता भाससे।।[147]

इसी प्रकार एक अन्य पद्य में विप्रलम्भ श्रृंगार रस की अभिव्यक्ति में भक्ति रस का अभिव्यंञ्जन हो रहा है –

यदारत्यारुढ़ा प्रणय विवशा भीषूविरहे,
स्पृहाचिन्तोन्मादैर्जनयसि च कारुण्यकलनाम्।
भवन्त्युच्छवास्ते विरह जनिता मेदुरधनाः,
प्रियस्मृतालम्बा नयन जलधारोदयकराः।।[148]

हास्यरस –

कभी स्वेत वस्त्र पहनकर तो कभी वाणी से तो कभी विचित्र वेषभूषा से अपने कौतुक को दिखाती हुयी भारती के वर्णन में हास्यरस का भाव प्रकट हो रहा है –

क्वचिद्वाग्भिर्वेशै र्विविध कलितैः कौतुकभरी,
हसन्ती व्यालोला प्रमथ–वशगा शुक्ल वसना।
स्मितैः स्पन्दैरक्ष्णो र्विकिरसि मुदं प्रेक्षक गणैः,
विनोदव्यापारै ललित नटितैनाट्य भुवने।।[149]

रोद्ररस –

युद्ध में शस्त्रों द्वारा रिपुजनों का संहार करती हुयी, क्रोध में भ्रकुटि चढ़ाकर शत्रुओं की छाती पर चढ़ जाती हो। भारती के रौद्र रुप में रोद्र रस के भाव की अभिव्यक्ति होती है –

क्वचिद् रुद्राराध्या भवसि रणचण्डी भयकरी,
रणे शस्त्राधातैः रिपुजन विनाशे च निरता।
सरोषं भ्रूभंगै र्द्विषदुरसि पादाहति परा,
प्रकम्पं देवानामपि मनसि भीमाकलयसि।।[150]

- **वीररस –**

हे भारती! विजय का आलम्बन लिये शंख मृदंग आदि रणवाद्यों की तुमुल ध्वनि से योद्धाओं के हृदय में उत्साह का संचार करने लगती हो। इस प्रकार वीर रस के स्वर में भक्ति का अनूठा निदर्शन है –

सुवर्णाभावीरा सुरधरणिनायाश्रयवती,
विजेतव्यालम्बा तुमुल निनदैः शंखपटहैः।
रणांके वीराणां मनसि विजयोत्सानपरा,
क्वचिद्दाने धर्मे दिशसि निजवीर्यसुचरितैः।।[151]

- **वीभत्सरस :**

हे भारती! जब तुम महाकाल का आश्रय लेकर भयंकर रुप धारण करती हुयी, शरीर पर रक्त और मांस का लेप कर लेती हो, मज्जा और अस्थियों में निवास करने लगती हो, तुम्हारे चारों ओर अघोरियों का घेरा बना रहता है। इत्यादि वर्णन में वीभत्स रस का निदर्शन होता है।

चित्रं नील कलेवरा कृत महाकालश्रया भीषणा,
मांसाऽसृक परिलिप्त विग्रहवती मज्जास्थिमग्नालया।
भीमाप्रेतकरंकदारुण तनु र्निष्ठीवनालम्बिनी,
मोह वेग जुगुप्सितैवलयिता बीभत्स मालम्बसे।।[152]

- **शान्तरस –**

संसार की समस्त वस्तुओं को असार बताते हुये शान्त रस का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया गया है –

कुन्देन्दश्रियमाश्रिता क्वचिदहो नारायणोपासिका,
शान्ता विश्व विलास वस्तु निवहे निःसारता वेक्षिणी।
आलम्ब्यात्म विशुद्ध रुपमनघं पुण्यार्जनोत्कण्ठिता,
रागद्वेष विवर्जिता ह्रदि सदा वैराग्यमाराध्यसि।।[153]

इस प्रकार कवि ने प्रायः सभी रसों में भक्ति भावना पूरित वर्णमातृका भगवती भारती की स्तुति की है। जो मूलरुप से भक्तिरस को ही द्योतित करती है।

(vi) वीररस प्रधान खण्डकाव्य –

- **परिखायुद्धम् –**

ऊर्जा के प्रमुख संसाधन तैलीय सम्पदा को अपनी शक्ति से अपने अधीन करने की दुर्भावना से ईराक और पश्चिमी देशों में मध्य के युद्ध को कवि ने परिखायुद्धम् (समुद्रयुद्ध) कहा है। इसी युद्ध में समुद्र में प्रलयंकारी अग्नि के भड़कने से शेष शय्या पर सो रहे विष्णु की चिन्ता, कवि के ह्रदय में उत्पन्न हुई और वहीं काव्य के रुप में प्रकट हुयी। खाड़ीयुद्ध की कथा को पौराणिक कथा के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है, जहाँ समुद्र में सोये भगवान विष्णु की चिन्ता लक्ष्मी द्वारा प्रकट की गयी है। संसार के **समाचार–वाचक** महर्षि नारद देवांगनाओं के समक्ष युद्ध का वर्णन करते है। इस प्रकार परिखायुद्धम् नामक खण्डकाव्य में युद्ध की विभीषिका तथा उसके दुष्परिणामों का वर्णन होने के कारण यह **वीररस प्रधान काव्य** कहा जा सकता है। अंगी रस वीररस के साथ ही अंग रस के रुप में वीभत्स, रौद्र और अद्‌भुत रसों का चित्रण भी प्राप्त होता है। अग्निपुराण में वीररस के तीन भेद किये गये है – दानवीर, धर्मवीर तथा युद्धवीर ।

''दानवीरों धर्मवीरो युद्धवीरो इति त्रिधा''

अभिनय दृष्ट्या इसके दो भेद होते है – काव्य में वाक्क्रियात्मक तथा नाटक में नेपथ्य क्रियात्मक।

आचार्य धनंजय तथा भावप्रकाशकार शारदातनय भी वीररस के तीन ही भेद मानते है। साहित्य दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने वीररस के चार भेद स्वीकार किये है – दानवीर, धर्मवीर, युद्धवीर तथा दयावीर। नाट्यदर्पणकार रामचन्द्र–गुणचन्द्र ने वीर रस के अनेक भेद स्वीकार किये है।

उत्तम प्रकृतिर्वीर उत्साह स्थायिभावकः,
महेन्द्र दैवतो हेमवर्णोऽयं समुदाहृतः।
आलम्बन विभावस्तु विजेतव्यादयोमताः,
विजेतव्यादि चेष्टास्तस्योद्दीपनरुपिणः।।[154]

राम आदि उत्तम पात्र में आश्रित वीररस होता है। इसका स्थायी भाव उत्साह, देवता महेन्द्र तथा वर्ण स्वर्णिम है। इसमें जीतने योग्य रावणादि आलम्बन, विभाव और उनका धनुष, उद्दीपन विभाव है। इस रस में युद्ध के सहायक धनुष, सैन्यादि का अन्वेषण, इसका अनुभाव होता है। धैर्य, मति, गर्व, स्मृति, तर्क तथा रोमांच आदि इसके संचारी भाव होते है।

"**परिखायुद्धम्**" काव्य युद्ध के विषय वस्तु पर आधारित काव्य है, इस काव्य में वीररस के अनेककानेक प्रकारेण समर्थ एवं सुन्दर अभिव्यक्ति हुयी है। उदाहरणार्थ अधोलिखित श्लोक में बहुराष्ट्रीय सेना आदि आलम्बन विभाव, सृष्टि विनाशकारी एवं चारों ओर प्रलय लाने वाले शस्त्रों की वृष्टि उद्दीपन विभाव, प्रक्षेपास्त्रों की वृष्टि से घबराहट एवं व्याकुलता आदि व्याभिचारी भावों से उद्दीप्त विजेतव्य का स्थायीभाव उत्साह ही वीर रस के रुप में अभिव्यक्त हुआ है –

अस्मिन् दानवदेव संकर समे सृष्टिप्रणाशोद्यमे,
शास्त्रौधेः प्रलयं करैश्च परितो वर्षद्भिरुद्वेजिते।
तैलाग्नि प्रभवोग्रधूम कलुषे प्रक्षेपणास्त्राकुले,
शेतेऽयं श्वशुरालयेऽखिलमिदं पश्यन् मुदामाधवः।।[155]

वीर रस के एक अन्य उदाहरण में ईराक के राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन की बहुराष्ट्रीय सेना पर की गयी **गर्वोक्ति** अदम्य उत्साह का परिचायक है, जिसमें वीररस का सुन्दर निदर्शन है –

गर्वोन्नतं सकृदिदं समरेमदीयं,
शक्ति प्रभाकर करोज्ज्वल भाल पट्टम्।
छिन्नं पतेदवशिनो धरणौ नु कामम्,
नो जीवते पर मिदं भविताऽवनम्रम्।।[156]

अपि च

आकाश में भयंकर गोलों की वृष्टि हो रही है, टेकों के गोले, विमानों की भयंकर ध्वनि, प्रचण्ड अग्नि, प्रक्षेपास्त्रों की प्रचण्डता से ईराक व्यग्र हो रहा है, सद्दाम के अहंकार को ध्वस्त करने के लिये शत्रु सेना अति उत्सहित होकर धोर प्रतिक्रिया कर रही है। इस प्रकार के वर्णन से अधोलिखित श्लोकों से वीररस की प्रतीति हो रही है –

नानाभिसन्धिमिषतः प्रति बोधितोऽपि,
नायं मनागति हठी हठतश्वचालः।
दुष्टा भवन्ति वशगाः खलु चण्ड दण्डैः,
मत्वेति बुश्श उदिते समरं जाघोष।।[157]
संहारलीलोद्यत सिद्धमन्त्रै,
रिवानलोद्गारि शतध्नि मुक्तैः।
उल्का नियातै रिव चण्डपिण्डैः,
ईराकदेशं विकली चकारः।।[158]

अग्न्यायुधै–र्योजनबद्धलक्ष्यैः,

मरुज्जवै–र्वज्र–समप्रहारैः।

धराम्बर स्थारि विमान कालैः,

शस्त्रैः प्रचण्डैः समरो बभूवः।।[159]

सकलकाव्य में वीररस प्रधानतया प्रतिष्ठित है, वीररस के भेदों में से केवल **'युद्धवीर'** ही आस्वादित हो रही है। काव्य में आनुषंगिक रौद्र, करुण और भयानक रस का सुन्दर समन्वय प्राप्त होता है। काव्य के एक पद्य में रौद्र रस की मंजुल अभिव्यक्ति इस प्रकार हो रही है –

कामं वीर्यं विसर्पवलयेतिष्ठेत् क्षणं दुर्भदः,

यास्यत्येव कराल काल कवलं प्राप्ते तु काले द्रुतम्।

एतामेव पुरापि मृत्युपदवीं नीताः खला विष्णुना,

काले तत्कुरुते गृहीतरसथो नाथः स्वमायाबलात्।।[160]

यहाँ शत्रु ईराक आलम्बन विभाव है, उसकी चेष्टायें उद्दीपन विभाव, क्षणभर में मर्दन करने के लिये उद्दत होना रोद्ररस को प्रदीप्त करने वाला है।

इसी प्रकार भयानक रस के वर्णन में युद्ध की विभीषिका से भयभीत पक्षियों का भयाकुल होना भयानकरस की उत्तम अभिव्यक्ति है –

अग्न्यस्त्राणां संधर्षे दृष्ट्वाज्वाला विजृम्भणम्।

खेचटा विलयं यान्ति भीतभीता विहायसः।।[161]

बम की वर्षा से तेल के कूपों में उत्पन्न अग्नि एवं उसके धूएं से धरों का काली स्याही के समान हो जाना, धूम बादलों के मध्य जिन्दगी समाप्ति की भयावही स्थिति के वर्णन में भयानक रस का अभिव्यंजन हो रहा है –

प्रलय पावक–चण्ड–शिखोज्ज्वलः,

समुदितः परितो–विकटानलः।

असितकज्जल–पूरमिवोद्गिरन्,

वियदहो विदधे स मषीगृहम्।।[162]

युद्ध की विभीषिका के पश्चात् प्रायः वीभत्स रस की चर्वणा होती है। युद्ध के समय समुद्र में प्रवाहित तेलं, विषाक्त बम आदि के कारण समुद्री जलचर नष्ट हो गये है, समुद्र से हवा के साथ दुर्गन्ध उठ रही है, यत्र–तत्र मृत जलजीव पड़े हुये है। ऐसे धृणित दृश्यों की वर्णना में वीभत्स रस की प्रतीति प्रस्तुत पद्यों में ध्वनित हो रहा है –

मृता अनेके जल जात जीवाः,

प्रदूषिते वारिधिवी–चिभंगे।
तैलोग्रगन्धे विततेऽभितश्च,
पयोधिवासा विकला बभूवुः।।[163]

अपि च –

तिमिगंलाः कच्छप शुक्ति सर्पाः,
जलेचरास्तैलमलाधिमग्नाः।
इतश्च वह्निः प्रसृतः समन्तात्,
ददाह सर्वानपितीरपोतान्।।[164]

इस प्रकार पौराणिक कथा में परिखायुद्ध की कथा को समाहित करते हुये, आधुनिक कवि ने रसभरी नूतन उद्भावना की है, यह काव्य शास्त्रीय रस विपाक की सार्थक सर्जना है।

(v) **अद्भुत रस प्रधान काव्य –**

- **कालकौतुकम् –**

कालकौतुकम् नामक खण्डकाव्य 13 इकाईयों में विभक्त 167 श्लोकात्मक काव्य है, जो समय के प्रभाव को वर्णित करता है। इसमें विश्वगुरु कहलाने वाले भारत वर्ष की स्वतंत्रता के बाद जो स्थिति बनी उसका चित्रण है। इस काल में चक्र में पड़े किसी भी वस्तु, व्यक्ति एवं व्यवस्था का शाश्वत अस्तित्व नहीं रहता, कभी राजा कभी रंक, कभी निराशा कभी उमंग देखा गया है। काल के प्रभाव से जो प्रजातंत्र, विश्व में प्रारम्भ हुआ उसका उदय भारत में भी हो गया, धर्म प्रधान वर्ण व्यवस्था खत्म हो गयी, धर्म निरपेक्षता ने अपना जाजम बिछा लिया, जनबल सत्ता का प्रबल साधन बन गया। इसी काल की विडम्बना को लेकर कवि के मन में जो भाव उत्पन्न हुये अथवा समाचार पत्रों से व्यंग्य चित्र मिले, उसी के आधार पर काल कौतुकम् की सर्जना की है।

पं. दवे ने इस काव्य में इसी सभी रसों का मंजुल सन्निवेश किया है, किन्तु काल के कौतुक वर्णन में अद्भुतरस का तथा हास्य व्यंग्य का पुट अधिक विद्यमान है। करुण तथा भयानक रस स्थिति भी उद्धरणीय है। अद्भुतरस का स्थायी भाव **'विस्मय'** देवता **गन्धर्व** तथा वर्ण **पीत** होता है। अलौकिक वस्तु आलम्बन–विभाव तथा उनके गुणों का वर्णन उद्दीपन विभाव होता है। स्तम्भ स्वेद, रोमांच, गद्गद् स्वर, सम्भ्रम और नेत्र विकासादि इसके अनुभाव होते है तथा वितर्क, आवेग भ्रान्ति, हर्ष आदि व्यभिचारी भाव होते है।[165]

''कालकौतुकम्'' काव्य के प्रायः प्रसंगो में अद्भुतरस की अद्भुत अभिव्यक्ति होती है जो कि निम्नोक्त प्रतिनिधि पद्यों में धोतित है। **''तन्त्रकौतुकम्''** इकाई में नये तंत्र के कौतुक से विस्मित हुये कवि की उक्ति है –

चित्रं नूतन तन्त्रेऽस्मिन् वृद्धाः शिष्याः गुरुर्युवा।
अज्ञात भणिताः मौनं श्रृण्वन्ति विनताननाः।।
तनु प्रज्ञा जड़ी भूता तृष्णैषा तरुणी परम्।
वल्लरी वेष्टितैरंगैस्तारुण्यं दर्शयन्त्यमी।।[166]

आधुनिक जनतंत्र का विस्मयकरी वर्णन वाले उक्त श्लोक में गुरु का युवा होना, शिष्यों को वृद्ध होने, की विचित्रता आश्चर्य आश्चर्य भाव को प्रकट करता है। अतः यहीं आश्चर्य (विस्मय) स्थायीभाव है। काल परिवर्तन की ध्वनि आलम्बन है, अज्ञात भणिता, मौनं श्रृण्यन्ति उद्दीपन तथा विनतानना व्यभिचारी भाव है जिससे अद्भुत रस की पुष्टी हो रही है।

आज मूर्ख भी उपाधि पत्र पाकर विद्वानों में स्थान पा रहा है, दूरदर्शिका के गोद में बैठकर दुष्ट काव्य गुरुता पा लेता है, इस कलि की कला चातुरी बड़े से बड़े दोषों को दबा देती है, इस प्रकार कलिकाल की विलक्षणता को कवि ने अद्भुत रस के माध्यम से कुछ इस प्रकार कहा है –

प्राप्योपाधि दलं खलोऽपि भजते स्थानं बुधानां कुले।
काव्यं दुष्टमपि प्रयाति गुरुतां दूरेक्षणा भावितम्।।
अन्नं दुष्टमुपोषितं प्रकुरुते हृद्यं जडाशीतिका,
दोषानावृणुते गुरुनपि कलौकाचित् कला चातुरी।।[167]

काल का कौतुक देखो! जो सिंह मृगाधिपति कहलाता था, आज उसके गले में हड्डी अटक गयी है। चूहे इसके बाल काट रहे है, इसी भाव को कवि अद्भूत रस के माध्यम से कुछ इस प्रकार प्रकट किया है–

भावा! पश्यत काल कुण्ठित गतेः सिंहस्य दुर्दैष्टिकम्।
ख्यातोऽयं नु मृगाधिपोऽपि मृगयोः पांशगतः खिद्यते।।
कण्ठास्थस्य च चारु केसर कुलं चर्वन्त्यमी मूषकाः।
हा! कीदृग् हतकाल कौतुकमिदं वन्यैर्वने शोऽर्द्यते।।[168]

काल के प्रभाव से कोई भी अछूता नहीं है, कराल काल से पीड़ित होकर प्रकृति के रुदन में करुण रस की सुन्दर अभिव्यक्ति है –

छिन्नास्तेऽकरुणैः सुशीतलघन छायाद्रुमाः सर्वतो,

ग्रामश्रीतिलका गवां शरणदाः केकीकुल प्रश्रयाः।
शीर्षाऽम्भोगुरु कुम्भ खिन्न वनिता क्लेशापहाः श्यामलाः
दृष्टैवैतत् प्रकृतिर्विरौति विकला काले करालेऽधुना।।[169]

हास्य व्यंग्य की अनुपम छटा विखरते हुये कवि कहते है कि –

द्वारे भोजन भिक्षुकाश्च सततं भोगाय भट्टाः स्थिताः,
बालास्ते न वंशवदाः सुविदिताः नो ते यशोवर्धकाः।
ख्याताः धर्म विरोधिनश्च सहजा नैषा शिवाराधना।
सत्कारं कुरु भद्र! सूनृत गिरागेहे त्वमेवाधुना।।[170]

राजनीति पर व्यंग्य करते हुये हास्य रस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुयी है –

खादन्ति केदार भवं महिष्यो,
गावोऽथवा पीठगता मतगां।
पतन्तु कूपे ननु भक्षितारः,
किं तेन ते विप्रकृतं प्रजायते।।[171]

भयानक रस का भयंकर उदाहरण अश्वघाटी नामक नूतन छन्द में अभिव्यक्त है –

अम्ब! त्वदीय शशि बिम्वानने लगति जृम्भापि नाद्यभयदा,
सिंहासनं चलति हिंसाभियाद्रवति, कंसाभिशंकित मनः।
सूत्रं यमः कुटति सत्रेऽसुरो भ्रमति मित्रेषु नास्ति समता,
एभ्योऽव भीमकल–भेभ्यो रणे वन चरेभ्योऽद्यदेवि! ललिते।।[172]

इस प्रकार काल की आश्चर्य जनकता पर आधारित इस खण्ड काव्य में प्रायः स्थलों पर परिवर्तन के विस्मय कारक भावों की वर्णना के फलस्वरुप अंगी रस के रुप में अद्भुत रस को स्वीकार किया जा सकता है। अंगरुप में करुण, हास्य तथा भयानक रस का समावेश ग्रन्थ रसालता को द्योतित करता है। प्रजातन्त्र के नवतंत्र पर व्यंग्यात्मक शैली में लेखन कवि की काव्योचित शक्ति को प्रकट करता है, तथा पाठकों में विभिन्न कौतुकों को उत्पन्न करता है।

(vi) अनुदित काव्यों में रस –

संस्कृत साहित्य संसार का उत्तम और अत्यन्त प्रेरणादायक साहित्य स्वीकार किया जा चुका है। जगत् की विभिन्न भाषाओं में संस्कृत के महनीय ग्रन्थों का अनुवाद हुआ, किन्तु विदेशी भाषीय ग्रन्थों का संस्कृतानुवाद यहाँ दीर्घकाल तक दृष्टिगोचर नहीं हुआ।

जैसे–जैसे भारत वर्ष में विदेशी जन सम्पर्क बढ़ा, उनका साहित्य भी अपरिचित नहीं रहा। फलतः यहाँ के पण्डितों में विदेशी साहित्य के उत्कृष्ट ग्रन्थों का संस्कृतानुवाद करने की लिलेखिषा जागृत हुयी। फलस्वरुप आलोच्य कवि पं. श्रीराम दवे का अनूदित काव्य जगत् में प्रवेश हुआ। इन्होंने तीन काव्यों का संस्कृत पद्यानुवाद किया, जिसे पं. श्रीराम दवे कृत अनूदित खण्डकाव्य कहा जाता है, जिसका क्रमशः रस विमर्श प्रस्तुत है।

- **'यवनीनवनीतम्' –**

यह उर्दू कवि मिर्जागालिब की 117 कविताओं का पद्यानुवाद है। मिर्जा गालिब का जीवन कष्टप्रद रहा है, अतः उनका दर्द उनके गजल गीतिका में समाहित हो गये। कवि दवे ने भी गालिब की करुणा को यथावत बद्ध किया है, जैसा कि करुण रस के एक उदाहरण में दृष्ट्व्य है –

उर्दू – दिलमेरा सोजे–निहां से
वे महाबा जल गया।
आतिशे खामोश की
मानिन्द गोया जल गया।।

संस्कृत –
अदृश्य–वह्निना–दग्घम्,
सर्वथा ह्रदयं मम।
अवेद्यो भस्मनाऽऽछन्नः,
पावकोऽन्तः स्थितोऽस्ति मे।।[173]

इसी प्रकार –
दर्दे दिल लिखुं कब तक,
जाऊ उनको दिखा दूँ।
अंगुलियाँ फिगार अपनी,
खामा खूँ–चका अपना।।

अपनी प्रियतमा के लिये प्रेम पत्र लिखते–लिखते कलम का घायल होना, अंगुलियों से रक्तधारा प्रवाहित होना तथा बहते हुये रक्त से पत्र का रक्तिम हो जाना, के वर्णन में करुणरस की मनमोहक छटा का निदर्शन संस्कृत पद्यानुवाद में यथावत् हो रहा है –

लेखं लेखं प्रणय भरितम् पत्र जातं प्रियायैः,
अंगुल्यों में श्रम परिहताः लेखनी विद्ध पिण्डाः।
लेखोऽङगुल्याः गलित रुधिरेणाविलो जायते हा,

गत्वा ह्येतत् सकलमपि तां दर्शयेयं मदीयम्।।[174]

भाव सभी भाषाओं में समान होते है, परन्तु उन्हें स्थान्तरित करना एवं अनुवाद करना दोनों में अन्तर होता है, पं. दवे ने यहाँ न केवल अनुवाद किया है, अपितु मिर्जागालिब के करुणा को तथा उनके गजल में निहित भावों को ज्यों का त्यों यवनीनवनीतं काव्य में समाहित किया है।

''आधुनिक साहित्य परम्परा'' ग्रन्थानुसार उर्दू के कवि **'उमरख्य्याम'** की रुवायियों का संस्कृतानुवाद झालावाड़ (राज.) के पं.गिरिधर शर्मा ने **'अमर शुक्ति सुधाकर'** के नाम से किया है जिसमें भी करुणरस का प्रवाह यथावत् विद्यमान है।

अशोक अक्लूजकर ने उर्दू काव्य का संस्कृत में अनुवाद **'उर्दूकाव्यमधु'** नाम से किया है, जिसका एक उदारण प्रस्तुत है –

अब न दिन अपना रहा और न रही रात अपनी,
जा पड़ी गैर के हाथों में हर एक बात अपनी।

इसी पंक्ति का अनुवाद तथा अनुवाद के साथ–साथ भाव का स्थानान्तरण भी किया गया है। जिसमें रस की मूल सत्ता भी यथावत् है।

अधुना न दिनं स्वीयं, न वा स्वीया निशीथिनी,
यद्यन्नाम पुरा स्वीयं तद् गतं पर हस्तयोः।।[175]

इसी प्रकार कवि दवे ने भी अपने अनुदित काव्य में मिर्जा गालिब के शेयरों का तथ्यानुवाद एवं भावानुवाद किया है। जिसमें करुण रस का प्रवाह है। दिल के जलने के वर्णन में तथा प्रीयतमा को पत्र लिखने के वर्णन में करुणरस की यथावत् प्रतीति हो रही है।

- **अकिंचनचैत्यम् –**

अंग्रेजी भाषा के प्रख्यात विद्वान महाकवि **'टॉमस ग्रे'** की कालजयी कृति **'एलिजी रिटिन इन ए कन्ट्री चर्चयार्ड'** का संस्कृत पद्यानुवाद **'अकिंचनचैत्यम्'** नामक खण्डकाव्य है। एलिजि शोक गीत है, शोक करुण रस का स्थायी भाव है, कवि धर्म का पालन करते हुये कवि ने इसका काव्यानुवाद करुण रस में अपनी विशिष्ट शैली में किया है ।

उदाहरणार्थ –

English - For them no more the blazing hearth shall burn,
or busy house wite ply her evening care,
no children run to lisp their sire's return,
or climb his kness the envied kiss to share.

संस्कृतानुवाद – तेषां नैव गृहेषु सम्प्रति मनाक् हासो हसन्त्या अपि,

सायं नो गृहिणी व कार्य निरता भूयो हि सम्पत्स्यते,
क्रीडा रोहणलिप्सया च शिशवो जानु प्रलम्बाकुलाः,
लप्स्यन्तेऽर्भक वक्त्र चुम्बन सुखं ग्राम्याः न चैत्यंगता।।[176]

English -

Their lat forbade nor circumscribed alone,
their growing virtues, but their crimes contined,
forbade to wode through sloghter to a throne,
and shut the gates of merey on mankind.

संस्कृतानुवाद –

दुर्दैवोदित दीनताऽहरदियं नैषागुणान् केवलम्,
अन्तःस्था प्रति शोध वृतिरपि नो तेभ्यः प्रदत्ताऽवरा।
येनाप्तुं निजशासनं गत दया भावा रता हिंसने,
चक्रुः शोणित रञ्जिताञ्च धरणिं क्रूर स्वभावाभृशम्।।[177]

अंग्रेजी काव्यों की संस्कृतानुवाद श्रृंखला में महालिंग शास्त्री ने Shakespeares, के काव्य Sonnet No-73 का अनुवाद **'विरहि वैक्लब्यम्'** नाम से किया है, जिसमें करुण रस का उत्तम विपाक हुआ है। इसी प्रकार Shakespeare's Sonnet No.29 का अनुवाद 'प्रेयसीस्मृतिः'[178] के नाम से किया है।

- **ब्रह्मरसायनम्** –

पं. दवे का कर्म क्षेत्र सिन्धप्रान्त रहा, फलस्वरुप सिन्धी भाषा के साहित्य में भी रुचि रही, शाह अब्दुल लतीफ नामक सिन्धीभाषा के विद्वान एवं सूफीसन्त की कृति शाहजोरसालो से प्रभावित होकर उनके पद्यों का संस्कृत श्लोकानुवाद किया, जो **'ब्रह्मरसायनम्'** नामक अनुदित खण्डकाव्य के नाम से जाना जाता है। शाह बाल्यकाल से ही ईश्वरोन्मुख, चिन्तनशील तथा एकान्त–प्रिय थे। पार्थिव सुखों में उनकी रुचि नगण्य थी। अतः उनके काव्यों में भी वहीं भाव समाहित हुआ। उनके चिन्तन को **सूफीदर्शन** कहा गया। पं.दवे ने ब्रह्मरसायन में सूफीदर्शन के ही एकेश्वर के भावों को अपनी शैली में भक्तिरस में पिरोकर कुछ इस प्रकार कहा है –

धन्यास्ते हि कापालिनो यति वराः मत्ताः सदैवात्मनि,
येषां नो हृदये मनागपि हिता सांसारिकी भावना।
प्रच्छना परितो भ्रमन्ति मुनयो मौनेरता सर्वदा,
ब्रह्मानन्द परायणाः वहिरिमे नात्मानमाव्यंजते।।[179]

भक्तिरस का श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करते हुये, वही एक अनुपम है, बस इसी एक वस्तु का व्यापार करो। जीतो या हारो तुम्हारा स्थान यहीं है। ऐसा करते रहने पर वह स्वयं तुम्हें अमृत का प्याला पीने को देगा –

अद्वितीयं तदस्येतत् वस्तुस्याद् जीविकाकृते।
जयोऽस्तुवा पराभूतिः संप्राप्य मिदमेव ते।।
एवं दृढ़ेन मनसा ध्यायते ते निरन्तरम्।
एकदा दास्यते नूनं सुधायाश्चषकं तुसः।।[180]

इस प्रकार पं. दवे के काव्य में भक्ति रस का मनोहारी चित्रण हुआ है, जो एक आदर्श कवित्व का परिचायक है। कवि ने लक्षण ग्रन्थों में बताये गये मार्गों का ही अनुसरण करते हुये, खण्डकाव्यों में रसों की संयोजना की है, जिसे हृदय पक्ष का सफल परिपाक कहा जा सकता है।

2. बुद्धिपक्ष –

हृदय और बुद्धि का समन्वित फल काव्य है। हृदय जहाँ मनोगत भावों एवं यथा दृष्ट तत्वों को भाषा देता है, वहीं बुद्धि उसे सुन्दर संघटना, गुणों का सन्निवेश, अलंकरण, शिल्प तथा निबन्धन की कला देता है। काव्यशास्त्र के अनुशासन में भावों को पद्यात्मक स्वरुप देने का शिल्प ही काव्य कला है, जिसे विदग्धता, पाण्डित्य, काव्य कला कौशल, सृजन–चातुर्य आदि बहुविध नामों से जाना जाता है।

भारतीय एवं पाश्चात्य वाङ्मय में कला शब्द, अधिक महत्वपूर्ण है। इसके बिना मानव निर्मित किसी वस्तु में सौन्दर्य की कल्पना असम्भव है। पाश्चात्य विद्वान '**हीगेल**'[181] काव्य कला को सर्वोच्च मानते है। उनके अनुसार काव्य अन्तर्मुखी कला की चरम परिणति है। वस्तुतः कथ्य को काव्य के साँचे में ढ़ालकर तथ्य को अभिव्यक्ति देना ही काव्य कला है, जो कवि की बुद्धि वैभव का परिचायक होता है।

प्रासंगिक कवि पं. श्रीराम दवे का खण्डकाव्य उनकी बुद्धि–विलास का ही परिणाम है। जहाँ काव्यावयवों को यथायोग्य स्थान प्रदान कर **सत्यं–शिवम्–सुन्दरम्** को अपने काव्य में उभारने का प्रयास किया है। वस्तुतः गुण–रीति–अलंकार–छन्द–भाषा का सम्यग् समावेश ही काव्य को कमनीयता देता है। अतः प्रकृत विषयक सुचिन्तन प्रस्तुत है –

(क) गुण–गरिमा –

काव्य विवेचना के आदिकाल से ही गुणों की विचारणा होती रही है। आचार्य भरत के श्लेषादि 10 गुणों से लेकर विश्वनाथ के त्रिविध गुणों तक आचार्यो द्वारा किया गया विवेचन स्थितिगत एवं स्वरुपगत दृष्टि से अलंकार, रीति, रस, ध्वनि आदि सम्प्रदायों से

प्रभावित रहा है। सुप्रसिद्ध काव्यशास्त्री भामह के पश्चात् तो गुणों के स्वरुप आदि के विवेचन का युग् ही प्रारम्भ हो गया था, किन्तु तब तक गुण एवं अलंकारों के स्वरुप का विभेद नहीं हो पाया था। सर्वप्रथम रीतिवादी आचार्य वामन ने गुणों की अलंकार से पृथक्ता स्पष्ट करते हुये कहा है कि काव्य के शोभाकारक धर्म को गुण तथा उनमें चमत्कार उत्पन्न करने वाले को अलंकार कहा है।[182] ध्वनिवादी आचार्यों की परम्परा में आनन्दवर्धन भोजराज मम्मट आदि ने गुणों की रस के धर्म के रुप में प्रतिष्ठा की है।[183]

सामान्य रुप से गुण का अर्थ है उत्तमता, विशिष्टता, दोषाभाव, शोभाकारक अन्तःधर्म आदि। आचार्य वामन का मानना है कि रचना में विशिष्टता गुणों के कारण ही उत्पन्न होती है। काव्य शरीर का सौष्ठय गुणों के ऊपर ही अवलम्बित रहता है। जैनाचार्य विजयवर्णी ने गुणों की महत्ता प्रकट करते हुये लिखा है कि जिस प्रकार गुणों से रहित रमणी संसार में सज्जनों द्वारा आदृत नहीं होती है, उसी प्रकार गुण रहित काव्य आदरणीय नहीं होता है।[184]

आचार्य हेमचन्द्र, विश्वनाथ रस के उत्कर्षक कारणों को गुण कहते है।[185] इस प्रकार संघटना का आश्रय लेकर गुण काव्य सौन्दर्य का कारण है।

गुणों की संख्या के विषय में काव्य शास्त्रियों में तीन विचार धारायें प्रवाहित है। प्रथम परम्परा में वे आचार्य आते है, जो भरत मुनि सम्मत 10 गुण मानते है। द्वितीय परम्परा के काव्य शास्त्री माधूर्य, ओज, प्रसाद ये तीन ही गुण मानते है। तथा शेष गुणों को इसमें अन्तर्भाव करते है या दोषाभाव रुप मानते है अथवा कहीं–कहीं तो उन्हें दोष ही स्वीकारते है।

तीसरी परम्परा में उन काव्य शास्त्रियों को रख सकते है, जो इससे अधिक गुण मानते है। आचार्य अजित सेन ने अलंकार चिन्तामणी 5/261–311 में चौबीस काव्य गुणों का सोदाहरण विवेचन प्राप्त होता है। इसमें द्वितीय परम्परा के आचार्यों का ओज प्रसाद, माधुर्य गुण त्रय ही प्रायः मान्य है।

"माधूर्य्योजः प्रसादाख्यास्त्रयस्ते न पुनर्दशः"[186]

प्रस्तुत अध्याय में विवेच्य खण्डकाव्य का गुणालोचन आनन्दवर्धन, मम्मट तथा आचार्य विश्वनाथ की दृष्टि से ही किया गया है, न कि वामनादि अलंकारवादी आचार्यें के श्लेषादिगुणों की दृष्टि से। इस प्रकार पं.श्रीराम दवे के खण्डकाव्यों में यथास्थान माधुर्य, ओज और प्रसाद तीनों गुणों का प्रयोग हुआ है।

- **माधुर्य –**

माधुर्य गुण के स्वरुप को परिभाषित करते हुये आचार्य मम्मट कहते है कि –

आह्लादकत्वं माधुर्यं शृंगारे द्रुतिकारणम्।

करुणे विप्रलम्भे तच्छान्ते चातिशयान्वितम्।।[187]

अर्थात् – चित्त की द्रुति का कारण जो आह्लादकता अथवा आनन्द स्वरुपता है, वहीं माधुर्य गुण है और वह श्रृंगार रस में होता है। वह माधुर्य करुण, विप्रलम्भ श्रृंगार तथा शान्तरस में उत्तरोत्तर उत्कृष्टतर होता है।

निम्नोक्त वर्ण, समास तथा रचना माधूर्य के व्यंजक होते है–[188]

1. वे ट वर्ग भिन्न स्पर्श वर्ण (क से म पर्यन्त) जो अग्रभाग में अपने–अपने वर्ग के अन्तिम वर्ण (ङ्,ञ्,ण्,न्,म्) से युक्त हो (यथा –अनंग, कुञ्ज आदि) तथा वे रेफ व णकार जिनके मध्य में ह्रस्व स्वर हो।
2. समासभाव अर्थात् अल्प समास, मध्यम समास आदि।
3. तथा अन्य पद के सम्बन्ध में सौकुमार्य युक्त रचना (यथा – अलङ्करोति) पद में सन्धि होने पर मधुर वर्णोत्पत्ति हो जाती है।

साहित्यदर्पणकार ने भी कुछ इसी प्रकार कहा है – चित को द्रवीभूत करने वाले आनन्द प्रधान गुण को **माधुर्य** कहते है। यह संयोग–श्रृंगार, करुण, विप्रलम्भ एवं शान्त रस में क्रमशः अधिक–अधिक मधुर हो जाता है। इस गुण के अभिव्यंजन में ट् ठ् ड् ढ् वर्णों को छोड़कर अपने वर्णों के अन्तिम वर्णों से युक्त वर्ण, ह्रस्व र् एवं ण् वर्ण तथा समास हीन या अल्प समास रचना सहायक होती है।[189]

समीक्ष्य कवि के खण्डकाव्यों में माधुर्यगुण की माधुर्यता एवं अभिव्यंजक वर्णों की चारुता सर्वत्र दृष्टि गोचर होती है –

अनङ्गतन्त्रे कुशलास्तरुण्यः ह्यतृप्त कामास्तरुणं मनोज्ञम्।
प्रतीक्षमाना प्रसमीक्ष्य चैनम् दास्यन्ति मह्यं विपुलोपहारम्।।[190]

अनंगतन्त्र–कुशला वामा का, मनोज्ञ तरुण की प्रतीज्ञा में, पंचम् वर्ण से युक्त स्पर्श वर्णों की मधुरिमा से मनोरम शब्दों में, माधुर्य गुण की अभिव्यंजना का चूडान्त निदर्शन है।

सौन्दर्य नहि चर्मरागनिहितं नो वाऽभङ्गभङ्गयाश्रितम्,
कस्यापि प्रतिभाति गौरवनिता यूनो मनोहारिणी।
कृष्णा कुंजित कुन्तलापि सुभगा कस्मैचिदाश्लिष्यति,
लावण्यं ललनागतं तु मनसो मानेन वै मीयते।।[191]

सौन्दर्यलीलामृतम् के इस श्लोक में वर्ण, समास और रचना माधुर्य के व्यंजक है। सौकुमार्य युक्त रचना होने से आह्लादकता और चित्त को द्रवित करने वाले सौन्दर्य वर्णन से कवि ने माधुर्य गुण की सर्जना की है।

कामधेनुशतकम् काव्य में कामदुधा सुरनन्दिनी गोमाता के वर्णन में तन्मयताजन्य माधुर्य का उत्तम उदाहरण प्रस्तुत किया गया है।

मधुरया सुधया सुरतोषिणी विपुलया रमया जनरञ्जिनी।
परमया कृपया कृषिवर्धिनी जयति कामदुधा सुरनन्दिनी।।[192]

मातस्त्वदीयं कृपयोपपन्नं,
लब्धुं कटाक्षं यतयोऽपि लुब्धाः।
मत्वा तृणं मोक्ष मिमेऽत्यभीष्टं,
तवैव लीला गुण गान मताः।।[193]

अपि च –

मुग्धोऽयं मधुपो मृषैव मनसा संकल्प संभावितैः,
अप्राप्ये मधु संगमेऽपि कुरुते भृङ्गाङ्गना लालसाम्।
जीर्णे नीरस पादपेऽपि च जडः पश्यत्यसौ माधवम्,
तृष्णार्तो मरुधूलि पुंज शिखरं कैलाश मामन्यते।।[194]

इन उदाहरणों में कवि ने वर्ण्य विषय के अनुरुप अल्पसमास युक्त पदावली में माधुर्योचित वर्णों का सहज सन्निवेश किया है, जो पाठकों के चित्त को द्रवीभूत करता है।

इस प्रकार कवि पं. दवे के खण्डकाव्यों में शृंगार, करुण, रसों के अभिव्यंजक वर्णों की सहजसुलभता, पद की ललितता में माधुर्य गुण का अभिव्यंजन हो रहा है, जो पदपीयूष– पानानुरागियों के चित्त को आह्लादित करने वाला तथा काव्योत्कर्ष का कारक है।

- **ओज गुण –**

ओज गुण को प्रतिपादित करते हुये आचार्य मम्मट ने कहा है –

दीप्त्या विस्तृतेर्हेतुरोजो वीररसस्थितिः,
वीभत्स रौद्ररसयोस्तस्याधिक्यं क्रमेण च।
योग आद्यतृतीयाभ्यामन्त्योरेण तुल्ययोः,
टादि शषौ वृत्तिदैर्ध्यगुम्फ उद्धत ओजसि।।[195]

चित्त के विस्तार में हेतुभूत जो दीप्ति है वहीं ओज गुण है। अर्थात् काव्य पठन श्रवण के समय आत्मा का विस्तार होना, हृदय का खुलना, ओजात्मक भाव जागृत होना आदि दीप्ति का जो कारण है वहीं **ओजगुण** होता है।

1. ओज गुण की स्थिति वीररस में होती है।
2. बीभत्स तथा रौद्र रस में क्रमशः ओजगुण का आधिक्य होता है।

3. वर्गों के प्रथम तथा तृतीय वर्ण के साथ द्वितीय तथा चतुर्थ वर्ण का योग, वर्णो के ऊपर या नीचे या दोनों प्रकार से रेफ से सम्बन्ध, तुल्य वर्णो का संयोग जैसे (कुक्कुटः)
4. ट् ठ् ड् श् ष् वर्णों का आधिक्य।
5. दीर्ध समास सम्गुम्फन तथा उद्धत रचना ओज गुण के अभिव्यंजक होते है।

साहित्य दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ भी आचार्य मम्मट के ओजलक्षण से पूर्ण सहमति रखते है।[196]

आचार्य आनन्दवर्धन के अनुसार –

रौद्रादयोरसादीप्त्या लक्ष्यन्ते काव्य वर्तिनः।
तद्व्यक्ति हेतृ शब्दार्थावाश्रित्यौजो व्यवस्थितम्।।[197]

अर्थात् काव्य में विद्यमान रौद्रादि रस की दीप्ति (प्रज्ज्वल स्वभाव अवस्था विशेष) के अभिव्यंजक शब्द और अर्थ का आश्रय, ओजगुण कहलाता है।

पं. दवे के खण्डकाव्यों में ओजगुण का समायोजन चित्तविस्तारक पद्य में अवलोकनीय है –

नानाभिसन्धिमिषतः प्रतिबोधितोऽपि,
नायं मनागति हठी दृठतश्चचाल,
दुष्टा भवन्ति वशगा खलु चण्ड दण्डैः।
मत्वेति बुश्श उदिते समरं जुधोष।।[198]

वीर रस प्रवाहक उक्त श्लोक में जब हठी सद्दाम हुसैन अपने हठ पर अड़ जाता है, तब **'बुश'** दुष्ट को वश में करने हेतु, सूर्य उदय होते ही युद्ध की घोषणा करता है, की वर्णनना में हठी, हठ, चण्ड, दण्ड, बुश, दृढ़, आदि पदों में ओज गुण के अभिव्यंजक वर्णों का प्रयोग होने से ओज गुण की दीप्ति हो रही है।

परिखायुद्धम् काव्य के ही एक अन्य श्लोक में ईराक के राष्ट्रपति की गर्वोक्ति में ओज गुण की गरिमा वीर रस के रुप प्रस्फुटित हो रही है –

गर्वोन्नतं सकृतिददं समरे मदीयं,
शक्ति प्रभाकर करोज्ज्वल भाल पट्टम्।
छिन्नं पतेदवशिनोधरणौ तु कामम्,
नो जीवते पर मिदं भवितावनम्रम्।।[199]

कवि अपने खण्डकाव्य में रौद्र, वीर रस वर्णन के प्रयोग में ओज गुण का प्रमुखता से प्रयोग करते है। इन स्थलों पर कहीं–कहीं श्रुति कटुत्व दोष भी सहज समाहित हो गये

है, किन्तु संयुक्त वर्णों की प्रयोग बहुलता तथा दीर्धसमास पदावली की विशिष्टता के कारण ओज गुण का स्फुट निदर्शन हो रहा है –

काञ्चिसूक्ष्मावरणवगुण्ठा,
स्फुटोवरा राजत शुभ्रकांक्षी।
रौप्याङ्गवा लोचननुन्नमीना,
सौदामिनी वाञ्चति मेघलीना।।[200]

अपि च –

सूक्ष्मावगुण्ठोल्लसदम्बुजाक्षी,
स्मितोलसद्दडिमबीजवन्ता।
काञ्ची क्वणन्तीषति कापिकान्ता,
रसालवक्षोजभरावनम्रा।।[201]

भारतीविलास नामक खण्डकाव्य में भारती के बीभत्सरुप धारण का वर्णन किया गया है। जहाँ जुगुप्सा से चित्त का विकास ओजगुण का प्रदर्शन कर रहा है।

चित्रं नीलकलेवरा कृतमहाकालाश्रया भीषणा,
मांसाऽसृक्परिलिप्त विग्रहवती मज्जास्थिमग्नालया।
भीमा प्रेत करंक दारुण तनुर्निष्ठीवनालम्बिनी,
मोहा वेग जुगुप्सितैर्वलयिता बीभत्समालम्बसे।।[202]

- **प्रसाद गुण –**

पठन–श्रवण मात्र से अर्थ ग्रहण जिससे हो, वह प्रसादगुण कहलाता है।

आचार्य मम्मट् के अनुसार –

शुष्केन्धनाग्निवत् स्वच्छजलवत् सहसैवयः।
व्याप्नोत्यन्यत्प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहितास्थितिः।।[203]

अर्थात् ईधन में अग्नि तथा स्वच्छ वस्त्र में जल के समान चित्त में सहसा ही व्याप्त हो जाने वाला गुण प्रसादगुण है, वह सर्वत्र व्याप्त रहता है।

श्रुति मात्रेण शब्दात्तु येनार्थ प्रत्ययो भवेत्।
साधारणः समग्राणं स प्रसादो गुणो मतः।।[204]

जिस प्रसाद व्यंजक शब्दादि के द्वारा श्रवण मात्र से ही अर्थ की प्रतीति हो जाती है, जो समस्त रसों और रचनाओं का सामान्य गुण है, वह प्रसाद गुण युक्त रचना माना जाता है।

यद्यपि वर्ण समास रचना आदि नियत गुणों के व्यंजक है, तथापि कहीं–कहीं वक्ता, वाच्य तथा प्रबन्ध के औचित्य के अनुसार रचना, समास तथा वर्णों का अन्यथा होना भी इष्ट है।

आचार्य आनन्दवर्धन के अनुसार :

समर्पकत्वं काव्यस्य यत्तु सर्वरसान् प्रति।
स प्रसादों गुणों ज्ञेयः सर्व साधारण क्रियः।।[205]

काव्य का समस्त रसों के प्रति जो समर्पकत्व है, समस्त रसों में और रचनाओं में रहने वाला है। उसे ध्वनिकार ने **प्रसादगुण** कहा है।

आचार्य भामह ने अर्थ की सुबोधता को **प्रसाद** स्वीकार किया है।

शब्दों की सहजता तथा अर्थ की सुबोधता पं. श्रीराम दवे के खण्डकाव्यों के अधिकांश भागों में देखा जा सकता है। भारती विलास नामक खण्डकाव्य के अधोलिखित श्लोक में सहज शब्द द्वारा अर्थ की सुबोधता का ललित निदर्शन किया गया है।

स्नानं न संध्या न च देव पूजा,
प्ररोचते पत्र समुत्सुकेभ्यः।
विहाय सर्वं निज कार्यं जातं,
पत्रं पठित्वैय सुखं श्वसन्ति।।[206]

सौन्दर्यलीलामृतम् काव्य के एक पद्य में समास का अभाव, पदों की सरलता, अर्थ की सहजता प्रसाद गुण की विशिष्टता को द्योतित करता है।

अहो कियन्तः प्रणये प्रबद्धाः,
प्राणान् जगत्यां विजहुर्वियोगः।
त एव जानन्ति तदीयं रागं,
प्रसूति पीड़ां न हि वेति वन्ध्या।।[207]

अवैध शिशुओं की दुर्दशा की वर्णना में प्रसाद गुण का प्रयोग दृष्टव्य है।

नो माता न पिता न चापि भगिनी भ्राता न वा गोत्रजा,
मातुः क्रोडसुखं न दीन जनुषां धात्रापि भालेऽङ्कितम्।
मातस्त्वं मृदुमानसासि जगतो मौनं स्थिता मन्दिरे,
एतान् किंशुक कोमलान् हि तनयान् हा हा कथं नेक्षसे।।[208]

उपर्युक्त उदाहरणों में प्रयुक्त शब्दावली इतनी अधिक सरल एवं सहज है कि पठन अथवा श्रवण मात्र से ही अर्थ की प्रतीति हो जाती है, अतः कवि के खण्डकाव्य की प्रसादता स्वतः सिद्ध हो जाती है।

वस्तुतः विविध उपाधिधेया खण्डकाव्यों में रागात्मक वृत्तियों की अनिवार्यतायें अपेक्षित होती है। रागात्मकता का आधार प्रसाद, माधूर्य गुणों की अभिव्यंजना को माना गया है। पं. श्रीराम दवे का खण्डकाव्य उक्त विशेषताओं से युक्त तथा ओज–प्रसाद–माधुर्य के मञ्जुल समावेश से रमणीयता, कमनीयता से संयुक्त है।

(ख) रीति निरुपण –

गत्यर्थक रीङ् धातु से क्तिन् प्रत्यय लगाने पर **रीति** शब्द निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है, मार्ग या पद्धति। कवि अपने मनोगत भावों की अभिव्यक्ति के लिये प्रायः विशिष्ट मार्गों का अवलम्बन करते है। सामान्यतया लेखन की शैली, अभिव्यक्ति की पद्धति, पद्य विन्यास का मार्ग, विशिष्ट पद रचना की विशिष्टता, पदों की गुणानुकूल संघटना को **रीति** कहा जाता है। रीति को काव्य का **उत्कर्षक** कहा गया है :

उत्कर्ष हेतवः प्रोक्ता गुणालंकार रीतयः।[209]

काव्य शास्त्र में **रीति** शब्द का प्रथम प्रयोग आचार्य वामन ने किया है, तथा **रीति** को ही आत्मस्थानी तत्व कहा है।

रीतिरात्मा काव्यस्य,[210]

विशिष्ट पद रचना रीतिः।[211]

विशेषो गुणात्मा।[212]

सा त्रेधा–वैदर्भी गौड़ीया पांचाली चेति।

विदर्भादिषुदृष्टत्वात् समस्याः।[213]

अर्थात् रीति काव्य की **आत्मा** है, तथा विशिष्ट पद रचना को **रीति** कहते है। विशिष्टता का एकान्तिक सम्बन्ध गुणों से है, और ये रीतियाँ वैदर्भी, गौड़ी, पांचाली के भेद से तीन प्रकार की है। आचार्य वामन ने जिसे **रीति** कहा है, उसे कुन्तक एवं दण्डी ने **मार्ग** कहा है।

सम्प्रति तत्र ये मार्गाः कवि प्रस्थान हेतवः।

सुकुमारो विचित्रश्च मध्यम चोभयात्मकः।।[214]

वामन की त्रिविध रीतियों के समान ही आनन्द वर्धन ने तीन प्रकार की संघटना माना है।

असमासा समासेन मध्यमेन च भूषिता।

तथा दीर्ध समासेति त्रिधा संघटनोदिता।।[215]

ध्वन्यालोककार गुणों को, संघटना के आश्रित नही मानते अपितु रसों के आश्रित मानते है –

गुणाश्रित्य तिष्ठन्ति माधुर्यादीनि व्यनक्ति सा।

रसान् तन्नियमने हेतुरौचित्यं वक्तृवाच्ययोः।।[216]

यह संघटना माधुर्यादि गुणों का आश्रय लेकर स्थित रहती है तथा रसों को अभिव्यक्त करती है।

आचार्य विश्वनाथ ने वैदर्भी, गौड़ी, पांचाली तथा लाटी, चार प्रकार की रीतियों का उल्लेख किया है।

पद संघटना रीतिरंगसंस्थाविशेषवत्।
उपकर्त्री रसादीनां सा पुनः स्याच्चतुर्विधा।।
वैदर्भी चाथ गौड़ी च पांचाली लाटिका तथा।[217]

उनके अनुसार पदों के मेल या संघटन को **रीति** कहते है, वह अंग संस्थान की तरह मानी जाती है। जैसे पुरुषों के देह का संघटन होता है। उसी प्रकार काव्यों के देह रुप शब्दों और अर्थों का भी संघटन होता है। इसी संघटना को रीति कहते है। यह काव्य के आत्मभूत रस, भाव आदि की उपकारक होती है।

रीति की संख्या – रीति की संख्या के विषय में आचार्यो का वैमत्य काव्यशास्त्रों में दृष्टव्य है –

1. भामह – वैदर्भ और गौड़ी **दो मार्ग**
2. दण्डी – वैदर्भ और गौड़ी **दो मार्ग**
3. उद्भट् – उपनागरिका, पुरुषा, कोमला **तीन वृत्तियाँ।**
4. आनन्दवर्धन – असमास, मध्यमसमास, दीर्धसमास – **की संघटना**
5. वामन – वैदर्भी, गौडी, पांचाली **तीन रीतियाँ**
6. रुद्रट – वैदर्भी, गौडी, पांचाली, लाटी **चार रीतियाँ**
7. विश्वनाथ – वैदर्भी, गौडी, पांचाली, लाटी **चार रीतियाँ**
8. भोजराज – वैदर्भी, पांचाली, गौड़ी, अवन्तिका, लाटी एवं मागधी – **छः रीतियाँ** [218]

इस प्रकार रीति, वृत्ति, मार्ग, संघटना, शैली शब्द प्रायः समानार्थक है। एक ही पदार्थ को भिन्न–भिन्न आचार्यों ने इन भिन्न–भिन्न नामों से व्यवहृत किया है।

यद्यपि भामह से लेकर आचार्य विश्वनाथ तक मार्ग तथा रीति विषयक विवेचनों के आधार पर कोई सर्वमान्य सिद्धान्त प्रस्तुत करना कठिन प्रतीत होता है, तथापि इतना सुनिश्चित है कि भारतीय काव्य शास्त्रीय चिन्तन में रीति भावाभिव्यक्ति की विशिष्ट पद रचना तथा रसादि की उपकर्त्री पद संघटना है जो अपने अभिव्यंजक पदों के द्वारा काव्य को उत्कर्ष तक पहुँचाता है।

पं.दवे के खण्डकाव्यों में पदों की भावानुकूल संघटना है, जो अंगीरसों की उपकर्त्री है। अतः समीक्ष्य खण्ड़काव्यों में रीति संयोजना की समीक्षा में निम्न प्रकार से प्रकाश डाला जा सकता है।

1. वैदर्भी रीति –

विदर्भ देश में अतिप्रिय शैली, वैदर्भी रीति दश गुणों से युक्त होती है।[219] यह रीति दोष से नितान्त अस्पृष्ट, सर्वगुणगुम्फित और वीणा स्वर के समान सुन्दर रचना होती है। इसमें वर्णित विषय अति आनन्द दायक बन जाता है। यह श्रृंगार साम्राज्य का एकछत्र अधिपति है। इस प्रकार के वैदर्भी रीति का लक्षण करते हुये आचार्य विश्वनाथ ने कहा है –

माधुर्य व्यंजकैर्वणै रचनाललितात्मिका।
अवृर्त्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते।।[220]

अर्थात् माधुर्य व्यंजक वर्णों द्वारा संघटित समासरहित किं वा अल्पसमास युक्त मनोहर रचना वैदर्भी रीति है। जैसे – "**अनंगमंगल भुवः।**"

पं. दवे के श्रृंगार प्रधान काव्यों में कालिदास के काव्यों जैसी प्रसादता, मंजुलता, ललितात्मिका की प्रतिष्ठा है, जो काव्य में वैदर्भी के वैशिष्ट्य को प्रतिपादित करता है –

समास रहित शुद्ध वैदर्भी का निदर्शन निम्न श्लोकों में दृष्टव्य है –

सायं न प्रातः स्थिरमस्ति किंचित्,
पदं न कुत्रापि च दास्यभाजम्।
सर्वे गताः सम्प्रति वन्दिभावम्,
नैवास्ति भूपो धनिकश्च कश्चित्।।[221]
श्रावं श्रावं गणक भणितं त्वत्प्रवृतौ विलम्बम्,
विज्ञानज्ञैरनिल शकुनैः सूचितंचावरोधम्।
नानाशंका कुलित हृदया खिन्न–खिन्ना कथंचित्,
आषाढ्स्य प्रचुर दिवसान् यापयामास मुग्धा।।[222]

उक्त श्लोक में माधुर्य व्यंजक वर्णों का प्रयोग, अल्पसमासता तथा भाषा की प्रसादता है, जो वैदर्भी रीति की कुशल संयोजना का श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करता है ।

ललिता लहरी के भक्ति रस पूर्ण अधोलिखित श्लोक में माधुर्यपूर्ण मनोहर रचना में वैदर्भी रीति का सम्यग् संयोजन हुआ है। जिसका मनोरम वर्णन अधोलिखित श्लोक में दृष्टव्य है –

स्तुतीनां माधुर्यं पिक कलरवाकण्ठगलितम्,
स्मृतिं यातः मातः! सुखयति मनो में किल यथा।

तथेदं नो भक्त्या विधुर पद कंचोद्धतपदम्,

प्रतीच्या उच्छिष्टं चपल गतिकं गीतगलितम्।।[223]

"**वियोगशतकम्**" के विरह–विकल–भावों को व्यक्त करने वाले वियोग श्रृंगाररस के द्योतक इस कमनीय श्लोक में ललित शब्दों के सनिवेश से वैदर्भी रीति का सुन्दर चित्रण हुआ है –

सर्वं विश्वं विरह विकलं भाति में त्वद्वियोगे,

मन्दं–मन्दं मनसि विलयन् साश्रुवक्त्रोऽस्मिकान्ते।

याताराका तरुणतिमिरा पाणिदीपः प्रतीक्षे,

आयाहि त्वं हर मम हृदो वेदनां संगमेन।।[224]

इस प्रकार पं. दवे के संभोगश्रृंगार, करुण और वियोगश्रृंगाररस के प्रधान खण्डकाव्यों में माधुर्य व्यंजक वर्णों का समावेश किया गया है। अल्प समास, असमासिक पदों का प्रयोग काव्य में वैदर्भी रीति की विशिष्टता को व्यक्त करता है। कोमल रसों को उपकार करने वाली इसी रीति को आचार्य मम्मट ने **उपनागरिका वृत्ति** कहा है।

2. गौड़ी रीति –

ओज गुण के व्यंजक वर्णों से युक्त रचना गौड़ी रीति कहलाती है, और वह रौद्र, वीर आदि कठोर रसों का उपकार करती है। इसे आचार्य मम्मट ने परुषा वृत्ति कहा है –

ओजः प्रकाशकैर्वर्णैबन्ध आडम्बरः पुनः। समास बहुला गौड़ी।[225]

अर्थात् ओज को प्रकाशित करने वाले, अधिक समासों से युक्त, शब्दाडम्बर पूर्ण रचना को गौड़ी रीति कहते है।

पं. श्रीराम दवे के खण्डकाव्यों में कवि ने अनेक स्थलों पर वर्ण्य विषय की प्रस्तुति में, वर्णनानुकूल वर्णों, पदों के सन्निवेश में गौड़ी रीति का आश्रय लिया है।

विनाशिता शेष समुद्रपोतं,

विचूर्णिता खण्ड विमान जातम्।

विकम्पिता शेष–बल प्रयोगम्,

ईराक देशं विद्धेऽभिभूतम्।।[226]

अपि च – **इतोऽम्बराद् गोलक चण्ड वृष्ट्या,**

इतश्च टैंकौध–विमुक्ति शल्यैः।

इतोऽम्बुभि व्यापृत पोत मुक्तैः,

भीमायुधै व्यग्रमभूत समस्तम्।।[227]

उक्त दोनों श्लोक में वीर रस के वर्णन में परुष वर्णों का प्रयोग है। ओज गुण के व्यंजक वर्णों की युक्ति, समासों की बहुलता तथा गाढ़ बन्ध के कारण गौड़ी रीति का उत्तम उदाहरण कहा जा सकता है।

3. पांचाली रीति –

पांचाली रीति माधुर्य और सौकुमार्य गुणों से युक्त होती। इस रीति में ओज और कान्ति गुणों के अभाव के कारण इसे क्रमशः **'अनुल्वण–पदा'** अर्थात् **कोमलपदा** और **'विच्छाया'** अथवा **'निःसत्वा'** कहा गया है। ''माधुर्य सौकुमार्योपपन्ना पांचली''[228]

साहित्यदर्पणकार के अनुसार – .... वर्णैः शेषैः पुनर्द्वयोः।

समस्त पचषडपदो बन्धः पाञ्चालिका मता।।[229]

अर्थात् जो वर्ण न माधुर्य के व्यंजक हो, न ओज के, उनसे जो रचना की जाय, और जिसमें पाँच छः पदों तक का समास हो वह रीति **पांचाली** कहलाती है। काव्य–प्रकाशकार ने इस रीति को **कोमलावृति** कहा है।

'कोमला परैः'। परैः शैषैः। तामेव केचित् ग्राम्येति वदन्ति।[230]

पं. श्रीराम दवे के खण्डकाव्यों में श्रृंगार, अद्भुत और शान्त रसों के स्थल विशेष में पांचाली रीति का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। यद्यपि इन स्थलों पर प्रसाद गुण की प्रांजलता होने से वैदर्भी प्रयोग का भ्रम उत्पन्न होता है, किन्तु अर्थ अभिज्ञान में उसका उपलक्षण मात्र होता है। श्रृंगार रस स्थल पर पांचाली रीति का मनोहर निदर्शन प्रस्तुत है –

उत्सेधिस्तनलम्बमानमसितं वेणीयुंग सुन्दरम्,
किं वा व्यालयुगं नु पातु मतुलं तारुण्य वित्तं स्थितम्।
पातुवा नवयौवनामृतरसं कुम्भोद संचितम्,
लम्बन्तेरसिकात्मना हि तृषित द्वारे स्थिताः दृष्टयः।।[231]

उक्त श्लोक में पाँच–छः पदों वाला समास है। कोमल वर्णों का प्रयोग है। अतः पांचाली की रमणीयता यहाँ प्रकट हो रही है।

4. लाटी रीति –

'लाटी तु रीति वैदर्भी पांचाल्योरन्तरेस्थिता'[232]

साहित्यदर्पणकार लाटी रीति के उक्त लक्षण में कहते है कि ''वैदर्भी और पांचाली'' इन दोनों के मध्य की अर्थात् दोनों के लक्षणों से कुछ–कुछ युक्त रीति **''लाटी''** है।

कश्चिद् अज्ञात आचार्य ने लाटी रीति को इस प्रकार वर्णित किया है –

मृदुपदसमास सुभगा युक्तै वर्णैर्नचातिभूयिष्ठा।
उचित विशेषण पूरित वस्तुन्यासा भवेल्लाटी।।[233]

इसका भाव है – जो कोमल पदों और सुकुमार समासों से सुन्दर हो, उसमें संयुक्ताक्षरों की अधिकता न हो तथा समुचित विशेषणों से युक्त वर्णना हो तो उसे **लाटीरीति** कहते है।

अन्येत्वाहुः – **गौडी आडम्बरबद्धास्यात् वैदर्भी ललितक्रमा।**

पांचाली मिश्र भावेन, लाटी तु मृदुभिः पदैः।।[234]

इस प्रकार वैदर्भी और पांचाली का मिश्रित रुप **लाटी रीति** कहलाती है। जिसमें माधुर्य के व्यंजक वर्ण भी हो, पाँच छः या उससे कुछ कम समासों वाला ललित पद हो, सयुक्ताक्षर की अधिकता न हो, ऐसी रचना की लाट देश में लोकप्रियता होने के कारण उसे **लाटीरीति** के नाम से अभिहित किया जाता है।

कवि पं. दवे ने अपने खण्डकाव्य में श्लेष, समाधि, सौकुमार्य जैसे काव्य गुणों की अभिव्यक्ति के लिये लाटीरीति का यथेच्छ प्रयोग किया है।

कुटिनिकुल निवासा दासिका दूतिकानाम्,
निरयसमनिवासे यापयन्तीदिनानि।
उदितवति सुदिष्टै हर्म्यमासाद्यदिव्यम्,
धनपति गृहलक्ष्मी पूजनीया बभूव।।[235]

इस प्रकार कवि के खण्डकाव्यों में रीति का निर्वाह सफलता पूर्वक किया गया है। वैदर्भी रीति के सफल प्रयोक्ता कहे जा सकते है, क्योंकि वैदर्भी रीति का प्रयोग उनके सभी खण्डकाव्यों में सहज उपलब्ध हो जाता है। दार्शनिक सिद्धान्त प्रतिपादन के अवसर पर समास बहुला गौड़ी का चमत्कार तथा कोमल कान्त पदावली सहृदयों के चित्त को आकर्षित करता है।

(ग) छन्द प्रयोग –

वैदिक–लौकिक वाङ्मय में छन्दशास्त्र का विशिष्ट स्थान है। वेदार्थ निर्णय में सहायकत्व सिद्ध होने के फलस्वरुप महर्षियों, ऋषियों, आचार्यों द्वारा वेदांग रुप में स्वीकृत है।

पाणिनीय शिक्षा में **'छन्दः पादौ तु वेदस्य'** ऐसा कहकर छन्द की महत्ता को प्रतिपादित किया गया है।

छन्द शब्द के दो अर्थ है –

1. **आच्छादन –**

'छन्दांसि छादनात्' जिसके द्वारा भाव या रस को आच्छादित किया जाता है। उसे **छन्द** कहते है।

2. **आह्लादन –**

'चित्ताह्लादजनकं छन्दः' जिसके द्वारा पाठकों का आह्लादन होता है, वह छन्द है। अर्थात् जो रचना अक्षर, मात्रा, यति, लय, तुक् आदि से व्यवस्थित हो तथा जिसके गान से सहृदयों का हृदय आह्लादित हो वह **छन्द** है।

छन्द की उपयोगिता –

छन्द पद्यों का प्राण है, उसके द्वारा कविता कामिनी का गेयात्मक रुप निखरता है, गतिशील होता है तथा नवता एवं लयात्मकता से काव्य सौन्दर्य को अभिभूत करता है। छन्दों के द्वारा भाव सम्प्रेषण सहज हो जाता है। कवि कठिन से कठिन भावों को मनोद्गारों को छन्द के माध्यम से सहज–सरस सम्वेद्य रुप में अभिव्यक्त कर सकता है। छन्द से ज्ञान स्थिर और सर्वजन ग्राह्य बन जाता है। छन्दोमयी भाषा में निबद्ध औपदेशिक वाणी मानव हृदय पर अमिट छाप छोड़ जाती है। वस्तुतः छन्द में अद्भुत शक्ति समाहित है, जो मानवता को ढ़कने वाले आवरणों को दूर करने की क्षमता रखती है। भावों को संवेदनशील और सहृदय ग्राह्य बनाने के लिये छन्दों की महती उपयोगिता सिद्ध है। यह श्रुति परम्परा का साधक हृदय प्रवाह का वाहक और पद्यों का नियामक होता है। इसके विना काव्य की गतिशीलता, चारुता और हृदयहारिता असम्भव है।

छन्दौचित्य –

आचार्य चतुर्वेदी ने छन्दौचित्य के विषय में निम्न बिन्दुओं का संकलन किया है –

1. इतिहास–पुराण के प्रसंगों में, उपदेश प्रधान काव्यों तथा सामान्य सर्गबद्ध काव्यों में **अनुष्टुप छन्द** का प्रयोग होता है।
2. शृंगार प्रधान वर्णनों में और वसन्तादि ऋतु वर्णनों में **उपजाति छन्द** का प्रयोग उत्तम है।
3. विप्रलम्भ शृंगार तथा वर्षाऋतु के वर्णनों में **मन्दाक्रान्ता छन्द** का प्रयोग उचित है।
4. यौवनोद्भव, चन्द्रोदय, उद्यानादि उद्दीपन विभावों के वर्णन में **रथोद्धता छन्द** का प्रयोग उपयुक्त है।
5. उदारता, महत्ता, औचित्य आदि के विचार–विमर्श में **हिरणी छन्द** का प्रयोग उपयुक्त है।
6. विश्लेषणात्मक वर्णन में युक्ति–युक्त अर्थों के समर्थक परिच्छेदों में, शान्त रस प्रधान, भक्ति, श्रद्धा, देवस्तुति आदि रचनाओं में **शिखरिणी छन्द** का प्रयोग उचित है।

7. राज्याधिपतियों, सेनानायकों, शासनाध्यक्षों तथा शूरवीरों की प्रशंसा परक स्तुतियों में **शार्दुलविक्रीडित छन्द** का प्रयोग सर्वश्रेष्ठ होता है।
8. वीररस, रौद्ररस तथा इनसे सम्बद्ध प्रसंगों में **वसन्ततिलका छन्द** का प्रयोग अत्युत्तम कहा जाता है।
9. वीर सेनानियों के प्रस्थान प्रसंगों में तथा वर्तमान समय में रेलगाड़ी, बस, टेम्पों, स्कूटर आदि वाहन प्रचलन वार्ताओं में **दोधक छन्द** उपयुक्त माना जाता है।
10. सैनिक, स्वयंसेवक तथा छात्रों के प्रशिक्षण प्रयोगों में और पथ संचालन आदि पद यात्राओं में **द्रुतविलम्बित छन्द** का प्रयोग करना चाहिये।
11. समुद्री ज्वार–भाटा, भूकम्प, विप्लव, उथल–पुथल आदि के वर्णन में **तोटक छन्द** का प्रयोग होना चाहिए।
12. झंझावात का वर्णन **स्रग्धरा छन्द** में शोभा देता है।
13. क्रोध, आक्षेप, धिक्कार आदि के प्रसंगों में **पृथ्वी छन्द** का प्रयोग उत्तम माना जाता है।
14. सन्धि–विग्रह, यात्रा, उपेक्षा, आश्रय, द्वैधीभाव, कोष, दुर्ग, चतुरंगशक्ति, राजैश्वर्य, सम्पत्ति, ऊहा–पोह, पराक्रम, उद्योग, उत्साह, वृद्धि, क्षय, अभ्युदय आदि के वर्णन प्रसंगों में विद्वानों ने **वंशस्थ छन्द** को सर्वश्रेष्ठ बताया है।

आचार्य क्षेमेन्द्र ने भी कहा है कि छन्दों की योजना रसों के अनुकूल होनी चाहिये –

काव्ये रसानुसारेण वर्णनानुगुणेन च।
कुर्वीत सद्वृत्तानां विनियोगं विभागवित्।।

छन्द के प्रकार : छन्द दो प्रकार के होते है।

1. वैदिक छन्द
2. लौकिक छन्द

लौकिक छन्द भी दो प्रकार का होता है।

(1) वृत्त
(2) जाति

(1) वृत्त –

वृत्त को वर्ण वृत्त या **वर्णिक छन्द** कहते है। इसमें प्रत्येक पाद में गणों के अनुसार वर्णों की गणना की जाती है।

जैसे – इन्द्रवज्रा आदि वृत्त छन्द के भी तीन भेद है।

वृत्त छन्द के भी तीन भेद है –

1. **समवृत्त** – चारों पादों में वर्णों की संख्या बराबर होती है।
2. **अर्धसमवृत्त** – 1–3 एवं 2–4 पादों में वर्णों की संख्या बराबर होती है।
3. **विषम वृत्त** – प्रत्येक पाद में वर्णों की संख्या विषम होती है।

(2) जाति –

जाति को **मात्रिक छन्द** भी कहते है। इसमें प्रत्येक पाद में मात्रा की गणना की जाती है। जैसे : आर्या आदि।

छन्द शास्त्र के प्रसिद्ध आचार्य और उनके ग्रन्थ –

छन्द शास्त्र के आदि प्रवर्तक भगवान शंकर तथा आदि आचार्य छन्द सूत्र के रचयिता आचार्य पिंगल को माना जाता है। पिंगल कृत ग्रन्थ को छन्द वेदांग का प्रतिनिधि ग्रन्थ कहा जाता है। इसी ग्रन्थ में प्रतिपादित समस्त छन्दों का विचार **'यमाताराजभानसलगा'** सूत्र से किया जाता है। सूत्र शैली में निबद्ध यह सम्पूर्ण ग्रन्थ आठ अध्यायों में विभक्त वैदिक एवं लौकिक छन्दों के लक्षण से युक्त है।

छन्द शास्त्र के **दश आचार्य** प्रसिद्ध हुये जिसका नाम व ग्रन्थ का उल्लेख अपेक्षित है :

1. आचार्य पिंगल – छन्द सूत्रम्
2. कालिदास – श्रुत बोध
3. क्षेमेन्द्र – सुवृत्ततिलक
4. हेमचन्द्र – छन्दोऽनुशासन
5. केदारभट्ट – वृत्तरत्नाकर
6. अज्ञात – प्राकृतपैंगलम्
7. जयदेव – छन्दोऽनुशासनम्
8. गंगादास – छन्दोमंजरी
9. दामोदर मिश्र – वाणी भूषण
10. दुःख भंजन – वाग्वल्लभ

उक्त दसों छन्द शास्त्र के आचार्यों में से सर्वाधिक प्रसिद्ध आचार्य केदार भट्ट हुये जिनका ग्रन्थ वृत्तरत्नाकर साम्प्रतिकी काव्यों का छन्द नियन्ता है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में आचार्य केदार भट्ट कृत वृत्तरत्नाकर नामक ग्रन्थ के आधार पर ही पं. दवे के खण्डकाव्यों में छन्द प्रयोग का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है।

1. पं. दवे के शृंगार रस प्रधान खण्ड़काव्यों में छन्द योजना –

पं. दवे के श्रृंगार रस प्रधान काव्यों में वियोगशतकम्, मेघोपालम्भनम् केलिभूकैतवम् एवं सौन्दर्यलीलामृतम् प्रमुख खण्ड़काव्य है। काव्यशास्त्रियों ने रस के अनुकूल छन्द योजना की सहमति प्रदान की है, तदनुसार श्रृंगाररस प्रधान काव्यों में उपजाति, मन्दाक्रान्ता, आदि छन्दों का प्रयोग उत्तम माना गया है।

- **वियोगशतकम् में छन्द –**

श्रृंगार परक काव्यों में सर्वाधिक श्लाघनीय **'वियोगशतकम्'** नामक खण्डकाव्य है, जो मेघदूत की अनुकृति है, मेघदूत की तरह ही सम्पूर्ण काव्य में **'मन्दाक्रान्ता'** छन्द है। आचार्य क्षेमेन्द्र कहता है कि –

''प्रावृट्प्रवासव्यसने मन्दाक्रान्ता विराजते''

वर्षा और प्रवास के सन्दर्भ में मन्दाक्रान्ता ही शोभित होती है। मन्दाक्रान्ता छन्द की प्रशंसा करते हुये वृत्तरत्नाकर में कहा गया है कि मन्दगतिका (मन्दाक्रान्ता) कविता कामिनी किसे आकृष्ट नहीं करती –

मगण भगण नगण तगण तगण गु.गु.

S S S S I I I I I S S I S S I S S

नानाश्लेष प्रकरण चरण चारु वर्णोज्ज्वलांगा।

नानाभावाकलित रसिक श्रेणी कान्ता तरंगा।।

मुग्धस्निग्धैः मृदु पदैः क्रीडमाना पुरस्तात्।

मन्दाक्रान्ता भवति कविता कामिनी कौतुकाय।।

वस्तुतः मन्दाक्रान्ता की मन्द एवं तरल गति भावों के साथ मानवीय हृदय में भी स्पन्दन करने में सहायक होती है। प्रत्येक चरण प्रारम्भ में गुरु अक्षरों के उच्चारण से, स्वर का जो मन्द चढ़ाव देखा जाता है, वह भाव के धीरे–धीरे उठते हुये उफान का श्रवण ग्राह्य चित्र उपस्थित करता है।

मन्दाक्रान्ता छन्द का लक्षण –

मगण भगण नगण तगण तगण गु.गु.

S S S S I I I I I S S I S S I S S

''मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैर्म्भौ नतौ ताद्गुरुचेत्''[236]

''मन्दाक्रान्ता के प्रत्येक पाद में 17 वर्ण होते है। क्रमशः मगण, भगण, नगण, तगण, तगण, अन्त में दो गुरु होता है। जलधि–4, षड्–6, अग(पर्वत)–7 पर यति होती है। यानी चौथे, दसवें और सत्रहवें वर्ण पर विराम होता है।

मन्दाक्रान्ता छन्द की ऐसी की प्रस्तुति **"वियोगशतकम्"** खण्डकाव्य में सर्वत्र दृष्टिगोचर है –

मगण भगण नगण तगण तगण गु.गु.

S S S S ।। । ।। S S। S S। S S

कश्चित्कान्ता, विरह–गुरुणा,–शोक तापेन तप्तः,
एकान्तस्थो निजसहचरी–सेव्यमानालकायाम्।
काले–काले मधुर विषयान् संस्मरन् पूर्व भुक्तान्,
दृष्ट्वा मेघान् वियति सहसा सोऽब्रवीन्मुग्ध चेताः।।[237]

श्लोक में 17 वर्ण है, क्रमशः मगण, भगण, नगण, तगण, तगण तथ अन्त में दो गुरु है। लक्षणानुसार 4–6–7 पर यति है अतः **मन्दाक्रान्ता** का उत्तम उदाहरण है।

मगण भगण नगण तगण तगण गु.गु.

S S S S ।। । ।। S S। S S। S S

कान्ता–चिन्ता वयसि विदुषः पश्चिमे नो प्रशस्ता,
भूयश्चास्मिन् वसुमति कुले पुत्र पौत्र–प्रपूर्णे।
संरुध्यातो नयन सलिलं पश्यतां वै जनानाम्,
एकान्तस्थो हृदयजरुजं लेखनीं वेदयेऽहम्।।

सम्पूर्ण खण्डकाव्य में मेघदूतवत् मन्दाक्रान्ता छन्द की छटा विद्यमान है, जो वियोग श्रृंगार के औचित्य को द्योतित कर रहा है।

- **मेघोपालम्मनम् में छन्द –**

वियोग श्रृंगार प्रधान इस खण्डकाव्य में मेघ की अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अल्पवृष्टि से विविधलीला करने वाले बादलों का मानवीकरण कवि ने विविध छन्दों में किया है।

विशेषतः मन्दाक्रान्ता, दुतविलम्बित्, शिखरिणी, वसन्ततिलका, मालिनी, शार्दूलविक्रीडितम् आदि छन्दों के द्वारा मेघोपालम्भनम् काव्य की सौन्दर्याभिवृद्धि की गयी है। उदाहरणार्थ कतिपय श्लोकों का निदर्शन प्रस्तुत है –

मेघ वर्णन में **मन्दाक्रान्ता छन्द** का प्रयोग दृष्ट्व्य है –

मगण भगण नगण तगण तगण गु.गु.

S S S S ।। । ।। S S। S S। S S

आषाढस्य प्रथम दिवसादम्बरे कीलिताक्षी,
पन्थानं ते जलद! स्ततं वीक्षते भूमिरेषा।
धर्मोद्भूतेज्वलन सदृशैस्तप्त गात्रोग्रवातैः,

ने जानीषे गमयति कथं वासरान् त्वद्वियोगे।।[238]

मेघ की स्तुति में **द्रुतविलम्बित छन्द** का प्रयोग अवलोकनीय है –

लक्षण – नगण भगण भगण रगण। (12 वर्ण)

द्रुतविलम्बित माह नभौभरौ। 3/49 (वृत्तरत्नाकर)

द्रुतविलम्बित छन्द 12 अक्षरों का समवृत छन्द होता है, इसके प्रत्येक चरण में नगण, भगण, भगण, और रगण (नभौभरौ) होता है।

नगण भगण भगण रगण

I I I S I I S I I S I S

अयि पयोद! पयोनिधि–वाहकः,

कर समुद्धत नीर भराश्रया।

मधुराया कुरु वारि सुधारया,

वसुमतीं वसुधान्य समन्विताम्।।[239]

काव्य में गीति तत्व अपनी पराकाष्ठा को तव प्राप्त करता है, जब संगीत माधुरी के लिये प्रसिद्ध शिखरिणी वृत्त की निर्मल तरंगिणी का प्रवाह प्रारम्भ होता है। **'इमे मुग्धा मेघा'** में शिखरिणी की एक झलक इस प्रकार है –

लक्षण –

यमन मगण नगण सगण भगण ल. गु.

I S S S S S I I I I I S S I I I S

रसै रुद्रश्छिनाः यमनसभलागः शिखरिणी। 3/93 (वृत्तरत्नाकर)

17 वर्णो वाले इस समवृत्त छन्द के प्रत्येक चरण में (यमनसभलागः) यगण, मगण, नगण, सगण, भगण, अन्त में लघु, गुरु वर्ण आता है। (रस–रुद्र) 6 और 11 वर्णों पर यति होती है।

यमन मगण नगण सगण भगण ल. गु.

I S S S S S I I I I I S S I I I S

किमेषा ताराणां नयन कलिता कज्जलकला,

गिरीणां किं वैतत् ललित शिथिलं कंचुपटकम्।

तटिन्याः नीलायाः गलितमभवास्त्यंचलमिदम्,

अमीद्विपा मुक्ता फल जनिकराः किन्तु गणने।।[240]

शार्दूलवीक्रीडितम् छन्द का सम्यग् प्रतिपादन **'न दुर्भिक्षे विकला घरा'** में वर्णित किया गया है –

लक्षण – मगण सगण जगण सगण तगण तगण गु.

SSS IIS ISI IIS SSI SSI S

सूर्याश्वैर्यदिमः सजौ सततगाः शार्दूलवीक्रीडितम्।

3/101 (वृत्तरत्नाकर)

19 वर्णो वाले समवृत्त छन्द के प्रत्येक चरण में म.स.ज.स.त.त. अन्त में एक गुरु वर्ण होता है। 12 तथा 7 वर्णों पर यति आती है।

मगण सगण जगण सगण तगण तगण गु.

SSS IIS ISI IIS SSI SSI S

केदारः कृशतां गता विगलिताः सर्वाः श्रियो वीरुधाम्,
जातेयं विधुरा प्रिया हि वृतति र्वल्ली प्रभा मण्डनैः।
कुल्येषा हरिदम्बरं विगलितं ह्यन्विष्यमाणेवहाः,
कूपोवारि वियोग शुष्क जठरो वाताशनस्तिष्ठति।।[241]

'सौन्दर्यलीलामृतम्' नामक श्रृंगाररस प्रधान खण्डकाव्य में सायंकाल बम्बई के चौपाटी पर सान्ध्य विहार करते हुये युवक–युवतियों के यौवनोचित मनोभावों को तथा उनके श्रृंगार परक चेष्टाओं को इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, मन्दाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडितम् आदि छन्दों में कवि द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

भ्रमण करते हुये रसिकों की दृष्टि को आकर्षित करती हुयी गौरांगना के वर्णन में इन्द्रवज्रा छन्द का प्रयोग अवलोकनीय है –

लक्षण – स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ ज गौ गः। 3/28 (वृत्तरत्नाकर)

इन्द्रवज्रा छन्द के प्रत्येक पाद में 11 वर्ण होते है। क्रमशः दो तगण एक जगण और अन्त में दो गुरु। यह **समवृत्त छन्द** होता है।

तगण तगण जगण गु. गु.

SSI SSI ISI S S

गौराङ्गनाऽन्या च नराम्बराढ्या,
पिशङ्गकेशा शुनकानुयात।
पीनं नितम्बं परिधूनयन्ति,
दृष्टिं समाकर्षति तीरभाजम्।।[242]

समुद्र पूजा के अवसर पर गौरांगनाओं के वर्णन में **उपेन्द्रवज्रा छन्द** की संयोजना काव्य सौन्दर्य विवर्धक है –

जगण तगण जगण गु.गु.

ISI SSI ISI SS

लक्षण – **उपेन्द्र वज्रा जतजास्ततौगो।** 3/29 (वृत्तरत्नाकर)

उपेन्द्रवज्रा छन्द के प्रत्येक चरण में 11 वर्ण, क्रमशः जगण, तगण, जगण और अन्त में दो गुरु होता है।

जगण तगण जगण गु.गु.

ISI SSI ISI SS

इतस्तरुण्यो घृत साधु वेशाः,

पयोधिपूजा क्षत पुञ्ज हस्ताः।

विलोक्य नग्नाः सलिले निमग्नाः,

स्मिताक्षतान् तासु विनिक्षिपन्ति।।[243]

इसी प्रकार दक्षिणावर्ती नारी के वर्णन में कवि ने भावानुरुप **मन्दाक्रान्ता** की मन्द और आक्रन्त चाल को चरितार्थ किया है।

मगण भगण नगण तगण तगण गु.गु.

S S S S II I IIS SI SSI SS

काचित्तन्वीं विमल वदना बद्ध कौशेयशाटी,

जङ्घा कच्छ द्विगुणित पटी कीर्णपाटीर गन्धा।

हस्ते लीला कमल मृदुल प्रोञ्छनं चालयन्ती,

जूटी बन्ध ग्रथित कलिका राजते दाक्षिणात्या।।[244]

युवक चकरों का चित्त चुराती हुयी पंचनद निवासिनी के सौन्दर्य स्तुति में **शार्दूलविक्रीडितम् छन्द** का मनोहारी वर्णन दृष्टव्य है –

मगण सगण जगण सगण तगण तगण गु.

SSS IIS ISI IIS SSI SSI S

घृत्वापीन नितम्ब बिम्ब कवचं जंघोत्सवं सुन्दरम्,

चंचच्चारु पद क्रमोपरसिकं सल्वार संझाम्बरम्।

प्रावारं नवकंचुकंच ललितं काचित्तु पंजाम्बुजा,

यूनां चित्त चकोर मोह जननी गच्छत्यहो चन्द्रिका।।[245]

'केलिभूकैतवम्' खण्डकाव्य भी श्रृंगार रस प्रधान खण्डकाव्य है। केलिक्रीड़ा का प्रतिफल अवैध सन्तति की दुर्दशा, जन्मदाता का वियोग आदि की कल्पित कथानक को कवि ने मन्दाक्रान्ता, अनुष्टुप, उपजाति, वसन्ततिलका, मालिनी, शार्दूलविक्रीडितम् आदि छन्दों में पद्यवद्ध किया है।

मन्दाक्रान्ता छन्द में लिखित श्लोक, **विप्रलम्भ** का वैशिष्ट्य इस प्रकार व्यक्त कर रहा है –

मगण भगण नगण तगण तगण गु.गु.

ऽ ऽ ऽ ऽ ।। । ।। ऽ ऽ। ऽ ऽ। ऽ ऽ

कश्चित् कान्तो रुचिर वदनो गर्भजातः कुमार्याः,
प्राप्तोऽनाथालय–शिशुकुलाद् देवलेनात्मजार्थम्।
लब्ध्वा शिक्षां गुरुकुल गुरोर्देव भाषा विदोऽयम्,
स्वर्गयाते निजगुरु जने तत्पदे देवलोऽभूत।।[246]

उपजाति छन्द में गुम्फित आत्मिक चिन्तन से परिपूर्ण कलियुग में काल यापन का मर्मस्पर्शी व्यंग्य इस प्रकार है –

तगण तगण जगण गु.गु.

ऽ ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ (**इन्द्रवज्रा**)

कष्टं युगेऽस्मिन् निज शील रक्षा,
पुण्येऽपि तीर्थे विततेऽद्य पापे।
पतन्ति धीरा अपि पिच्छिलेऽस्मिन्,
चिरण्टि निष्ठीवन दूषिताध्वे।।[247]

। ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ (**उपेन्द्रवज्रा**)

प्रथम, द्वितीय चरण इन्द्रवज्रा तथा तृतीय, चतुर्थ चरण में उपेन्द्रवज्रा का मिश्रण होने से उपजाति छन्द है। इस खण्ड काव्य में **उपजाति छन्द** का अत्यधिक प्रयोग हुआ है।

कवि ने **अनुष्टुप छन्द** का प्रयोग भी बड़ी कुशलता से किया है।

। ऽ ऽ । ऽ ।

भार्या रुप वती शत्रुः, शास्त्रेषु पठितं मया।
अतो न कामयेरूपं, कन्या चिन्ताकरं परम्।।[248]

। ऽ ऽ । ऽ ।

अनुष्टुप छन्द में प्रत्येक चरण में आठ वर्ण होते है, पाँचवाँ वर्ण लघु, छठा वर्ण गुरु होता है। सप्तम वर्ण प्रथम तृतीय चरण में गुरु तथा द्वितीय, चतुर्थ चरण में लघु होता है।

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं,

सर्वत्र लघु पंचमम्।

द्विचतुष्पादयो ह्रस्वं

सप्तमं दीर्घ मन्ययोः।।

करुण रस प्रधान खण्डकाव्यों में छन्द योजना –

कवि पं. दवे ने करुणरस प्रधान दो खण्ड़काव्यों को छन्दोबद्ध किया है। गौ माता की करुणा कामधेनुशतकम् में, तो स्वयं की माता का वैधव्य जन्य करुणा का वर्णन कारुण्य कादम्बिनी में किया है। जिसमें रसानुकूल एवं भावाधारित छन्दों का प्रयोग हुआ है।

- **कामधेनुशतकम् में छन्द –**

कवि ने **'कामधेनुशतकम्'** में विविध प्रसंगों में अनुष्टुप, शार्दुलविक्रीडितम्, वसन्ततिलका, शिखरिणी, इन्द्रवज्रा व उपजाति छन्द का प्रयोग किया गया है।

हमारे सनातन धर्म एवं संस्कृति का आधार गौ माता का वर्णन **इन्द्रवजज्रा छन्द** में दृष्टव्य है –

तगण तगण जगण गु.गु.

ऽ ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ

धर्मस्य मूलं गणिता हि गावः,

ता एव मूलं निज संस्कृतेश्च।

सर्वेऽपि देवा वपुषि प्रतिष्ठाः,

इतिश्रुतौ नो भणितं हि तस्याः।।[249]

कामदुधा सुरनन्दिनी की वन्दना में **द्रुतविलम्बित छन्द** की छटा अवलोकनीय है –

नगण भगण भगण रगण

।।। ऽ ।। ऽ। । ऽ । ऽ

मधुरया सुधया सुरतोषिणी,

विपुलया रमया जनरंजिनी।

परमया कृपया कृषिवर्धिनी,

जयति कामदुधा सुरनन्दिनी।।[250]

इन्द्रवज्रा और **उपेन्द्रवज्रा** के मिश्रण से उत्पन्न वृत्त का भी प्रस्तुत काव्य में मंजुल सन्निवेश हुआ है –

जगण तगण जगण गु.गु.

I S I S S I S I S S (उपेन्द्रवज्रा)

प्रदक्षिणाप्यस्ति मता हि यस्याः,

परिक्रमा द्वीप युता धरायाः।

तगण तगण जगण गु.गु.

S S I S S I I S I S S (इन्द्रवज्रा)

रात्रौ दिवा वा विषमे गतानां,

भयापहन्त्री खलु सौरभेयी।।[251]

शार्दुलविक्रीडितम् छन्द का सुन्दर निदर्शन श्लोक में रसोपकारी है –

मगण सगण जगण सगण तगण तगण गु.

S S S I I S I S I I I S S S I S S I S

गौशाला प्रहरीव कोऽपि लहरी गोपाल पाथोधिजाम्,

मेघायां निवहन् प्रसन्न मनसा गोदुग्धमात्राशनः।

काषायोत्तर वाससा वलयितो धृत्वासितं कुंचुकम्,

धेनूनां कुल रक्षणाय सततं संचिन्तयन् भ्राम्यति।।[252]

धेनुओं को विपन्न देखकर गो हत्यारों को नष्ट करने के लिये प्रार्थना **वसन्ततिलका छन्द** में की गयी है –

तगण भगण जगण जगण गु.गु.

S S I S I I I S I I S I S I

लंकापतेरपि बलं परिनिघ्रतस्ते,

हे मारुते बलवतस्तव तिष्ठोऽद्य।

गोघातकाः रघुपतेः कुल कीर्ति पंकाः,

जीवन्त्यहो कथमिमे विकचाननाः भो।।[253]

कारुण्यकादम्बिनी –

कवि ने अपनी माता के वैधव्य जीवन की करुणा को आधार बनाकर संसार की अन्य माताओं की पीड़ाओं को वर्णित करने वाले इस खण्डकाव्य के कथानक को शार्दूलवीक्रीडितम् वसन्ततलिका, मन्दाक्रान्ता छन्द में श्लोक बद्ध किया है। मां की वैधव्य वेदना के कारण श्री हीन गृह वाटिका का वर्णन **शार्दूलविक्रीडितम् छन्द** में प्रस्तुत किया है :

मगण सगण जगण सगण तगण तगण गु.

S S S | | S | S| | | S S S | S S | S

वैधव्योदित वेदनातिविकला शून्या श्रिया वाटिका,

दैन्य प्लुष्ट–समस्त सौख्य सुषमा भग्नाश्रया वल्लरी।

दुर्भाग्योदित झंझया कलिलतां याता रजोव्यापृता,

घृत्वाऽम्भि–निबन्धं हि कथमप्येषा दधे जीवनम्।।[254]

जाड़े के दिनों में गुदड़ी ओढ़ती है, किन्तु अपने पुत्र को कम्बलों से ढ़कती है, रुखा–सूखा खाकर भी सन्तति को गरम भोजन खिलाती हुयी, न जाने हमारे लिये कितने संकटों को झेलती है। इस प्रकार मां की करुणा का मार्मिक वर्णन **मन्दाक्रान्ता छन्द** से मुखरित हुआ है –

मगण भगण नगण तगण तगण गु.गु.

S S S S | | | | | S S | S S | S S

शीते कन्थावृतकृशतनुः कम्बलैश्छादयन्ती,

ग्रीष्मे स्विन्ना व्यजनधुनितैर्नो मुदावीजयन्ती।

शुष्के भोज्यैरुदर भरिणी चात्मनो नः कवोष्णैः,

नो जाने सा कति कति रुजोऽस्मात्कृते हा प्रसेहे।।[255]

वात्सल्य भाव की याचना का नाद–माधुर्य **वसन्ततिलका छन्द** में मुखरित हुआ है –

तगण भगण जगण जगण गु. गु.

S S | S | | | S | | S| S S

वात्सल्य भाव भरितानि सुधोपमानि,

मातस्त्वदीय कलितानि हृदि स्फुरन्ती।

यत्संस्मृति प्रणिहतो जगदम्बिकायाः,

वात्सल्यमेव पुरतो मनसा प्रयाचे।।[256]

2. वीररस प्रधान –

- **परिखायुद्धम् खण्डकाव्य में छन्द योजना –**

खाड़ी युद्ध पर पौराणिक कथा के माध्यम से लिखा गया यह खण्डकाव्य दो राष्ट्राध्यक्षों के हठीय पराक्रम को प्रकट करता है। काव्य में रसानुकूल पदशय्या से सुसज्जित छन्दों का संयोजन कवि की छन्द क्षमता को प्रतिबोधित करता है। वीररस का प्रवाह वसन्ततिलका छन्द में उत्युत्तम कहा गया है, कवि दवे ने इसकी सार्थकता भी सिद्ध की है, जिसका निदर्शन अधोलिखित श्लोकों के दर्शन में प्रत्यक्ष हो रहा है –

तगण भगण जगण जगण गु.गु.

S S I S I I I S I I S I S S

गर्वोन्नतं सकृदिदं समरे मदीयं

शक्ति प्रभाकर करोज्ज्वल भाल पट्टम्।

छिन्नं पतेदवशिनो धरणौ नु कामम्,

नो जीवते पद मिदं भविताऽवनम्रम्।।[257]

युद्ध के दौरान विकट अग्नि, प्रचण्ड ज्वाला, काली स्याही सा आकाश का वर्णन **द्रुतविलम्बित छन्द** में अवलोकनीय है –

नगण भगण भगण रगण

I I I S I I S I I S I S

प्रलय पावक चण्ड शिखोज्ज्वलः,

समुदितः परितो विकटानलः।

असित कज्जल पूर मिवोद्गिरिन्,

वियदहो विदधे स मषीगृहम्।।[258]

उद्दाम सद्दाम के दर्प का दृश्य **'शार्दूलविक्रीडितम्'** छन्द में दर्शनीय है –

मगण सगण जगण सगण तगण तगण गुरु

S S S I I S I S I I I S S S I S S I S

सद्दामोऽप्यवलम्ब्य दर्पवशगोमार्गं तमेवाधुना,

सिद्ध स्वात्मविनाशनाय कुरुते राष्ट्रं स युद्धोन्मुखम्।

दैवाद् भूरि शिलारसं हि धरणेः लब्ध्वा हिरण्यार्ध्यदं,

जाताविक्त विनष्ट शिष्ट सुमतेरभ्रंकथा दृष्टयः।।[259]

इन्द्रवज्रा छन्द में युद्धोपराग का वर्णन रमणीय है –

तगण तगण जगण गुरु गुरु

S S I S S I I S I S S

नष्टेपि कामं युधिरक्त बीजं,

वीर्ये न शान्तस्तदमर्ष भावः।

काले तु प्राप्ते पुनरेष एव,

युद्धोपरागं जनितास्ति नूनम्।।[260]

इस प्रकार परिखायुद्धम् खण्डकाव्य में **वसन्ततिलका, द्रुतविलम्बित, शार्दूलविक्रीडितम् एवं इन्द्रवज्रा छन्द** का अधिक प्रयोग किया गया है, जो वीर रस परिपाक के लिए श्रेष्ठ है।

भक्ति रस प्रधान खण्ड़ काव्यों में छन्द योजना –

भक्त कवि पं. दवे के भक्तिरस प्रधान लहरी काव्य आदि स्तोत्र परक खण्ड़काव्यों में भाव–प्रवाहक छन्दों की संयोजना की है। कुलदेवी कल्पिता भगवती ललिता देवी की स्तुति में रचित **ललितालहरी** खण्ड़काव्य, जगद्गुरु शंकराचार्य प्रणीत सौन्दर्य लहरी की शैली में शिखरिणी छन्द में श्लोक बद्ध है। शिखरिणी छन्द भावों को व्यक्त करने के लिए उत्तम छन्द माना गया है। गेयात्मकता के कारण यह लोकप्रिय एवं आनन्ददायक होता है। कवि लहरी काव्य की परम्परा को आगे बढ़ाते हुये, सम्पूर्ण काव्य में शिखरिणीवृत का निदर्शन किया है।

अलंकारों से अलंकृत ललिता देवी के विग्रह के सौन्दर्य को बड़ी सहजता एवं कुशलता से **शिखरिणी छन्द** में इस प्रकार वर्णन किया है –

यगण मगण नगण सगण भगण लघु गुरु

I S S S S S I I I I I S S I I I S

त्वदीयं सौन्दर्यं ललित वपुषो मण्डनजुषः,
प्रवीणाः शास्त्राणां जलधि मथनावाप्तपटुताः।
कवीशा अप्यद्धा कवयितु मलं नात्मकलया,
पुनः क्वाहं बालः कवि कुलमशो मन्दमतिकः।।[261]

अपांगलीला में छन्द निरुपण –

श्री विद्या की अधिष्ठात्री, कवि की इष्ट देवी भगवती ललिता की लीला का विविध छन्दों में निरुपण किया गया है। अपांगलीला नामक इस खण्डकाव्य में कवि ने अश्वघाटी नामक अप्रचलित छन्द को आलोकित किया है। कनक–मञ्जरी, मत्तमयूर, पंचचामर एवं तोटक छन्द का प्रयोग भी अनुकरणीय है। प्रचलित छन्दों में शार्दूलविक्रीडितम्, शिखरिणी, भुजंगप्रयात, मालिनी, वसन्ततिलका, उपजाति आदि छन्दों का रम्य प्रयोग काव्योत्कर्षक है।

कवि ने ग्रन्थ का आरम्भ **अश्वघाटी छन्द** में किया है। संस्कृत छन्द शास्त्रों में अश्वघाटी छन्द का उल्लेख नहीं मिलता है। अतः प्रमाणिक रुप से अश्वघाटी छन्द का लक्षण अप्राप्त है। इन्टरनेट पर उपलब्ध साहित्य के अनुसार सर्वप्रथम शंकराचार्य ने भ्रमण करते हुए अम्बाजी की स्तुति अश्वघाटी छन्द में की थी। अश्वघाटी छन्द मूलतः मराठी भाषा का छन्द है। इस छन्द का दूसरा नाम अमृत ध्वनि छन्द है। जो भोजपुरी भाषा के साहित्य में प्राप्त होता है। आधुनिक संस्कृत साहित्य में मथुरानाथ शास्त्री ने अश्वघाटी छन्द का प्रयोग जयपुर वैभवम् नामक खण्डकाव्य में किया है। तत्पश्चात् समीक्ष्य कवि पण्डित श्रीराम दवे के खण्डकाव्य अपांगलीला में ग्रन्थ के आरम्भ में भगवती की स्तुति अश्वघाटी छन्द में

किया गया है। अश्वघाटी छन्द में कुल बाईस वर्ण होते है। जिसमें क्रमशः तगण भगण यगण जगण सगण रगण नगण अन्त में एक गुरु होता है। इस प्रकार नवछन्द में रचित मंगलाचरण का यह श्लोक और नवरस को द्योतित कर रहा है –

तगण भगण यगण जगण सगण रगण नगण गु.

S S I S I I I S S I S I I I S S I S III S

सिन्दूर पूर परिलिप्ताननो वरदहस्तः शिवांकलसितः,

सिद्धी प्रदो ललित लीला रतः सततमानन्दमोदनकरः।

देवाग्रगण्य पद पंकेरुहो लुलित शुण्डापसारितपरः,

भूयात्सदैव मम कामेश्वरी चरण भक्ति प्रसादनकरः।।[262]

कवि ने जगत् जननी की सृष्टिलीला को **उपजाति छन्द** में इस प्रकार वर्णित किया है –

जगण तगण जगण गु.गु.

I S I S S I I S I S S

निशा करोऽयं वियति प्रसन्नो,

S S I S S I I S I S S

राका प्रशान्ता जन मोहनी च।

ताराश्च शौभाग्यकरा निशाया,

स्तवैव लीला कलिता लसन्ति।।[263]

पं.दवे ने अपांगलीला खण्ड़काव्य में प्रचलित छन्दों में **शार्दूलविक्रीडितम् छन्द** का अत्यधिक प्रयोग किया है। स्तुति परक काव्यों में इस छन्द का अलौकिक महत्त्व बताया गया है। ललिता देवी के अपांग की माया का वर्णन कवि ने अतितन्मयता से किया है –

मगण सगण जगण सगण तगण तगण गु.

S S S I I S I S I I I S S S I S S I S

सैवेयं वसुधा त एव मनुजास्तान्येव भूतान्यपि,

सर्वंचैक पदे परीत गतिकं जातं हि नः पश्यताम्।

जाताः संहृत शासनाः नृपतयः प्राप्तं प्रजाशासनं,

मन्ये सर्वमिदं तवैव ललिते! दृष्टेर्हि लीलायितम्।।[264]

तोटक छन्द का निदर्शन कवि ने युग्लीला द्वितीय इकाई में इस प्रकार किया है –

सगण सगण सगण सगण

I I S I I S I I S I I S

''इह तोटकमम्बुधिसैः प्रथितम्'' 3/47 (वृत्तरत्नाकर)

प्रत्येक चरण में चार सगण हो वहाँ **तोटक छन्द** होता है।

सगण सगण सगण सगण

I I S I I S I I S I I S

कलिकालकला कलितैरधुना,

न नु शारदयाप्यति वंचितया।

भृतिकानुगतिर्विहिता विकृता,

ललिते दययाशु निवारयताम्।।[265]

'कृपालीला' में **मत्तमयूर छन्द** में किया गया वर्णन, काव्य की चारुता को प्रकट करता है –

मत्तमयूर छन्द त्रयोदशाक्षरावृत्त है, प्रायः काव्यों में इसका प्रचलन नहीं देखा गया। है। इसका लक्षण इस प्रकार है –

मगण तगण यगण सगण गु.

S S S S S I I S S I I S S

'वेदैरन्ध्रैम्तौ यसगा मत्तमयूरम्' 3/72 (वृत्तरत्नाकर)

लक्षणानुसार प्रत्येक चरण में मगण, तगण, यगण, सगण और अन्त में एक गुरु होता है।

यथा – मगण तगण यगण सगण गुरु

S S S S S I I S S I I S S

देवा एते दैत्यजनाना स्तुति मुग्धाः,

वीक्षन्ते नो वरफलमज्ञाः दुष्टानाम्।

आयान्त्येते प्राप्ते कष्टे तव शरणं,

नानारुपा तेषां कुरुषे त्वं भरणम्।।[266]

पंचचामर छन्द का प्रयोग भगवद्–स्तुति में प्रशस्त माना गया है। रावण कृत शिवस्तुति पंचचामर छन्द के कारण अधिक प्रसिद्ध हुयी है। पं. दवे ने अपांगलीला के **'कृपालीला'** भाग में भगवती ललिता देवी की स्तुति **पंचचामर छन्द** में की है –

पंचचामर छन्द का लक्षण इस प्रकार है – जरौजरौजगाविदम् वदन्ति पंचचामरम्।

जगण रगण जगण रगण जगण गु.

I S I S I S I S I S I S I S I S

त्वदीय पादपंकजे विधाय भक्ति भावना,

भजन्ति भक्त पुंगवाः प्रमोदमात्मना भृशम्।

विलोक्य वत्सलाननं त्वदीयमम्ब मोहकम्,

भवन्ति योगिनोऽपि शैशवातुराः सदा मुदा।।[267]

नट–नटियों के मनोहर चित्र साधुजनों के चित्त को दूषित करने का मनोहारि वर्णन **भुजंगप्रयात छन्द** में रस–रमणीयता को अभिव्यक्त कर रहा है।

भुजंगप्रयात छन्द का लक्षण इस प्रकार है –

यगण यगण यगण यगण

I S S I S S I S S I S S

भुजंगप्रयातं चतुर्भिः यकारैः"   (छन्दों मंजरी 2/48)

भुजंगप्रयात छन्द के प्रत्येक चरण में चार यगण होते है।

यगण यगण यगण यगण

I S S I S S I S S I S S

नटानां नटीनां मनोहारि चित्रैः,
विलासोन्मुखान् कुर्वते साधुचित्रान्।
अहो सर्वतः कृत्य जलैरभद्रै,
मनोवृत्तिमार्यात्मनां दूषयन्ति।।[268]

मालिनी छन्द का सन्निवेश काव्य माधुरी को प्रशस्त कर रहा है –

मालिनी छन्द का लक्षण इस प्रकार है –

ननमययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः। (3/87 रत्नाकर)

नगण नगण मगण यगण यगण

I I I I I I S S S I S S I S S

लगति नहि मनो में, चंचलं ध्यान मार्गे,
विशति च नहि वृत्ति, र्व्याकृता पूजनेऽपि।
विकृति विकल चेतो, रंजनार्थं निबद्धं,
भवतु जननि! काव्यं तेऽर्चनारुपमेतत्।।[269]

वस्तुतः कवि दवे का खण्डकाव्य अपांगलीला विविध छन्दों का आगार प्रतीत होता है, जिसमें विविध प्रचलित, अप्रचलित छन्दों का मंजुल सन्निवेश स्तुति परक भावों को विभाजित करता है।

भारतीविलास में छन्द योजना –

शब्द ब्रह्म विलास लीला की लीला भूमि, जहाँ वैखरी वाग् विविध व्यवहार–विहार–विनोद–नोदिनी विलक्षणा शक्ति सम्पन्न भारती की स्तुति की गयी है। ऐसे भारती विलास

नामक खण्डकाव्य में कवि ने विविध छन्दों का प्रयोग किया है, जिससे भारती का वैविध्य मुखरित हुआ है।

छन्द वस्त्रों को धारण की हुयी, अपने ललित अंगों को शब्द और अर्थ के अलंकार से सजाकर यति–गति–लय युक्त, मधुर संगीत से सकल संसार को मुग्ध कर देने वाली भारती की स्तुति में **मन्दाक्रान्ता छन्द** की माधुरी देखिये –

मगण भगण नगण तगण तगण गु.गु.

S S S S || | || S S| S S| S S

स्निग्धांगी त्वं गुरु लघु गुणैगुम्फितैर्वर्णमात्रा,

छन्दोबन्धैर्ललित वसनै भूषितांगीवरेण्या।

लब्ध्वा कण्ठे स्वर लययुतं गीति माधूर्य भावम्,

शब्दार्थालंकृति भरयुता राजसे विश्वहृदा।।[270]

सिद्ध, मुनि, तपस्वियों के हृदय में रमण करने वाली भारती की स्तुति में शिखरिणी छन्द की सुन्दर संयोजना हुयी है –

यगण मगण नगण सगण सगण ल. गु.

| S S S S S ||| | | S ||| | S

मुनीनां सिद्धानां तपसि निरतानामपि वने,

स्थितानां संविष्टा हृदि कथमये! हंस विधिना।

विकल्पं संकल्पं सकलमपि हित्वा च रहसि,

भजन्ते येनैते परममुदमात्मन्य भिरताः।।[271]

शब्द स्वरुपा विविध कला मण्डिता भगवति भारती के सोन्दर्य का वर्णन **हरिणी छन्द** में प्रस्फुटित है। **हरिणी छन्द** का लक्षण इस प्रकार है–

'नसमरसलागः षडवेदैहर्यहरिणी मता।' 2/88 (छन्दोमंजरी)

अर्थात् जिसके प्रत्येक चरण में नगण, सगण, मगण, रगण, सगण, एक लघु और एक गुरु होता है वहाँ **हरिणी छन्द** होता है।

नगण सगण मगण रगण सगण ल.गु.

||| || S S S S S | S | | S | S

जनयति परां प्रीति चित्ते त्वदीयनव नवम्,

रसिकरमणं चारु स्निग्धं कला कुल मण्डितम्।

नवरस सुधा सिक्तं गात्रं रुचा समलंकृतम्,

अभिनव पदास्पन्दानन्द कवीन्द्रसुधावहम्।।[272]

भौतिक विज्ञान की चमत्कृति एवं बुद्धिबल के अहंकार को कवि ने **'शार्दूलविक्रीडितम्' छन्द** में इस प्रकार प्रकट किया है –

मगण सगण जगण सगण तगण तगण गु.

ऽ ऽ ऽ । । ऽ । ऽ । । । ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ

विश्वं नृत्यति दर्पणेऽद्य सदने नानाविधं यान्त्रिके,

निर्दिष्टे पथि प्रत्ययो नहि परं शास्त्रैर्बुधानां मनाक्।

नास्तिकं दिति जादृतं दृढ़ महो सन्धार्यते मानसे,

मेधा दर्पविनष्ट–देव विभवं जातं जगन्मण्डलम्।।[273]

इस प्रकार भारती विलास नामक खण्डकाव्य में **मन्दाक्रान्ता, शिखरिणी, शार्दूलविक्रीडितम्, हरिणी छन्दों** का अधिक प्रयोग हुआ है।

अद्भुत रस प्रधान खण्डकाव्य 'कालकौतुकम्' में छन्द योजना –

काल की विडम्बना से हुये अद्भुत परिवर्तन के परिणाम स्वरुप भारतवर्ष की तात्कालिकी स्थिति के व्यंग्यात्मक चित्रण में रस भावानुकूल पद शय्या की संयोजना में सार्थक छन्द योजना दृष्टिगोचर होती है।

इस खण्डकाव्य में मुख्य रुप से अनुष्टुप, उपजाति, वसन्ततिलका, शिखरिणी, शार्दूलविक्रीडितम् छन्द का प्रयोग हुआ है।

विश्वधरा पर अभिनव वसन्त के उदय का व्यंग्यात्मक कौतुक अनुष्टुप छन्द में अति सहजता से वर्णत किया है –

। ऽ ऽ । ऽ ऽ

विचित्राऽभिनवः कश्चित्, वसन्त उदितो भुवि।

। ऽ ऽ । ऽ ।

प्रकृति यो यथा कामं नर्तयत्यात्मवांछया।।[274]

उपजाति वृत्त का मंजुल सन्निवेश अवलोकनीय है –

तगण तगण जगण गु.गु.

ऽ ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ **(इन्द्रवज्रा)**

मार्गाः विशालाः जनपाठशालाः,

पत्रेषु कामं कलिता भवन्तु।

जगण तगण जगण गु.गु.

। ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ **(उपेन्द्रवज्रा)**

गिरन्ति वित्तं यदि पीठनिष्ठाः,

भो तेन ते का भवितास्ति हानिः।।[275]

मालिनी छन्द की मृदु पदशय्या काव्य की मंजुलता को मनोहर बना रही है।

नगण नगण मगण यगण यगण

||| ||| SSS ISS ISS

कितव मधुप मुग्धाः मन्दकान्तानुरागाः,

गलित कुसुम चिन्ता, मार्दवे वीत मोहाः।

ललित चिकुर शून्याः स्निग्ध यत्रानभिज्ञाः,

विटप विमुख चित्ताः साम्प्रतं वैवृतव्यः।।[276]

अनूदित खण्डकाव्य में छन्द योजना –

कवि पं. दवे ने तीनों अनूदित खण्डकाव्यों में भावानुकूल छन्दों का चयन किया है।

अकिंचन चैत्यम् में टॉमस ग्रे के शोक गीतों को **'शार्दूलविक्रीडितम्'** छन्द में कारुण्य मूलक भावानुवाद किया है।

विषाद् भाव की भंगिमा को **शार्दूलविक्रीडितम् छन्द** में अद्भुत प्रस्तुति देखिये –

मगण सगण जगण सगण तगण तगण गुरु

SS S IIS I S I IIS SS I SS I S

विष्टो मृत्युमुखेऽपि चात्रमनुजो ह्याशा मुखोदृश्यते,

बन्धून तस्य निमील्य मान नयने शोकाकुलान्नात्मनः।

द्रष्टुं वांछत एव साश्रुवदना नाक्रोश मानान् मृतौ,

भस्माप्यस्य चितागतं द्रुतमितो नाऽशोष्णतां मुंचति।।[277]

द्वितीय अनूदित खण्डकाव्य **'यवनीनवनीतम्'** में उर्दू के ग़ज़ल का भावानुवाद विविध छन्दों में किया गया है। अनुष्टुप, उपजाति आदि प्रचलित छन्दों का प्रयोग प्राप्त होता है। सर्वप्रथम अनुष्टुप छन्द द्वारा प्रस्तुति इस प्रकार है –

ISS ISI

सौन्दर्यं मुग्ध भावोऽयं, स्मृतिर्वास्ति प्रवीणता।

ISS ISI

कृत्रिम सकलं चैतत्, परीक्षा स्नेहिनामियम्।।[278]

समागत वसन्त का वर्णन **वंशस्थ छन्द** में इस प्रकार किया गया है –

जगण तगण जगण रगण

ISI SSI ISI SIS

समागतोऽयं कुसुमाकरः पुनः,

गतानि पुष्पाणि विकास भावम्।
मुग्धाः वयंचापि भवेम भूयः,
मनोऽपि नूनं भविता प्रमत्तम्।।[279]

उपजाति छन्द का निदर्शन देखिये –

जगण तगण जगण गु.गु.
। ऽ। ऽ ऽ। ।ऽ। ऽ ऽ (उपेन्द्रवज्रा)
अतृप्त कामैः परिपूर्णमेतत्,
तगण तगण जगण गु.गु.
ऽ ऽ । ऽ ऽ। । ऽ । ऽ ऽ (इन्द्रवज्रा)
चेतो मदीयं विविध प्रहारैः।
मिष्टान्न द्रव्यैर्भरितं नुमन्ये,
मित्रैर्विभक्तं सहयोग दानैः।।[280]

'ब्रह्मरसायनम्' –

सूफीमताश्रित्य सिन्धी भाषा में रचित 'शाहजोरसालो' के पद्यों का संस्कृत श्लोकानुवाद ब्रह्मरसायनम् है। इसमें लौकिक प्रेम कहानियों के द्वारा अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना हुयी है। कवि दवे ने इस अनूदित काव्य में प्रायः श्लोकों की संरचना अनुष्टुप तथा उपजाति छन्दों में की है – **उपजाति छन्द** में भावानुवाद इस प्रकार है –

तगण तगण जगण गु.गु.
ऽ ऽ । ऽ ऽ। । ऽ । ऽ ऽ (इन्द्रवज्रा)
पृच्छन्तु गत्वा शलभं दहन्तं,
जगण तगण जगण गु.गु.
। ऽ। ऽ ऽ। ।ऽ। ऽ ऽ (उपेन्द्रवज्रा)
सुखं हुताशा ज्वलनेऽस्ति किं भो।
जानन्ति तत् प्रेम शरानुविद्ध,
वक्षस्थला वह्नि हुतात्मदेहाः।।[281]

अनुष्टुप छन्द में अनुवादित पद्य इस प्रकार है –

। ऽ ऽ   । ऽ ।
व्याधिर्मे विरतोस्तद्य, यात्प्रियेणा श्रुता व्यथा।
। ऽ ऽ   । ऽ ।

स्वदितं शूल सौभाग्यं तत्र लब्धाः मुदोप्यहो।।[282]

इस प्रकार कवि दवे ने अपने खण्डकाव्यों में विविध छन्दों का प्रयोग किया है, जो काव्य शास्त्रीय मानदण्डों के अनुरुप है। **'अश्वघाटी'** छन्द का प्रयोग एक नूतन प्रयोग कहा जा सकता है। पंचचामर छन्द मत्तमयूर छन्द तथा तोटक जैसे अप्रचलित छन्दों का प्रयोग भी प्राप्त होता है। जो अपांगलीला नामक खण्डकाव्य में दृष्टिगोचर है। निष्कर्ष रुप में कहा जा सकता है कि आधुनिक संस्कृत साहित्य के मूर्धन्य कवि पं. श्रीराम दवे के खण्डकाव्यों की छन्द योजना श्लानीय और अनुकरणीय है।

कवि का प्रिय छन्द **मन्दाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडितम्, शिखरिणी तथा उपजाति** छन्द है। क्योंकि भक्ति और करुणा इनके काव्यों में विशेष रुप से देखा गया है। जिसकी अभिव्यक्ति के लिए उक्त छन्दों का उपयुक्त प्रयोग किया गया ळें

(घ) अलंकार योजना –

साहित्य शास्त्रियों ने काव्य की सम्यग् समीक्षा के लिये कतिपय मानदण्ड सुनिश्चित किये है, जिसमें अलंकार का अहम् स्थान है। कवियों ने काव्य सर्जना में अलंकार संयोजन को इतना अधिक महत्त्व क्यों दिया है ? कारण यही है कि, सामान्य कथन या उक्ति में वह आकर्षक प्रभाव व सरसता नहीं होती है जो एक अलंकृत कथन में होती है। उसमें चमत्कार होता है, आकर्षण होता है और वह श्रोता या पाठकों को विशेष रुप से प्रभावित करता है। समीक्ष्य कवि पं. श्रीराम दवे इस तथ्य को स्वयं स्वीकारते है, कि प्रभावी अभिव्यक्ति के लिये वाणी का आलंकारिक होना जरुरी है।

अंलकार क्या है ?

''अलंकरोति इति अलंकारः'' इस शाब्दिक व्युत्पत्ति के अनुसार शरीर को विभूषित करने वाले अर्थ या तत्व को अलंकार कहते है। जैसे शरीर को अलंकृत करने के कारण कटक, कुण्डल आदि आभूषणों को अलंकार कहा जाता है, वैसे ही काव्य के शरीर भूत शब्द और अर्थ को अलंकृत करने के कारण अनुप्रास, यमक, उपमा आदि **अलंकार** कहलाते है। काव्य शास्त्रीय दृष्टि से अलंकार शब्द के करण परक तथा भाव परक अर्थ द्वय किये जाते है –

1. **करण परक –** ''अलंक्रियते अनेन इति अलंकारः''।
   अर्थात् जिसके द्वारा अलंकृत किया जाता है वह साधन रुप अलंकार है।
2. **भाव परक –** ''अलंकृतिः अलंकारः'' अर्थात् अलंकरण को अलंकार कहते है।

वस्तुतः अलंकार अभिव्यक्ति की एक सुन्दर सशक्त प्रणाली है। साधारण कथन भी अलंकारों से विभूषित होकर विशेष मनोहारी बन जाता है। अतः अलंकार साधारण कथन न

होकर चमत्कार पूर्ण उक्ति है। कथन करने की एक ललित भंगिमा है। जिस कथन में या उक्ति में कोई भंगिमा हो वहीं कथन अलंकार होता है।

काव्य में अलंकारों की स्थित –

अलंकार काव्य के उत्कर्ष को बढ़ाते है। अतः वे काव्य के उत्कर्षाधायक तत्व कहलाते है, स्वरुपाधायक या जीवनाधायक तत्व नहीं। अतः काव्य में अलंकारों की स्थिति अपरिहार्य नहीं है। ऐसा आचार्य मम्मट का मत है।

उनके अनुसार काव्य में अलंकार न भी हो, तो भी काव्य की कोई हानि नहीं होगी –

''तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृति पुनः क्वपि''[283]

आचार्य विश्वनाथ तथा ध्वनि सम्प्रदायवादी आचार्य गण भी अलंकारों को काव्य का अस्थिर धर्म ही मानते है।

शब्दार्थयोः अस्थिराः ये धर्माश्शोभातिशायिनः।
रसादिनुपकुर्वन्तोऽलंकारास्तेऽङ्गदादिवत्।।[284]

भामह, रुद्रट प्रभृति अलंकार सम्प्रदाय वादी अलंकार को ही काव्य का जीवातु–प्राणाधार मानते है, उनके अनुसार अलंकार काव्य का **स्थिरधर्म व अपरिहार्य** तत्व है। अलंकार रहित काव्य की कल्पना उनकी दृष्टि में उष्णता रहित अग्नि की कल्पना के समान उपहास योग्य है। जैसा कि चन्द्रालोककार जयदेव ने अभिव्यक्त किया है –

अंगी करोति यः काव्यं शब्दार्थावलंकृति।
असौ न मन्यते कस्मात् अनुष्णमनलंकृतिः।।[285]

इस प्रकार आलंकारिक आचार्यों के मत में काव्य का समस्त सौन्दर्य अलंकार है। काव्य में प्रचुरता से इनका प्रयोग होता है। किसी तथ्य, घटना, अनुभूति या चरित्र की भावपूर्ण अभिव्यक्ति के लिये काव्य में अलंकारों का प्रयोग आवश्यक है।

अलंकारों के विभाजक तत्व –

अलंकारों का मूलाधार शब्द और अर्थ होता है, इसी आधार पर अलंकारों के भेद किये जाते है। जहाँ अलंकार शब्दाश्रित होता है, वहाँ शब्दालंकार होता है और जहाँ वह अर्थाश्रित होता है, वहाँ अर्थालंकार होता है। जो अलंकार शब्द परिवर्तन को सहन नहीं करता, वह शब्दालंकार है और जो शब्द परिवर्तन को सहन करता है, वह अर्थालंकार है। जहाँ शब्द और अर्थ दोनों में ही चमत्कार होता हो, वहाँ उभयालंकार माना जाता है। इस प्रकार अलंकारों को तीन भागों में विभक्त किया गया है –

1. शब्दालंकार – अनुप्रास, यमक आदि।
2. अर्थालंकार – उपमा, रुपक आदि।

3. उभयालंकार – पुनरुक्तवद्भास आदि।

अलंकारों की संख्या –

काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों में नये अलंकारों के समावेश से अलंकारों की संख्या में वृद्धि होती रही है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र से अलंकार–संख्या की यात्रा प्रारम्भ हुयी, जो अप्पयजि दीक्षित के कुवलयानन्द तक बढ़ते क्रम में गतिमान रही।

काव्यप्रकाश के व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर ने अलंकार की संख्याओं का संग्रह प्रस्तुत किया है[286]

1. आचार्य भरत – 4
2. आचार्य भामह – 39
3. आचार्य दण्डी – 35
4. आचार्य उद्भट – 40
5. आचार्य वामन – 33
6. आचार्य रुद्रट – 52
7. आचार्य भोजराज – 72
8. आचार्य मम्मट – 67
9. आचार्य रुप्यक – 81
10. आचार्य जयदेव – 100
11. आचार्य विश्वनाथ – 88
12. आचार्य जगन्नाथ – 71
13. आचार्य अप्पयजि दीक्षित – 124

अलंकारों का वर्गीकरण करते हुये अलंकार सर्वस्वकार आचार्य रुपक ने अपने 67 अलंकारों को सात वर्गों में विभक्त किया है –

1. सादृश्यमूलक –29, उपमा, रुपक, उत्प्रेक्षा, तुल्ययोगिता, अर्थान्तरन्यास आदि।
2. विरोधमूलक – 11, विभावना, विशेषोक्ति, सम, विषम, आदि।
3. श्रृंखलाबद्धमूलक – 03, कारणमाला, एकावली आदि।
4. तर्कन्याय मूलक – 02, काव्यलिंग, अनुमान।
5. वाक्यन्याय मूलक – 08, यथासंख्य, परिसंख्या, समाधि आदि।
6. लोकन्याय मूलक – 07, प्रतीप, तद्गुण आदि।
7. गूढार्थप्रतीत मूलक– 07, व्याजोक्ति, वक्रोक्ति, स्वाभावोक्ति।

आचार्य रुद्रट ने अपने काव्यालंकार में 1. औपम्य, 2. वास्तव 3. अतिशय 4. श्लेष को ही अलंकार वर्ग विभाजन का आधार बनाया है। किन्तु रुपक के वर्गीकरण को ही युक्तिसंगत एवं वैज्ञानिक आधार माना गया है। पं. श्रीराम दवे ने उपर्युक्त प्रायः सभी प्रकार के अलंकारों का प्रयोग अपने खण्डकाव्यों में किया है।

आधुनिक काव्य शास्त्री डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने अभिनवकाव्यालंकारसूत्र के माध्यम से अलंकार के अनेक नव सिद्वान्तों की स्थापना की है। जिसका अवलोकन भी अपेक्षित है। आचार्य त्रिपाठी ने अपने विकासवादी अभिनव चिन्तन में अलंकार को नई दिशा दी है, उन्होंने रस, गुण, रीति, वृत्ति आदि प्रभेदों को अलंकारों में ही अन्तर्भूत कर लिया है –

रसश्चापि गुणाश्चापि रीतयो वृत्तयस्त था।
सर्वेध्वनि प्रभेदाश्च ये प्राचीनैरुदाहृताः।।
सन्धि सन्ध्यंगवृत्यंगलक्षणानि तथैव च।
अलंकारस्य परिधौ सर्वे चान्तर्भवति ते।।[287]

आचार्य त्रिपाठी ने अलंकार को दो भागों में विभक्त किया है।[288]

1. आभ्यान्तर 2. बाह्य

आभ्यान्तर अलंकार एकादश है –

1. प्रेमा 2. आह्लाद 3. विषादन 4. विभीषिका 5. व्यंग्य 6. कौतुक 7. जिजीविषा 8. अलंकार 9. स्मृति 10. साक्ष्य 11. उदात्त[289]

बाह्य अलंकार चार है –

1. संघटनाश्रिता 2. विरोधमूलकाः 3. औपम्यमूलकाः 4. वृत्तिमूलकाः।

समष्टि रुप में बाह्य अलंकारों की संख्या अष्टादश कल्पित की है।

"साकल्येन ते अष्टदश संख्यकाः सन्ति।"[290]

1. संघटनाश्रित बाह्य अलंकार के अन्तर्गत –

1. अन्यथा करण 2. छाया 3. जाति 4. अतिशय

2. विरोधमूलक बाह्य अलंकार के अन्तर्गत –

1. अपह्नुति 2. विरोध 3. असंगति 4. विषम 5. छन्द 6. तानव

3. औपम्यमूलकबाह्य अलंकार के अन्तर्गत –

1. उपमा 2. रुपक 3. उत्प्रेक्षा 4. दीपक

4. वृत्तिमूलकबाह्य अलंकार के अन्तर्गत –

1. नादानुवृत्ति 2. यमक 3. श्लेष 4. लय[291]

आधुनिक परम्परा के काव्यशास्त्री आचार्य त्रिपाठी ने भेदोपभेद सहित 11+18 = 29 अलंकारों की अभिनव उद्भावना की है, जो आधुनिक संस्कृत साहित्य के काव्यों में चिन्तनीय तथ्य है।

पं श्रीराम देव आधुनिक संस्कृत साहित्य के कवि है, उनका खण्डकाव्य प्राचीन आचार्यों द्वारा प्रतिपादित अंलकारों से अंलकृत तो है ही किन्तु नवीन आचार्यों द्वारा कल्पित अलकारों का समावेश भी कतिपय स्थलों पर प्रेक्षणीय है।

अंलकार का काव्य के साथ अविनाभाव सम्बन्ध होता है। काव्य में चाहे कितनी ही रमणीयता क्यों न हो, फिर भी उसे अंलकारों की अपेक्षा होती है। जैसे किसी रमणी का रम्य रुप परिधानों और आभूषणों से आकर्षक हो जाता है, उसी प्रकार काव्य में भी कमनीयता और आश्वाद्यता आ जाती है।

समीक्ष्य कवि के काव्य में अलंकार की महिमा सर्वत्र व्याप्त है। शब्दों की चारुता, अर्थों की रमणीयता तथा शब्दार्थो की अभिव्यंजना का मंजुल उत्कर्ष काव्य की आश्वाद्यता को प्रवाहित करती है। पं. दवे कृत खण्डकाव्यों में अलंकार योजना की समीक्षा के सन्दर्भ में सर्वप्रथम उनके श्रृंगार रस प्रधान खण्डकाव्यों की अलंकार योजना पर दृष्टिपात करते है।

1. **''सौन्दर्यलीलामृतम्'' में अलंकार –**

सौन्दर्यलीलामृतम् खण्डकाव्य की पृष्ठिभूमि मोहमयी सौन्दर्य की नगरी मुम्बई की प्रसिद्ध चौपाटी है, जो समुद्रीय सुषमा और सांध्य सन्धि से परिवेष्टित है। वहाँ भ्रमणार्थ किंवा रमणार्थ, अभिसारार्थ तथा नैसर्गिक सौन्दर्यलीला अवलोकनार्थ जनपदीय जनों का समागम होता रहता है। सौन्दर्यग्राही युवा कवि भी अपने मित्रों के साथ सान्ध्य–भ्रमण के निमित्त चौपाटी जाते थे। वहाँ के यथादृष्ट दृश्यों को तथा वहाँ की भावभंगिमाओं को ह्रदय का स्पर्श देकर अलंकृत शब्दार्थों में कमनीय काव्य की सर्जना करते थे।

कवि ने विभिन्न संस्कृतियों वाली, विविध परिधान भूषिता सुन्दरियों के सौन्दर्य को, रसानुगुण्य अलंकारों से अलंकृत पद्यों में व्याप्त किया है।

व्यंजन वर्णों की आवृति से उत्पन्न शाब्दिक चारुता ही अनुप्रास का वैशिष्ट्य है, जो कवि के इस काव्य में सर्वत्र समाहित है।

1. **अनुप्रास अलंकार –**

''अनुप्रासः शब्द साम्यं वैषम्येपि स्वरस्य यत्''[292]

अर्थात् स्वर की विषमता रहने पर भी शब्द (पद, पदांश) के साम्य को **अनुप्रास** कहते है।

''रसाद्यनुगतत्वेन प्रकर्षेणन्यासोऽनुप्रासः''[293]

रस की अनुगामिनी प्रकृष्ट रचना का नाम **अनुप्रास** है।

यथा – **घृत्वा पीन नितम्ब विम्ब कवचं जंघोत्सवं सुन्दरम्।**

चंचच्चारुपद क्रमोपरसिकं सल्वार संज्ञावरम्।।

प्रावारं नवकंचु कंचललितं काचित्तु पंचाम्बुजा।

यूनां चित्तचकोर मोह जननी गच्छत्य हो चन्द्रिका ।।[294]

यहाँ रेखांकित पद पद्यांशों की आवृत्ति प्रकर्ष न्यास है, तथा श्रृंगाररसानुगामिनी है।

कवि दवे ने कविता–वनिता–विहारी–विनोदी–कवियों की प्रकृति के वर्णन में अन्त्यानुप्रास अलंकार की मनोरम पद शय्या का निदर्शन किया है।

अस्याकमन्नास्ति न चार भावः, न कामिनी कुण्ठित जार भावः।

न चापि तारुण्य जमार भावः, नोऽस्त्यत्र साहित्य विनोद भावः।।[295]

चरणान्त पद **'भावः'** की आवृत्ति अन्त्यानुप्रास है, जो काव्य कामिनी के सौन्दर्य को अतिशयता दे रही है।

हे सुन्दरी! जिसमें तुम नहीं वह सुन्दर नहीं, काव्य नाटक आदि तुम्हारी विलासलीला से ही रुचिकर लगाता है, वहीं गीत मधुर लगता है जो तुम्हारें कण्ठ से निकलता है। वों कलायें निरर्थक सी लगती है, जिससे तुम्हारें सौन्दर्य का संयोग सम्मिलित न हुआ हो। इस प्रकार सुन्दरी के सौन्दर्य की अभिव्यंजना में यमक अलंकार का चारु प्रयोग दृष्टव्य है –

काव्यं तद्यशसे भवत्यनुपमं यास्मिंस्वदीयं यशः,

नाट्यंचापि तदेव भाति रुचिरं लास्येन ते मण्डितम्।

गीतं कर्णसुखं तदेव बहुधा त्वत्कण्ठतो निर्गतम्,

नूनं सा स कला कलास्ति विकला यस्यां न ते संगमः।।[296]

इस उदाहरण के चतुर्थ चरण में कला शब्द की क्रमेण द्विरावृत्तिः तथा अर्थ भेद के कारण यमक अलंकार है।

आचार्य विश्वनाथ ने यमकालंकार को इस प्रकार कहा है –

सत्यर्थे पृथगर्थायाः स्वरव्यंजन संहतेः।

क्रमेण तेनेवावृत्तिर्यमकं विनिगद्यते।।[297]

श्रृंगार रस के समर्थन में सन्देह अलंकार का योगदान आचार्यों द्वारा स्वीकृत किया गया है। सुन्दरी के यौवन पर मुग्ध नायक द्वारा यह निश्चय न कर पाना कि नायिका रुष्ट है या तुष्ट के वर्णन में संदेहालंकार का सुन्दर निदर्शन किया गया है।

नाहं त्वदीयं हृदयोपगूढम्,

वेत्तुं प्रभुर्यौवनमुग्धचेतः।

किं वासि रुष्टा किमुवासितुष्टा,

वितर्कणा मे तव वक्त्र मुद्रा।।[298]

अथ च – समुद्र तट पर सुन्दरियों को देखकर कवि के मन में अनन्त सम्भावनायें उत्पन्न होती है। मन में उठे हुये प्रश्नों को सन्देह अलंकार से अलंकृत शब्दार्थों में इस प्रकार प्रकट किया है –

श्रृंगारोत्सव साधनाय मिलिता वामा नु किं सर्वतः।

नानादेश विदेश वासि कलिते लावण्य पण्यस्थले।

सज्जामण्डनमण्डिता नवनवैर्भावै मनोहारिणीः,

कन्दर्पो रसिकार्चनाय किमु वा रामा इमाः प्रैरयत्।।[299]

सन्देह अलंकार का लक्षण आचार्य विश्वनाथ ने इस प्रकार कहा है –

"सन्देहः प्रकृतेऽन्यस्य संशयः प्रतिभोत्थितः"[300]

श्रृंगार रस प्रधान काव्यों में उपमा अलंकार का प्रभुत्व सर्वत्र देखा गया है। श्रृंगाररस–राज महाकवि कालीदास की प्रशस्ति **'उपमाकालीदासस्य'** इसे प्रशस्त करती है। कवि दवे ने भी **'सौन्दर्यलीलामृतम्'** खण्डकाव्य में **उपमा अलंकार** का अतिशय प्रयोग करते हुये कविता कामिनी के सौन्दर्य को निखारा है।

उपमा स्वरुप – उपमायत्रसादृश्यलक्ष्मीरुल्लसति द्वयोः।[301]

"द्वयोः साम्यपरिकल्पनोपमा"।[302]

उपमेय उपमान की सादृश्यता से अर्थ की चारुता **उपमालंकार** है। आधुनिक काव्यशास्त्री आचार्य डॉ. राधावल्लभ साम्य की परिकल्पना को उपमा कहते है।

समीक्ष्य काव्य में घूंघट में मुखचन्द्र को छिपायी हुयी मरुस्थलीया सुन्दरी की मेघलीना सौदामिनी से सुन्दर साम्य की परिकल्पना कवि ने अधोलिखित पद्य में किया है –

काचिच्च सूक्ष्मावरणवगुण्ठा, स्फुटोदरा राजत शुभ्रकांची।

शैप्यांगदालोचन लोचन नुन्नमीना, सौदामिनी वाञ्चति मेघलीना।।[303]

रुपक अलंकार का प्रयोग काव्य में प्रायः स्थलों पर देखा जा सकता है। रुपकालंकार का लक्षण आचार्य मम्मट ने इस प्रकार दिया है –

"तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः"[304]

उपमान–उपमेय अथवा अप्रस्तुत–प्रस्तुत में अभेदारोप रुपक कहा जाता है। यह सादृश्य मूलक अलंकार है जो श्रृंगाररस को उत्कर्ष देता है।

आधुनिक साहित्य शास्त्री डॉ. राधावल्लभ के अनुसार –

"आरोपणाद् अध्यवसानाद् अन्यापदेशाद्वा वा रुपकम्"[305]

'सौन्दर्यलीलामृतम्' खण्डकाव्य में रुपकालंकार की चारुता अवलोकनीय है –

चूर्णा प्रलेपामल चारुवक्त्रा, लाक्षारसाऽरंजित पल्लवोष्ठा।
पद्मक्षणा पीनपयोधरेषा, वृक्षाश्रयं वांछति कापि वल्ली।।[306]

निदर्शना अलंकार –

जहाँ वस्तुओं का परस्पर सम्बन्ध सम्भव अथवा असम्भव होकर उनके बिम्ब प्रतिबिम्बभाव का बोधन करें वहाँ **निदर्शना अलंकार** होता है।

जैसा कि साहित्यदर्पणकार ने भी कहा है –

संभवन्वस्तु संबन्धोऽसम्भवन्वापि कुत्रचित्।
यत्र विम्बानुबिम्वत्वं बोधयेत् सा निदर्शना।।[307]

कवि ने निदर्शना अलंकार का सुन्दर निदर्शन इस प्रकार किया है –

क्वेयं तनुर्मधुर संगम हेतु भूता,
क्वेदं मनो विवशता विकलं वियोगे।
क्वैषाभिलाषविततिः प्रबला च चित्ते,
केनापि रुद्धगतिका भजते निराशम्।।[308]

अर्थान्तरन्यास अलंकार –

कवि ने अर्थान्तरन्यास अलंकार के संयोजन में बड़ी कुशलता दिखायी है। विशेष से सामान्य अथवा सामान्य से विशेष का समर्थन जहाँ होता है। वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है।

अहो कियन्तः प्रणये प्रबद्धाः, प्राणान् जगत्यां विजहुर्वियोगे।
त एव जानन्ति तदीयरागं, प्रसूति पीड़ा नहि वेति वन्ध्या।।[309]

सामान्य कथन विशेष कथन से समर्थित होने के कारण अर्थान्तरन्यास की सुन्दर प्रस्तुति है।

इस प्रकार सौन्दर्यलीलामृतम् नामक खण्डकाव्य में कवि ने चिन्तन पूर्वक श्रृंगार रस में सहायक शब्दार्थों की संयोजना की है। जिससे काव्य के केन्द्रीय भावों में उत्कृष्टता, अर्थों में रमणीयता, रस में पेशलता आयी है। शब्दालंकार एवं अर्थालंकार का सुन्दर समन्वय इस काव्य में दृष्टिगोचर होता है।

वियोगशतकम् की अलंकार योजना – महाकवि कालिदास की रचना मेघदूत से प्रेरणा लेते हुये, उन्हीं के प्रतिमानों को प्रतिष्ठापित करते हुये, किंचित कल्पित कथानकों को समाहित करते हुये, कवि श्री दवे ने **'अलका'** नामक आवास के निवासी समवयस्क सहृदय

मित्र श्री आसूलाल संचेती की वियोग वेदना को अलंकृत पद्यों में प्रस्तुत किया है। कवि ने शब्दालंकार और अर्थालंकार के सुन्दर समन्वय से सिद्ध काव्य प्रवाह को सहृदयों के हृदय के अन्तःस्थल तक पहुँचाया है।

यद्यपि काव्य का प्रत्येक पद्य शाब्दिक चारुता से चमत्कृत है तथापि अर्थालंकार की प्रधानता से प्रतिष्ठित इस काव्य में प्रसंगानुसार विविध अर्थालंकारों का आलोक पाठकों को आलोकित करता है।

अपनी प्रेयसी बिजली के साथ क्रीडा करते हुये मेघ को देख कवि के मित्र के मन में यौवन काल में अनुभव किये हुये विषय को **अर्थान्तरन्यास अलंकार** के अलंकार के माध्यम से प्रस्तुत किया है –

दृष्टा त्वां भो जलद! तडितासार्धमाकाशमार्गे,
प्रकीडन्तं वियति चपला द्योतनामोदभावैः।
उद्दीपनयन्ते मनसि विषया यौवनाकेंऽनुभूताः,
दुःखायैव प्रभवतितरां वार्द्धके पूर्वभोगः।।[310]

वस्तुतः वृद्धावस्था में पूर्वकाल के सुखद भोगों की स्मृति बड़ी दुःखदायी होती है। यहाँ पूर्वार्ध का समर्थन उत्तरार्ध से किये जाने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार है। साहित्यदर्पणकार ने अर्थान्तरन्यास अलंकार का लक्षण कुछ इसी प्रकार दिया है –

सामान्यं वा विशेषेण विशेषस्तेन वा यदि।
कार्यं च कारणेनेदं कार्येण च समर्थ्यते।
साधर्म्येणेतरेणार्थान्तरन्यासोऽष्टधा।।[311]

वियोगशतकम् में भ्रान्तिमान अलंकार की सम्यग् संयोजना की गयी है। कवि प्रतिभा से उत्पन्न भ्रम, कथानक में चारुता की छटा लाती है, जिसे काव्य शास्त्री भ्रान्तिमान अलंकार कहते है।

आचार्य विश्वनाथ ने भ्रान्तिमान का लक्षण इस प्रकार दिया है –

'साम्यादतस्मिंस्तद् बुद्धिर्भ्रान्तिमान् प्रतिभोत्थितः'[312]

रामगिरि आश्रम से यक्ष का सन्देश लेकर अलका प्रयाण करते हुए मेघ द्वारा कवि प्रतिभोत्थित भ्रमवशात् संचेती महोदय के आवास **'अल्का'** में आना, वहाँ यक्षिणी को न पाकर लौट जाना, के वर्णन में भ्रान्तिमान की सुन्दर प्रस्तुति अधोलिखित श्लोक में दृष्ट्व्य है –

आयान्त्येते जलदसमये यक्ष सन्देहवाहाः,
मत्वाम्भोजा मम गृहमिदं यक्षवासाल्काख्यम्।

तत्रैते नो व्यभिहतविधां वोध्य कान्तां विषण्णां

शृण्वन्त्येते नहि मम वचो याजमानस्य दौत्यम्।।[313]

अनुसंधेय खण्डकाव्य में रुपक अलंकार का रमणीय प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। रुपक अलंकार सादृश्य मूलक अलंकारों में विशेष महत्व रखता है। जहाँ भेदरहित उपमान उपमेय का एक्यारोप, अभेदारोप अथवा ताद्रुप्य द्वारा काव्यसौन्दर्य की अतिशयता को प्रतिपादित किया जाता है। जैसा कि आचार्य विश्वनाथ ने कहा है –

'रुपकं रुपितारोपो विषये निरपह्नवे'[314]

आचार्य मम्मट ने रुपक को इस प्रकार कहा है –

'तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः'[315]

आधुनिक काव्य शास्त्री डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने रुपक अलंकार को इस रुप में कहा है –

'आरोपणाद् अध्यवसानाद् अन्यापदेशादा वा रुपकम्'[316]

उक्त लक्षणानुसार अधोलिखित उदाहरण में रुपक अलंकार का मनोहारी निरुपण करते हुये प्रिया से हृदय–चषक में प्रेमरस भरने तथा अधरसुधारस से वंचित न करने की कामना करते हुये कवि ने कहा है –

एकान्तस्थस्तव रति तृषा व्याकुलोऽहं प्रकामम्,

पीयूषोत्कं हृदयचषकं पूरयाशु प्रसन्ना।

चेतोवाटी विवृतकवटी शिंजिनीदत्तकर्णा,

मा मा कूर्या अधर सुधया वंचिते चन्द्रिके माम्।।[317]

मेघदूतम् की अनुगामी इस खण्डकाव्य में उपमालंकार का प्रभुत्व सहज प्रतीत होता है। काव्यशास्त्रियों के अनुसार उपमालंकार समस्त अलंकारों में प्रधान होता है। यह सादृश्य मूलक अलंकारों का आधार होता है। यह अलंकारों का चूड़ामणि तथा काव्य सम्पदा का सर्वस्व है। चित्र मीमांसाकार के अनुसार 'उपमा वह नर्तकी है जो नाना प्रकार की अलंकार भूमिका में काव्य मंच पर अवतीर्ण होकर काव्य रसिकों को आह्लादित करती है।'

उममा अलंकार के प्रमुख चार अंग होते है –

1. उपमेय 2. उपमान

3. साधरण धर्म 4. उपमा वाचक शब्द

1. **उपमेय –** जिस के लिये उपमा दी जाती है, उसे उपमेय कहते है। इसी को प्रस्तुत, विषय, वर्ण्य, प्राकरणिक आदि के नाम से पुकारते है। जैसे – नायिका का मुख आदि।

2. **उपमान** – जिससे तुलना, समानता बतायी जाय, उपमा दी जाय वह प्रसिद्ध व्यक्ति या वस्तु उपमान कहलाता है। उपमान को अप्रस्तुत, विषयी, अवर्ण्य, अप्राकरणिक आदि नामों से भी जाना जाता है। जैसे – चन्द्र, पद्यम् आदि।

3. **साधारण धर्म** – उपमेय और उपमान में समान रुप से उपस्थित धर्म को साधारण धर्म कहते है। जैसे – सुन्दर, मनोज्ञ आदि।

3. **उपमावाचक** – उपमेय व उपमान में साम्य प्रकट करने वाले शब्द को उपमा वाचक **पद** कहते है। जैसे – इव, वत्, यथा, सदृश आदि।

जिसमें उक्त चारों तत्व विद्यमान हो वह पूर्णोपमा, जिसमें चारों तत्व विद्यमान न हो लुप्तोपमा संज्ञक उपमा होता है।

आचार्य मम्मट ने उपमा को इस प्रकार परिभाषित किया है –

साधर्म्यमुपमाभेदे पूर्णालुप्ता च साग्रिमा।
श्रौत्यर्थी च भवेद्वाक्ये समासे तद्विते तथा।।[318]

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार–

'साम्यवाच्यमवैर्धम्य वाक्यैक्य उपमा द्वयोः'[319]

डॉ राधावल्लभ त्रिपाठी के अनुसार उपमा–

'द्वयोः!साम्यपरिकल्पनोपमा'[320]

अर्थात् उपमेय उपमान के साम्य की परिकल्पना उपमा अंलकार है।

'वियोगशतकम्' खण्डकाव्य से उद्धत उपमा अंलकार के कतिपय उदाहरण दृष्टव्य है–

पश्यैषां ते मृदुकर जुषां का दशा कंकणानाम्,
संजाता हा! विगलित रुचां धूसराणां रजोभिः।
रागा रम्याः अलक सुषमा स्नेह कूपी च खिन्ना,
कारां नीतां इव रस विदस्तेऽद्य श्रृंगार हाराः।।[321]

इस श्लोक में कवि ने नई उपमा की उद्‌भावना की है। जेल में पड़े हुये रसज्ञों की तरह, तुम्हारे गले के हार व्याकुल दिखाई दे रहे है। इस तरह की उपमा प्रायः नहीं देखी गई है। यह आधुनिक परम्परा के कवियों का नव उपमान है।

लुप्तोपमा का सुन्दर निदर्शन अधोलिखित श्लोक में दृष्टव्य है –

ज्योत्स्ना शुभ्रानवतमभवा मारुति यन्त्र गन्त्री,
सौभागिन्याः करसरसिज प्रेरिता या शुभा हे।
यातायां हा! त्वयि दिवमहो! वल्लभे! वल्लभाते!
तिष्ठत्येषां विरतगति का साम्प्रतं देवमानाः।।[322]

ज्योत्स्नाशुभ्रा पद में वाचक शब्द लुप्त है अतः यह उपमा लुप्तोपमा कोटिक है। विपरीत परिस्थितियों में भी कुन्दपुष्प के सम्पन्न प्रिया की मुस्कान के वर्णन में उपमा का सुन्दर परिपाक हुआ है –

'दैन्येऽप्यासीत्तव तु वदने मत्प्रियं कुन्दहास्यम्'।[323]

मालोपमा अलंकार का प्रयोग भी इस काव्य में प्राप्त होता है। जहाँ एक ही उपमेय के अनेक उपमान हो वहाँ **मालोपमा अलंकार** होता है। जैसा की साहित्य दर्पणकार ने कहा है –

'मालोपमा यदेकस्योपमानं बहुदृश्यते'[324]

चन्द्रालोककार जयदेव मालोपमा को पृथक् अलंकार नहीं मानते, अतिशयोक्ति अलंकार में ही अन्तर्निहित मानते है।

कवि दवे ने अधोलिखित पद्य में उपमा की माला ही पिरो दी है –

सत्सौभाग्यं परमसुखदां कोकिलालापकण्ठीम्,
साध्वीं मृद्वीं सुरभि विजित स्निग्ध पद्यप्रबन्धाम्।
रुपारुढ़ां रतिमद हरां मान सेष्टां कृशांगीम्,
घन्यो भर्त्ता फलित सुकृतो विन्दते त्वत्समानम्।।[325]

अपनी प्रिया के वर्णन में सत्सौभाग्या, परमसुखदा, कोकिलालापकण्ठी आदि उपमानों की माला सृजित की है। अतएव मालोपमा का सुन्दर निदर्शन है।

अपि च – अपनी प्रिया के अंगों की साम्यता की परिकल्पना प्रस्तुत करते हुए, बहुविध उपमानों की संकल्पना में मालोपमा का उत्कृष्ट निरुपण है।

कूर्मोच्चांघ्रिर्मृदुलचरणा वृत्तजंघोरुभागा,
पीन श्रोणी द्विरद्गतिका दक्षिणावर्तनाभिः।
मध्येक्षामा स्तनभरनता पक्वबिम्बाधरोष्ठी,
कान्ता नूनं शशधरमुखी भाग्य तो लभ्यतेत्र।।[326]

वियोगशतकम् काव्य में उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग कवि ने यथास्थान किया है। जिस प्रकार उपमा में सादृश्य का स्थान होता है, उसी प्रकार उत्प्रेक्षा का आधार सम्भावना को माना जाता है। उपमा में निश्चयात्मक ज्ञान होता है, जबकि उत्प्रेक्षा में संशयात्मक ज्ञान होता है। जैसा कि आचार्य विश्वनाथ ने कहा है –

'भवेत् सम्भावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना'[327]

अर्थात् किसी प्रस्तुत वस्तु की अप्रस्तुत के रुप में सम्भावना करने को **उत्प्रेक्षा** कहते है। जिसमें एक ज्ञान की कोटि प्रबल हो उसे **सम्भावना** कहते है। आधुनिक काव्याचार्य डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने उत्प्रेक्षा का लक्षण इस प्रकार किया है –

'सम्भावनात्मिका कविकल्पनेवोत्प्रेक्षा'[328]

कवेः कल्पना आधिदैवकी सृष्टिः।

अर्थात् सम्भावनात्मक कवि कल्पना ही **उत्प्रेक्षा** है। आधि दैवकी सृष्टि को कविकल्पना कहा गया है।

उत्प्रेक्षा अलंकार में सम्भावना में सहायक शब्दों को उत्प्रेक्षा वाचक कहा जाता है। मन्ये, शंके, घ्रुवम्, प्रायः, नूनम्, जाने, अवेमि, ऊहे, तर्कयामि, इव इत्यादि पद उत्प्रेक्षा के वाचक होते है। जैसा कि साहित्य दर्पण कार ने कहा है –

'मन्ये–शंके घ्रुवंप्रायोनूनमित्येमादयः।'[329]

लक्षणानुसार कवि दवे के खण्डकाव्य में उत्प्रेक्षा का सुन्दर उदाहरण अवलोकनीय है। दीपावली की रात्री में नवीन वस्त्राभूषणों से सजी हुयी, दीपदान के लिये जाती हुयी नायिका एसी लगती है मानो साक्षात् महालक्ष्मी धरती पर उतर आयी हो –

हस्ते दीपं द्युतिमदमलं वर्तिकोद्भासिवक्त्रम्,
धृत्वायान्तीमभिनव पटालंकृतां दीप दाने।
दृष्ट्वाभूषा भरण सुभगां त्वां हि सौन्दर्यलक्ष्मीम्,
प्राप्तां मेने धरणि वसतिं पद्मजामेव नूनम्।।[330]

अपि च –

प्राप्ते मासे रसिक सरसे फाल्गुने वाद्यवन्द्ये,
सश्रुयन्ते श्रवण सुभगा गीतिका योषितानाम्।
प्राणान् हर्तुं विरह विकलस्यास्तृतव्यूह वन्धः,
<u>मन्ये सिद्धोमदन</u> पृत नायकोऽयं वसन्तः।।[331]

इसके अतिरिक्त इस खण्डकाव्य में व्यतिरेक[332], आक्षेप[333], संस्मरण[334], अलंकारों की श्लाघनीय संयोजना की गयी है।

मेघोपालम्भनम् काव्य में अलंकार योजना –

कवि दवे ने इस खण्डकाव्य में जड़ पदार्थों में मानवोचित चैतन्य का सम्पादन करते हुये, मेघ को उपालम्भ देने में विविध अलंकारों का मनोरम प्रयोग किया है।

युगानुरुप मेघों के विलास तथा मरुधरा की उपेक्षा करने वाले बादलों को उपालम्भ देते हुये रुपक अलंकार का सुन्दर सन्निवेश किया गया है –

सद्यः सूतान् नवफलशिशून् लालयन्त्योंऽकमध्ये।

किं ता मेघ! स्मृति पथ महो नो समायान्तितेद्यः।।[335]

हे मेघ! तुम्हारी लता प्रिया जो सधः जात फलरुपी शिशुओं को गोद में धारण की हुयी है, क्या उनकी याद तुम्हें नहीं आती।

वसुधा को विलासिनी के समान प्रसन्न प्रस्तुत करते हुये उपमा अलंकार का सुन्दर निदर्शन दृष्टव्य है –

घन्या कापि विलासिनीव वसुधा संदृश्यते दूरतः,

यस्याः यौवन तपर्णाय तरुणः कूपोऽस्ति कश्चिद्युवा।

तृप्ता जीवन धारयाति मुदिता यस्यप्रसन्नानना,

शुष्यन्तीमपरां विलोक्य च धरां भाग्ये निजेदृष्यति।।[336]

कातराक्षी धेनु की करुण क्रन्दना में निदर्शना अलंकार का रमणीय चित्रण अंगीरस वियोग श्रृंगार के सम्पोषक के रुप में कविता कामिनी के आत्मोत्कर्ष को आलोकित कर रही है –

क्रन्दन्त्येताः करुणनयनाः धेनवोग्रासहेतोः,

सिद्धा एते तृणतुषहराः नायकाः अर्थलुब्धाः।

केचिन्मत्ताः वसु कण जलैः केचिदन्नाकुलाः वै,

दुर्भिक्षेस्मिन् जलद्! वसुधा साश्रुनेत्राद्यबन्धो।।[337]

सभ्य समाज में अर्थसम्पन्न वेश्या कदापि आदर को प्राप्त नहीं होती है, किन्तु विपन्ना कुलजा पतिव्रता पूजनीया स्थान को प्राप्त होती है, इसी भाव को कवि ने अर्थान्तरन्यास अलंकार से अलंकृत करते हुये कुछ इस प्रकार कहा है –

काचितां विट कामिनी मदोन्मत्तां च दृष्ट्वाऽवनिम्।

साध्वीवारिद्वल्लभा च वसुधा धर्मे स्थिता कुत्सते।।

दृष्यन्तां ननु लास्य–लाभ–लुलिताः कामं नु वारांगनाः।

पूज्यन्ते तु पविव्रताः हि कुलजाः लोकेऽतिदीना अपि।।[338]

मेघ में कवि कल्पित सन्देह का सुन्दर समन्वय कवि द्वारा अधोलिखित श्लोंको में किया है –

''क्या यह तारों के आखों के काजल की कालिमा है, किंवा पहाड़ों के ढीलें–ढालें कंचुक है। किं वा नील नदी का गिरा हुआ आंचल है, कि वा आकाश में मोतियों का जन्म दाता द्वीप है''

किमेषा ताराणां नयन कलिता कज्जलकला,
गिरीणां किं वैतत् ललित शिथिलं कंचुपटकम्।
तटिन्या नीलायाः गलित मयवास्त्यंचलमिदम्,
अमी द्विपा मुक्ताफल जनिकराः किन्नुगगणे।।[339]

अपि च –

कृष्णाम्बरा वेष्टित ताज हर्म्यम्, प्रातः प्रदीपाः शमिताः प्रवातैः।
जाड्यं गता कल्प विचारधारा, धावत्यहो वत्सर मास चक्रम्।।[340]

इसके अतिरिक्त अनुप्रास, दीपक, परिकर आदि अलंकारों से सुसज्जित इस खण्डकाव्य में कवि द्वारा अलंकारों का कुशल विनियोजन किया गया है।

केलिभूकैतवम् –

'केलिभूकैतवम्' खण्डकाव्य की **शृंगाररस** प्रधान खण्डकाव्य है। केलि क्रीडा, अवैध सन्तति, स्वछन्दता एवं सामाजिक तिरस्कार आदि की पृष्ठिभूमि पर रचित युग्बोधक इस काव्य में रसानुकूल अलंकारों का विनियोजन किया गया है। प्रयुक्त अलंकारों में अनुप्रास, उपमा, रुपक, उत्प्रेक्षा, अन्योक्ति, वक्रोक्ति, व्याजोक्ति, अर्थान्तरन्यास, संदेह, परिकर आदि अलंकारों का कुशल प्रयोग कवि के अलंकार सिद्ध होने का प्रमाण है। उदाहरण स्वरुप कतिपय श्लोकों का निदर्शन प्रस्तुत है –

अनुप्रास अलंकार का न्यास शब्द रसिकों को सौन्दर्य बोध कराता है। अधोलिखित पद्य में वर्णों की क्रमशः आवृति इस प्रकार हुयी है –

अस्मिन् युगे भोग विलास पूर्णे,
विलसिनीनां नवमण्डनानाम्।
कुले वसन् संयत चित्त वृत्तिः,
कलौ कथं काल महं नयेयम्''[341]

अपि च –

अनंगतन्त्रे कुशलस्तरुण्यः,
ह्यतृप्त कामास्तरुणं मनोज्ञम्।
प्रतीक्षमाणा प्रसमीक्ष्य चैनम्,
दास्यन्ति मह्यं विपुलोपहारम्।।[342]

किसी अनाथ युवक द्वारा नारायण को सम्बोधित करते हुये वक्रोति अलंकार की शाब्दिक चारुता का चारु प्रयोग किया गया है –

लक्ष्मीपते त्वं रमसे रमण्या,

लक्ष्म्या समं नित्यमिह स्थितोऽसि।

परं त्वद्कंेतरुणं गृहिण्याः,

कृते तपन्तं कथमीक्षसे नो।।[343]

काव्य का नायक कौत्स मिश्र विवाह प्रस्ताव निमित्त प्राप्त सुन्दर रंगीन आवक्षचित्र को देखकर प्रसन्न होता है, उसे चूमने लगता है तथा नाना विध कमनीय कल्पना करने लगता है, इस उक्ति में कवि कल्पित सन्देह से सन्देह अलंकार का साधु निरुपण हुआ है –

किमुर्वशीयं किमु चित्र लेखा,

विवोऽवतीर्णा किमुदेव कन्या।

धन्योऽसि सम्पादक साधुबुद्धे,

येनार्पितोऽयं ललितोपहारः।।[344]

नायक के अनुरुप करने पर भी अपने मौन को नहीं छोड़ रही नायिका के क्रिया कलाप में नायक का कवि प्रभिभोत्थित भ्रमात्मक चिन्तन में अंगी शृंगाररस को पुष्ट करता हुआ भ्रान्तिमान अलंकार का अवबोध प्रकृत पद्यों में महनीय है –

किं चिन्तिता गुरुजनानुमति प्रलाभे,

किं वा खलेन वलिनाऽस्यलिनाऽवरुद्धा।

किं वा विटेन कुटिलेन विपाशितासि,

मौनं जहासि नहि येन चिरानुनीता।।[345]

परम्परा से प्राप्त संस्कृत शिक्षा में शिक्षित एवं पुजारी पद धारित नायक का स्वच्छन्दा एवं आधुनिका नायिका के साथ प्रेम प्रसंग की सिद्धी के निमित्त कथित इस श्लोक में कहाँ में भस्मालेपी कहाँ वह सुचारु–वक्त्रा, आदि में निदर्शना अलंकार का निदर्शन अंगी शृंगाररस के सत्व को स्थापित करने वाला है –

क्वाहं ललाटार्पित भस्म लेपः,

क्वैषाऽमलालेप सुचारुवक्त्रा।

क्व रत्नहारांजित कम्बुकण्ठी,

क्व चाक्षमाला वृत कण्ठवण्ठः।।[346]

अन्योक्ति अलंकार के माध्यम से अर्थ चारुता का भव्य दर्शन हो रहा है –

भो देवल त्वं स्थित आसनेऽस्मिन्,

मूकं नु देवं किमु याचसे भो!

कलौ तु देवा बधिरा भवन्ति,

भक्तार्तनादो न निशम्यते तैः।।[347]

एक ही उपमान का बहुधा प्रयोग मालोपमा अलंकार कहलाता है।[348] अधोलिखित पद्यों में एक ही उपमान का बहुधा प्रयोग मालोपमा अलंकार को द्योतित कर रहा है –

मान्याः कान्ता चयनचतुराश्चारुताचंचरीकाः,
वण्ढ व्याधि प्रशमनपराः कोविदाः पत्र नाथाः।
वामा कामो भवदुपकृतिं याचमानो वदान्याः,
विप्रोऽयंऽभो! प्रणमति नतो देवलो वेदतीर्थः।।[349]

इस प्रकार केलिभूकैतवम् के युग्बोधक भावों को भावपोषक अलंकारों से कवि ने सुसज्जित किया है, जो उनकी कुशलता को सिद्ध करती है।

कामधेनुशतकम् में अलंकार –

पं. श्री राम दवे के निर्मल हृदय से प्रस्फुटित् **'कामधेनुशतकम्'** गोवंश कल्याण चिन्तन की अनुपम रचना है। इसमें गो जाति की वर्तमान स्थिति, भारत के सांस्कृतिक इतिहास में गोमाता के महत्व तथा उसके सन्दर्भ में उठने वाले अन्य अनेक विचारों का आधार लेकर समाज के कर्तव्यों को अलंकृत शब्दार्थों में पद्यवद्ध किया है। सुरनन्दिनी की असीम कृपा के वर्णन में अनुप्रास का न्यास अनायास ही दृष्टिगोचर होता है –

मधुरया सुधया सुरतोषिनी विपुलया रमया जनरंजिनी।
परमया कृपया कृषिवर्धिनी जयति कामदुधा सुरनन्दिनी।।[350]

गौ माता की वर्तमान स्थिति निरुपण में उपमालंकार का सुन्दर प्रयोग प्राप्त होता है –

धर्मान्पेक्षोदित लोक तन्त्रे शिक्षाप्यभीष्टा न हि धर्म युक्ता।
अतोऽद्य वन्ध्याश्रुतिशास्त्र गीता खरीव धेनुर्ह्यवमन्यते जडैः।।[351]

कारुण्य से ओत–प्रोत इस खण्डकाव्य में परिकर अलंकार का विशेष प्रयोग किया गया है। जहाँ साभिप्राय विशेषण प्रयुक्त होते हो। वहाँ परिकर अलंकार होता है, जैसा कि साहित्य दर्पणकार ने कहा है –

'उक्तैः विशेषणैः साभिप्रायैः परिकरो मतः।'[352]

वृषभ कुल की रक्षा हेतु वृषभध्वज–विश्वास के स्मरण में परिकर अलंकार का प्रयोग दृष्टव्य है –

वृषभध्वज विश्वनाथ हे! हे केदारपते त्रिलोचन!
त्वयि तिष्ठति पार्थिवेश्वरे कथमेते वृषभाः वधाकुलाः।।[353]

अपि च –

यदुनन्दन कृष्ण गोपते! हे गोपाल दयानिधे प्रभो।
कथमद्यनु तावकावनौ गोहत्या परिलक्ष्यते जनैः।।[354]

करुण रस प्रधान कारुण्यकादम्बिनी में अलंकार –

कवि ने अपने बहुआयामी कवित्व शक्ति का मूलाधार माँ मथुरादेवी को माना है। माँ की सद्प्रेरणा से ही कवि को विकट परिस्थितियों में अध्ययन एवं स्वावलम्बी बनने का मार्ग मिला। उसी माँ के वैधव्य जीवन की करुणा को आधार बनाकर, अपनी माँ के लिये ही नहीं अपितु विश्व की समस्त माताओं की गरिमा का बोध करने के लिये कवि ने करुण रस के उत्कर्षक अलंकारों से अलंकृत **'कारुण्यकादम्बिनी'** नामक काव्य लिखा है।

अधोलिखित श्लोक में सर्वप्रथम मां की महिमा का बखान करते हुये माँ को वात्सल्य रुपी अमृत की वर्षा करने वाली तथा तीर्थों के समान पवित्र बताते हुये रुपक एवं उपमा का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है –

यस्याः स्तन्य सुधारसेन सरसा तन्वी मदीया तनुः,
हृद्य स्नेह निषेक–निर्मलतम–प्राण प्रदीपस्तथा।
वात्सल्यामृत–वर्षिणीं शिवतमां पुण्य प्रभां निर्मलाम्,
वन्दे तां मथुरां तपोऽतिमधुरां तीर्थोंपमां मातरम्।।[355]

माँ की वैधव्य वेदना के उल्लेख में अनुप्रास अलंकार के साथ–साथ उल्लेख अलंकार का सुन्दर निदर्शन किया गया है –

वैधव्योदित वेदनाति विकला शून्या श्रिया वाटिका,
दैन्यप्लुष्ट समस्त सौख्य सुषमा भग्नाश्रया वल्लरी।
दुर्भाग्योदितं झंझया कलिलतां याता रजोव्यापृता,
धृत्वा दिम्भ निबन्धनं हि कथमप्येषा दधेजीवनम्।।[356]

बच्चों के पालन–पोषण की चिन्ता भरें दैन्यान्धकार से धिरे वे दिन कवि की माँ ने उस वैधव्य रुपी कारगार में कैसे बिताये, के वर्णन में रुपक अलंकार का चारु प्रयोग दृष्ट्व्य है –

किंचस्पन्दित–चारु दीप्तिनयनाः जानन्ति ते तारकाः,
चिन्ताखण्डित–निद्रया ह्यनिमिसं रात्रौ शुचा वीक्षिताः।
बालानां परिपालनार्ति–विषयान् दैन्यान्धकारावृतान्,
निन्ये सा दिवसान् कथं नु पतिता वैधव्य कारागृहे।।[357]

इस आधुनिक कवि के काव्य में प्रसंगानुकूल आधुनिक उपमानों का प्रयोग दिखाई देता है। प्रहरिणी इव चिंचैषा, (ईमली का पेड़) सखी पेषणी (प्रिय सखी सी चक्की) आदि संस्कृत साहित्य में नये उपमान है।

चिंचैषा गृहपृष्ठतः प्रहरिणी भूतेव नित्यं स्थिता।
यस्याः शीतल संश्रयेण विहगाः श्रान्ता लभन्ते सुखम्।।[358]

अपि च –

जानीते गृह कोण विश्रम वतीं किं वा सखी पेषणी,
नीतास्ते दिवसास्तया कथ महो दैन्योपगूढ़ांकया।।[359]

अतीत और वर्तमान स्थिति की विशेषता के वर्णन में विरोध अलंकार का सुन्दर निदर्शन अवलोकनीय है –

लज्जाभूषण–भूषिता समभजत् दीनापि नो हीनताम्,
निर्ल्लज्जा बहुमूल्यं भूषण युताऽप्यालम्बते नग्नताम्।
स्त्रीणां साक्षरताऽस्मिता नहि भृशं शीलक्षयं रुन्धति,
धन्यासास्ति सती स्वधर्म निरता शून्यापि पुस्त्यक्षरैः।।[360]

इस प्रकार कारुण्य कादम्बिनी में विविध अलंकारों को नवीनता के साथ समावेश किया गया है, यद्यपि भाव प्रधान यह काव्य आलंकारिक काव्य नहीं है, तथापि अलंकार की सहजता ग्रन्थ की चारुता का प्रकाशक है।

परिखायुद्धम् में अलंकार योजना –

वीररस प्रधान इस काव्य में युग–प्रवृति का निर्वाह तथा खाड़ीयुद्ध की विभीषिका को चित्रित करने के क्रम में शब्द और अर्थ चारुता का चारु संयोजन किया गया है।

इराक के राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन के भव्य भवन का वर्णन संदेह अलंकार शैली में किया गया है –

किमिदं निर्मितं यत्नाद् स्वयं वै विश्वकर्मणा।
किं वा मयेन मोहांच हृदीदं तर्क्यते जनैः।।[361]

युद्ध की विभीषिका का स्वाभाविक वर्णन करते हुये अधोलिखित पद्यों में स्वभावोक्ति अलंकार का सुन्दर प्रयोग कवि द्वारा किया गया है –

इतोऽम्बराद् गोलक चण्डवृष्टया,
इतश्च टैंकोध विमुक्त शल्यैः।
इतोऽम्बुधि व्यापृत पोत मुक्तैः,
भीमायुधैर्व्यग्रमभूत समस्तम्।।[362]

हवा के समान वेग वाले, वज्र के समान प्रहार करने वाले, काल के समान प्रचण्ड अग्न्यास्त्रों के वर्णन में उपमा अलंकार का चारु चित्रण अवलोकनीय है –

अग्न्यायुधै र्योजनबद्धलक्ष्यैः,
मरुज्जवैर्वज्र सम प्रहारैः।
धराम्बरस्थारि विमान कालैः,
शस्त्रैः प्रचण्डैः समरो बभूव।।[363]

शत्रुओं के प्रबल प्रहार से सब कुछ नष्ट हो जाने पर भी सद्दाम का अहंकार जरा भी शान्त नहीं हुआ के वर्णन में विशेषोक्ति अलंकार का रमणीय प्रयोग हुआ है –

समर्जिते भूरिधनेन भव्ये,
प्रचण्डवीर्ये नवशस्त्र जाते।
ध्वस्तेऽपि शत्रोः प्रबल प्रहारैः,
सद्दामदर्पो न शशाम किंचित्।।[364]

अग्न्यास्त्रों की प्रचण्ड ज्वाला से सम्पूर्ण आकाश धूएँ से भर गया है। मानो आकाश कालीस्याही का घर बन गया हो, के वर्णन में उत्प्रेक्षा अलंकार का सुन्दर निदर्शन हुआ है।

प्रलय पावक चण्ड शिखोज्वलः,
समुदितः परितो विकटानलः।
असितकज्जल पूरमिवोद्गिरन्,
वियदहो विदधे स मसीगृहम्।।[365]

इस प्रकार परिखायुद्धम् खण्डकाव्य में विविध अलंकारों का सहज निर्दशन हो रहा है, जो अंगी रस को पुष्ट कर रहा है।

''कालकौतुकम्'' में अलंकार –

काल की लीला बड़ी विचित्र होती है। इसी काल की विडम्बना को लेकर कवि के मन में जो भाव उत्पन्न हुये, उनका व्यंग्यात्मक वर्णन श्लेषात्मक शैली में किया गया है। काल के कौतुक को विविध अलंकारों में संजोते हुये अर्थ सुषमा को विस्मयकारी चमत्कार प्रदान किया है।

काव्य का शब्द सौन्दर्य अनुप्रास के सुन्दर न्यास में विृद्यमान है –

चित्रं काल कलावकीर्ण कलितैः कान्ताभिलाषोत्सुकाः।
कालेऽप्राप्य धवं शिवाश्रय बलं बालाः हताः यौतुकैः।।[366]

अपि च

शिक्षा संस्कृति जीवनोत्सव विधौ खाद्येऽभिवादे तथा।

<u>भाषा–भाषण–भूषणे</u> भृति पदे संकल्पिते शासने।।[367]

धर्म निरपेक्ष कौतुकम् इकाई में वर्तमान दूषित राजनीति पर व्यंग्यात्मक प्रहार में श्लेषालंकार का चारुनिदर्शन दृष्ट्व्य है –

धूकाः काकाः कृष्णदलोग्रस्ततिविष्टाः,

हंसाः याताः पूर्ण विवेकाः सितपक्षाः।

चार्वाकाख्याश्चाटुचरास्ते गतधर्माः,

प्राप्ताः वैषम्योदयदक्षाः प्रति पक्षे।।[368]

जो वृक्ष गांवों की शोभा बढ़ाते थे, जिसकी छाया गाय को शरण देती थी, जिसकी तना मयूरादि को प्रश्रय दिया करती थी, उन वृक्षों को निदर्यीजनों ने काट दिये है, के वर्णन में कारण माला अलंकार का अवलोकनीय है –

छिन्नास्तेऽकरुणैः सुशीतलधनच्छाया द्रुमाः सर्वतो,

ग्राम श्री तिलका गवां शरणदाः केकीकुल प्रश्रयाः।

शीर्षाऽम्भो गुरुकुम्भ खिन्न वनिता कलेशापहाः श्यामलाः,

दृष्टैवैतत् प्रकृतिर्विरौति विकला काले करालेऽधुना।।[369]

कारण माला अलंकार का लक्षण साहित्य दर्पणकार ने इस प्रकार कहा है –

"परं परं प्रति यदा पूर्व पूर्वस्य हेतुता तदा कारण माला स्यात्"।[370]

अरे बादलों! इस वर्षाकाल में उत्कण्ठित वसुधा का अपमान कर क्यों घमण्ड कर रहे हो। अरे आज तो यह नवीन नीरद अकाल में भी उसकी प्यास बुझा सकता है। इस प्रकार के व्यंग्यात्मक वर्णन में प्रतीत अलंकार की स्पष्ट प्रतीति हो रही है –

मा मा दृप्यत जलदा! प्रावृषि धरामुत्कण्ठिता मनादृत्य।

नवोदितो जीमूतोऽयं, प्रभवति शमितुं तृषामकालेऽपि।।[371]

प्रतीप अलंकार का लक्षण **अप्यय जि दीक्षित** ने इस प्रकार कहा है –

वर्ण्योपमेयलाभेन तथान्यस्याप्यनादरः।

कः क्रौर्यदर्पस्ये मृत्योः! त्वत् तुल्याहि स्त्रियाः।।[372]

अपने कूल रुपी दुकूल से वेष्टित विग्रहवाली हे सरिते! रमण के लिये सुदूर क्यों जा रही हो। इस पहाड़ के समीप ही तेरा पति सिन्धु सो रहा है। यहाँ सरिता रुपी नायिका के कूल रुपी दुकूल (वस्त्र) धारण के वर्णन में <u>रुपक अलंकार</u> द्वारा अर्थ सुषमा की सुसज्जा की गई है –

कथमयि धावसि सरिते! कूल दुकूल वेष्टिता सुदूरगरमणम्।
निकषैव धराधरं बाले! सम्प्रति शेते तव वल्लभः सिन्धुः।।[373]

अर्थान्तरन्यास अलंकार का चूडान्त निदर्शन अधोलिखित श्लोक में होता है –

मुग्धोऽयं मधुपो मृषैव मनसा संकल्प संभावितैः,
अप्राप्ये मधु संगमेऽपि कुरुते भृंगांगना लालसाम्।
जीर्णे नीरस पादपेऽपि च जड़ पश्चत्यसौ माधवम्,
तृष्णार्तौ मरुधूलि पुंजशिखरं कैलाशमा मन्यते।।[374]

इस प्रकार कालकौतुकम् दीपक, अन्योक्ति, विरोध आदि अलंकारों का कौतुक सर्वत्र व्याप्त है।

भक्तिरस परक खण्डकाव्यों में अलंकार –

1. **ललितालहरी –**

पं.श्रीराम दवे भक्त कवि के रुप में भी विश्रुत हैं, उन्होंने अपने इष्ट देवों के प्रति अगाध श्रद्धा प्रकट की है। उन्होंने तीन स्तोत्र परक खण्डकाव्य रचें है। जिनमें भक्ति रस का सतत् प्रवाह है। कुल देवी कल्पिता भगवती ललिता देवी की स्तुति में लिखित **'ललितालहरी'** नामक खण्डकाव्य में कवि ने रस के अनुकूल अलंकारों को स्थान दिया है, जिसका कतिपय निदर्शन प्रस्तुत है।

हे ललिताम्बा! तुम्हारे इन अलंकारों से अलंकृत सुन्दर विग्रह के सौन्दर्य का तो, विविध शास्त्रों के मन्थन से पटुता प्राप्त करने वाले कुशल कवि भी अपनी काव्य कला से वर्णन करने में असमर्थ हैं, फिर मेरे जैसा तुच्छ मन्दमति कवि तो तुम्हारा वर्णन कर ही कैसे सकता है ? इस भाव को कवि ने बड़ी विनम्रता से व्यक्त किया है, जिसमें निदर्शना अलंकार का सुन्दर निदर्शन हो रहा है –

त्वदीयं सौन्दर्यं ललितवपुषो मण्डनजुषः,
प्रवीणा शास्त्राणां जलधिमथनावाप्तपटुताः।
कवीश अप्यद्धा कवयितुमलं नात्मकलया,
पुनः क्वाहं बालः कविकुलमशो मन्द मतिकः।।[375]

ललिताम्बिका का कृपाकांक्षी कवि स्वयं को चातक एवं मधुप के समान मानते हुये भावात्मक वर्णन में उपमा अलंकार तथा रुपक अलंकार का सुन्दर समन्वय अवलोकनीय है–

तवास्मेन्दुज्योत्सनां तृषित नयनश्चातक इव,
स्थितोऽहं मातस्ते पुर इह जड़ो मुग्धधिषणः।

भृशं पापं पायं मुदित मनसां दर्शनसुधाम्,
भजेऽमन्दं मोदं मधुप इव मत्तोंघ्रिकमले।।[376]

भगवती ललिता देवी के विग्रह वर्णन में स्वभावोक्ति अलंकार की सहजता स्वाभाविकता प्रस्फुटित हो रही है –

प्रसन्नं ते वस्त्रं शिरसि मुकुटं रत्नजटितम्,
ललाटे कस्तूरी सुरभितिलकं केशरयुतम्।
तव स्निग्धा दृष्टिः परम करुणाम्भोधिलहरी,
समस्तं सन्तापं शमयति शुचां जीवनगतम्।।[377]

हे माँ! ये सभी जानते है कि, तुम्हारा पति महादेव है, पुत्र गणेश है, सभी देवता तुम्हारे आदेशों की पालना करते है, तुमने ही शक्तिशाली राक्षसों का दर्पदलन किया है फिर भी तुम्हारे मुख पर गुरुता का गर्व नहीं है। इस प्रकार के भावात्मक वर्णन में विशेषोक्ति अलंकार का सुन्दर संयोजन हुआ है –

सुराणां शास्त्री त्वं दनुज कुलदर्पापहरिणी,
महोदवो भर्ता सकल सुरवन्धस्तव शिवे।
गणाधीशः पुत्रो भजति प्रथमां पूज्यपदवीम्,
तथापि त्वं मातर् लससि गुरुता गर्वरहिता।।[378]

प्रकृत काव्य में उक्तालंकारों के अतिरिक्त अनुप्रास आदि विविध अलंकारों का साक्षात्कार होता है। जो काव्य की कमनीयता का अभिवर्द्धक है।

2. अपांगलीला –

समस्त संसार की अधिष्ठात्री देवी भगवती ललिता देवी की विविध लीलाओं पर आधारित **'अपांगलीला'** नामक खण्डकाव्य में भावानुकूल अलंकारों का साक्षात् संयोजन दृष्टिगोचर होता है। शब्दालंकार और अर्थालंकारों का समन्वय काव्य में काव्योचित चारुता को द्योतित करती है। अनुप्रास अलंकार का साम्य न्यास अधोलिखित पद्य में दृष्टव्य है –

सृष्टि विचित्रा सचराचरात्मिका,
दृष्टिर्बुधानां सदसद्विवेका।
पुष्टिः प्रकृत्याः परितोलसन्ती,
ह्यपांगलीलाम्बिकायाः।।[379]

अपि च – कलिकाल कला कलितैरधुना ननु शारदयाप्यतिवंचितया।
भृतिकानुगति र्विहिता विकृता ललिते! दययाशु निवारय ताम्।।[380]

भगवती ललिता देवी की युग्लीला के वर्णन में यमक अलंकार का सुन्दर उदाहरण दृष्ट्व्य है –

क्वचित् सिंहारुढ़ा घृतनिशितखड्गायुधवती,

क्वचित काली चण्डी करहित कपालोग्रवदना।

क्वचिल्लक्ष्मी वाणी सुभगवदना चारुवसना,

हितार्थ भक्तानां नव–नवलरुपात्रभवसि।।[381]

मनोज्ञ मुखवाली तथा नीलकमल के समान आँखों वाली ये शरद् ऋतु तुम्हारी ही लीला को विस्तार दे रही है। इस भाव को उपमा अलंकार द्वारा अलंकृत किया गया है –

काशांशुका पद्ममनोज्ञवक्त्रा,

ज्योत्स्नादुकूला रजनी मनोज्ञा।

नीलोत्पलाक्षी प्रकृतिः प्रसन्ना,

तवैव लीला शरदातनोति।।[382]

इसके अतिरिक्त इस खण्ड काव्य में रुपक, परिकर आदि अलंकारों का बहुधा प्रयोग प्राप्त होता है। प्रकृति के अन्तर्गत वर्षा ऋतु के वर्णन में परिकर अलंकार का सुन्दर संयोजन हुआ है।

अमी पयोदा जलधैर्हि नीरं करैः, समुद्धत्य दिवाकरस्य।

क्षारं ह्यपेयं मधुरं विहाय, वर्षन्ति भूमौ च तपेंगितेन।।[383]

3. भारतीविलास –

भारती विलास काव्य अक्षर ब्रह्म की उपासना का साधक है। वर्णमातृका की भूमिका पर लिखा गया भगवती भारती का विविध विलास लीला है। काव्य में समागत शब्द और अर्थ आलंकारिक चारुता से वेष्टित है। विविध छन्द वस्त्रों को धारण की हुयी, रस अलंकारों से मण्डित, वर्ण विग्रहवती भगवती भारती की वन्दना में वर्ण साम्य की मंजुलता से अनुप्रास अलंकार का मनोहारी न्यास अधोलिखित श्लोक में अभिलक्षित है –

शब्द ब्रह्म रसायनोदय करीं सारस्वताराधिताम्,

वर्णाच्छादित विग्रहां नवनवच्छन्दोंऽम्वराडम्बराम्।

शब्दार्थ ध्वनि रीति–संभृत–रसालंकार–सम्मण्डिताम्,

वाग् व्यापार पथे भजे विदधतीं लीलायितं भारतीम्।।[384]

वात्सल्य रस वितरित करती हुयी भगवती भारती यशोदा की तरह अपने शिशुओं को आनन्दित करती है। इस भाव को उपमा अलंकार के साथ प्रस्फुटित किया गया है –

क्वचिद्डिम्भालम्बा वससि सदने चारुचरिते!,

शिशूनंके कृत्वा दिशसि निजवात्सल्य विभवम्।
विचुम्बन्ती गण्डं स्मितरत शिशोः स्तन्यसजुषः,
यशोदेवानन्दं जनयसि सतां कृष्ण जननी।।[385]

जब ह्रदय सागर में कल्पना की ऊँची लहरें उठती है। तब तुम्हारे कविता रुप का प्रादुर्भाव होता है। के वर्णन में नूनम्, मन्ये आदि उत्प्रेक्षावाचक शब्दों के कारण उत्प्रेक्षा अंलकार का निदर्शन होता है –

प्रादुर्भावां ह्रदय जलधेः कल्पनोत्तुगवीचेः,
नूनं मन्ये करघृतसुधा पूर्णकुम्भां हिरम्भाम्।
लावण्यं ते लसति परितः शब्द ब्रह्मोपलब्धम्,
दृष्वामुग्धो भवति मनुजो मोहिनीं मुग्धभावम्।।[386]

हे भारती! तुम्हारा क्या कहना ? देव और दैत्यों को लवण सागर के मन्थन में लगा दिया और स्वयं उस खारे समुद्र से अमृत निकाल ली। इस भाव को विचित्रालंकार के माध्यम से चित्रित किया गया है।

विचित्रालंकार का लक्षण इस प्रकार कहा गया है –

'विचित्रतद्‌विरुद्धस्य कृतिरिष्टफलाय चेत्'[387]
विमथने महतो लवणाम्बुधेः,
दितिसुता अमरा विनियोजिताः।
अति विचित्र मिदं लवणादहो,
मधुरता भरिता च सुधोद्धिता।।[388]

यद्यपि उक्त तीनों स्तोत्र परक खण्डकाव्य आलंकारिक खण्डकाव्य नही है, तथापि वर्णित भावों में अलंकारों का सहज समावेश हो गया है। जो काव्य के अंगी रस को उपकृत करने वाले है तथा काव्य को कमनीयता देने वाले है।

अनुवादित खण्डकाव्यों में अलंकार –

कवि पं. दवे ने 'यवनीनवनीतम्', 'अकिंचनचैत्यम्' तथा 'ब्रह्मरसायनम्' नामक तीन अनुवादित खण्डकाव्यों का प्रणयण किया है। तीनों काव्य कालजयी है, विविध विदेशी विद्वानों के ह्रदय का नवनीत है, जिसे कवि ने संस्कृत भाषा में पद्यानुवाद कर खण्डकाव्यीय परम्परा में परिवर्तित किया है।

1. 'यवनीनवनीतम्' –

इसमें उर्दू के कवि मिर्जागालिव की कविताओं का आलंकारिक शैली में विविधता परक कारुणिक वर्णन हुआ है। जीवन के दुःखों की निवृत्ति तो मरणोपरान्त ही होगी।

दीपक तभी तक जलता है। जब तक रात्रि का अवसान न हो। इस भाव को दीपक अलंकार से सुसज्जित अधोलिखित पद्य में कहा गया है –

दुखानां जीवनस्यैषां चिकित्सोपरतिर्मता,
दीपस्तावज्जलत्येव, प्रातर यावन्न जायते।[389]
मानो दुःख पसन्द हो गया,
दिल रुक–रुक कर बन्द हो गया गालिव।

इस भाव को उत्प्रेक्षा अलंकार से अलंकृत कर, अनुप्रास की छटा से आभरित अधोलिखित अनुवादित श्लोक काव्य की रमणीयता को द्योतित कर रहा है–

जातं मन्ये हृदयमपि में वेदनाशक्ति मत्तम्,
स्थायं–स्थायं गतिरपि हृदो लक्ष्यते चावरुद्धा।
निद्राप्येषा निशिन भजते चक्षुषोश्चापि बन्धम्,
जानेशप्तं शयनमपि मे दैवतेनास्तितल्पे।।[390]

2. **'ब्रह्मरसायनम्'** –

यह अनुवादित खण्डकाव्य सिन्धी भाषा के 'शाह अब्दुल लतीफ' के सूफीमताश्रित महाकाव्य शाहजोरसालों के पद्यों का श्लोकानुवाद है। कवि पं. दवे ने अनुवाद करते हुये यथोऽचित यथा स्थान अलंकार का विनियोजन भी किया है। यह ग्रन्थ मूलतः एकेश्वर वाद का समर्थक है, आध्यात्मिक भावों की इस शब्द शैय्या को शब्दालंकार तथा अर्थालंकारों से अलंकृत किया गया है। अनुप्रास का रहस्यात्मक न्यास दृष्टव्य है –

स एवास्ति च यत्किंचित, जीवनं मरणं तथा,
प्रियः प्राणाः स एवास्ति, मित्रं–शत्रुः स एव नः।
स एव सर्वतोभाति सर्वेषा हृदये स्थितः,
स एव स्वप्रकाशेन सर्वं पश्यति सर्वदा।।[391]

विरोध अलंकार से अलंकृत श्लोक में ब्रह्मविषयक वृतान्त अवलोकनीय है –

प्रणयानल दग्धापि नानुरागं मुमोच सा।
पिपासा प्रणयस्यैषा गण्डूषेणाधिवर्धते।।

3. **'अकिंचनचैत्यम्'** –

यह भी पं. दवे का कालजयी अनूदित काव्य है। शोक गीत के 32 श्लोकों का पद्यानुवाद है, यह श्लोक गीत अंग्रेजी के महाकवि टॉमस ग्रे द्वारा लिखित Elegy Written In A Country Cuurcchyard का भाग है। जिसका आकर्षक संस्कृतानुवाद आलंकारिक शैली में किया गया है। अनुप्रास अलंकार का एक उदाहरण देखिये –

वल्लीवेष्टित विग्रहश्च पुस्तः स्तूपोऽस्त्ययं निःस्वनः,
तत्रायं तिमिरे विषण्णवदनो धूकोऽस्ति कश्चिद्वसन्।
निर्लक्ष्यं चरतां नृणां विदधतां बाधां निजे शासने,
सोऽधिक्षेपमिहोदितोडुपतये कर्तुं समाचेष्टते।।[392]

आज का वातावरण पहले जैसा नहीं है, ना ही अब वो प्रातःकालीन सुरभित पवन का प्रवाह है, ना ही बालकलित माधूर्यादि। के स्मरण में स्मरणालंकार का सुन्दर संयोजन है –

नो प्रातः पवनस्य सौरभयुतस्तत्र प्रवाहोऽधुना,
नो वा नीडविहंग बालकलितो माधूर्यपूर्णः स्वनः।
नो वा कुक्कुटतार कर्कशरवो नो वा तुरी काहलः,
सुप्तानां चिरकालतोऽवनितले तेषामलं बोधने।।[393]

एक ही साधारण धर्म से वाक्यों को पुष्ट करने के कारण अधोलिखित श्लोक में तुल्य योगिता अलंकार का समुचित प्रयोग हुआ है –

मन्ये शारदयापि दीन जनुषां नोद्धाटिता चक्षुषाम्,
विद्यावंचित चेतसां हि पुरतो ज्ञानस्य पत्रावली।
चक्रे निर्धपतातिशीतल हरी भावोष्णता–वारणाम्,
प्रालेयैः प्रतिभाप्रवाह सरितां निन्ये च जाड्यं हता।।[394]

विचारार्णव में मग्न उद्विग्न प्रणयी की तरह भग्न हृदय तरुण के वर्णन में उपमा का विपाक प्रस्फुटित हुआ है –

एकस्मिन दिवसे स एव निकषाऽवरणं धनं पादपैः,
ग्राम्यन्नानत कन्धरः स्मित घृणो मग्नो विचारर्णवे।
उद्विग्न–प्रणयीव भग्नहृदयो ध्यायान् लपन्नात्मना,
दृष्टः कोऽप्यवसाद खिन्न मनसा क्लान्त क्रमो वै मया।।[395]

इस प्रकार कवि के तीनों अनूदित खण्डकाव्यों में अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। जिससे इन अनूदित काव्यों को काव्य शास्त्रीय अनुशासन में रखा जा सकता है।

(ङ) भाषा शैली –

'भाष्यतेऽनया सा भाषा' अर्थात् जिसके द्वारा हम अपने भावों विचारों को अभिव्यक्त करते है, वहीं भाषा है। किन्तु सामान्य वाग् व्यापार की भाषा एवं काव्य की भाषा परस्पर पर्याय नहीं होता है। काव्य की भाषा भाव प्रवणीय एवं सम्प्रेषणीय होती है। उसमें योग्यता आकांक्षा आशक्ति[396] से युक्त शब्दों का समवाय होता है। वह व्याकरण का अनुशासन तथा

रीति–गुण–रस–ध्वनि से समन्वित शब्द शक्तियों का समुचित व्यापार होता है। यही भाषा कवि के अन्तःकरण से निकलने वाले भावों को सहृदय ग्राही बनाता है। भाषा पर कवि का पूर्ण आधिपत्य हो, वह अनुचारिणी हो यह नितान्त आवश्यक है ताकि शैली के साथ सापेक्ष सम्बन्ध स्थापित हो सकें। भाषा और शैली एक दूसरे के अनुपूरक होते है, काव्य के ये दो सशक्त स्तम्भ होते है, तथा गुण–रीति–छन्द अलंकारों के नियोजक होते है।

प्रसंगानुकूल पद शैय्या का समायोजन, भावों की बोध गम्यता, प्रांजलता, उक्ति वैचित्र्य पूर्वक रसात्मक वाक्य विन्यास ही काव्य शास्त्रीय शब्दावली में भाषा शैली के नाम से अभिहित किया जाता है। वस्तुतः भाषा शैली ही काव्य की आधार पीठिका तथा कवि की कसौटी होती है। एतदर्थ समीक्ष्य खण्डकाव्यों की भाषा शैलीय समीक्षा की अपेक्षा स्वाभाविक है। आधुनिक संस्कृत साहित्य के कुशल शिल्पी पं. श्री राम दवे का भाषा पर असाधारण अधिकार है, उनकी शैली प्रवाहमयी प्रांजल युगानुयायी है। 33 वर्षीय वित्तकोषीय (बैंक) सेवा के उपरान्त भी भाषा में प्रौढ़ता एवं शैली में दक्षता उनके काव्यों में यत्र–तत्र–सर्वत्र दिखाई देते है। उदाहरणार्थ कतिपय स्थल प्रस्तुत है –

शृंगाररस प्रधान खण्डकाव्यों यथा सौन्दर्यलीलामृतं, केलिभूकैतवम्, वियोगशतकम्, मेघोपालम्भनम् की भाषा शैली रसानुकूल के साथ–साथ युगानुकूल भी है। भावानुकूल सार्थक शब्दों का प्रयोग, स्वर–व्यंजन मैत्री, सूक्ति एवं लोकोक्तियों के समुचित संयोग ने कवि को भाषा शैली सिद्ध हस्त कवि बना दिया है।

डॉ. गणपति चन्द्र के अनुसार" व्यक्ति, विषय, भाषा एवं प्रयोजन के वैशिष्ट्य के अनुसार अभिव्यंजना पद्धति से जो वैशिष्ट्य आ जाता है, वही शैली है। यथार्थतः विचारों एवं भावों की कलात्मक अभिव्यक्ति ही शैली है। कलात्मक अभिव्यक्ति का स्थूल आधार भाषा ही है, इसलिये भाषा शैली को अनेक साहित्यिक विधाओं के एक तत्व के रुप में ही स्थान दिया जाता है।"[397]

"सौन्दर्यलीलामृतम्" नामक खण्डकाव्य कवि दवे की प्रथम रचना है। युवा कवि के हृदय से दृष्ट प्रकृति और प्राणी के सौन्दर्य को ललित पदावली में व्यक्त किया गया है। अतः इसकी भाषा शैली भावानुकूल एवं प्रवाहमयी है।

काव्य में सौन्दर्य परीक्षकों द्वारा सौन्दर्य के मानदण्डों की मनोहरता के मर्मस्पर्शी वर्णन में 'कश्चित्' पदावृत्ति द्वारा श्रुति गोचरता का झंकार दृष्ट्व्य है –

काश्चिच्चन्दन वल्लरी समभुजे, कश्चित्कचाडम्बरे,
कश्चित्पाटल पाण्डमण्डलमदे, कश्चिच्च बिम्बाधरे।

कश्चिद्वा कुचकुड्मले च कदली स्तम्भेनितम्बेऽपरः,
वामांगेषु विमुग्धचित्तरसिकैः किं किं न सम्भाव्यते।।[398]

सौन्दर्य की विभावना में सूक्तियों का प्रयोग कवि के काव्य सौष्ठव को समृद्ध करता है तथा कविता कामिनी के ललित लावण्य को प्रत्यक्ष करता है। जैसा कि अधोलिखित श्लोंक में नयनाभिराम हो रहा है – ''सौन्दर्य केवल त्वचा के रंग पर ही आश्रित नहीं रहता, न वह अंगों की भंगिमा पर ही टिका हुआ है। किसी के लिये गौरांगना सुन्दरी होती है, तो कोई कुंचित केशी श्यामांगी को ही सुन्दरी समझते है। क्योंकि ललनाओं के लावण्य का मानदण्ड तो मन ही होता है।''

सौन्दर्यं नहि चर्मरागनिहितं नो वांगभंगयाश्रितम्,
कस्यापि प्रतिभाति गौरवनिता यूनो मनोहारिणी।
कृष्णा कुंचित कुन्तलापि सुभगा कस्मैचिदाश्लिष्यति,
लावण्यं ललनागतं तु मनसो मानेन वै मीयते।।[399]

विवेच्य खण्डकाव्यों में शब्दों का चुनाव एवं भावपूर्ण शब्द विन्यास में अद्भूत कौशल प्रकट हुआ है। यह शब्द कौशल केवल चमत्कार विधायक ही नहीं यह भावों की व्यंजना करने वाला तथा रसोद्रक पूर्ण सहयोगी सिद्ध हो रहा है।

कण्ठेमौक्तिक हार मुग्ध मनसा नास्वादिता माधुरी,
नाभौमन्मथमन्दिरेऽभिरमता नो पद्मनाभोर्जितः।
वंशीमुग्ध कुरंग शावक धिया वशीधरो विस्मृतः,
पूर्णेराजति शाश्वतेऽति कुधियाऽपूर्णे रतिः कल्पिता।।[400]

इस प्रकार यह श्रृंगार परक खण्डकाव्य कर्ण प्रिय शब्दों के चयन से, उत्कृष्ट अलंकारों के प्रयोग से और भव्य भावपूर्ण कल्पनाओं की सृष्टि आदि सभी दृष्टियों से हृदयावर्जक तथा रमणीयता का अद्भुत क्रीडा स्थल है।

वियोगशतकम् की भाषा शैली कालिदास की कृति मेघदूतम की अनुकृति सी प्रतीत होती है। तद्वत् मन्दगति का मन्दाक्रान्ता में रचित वियोगजन्य सद्भावों को सरल शैली में पं. दवे ने अभिव्यक्त किया है। इस काव्य की भाषा में श्रृंगार और करुण के मिश्रण की प्रचुरता है, तथा भाव आन्तरिक मनस्ताप का प्रनाशक है।

सूक्तियों की विशिष्टता में कथन की शिष्टता का निदर्शन है। प्रस्तुत पद्य में भाषा और भाव देखिये –

दृष्ट्वा त्वां भो जलद्! तडिता साधर्माकाशमार्गे,
प्रकीडन्तं वियति चपला द्योतनाऽऽमोद भावैः।

उद्दीप्यन्ते मनसि विषया यौवनाङ्केऽनुभूताः,

दुःखायेव प्रभववितरां वार्द्धके पूर्वभोगः।।[401]

वस्तुतः वृद्धावस्था में पूर्वकाल के सुखद भोगों की स्मृति बड़ी दुःखदायी होती है। दाम्पत्य के इस भाव को सहज मौलिकता के साथ चित्रण, कवि का शिल्प चातुर्य ही कहा जायेगा।

शोकतापेनतप्त विरही विधुर की अनुभूतियों के मार्मिक चित्रण में शब्द चयन एवं भावों का संयोजन मर्मस्पर्शी है। उपनागरीकावृति वैदर्भी एवं माधूर्य व्यंजक वर्णो का गुम्फन रसोपकारी है।

रत्युत्कण्ठा चपलनयना त्वं हि सौभाग्यरात्रौ,

श्रृंगाराढ्यां ललितवसना पुष्प शय्याधिरुढ़ा।

बद्धे जानौ निहित चिबुका कुंचिता पद्मिनीव,

यत्नाज्जातोन्नमित वदनाम्भोज पीयूषवर्षा।।[402]

गृहणीधर्म की महत्ता को बताते हुये, अपनी पत्नी में भारतीय नारी के आदर्श को पाया है, उनकी व्यष्टि में समष्टि को समाहित किया है।

धन्योभर्ता विमल चरितां त्वादृशीं गेहलक्ष्मीम्,

प्राप्नोत्यार्यां सकल सुखदां पद्मिनीं सौरभाढ्याम्।

यस्याः लस्यां मधुरभणितिः सौष्ठवं कार्य कल्पे,

स्वर्गं चक्रु सदनमवनौ दुर्लभास्ता गृहिण्यः।।[403]

अपि च –

"सत्यं लोको भणति गृहिणीं गेहरुपां वरेण्यम्"[404] **।**

भाषा में शक्तिमत्ता लाक्षणिकता एवं प्रभावपूर्णता के लिये लोकोक्तियों तथा मुहावरों के स्वाभाविक प्रयोग से काव्य का भाषिक सौष्ठव परिपुष्ट किया गया है।

या कामार्ति हरति च नृणां सौख्य भावं तनोति,

लासैश्चितं मदयति मुदा पूरयात्मकुम्भम्।

वंशे वृद्धिं कलयति यशोवर्धिनी पुत्र पौत्रैः,

कस्या भीष्टा भवति न जनस्याङ्गनासाऽपवद्याः।।[405]

इस प्रकार आधुनिक काव्य की समस्त भाषिक विशेषतायें वियोगशतकम् में विद्यमान है।

श्रृंगार परक खण्डकाव्यों में तृतीय काव्य मेघोपालम्भनम् में युगानुरुप मेघों के विविध विलासों का उलम्भनात्मक वर्णन किया गया है। मरुधरा की उपेक्षा करने वाले जलधर को कोसा भी गया है। बादलों का मानवीकरण कर उस पर जार भाव का आरोप, पर्यावरण

चिन्तन एवं युगीन परिवर्तन के लिये प्रेरित भी किया गया है। उक्त कथ्य तथ्य को वैदर्भी सम्पन्न सहज शैली में तथा भाव सम्पन्न प्रवाहमयी भाषा में प्रभावी ढंग से वर्णित किया गया है, जिसका कतिपय निदर्शन ग्रन्थानुसार प्रस्तुत है –

यह सारी सृष्टि चलायमान है। न संध्या स्थिर है, न उषा की प्रभा ही स्थिर है। सूर्य हो, चन्द्र हो किंवा तारें हो सभी समय पर परिवर्तनशील है। इस भाव को शुद्ध वैदर्भी शैली में अधोलिखित श्लोक में कवि पं. दवे ने वर्णित किया है –

चला समस्ता खलु सृष्टिरेषा,
स्थिरा न सन्ध्या न विभास्त्युषायाः।
सूर्योस्तु किं वा शशितारकाणि,
सर्वं हि काले परिवर्तनमानम्।।[406]

मुग्ध मेघों के वर्णन में पदन्यास की चारुता, आधुनिक उपमानों की रम्यता से सुसज्जित काव्य का शिल्प अवलोकनीय है –

पति व्रतानां व्रत खण्डने रताः,
इमे न लुण्टांकचराश्चरन्ति।
सामान्त दुर्गाद् वनिता जनस्य,
ह्याक्रन्दनं चापि निशम्यतेऽत्र।।[407]

''मेघोपालम्भनम्'' नामक इस खण्डकाव्य में मेघदूत के श्लोकों की पदावली को यथावत् प्रयुक्त किया गया है।

– ''आषाठस्य प्रथम दिवसादम्बरे कीलिताक्षी''[408]
– ''सन्तप्तानां त्वमसि शरणं यद्यदुक्तं त्वदर्थे''[409]
– ''जातं वंशे भुवन विदिते पुष्करावर्तकानाम्''[410]
– ''धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातोऽसि भो! त्वम्''[411]

मेघों की अनुकम्पा के बिना अकाल पीडित जनों की क्या दुर्दशा होती है, इसका मार्मिक वर्णन बड़ी ही सुबोध भावसम्पन्न प्रवाहमयी भाषा में इस प्रकार किया गया है – जब आकाश बादलों से सूना हो, हवा में भी बूंदे न हो, धूप तप रही हो, मोर दुःखी हो रहे हों, ऐसे समय में मेघ मल्हार के गीत भला किसे अच्छे लगेंगे –

मेधैः शून्ये नभसि पवने शीकराश्लेषहीने,
मौनीभूते कृषक सुखदे भूमि कान्ते पयोदे।
शुष्के मार्गे ज्वलति तपने दूयमाने मयूरे,
कस्याश्चिते जनयति मुदं मेघमल्हार गीतिः।।[412]

भौतिक लाभ के लिये प्रकृति को उद्वेलित करने वाले लोगों को बड़ी सहजता से दोषी ठहराया है। सुवृष्टि–अनावृष्टि–अल्पवृष्टि की विविधलीला करने वाले बादलों का मानवीकरण आधुनिक शैली में किया गया है। जिससे काव्य का भाषिक सौष्ठव पुष्ट हो रहा है।

''केलिभूकैतवम्'' युगबोधक खण्डकाव्य है। दहेज के अभाव में लड़कियों का विवाह नहीं हो पाना, नौकरी के अभाव में लड़कों का अविवाहित रह जाना, आनाचार, अवैध सन्तति, आधुनिकी शिक्षा, स्वच्छन्दता आदि के दुष्परिणामों को प्रवाहमयी भाषा में, आधुनिक पद विन्यास द्वारा काव्य का जो शिल्प प्रस्तुत किया गया है, वह अति मनोहारी है। पदलालित्य से ललित इस पद्य में कुट्टनी के चरित्र का चारु चित्रण देखिये –

अनङ्गतन्त्रे कुशलास्तरुण्यः ह्ययतृप्तं कामास्तरुणं मनोज्ञं।
प्रतीक्षमाणा प्रसमीक्ष्य चैनम् दास्यन्ति मह्ययं विपुलोपहारम्।।[413]

नवाचार से अनभिज्ञ पण्डितों को जड़मत माना जाता है। जिसने अंग्रेजी नहीं पढ़ी उस युवक को युग धर्मानुसार स्त्रियाँ उपेक्षा भाव से देखती है। इस युग्–बोधक व्यंग्यात्मक भाव को व्यक्त करने वाले नवशिल्प स्मरणीय है। अंग्रेजी शब्द का उल्लेख आधुनिक संस्कृत साहित्य का नव शिल्प है –

नवाभिचारानाभिज्ञत्वात् पण्डितोऽपि जड़ो मतः।
नाङ्ग्रेजी पठिता चेति स्त्री रत्नेनास्मि वंचितः।।[414]

प्रसाद शैली में आधुनिक शिक्षा ग्रहिता कन्या की अपेक्षा का वर्णन हृदयकर्षक है –

ललाट पट्टेऽस्तु न भस्म लेपः,
वक्त्रेऽपि रम्ये न च केशलेशः।
श्मश्रुप्रिया मे न कपोल लक्ष्मीः,
एषः द्वितीयोऽस्ति पणोमदीयः।।[415]

काव्य में युगानुकूल शब्दों का साम्राज्य है। लोकोक्तियों का सटीक प्रयोग है। अर्थान्तरन्यास का विन्यास है। 'पत्नी मनोरमां देहि मनोवृनानुसारिणीम्'[416], 'भार्या रुपवती शत्रु'[417], ''बहुभिर्विहितं लोके दूषणं भूषणायते''[418] जैसे प्रसिद्ध वाक्यों का प्रयोग काव्य की भाषा शैली की श्रेष्ठता का निदर्शन है।

करुण रस परक खण्डकाव्यों में ''कारुण्य–कादम्बिनी'' एवं ''कामधेनुशतकम्'' दोनों ही कवि दवे की उत्तम कृति मानी जाती है। कारुण्य प्रवाहिणी कारुण्य कादम्बिनी में भाव और भाषा का मंजुल सामंजस्य है। माधुर्य व्यंजक वर्णो से सम्गुम्फित प्रसाद शैली में माता मथुरा देवी की वन्दना का शिल्प श्लाघनीय है –

यस्याः स्तन्य सुधारसेन सरसा तन्वी मदीयातनुः,
हृदय स्नेह–निषेक–निर्मलतम–प्राण प्रदीपस्तथा।
वात्सल्यामृतं–वर्षिणी शिवतमां पुण्य प्रभां निर्मलाम्,
वन्दे तां मथुरां तपोऽतिमधुरां तीर्थोऽपमां मातरम्।।[419]

आज के स्वार्थीयुग में आधुनिक शिक्षा के प्रभाव से विकृत मति वाले, अपनी पत्नी के सेवक जवानी के मतवाले कलियुगी पुत्रों के वर्णन में भावगम्य शब्दों की सृष्टि से करुणामयवात्सल्य की वृष्टि की गयी है –

जानन्ति ते जड़धियो विषमे हि काले,
शिक्षा प्रभाव विकृते वनितानुबन्धे।
स्वार्थप्रिये तरुणिमामदमूढ़ चित्ते,
मतुः प्रियाणि कलितानि रुजोपहानि।।[420]

अपि च –

वात्सल्य–बुद्धि–कलिताऽकुल–चित्तवृत्तिः,
जाताममत्व–विकला तनुकेऽप्ययोगे।
स्नेहस्नुतात्म कुचभार निवारणाय,
क्रोडं गते हि तनुजे लभते प्रसादम्।।[421]

असमस पिता की मृत्यु के पश्चात् कवि की माता का वैधव्य जीवन, उससे उत्पन्न दारुण करुणा को लघु सामासिक पदों में पद्यबद्ध किया गया है। इसमें भाषा की भव्यता का आधार छन्द प्रयोग एवं तद्‌जन्य नादमाधूर्य है। 'शार्दूलविक्रीडितम' छन्द में वैधव्य वेदना से श्रीहीन, दीनता के दाह से दग्ध करुणा का साक्षात् निदर्शन भाषा की स्वाभाविक चारुता को चित्रित कर रही है –

वैधव्योदित वेदनाति विकला शून्याश्रिया वाटिका,
दैन्यप्लुष्ट–समस्त सौख्य–सुषमा भग्नाश्रयवल्लरी।
दुर्भाग्योदितं झंझया कलिलतां याता रजोव्यापृता,
घृत्वा डिम्भ निबन्धनम् हि कथमप्येषा दधेजीवनम्।।[422]

मंजुल पदावलियों के विनियोग द्वारा संसार की सभी माताओं की स्वाभाविक स्थिति की अभिव्यक्ति में भाषा का प्रवाह, भावों की अविरल सरिता तथा सहज संवेद्य शिल्प की रमणीयता से काव्य की कमनीयता का पोषण देखिये –

शीते कन्थावृत कृशतनुः कम्बलैश्च्छादयन्ती,
ग्रीष्मैः स्विन्ना व्यंजनधुनितैर्नो मुदा बीजयन्ती।

शुष्कै भोज्यैरुदर भरिणी चात्मनो नः कवोष्णैः,

नो जाने सा कति–कति रुजोऽस्मत्कृते हा प्रसेहे।।[423]

वर्तमान समय में मां की दयनीया अवस्था, सक्षम सन्तति के होते हुये भी मां का वृद्धाश्रम के शरण में जाना आदि करुणामयी भावों को रसानुकूल शैली में अभिव्यंजित किया जाता है।

इसी प्रकार कामधेनुशतकम् काव्य में गौ माता की करुणा को भाषा–भाव–लय–प्रवाह के साथ छन्दोबद्ध किया गया है। यह काव्य प्राचीन काव्य परम्परा और आधुनिक विषय वस्तु के सटीक चित्रण से आधुनिक भाव बोध को भी मूर्त रुप देता है। काव्य की भाषा प्रांजल और व्याकरण शुद्ध है, इसमें जटिल श्रुतिकटु या कठिन प्रयोगों का व्यवधान प्राप्त नहीं होता है। शिखरिणी, उपजाति, द्रुतविलम्बित, वियोगिनी, शार्दूलविक्रीडितम्, वसन्ततिलका आदि छन्द काव्य के प्रमुख रसों के प्रवाह में सहायक है। भाषा विविध अलंकारों से मण्डित है तथा रसाप्लावित है। इस प्रकार यह काव्य कला पक्षीय मानदण्डों को पूर्ण करता है।

'कामधेनुशतकम्' पं. श्रीराम दवे के निर्मल हृदय से प्रस्फुटित अद्वितीय रचना है, जिसमें कामधेनु की पुत्री नन्दिनी स्वरुपा गो अवतंशों के कल्याणार्थ स्वाभाविक शब्द शय्या है। ऋषियों की भूमि भारत में गोवध की विडम्बना विषयक अन्तर्वेदना को देववाणी में जीवन्त चित्रण कवि द्वारा किया गया है। ''सा नन्दिनी क्रन्दयति'' तथा ''क्रन्दतीयं कामधेनु'' नामक अध्याय की करुणा में प्रयुक्त भाषा, भाव को झंकझोर देने वाली है।

विश्वेपकर्त्री जनपोषयित्री, स्वाहावषट्कार हविर्विधात्री।

मूलंच लक्ष्म्याः दुरितापहन्त्री सा नन्दनी क्रन्दयति साम्प्रतं हा!।।[424]

गोमाता की महिमा के वर्णन में ललित पदों के सुन्दर सन्निवेश से श्रुति मधुर पदलालित्य का अभिराम चित्रण अवलोकनीय है –

मधुरया सुधया सुरतोषिणी, विपुलया रमया जनरंजिनी।

परमया कृपया कृषिवर्धिनी, जयति कामदुधा सुरनन्दिनी।।[425]

प्राचीनता और आधुनिकता के संगम का प्रतिनिधित्व करने वाले इस काव्य में प्रचलित आधुनिक शब्दों का प्रयोग भी दृष्टिगोचर होता है –

<u>फिरंगीणां</u> हस्ते गतिवति हि राष्ट्रे शुचिकुले।

गवां प्राणाः जाता वधिक कर वालेन विकलाः।।[426]

कत्लखानों में विकल गो वत्सों को नव–नव यन्त्रों से वध करने की करुणा को कवि ने प्रसाद पूर्ण वैदर्भी शैली में वर्णन किया है, जो रसोपकारक एवं चित्त को द्रवित करने वाला है–

शिशुमुग्ध मुखाश्चतवर्णकाः क्रन्दतः कषायाभिकर्षिणैः।
विकलानवयन्त्रश्रचालितैः हन्यते रुधिराय दारकैः।।[427]

विना शस्त्र के ही शस्त्रवलधारी सहस्रों को भारत से भगा दिया, उसी गांधी की धरा पर अहिंसा की चेतना देने वाली वसुन्धरा पर गोवध क्यों ? इस भाव को कवि ने प्रांजल प्रवाह में, विनोक्ति की सदाशयता में, उक्ति औचित्य की चारुता में इस प्रकार कहा है –

ख्यातो राष्ट्रपितेति भारत युगः स्वातन्त्रयसन्नायकः,
येनास्त्रेण विनैव शस्त्रबलिनो गौराइतोऽपाकृता।
धेनूनां वध वारणाय विदधे यत्नाननेकानयम्,
तस्यास्मिन् शुचि भूतले कथमहो संजायते गोवधः।।[428]

इस प्रकार 'कामधेनुशतकम्' अल्पप्राणिक वर्णों से सम्गुम्फित ललित पदावलियों से ललित रसपेसलता के औचित्य से अभिसिंचित है, भाषा का प्रवाह सहृदय संवेद्य तथा भाव पारम्परिक अस्मिता से सुचिन्त्य है।

परिखायुद्धम् नामक खण्डकाव्य वीररस प्रधान काव्य है। इसमें भाषा और भावों का मंजुल समन्वय है। रसानुकूल परुष वर्णों के आधिक्य से ओज की सहज अभिव्यंजना तथा प्रसंगानुकूल समासबहुला भाषा, रसौचित्य की चारुता से रमणीय है। पौराणिक पात्रों के माध्यम से आधुनिक समसामयिक भावों को व्यक्त करने की शैली मौलिक है। शिल्प में व्यंग्य सर्वत्र है। अन्योक्ति का वैशिष्ट्य है। लक्ष्मी की व्याकुलता में अन्योक्ति देखिये –

किं कष्टस्य भणानि शक्रदयिते! चित्रे गतस्यात्मनः,
सुप्तोऽयं खलुसागरे न कुरुते गृह्यां तु चिन्ता मनाक्।
संसारे तनुते सदैव नवतां सम्पीडया व्यग्रताम्,
आत्मानं विषमे निपात्य कुरुते देवानापि व्याकुलान्।।[429]

परुष वर्णों की आधिक्यता किन्तु शैली में प्रसादता की प्रस्तुति हृदयाकर्षक है –

कलौतु क्रतवौ लीनाः पुरोडाशाशनं गतम्।
वराकाः क्षुधिता देवा किं कुर्युः स्वर्ग संस्थिताः।।[430]

काव्य में समास बहुलापदों की बहुतायतता है। जो काव्य के अंगी रस को पुष्टी तथा भाव सौन्दर्य की तुष्टि का कारक है। रुद्राणी की उक्ति में युद्ध की विभीषिका की निरुक्ति देखिये –

वेदाभ्यासजडस्तवापि सुभगः कस्यास्ति नो संस्तुतः,
नायं खिद्यति लोक बोधन पटुर्वक्त्रै चतुर्भिर्वदन्।

जानीते नहि शूलविद्ध पुषां कीदृग रणे संकटं,
येन त्वं विषमार्ति सङ्गकथां कौतूहलं मन्यसे।।[431]

लोगों को युद्ध की बातें सुनने में अच्छी लगती है, किन्तु वाण की तीक्ष्णता को वहीं जानता है, जिसे युद्ध में वाण लगता है। उक्त भावों की अभिव्यक्ति में उक्ति वैचित्रय की चारुता देखिये –

युद्धस्य तु वार्तैव जनानां भवति प्रिया ।
विद्ध एव विजानाति शरस्य शिततां रणे।।[432]

काव्य में आधुनिक शब्द ''फिरंगी'' का प्रयोग भी किया गया है –

फिरगि तन्त्रोदितयन्त्रजाले बभूव तेषामपि दैव योगः।।[433]

1. तेल की तस्करी से उन्मत्त यवन के वर्णन में –

''जाता अजाः पंच नखा युगोऽस्मिन''[434]

''आज अजा शेर हो गये'' अन्योक्ति के माध्यम में भाषा की चारुता चित्रित हो रही है।

''कालकौतुकम्'' नामक खण्डकाव्य एक युग बोधक काव्य है, जिसमें कवि ने काल के कौतुक का वर्णन किया है। काल की लीला बड़ी विचित्र होती है। उत्थान–पतन इसी की विडम्बना होती है। इसी भाव को श्लेषालंकार के माध्यम से व्यंग्यात्मक शैली में सहज संवेद्य भाषा में कवि ने इस प्रकार कहा है –

यो सिंह इव भाविता नृप पदे जम्बूगतां ते गताः,
येषां सत्यपि शासनेऽद्य विपिनं व्यलोड्यते शूकरैः।
प्लुष्टं कानन मेतदद्य सकलं दावानल ज्वालया,
कस्तं कानन पावकं जलधारो धाराभिराशामयेत्।।[435]

भारतीय संस्कृति के परिवर्तन की कौतुक में भाषा की सहजता, अनुप्रास का न्यास, श्रुतिमधुर शब्दों की चारु शय्या का उदात्त उदाहरण अवलोकनीय है –

शिक्षा संस्कृति जीवनोत्सव विधौ खाद्येऽभिवादे तथा,
भाषा भाषण–भूषणे भृतिपदे संकल्पिते शासने।
पाश्चात्यां सरणिं मुदाऽनुचरतां संकोचलेशोऽपिनो,
चित्ते विश्व गुरुत्व गौरव कथा स्वीया न संस्मर्यते।।[436]

श्री दवे ने इस काव्य में ''वेलेन्टाइन्स'', ''फिरंगी'' जैसे आधुनिक शब्दों का प्रयोग भी किया है। इस प्रकार समय के बदलते चक्र को कवि ने अलंकारिक शब्दावली में भाषा और भाव के समन्वय के साथ प्रस्तुत किया है। एतदर्थ इसकी भाषा प्रांजल और प्रवाहमयी है तथा भाव कौतुकमय है।

कविकृत स्तोत्र परक खण्डकाव्यों में ललितालहरी, अपांगलीला, भारतीविलास का नाम आदर से लिया जाता है। उक्त काव्यों में कवि ने भक्ति जनित भावों का सम्यक् निदर्शन प्रस्तुत किया है।

ललिता लहरी में वात्सल्यमयी भगवती ललिता देवी का दिव्य रुप वर्णित है। अतः इसकी भाषा भी भक्त ह्रदय से प्रवाहित स्वाभाविक एवं प्रसाद गुण मण्डित है। भक्ति रस के अभिव्यंजक माधुर्य गुण के प्रकाशक ललित वर्णों से अभिमण्डित नैसर्गिक सुषमा से अभिराम भाषा और भाव का मंजुल योग काव्य का उपकारक है।

सगुण भक्ति के समर्थक कवि के इस लहरी काव्य में, मन और नयनों को अह्लादित करने वाली सौम्य मूर्ति के वर्णन में भाषा की सौम्यता अवलोकनीय है –

सकामा भक्तास्ते विविध कुलतन्त्रार्चन पराः,
भजन्तां सिद्धयर्थं समविषम रुपां तव तनुम्।
परं मे मातस्ते लगति रुचिरा दिव्य करणा,
शिवा सौम्या मूर्तिः नयन ह्रदयाह्लादजननी।।[437]

भक्ति रस में उपकारक माने जाने वाले शिखरिणी, शार्दूविक्रीडितम् आदि छन्दों से सुसज्जित पदशय्या भाषा के वैभव को समृद्ध करने वाला है। व्यतिरेक, स्वाभावोक्ति, परिकर, अतिशयोक्ति, विशेषोक्ति आदि अलंकारों से अलंकृत भाषा भावों का परिष्कारक है। काव्य का शिल्प अन्तर्कथा[438] और अर्थान्तरन्यासों से सम्पूरित है। अपनी आराध्या भगवती ललिता की स्तुति एक गृहिणी के रुप में वर्णित कर कथा के प्रवाह को नया आयाम दिया गया है –

''गृहिण्यास्ते लीलां चकितमिव पश्यामिललिते''[439]

कोमल कान्त पदावली द्वारा अनुकूलता की भावमयी अनुभूति एवं नव–नव कल्पना की चारुता से आद्योपान्त मनोभावों की अभिव्यक्ति का अवगाहक ललितालहरी की भाषा शैली है।

'अपांगलीला' नामक भक्ति परक काव्य में सृष्टि कर्त्री भगवती त्रिपुर सुन्दरी स्वरुपा ललिता देवी की कृपा कटाक्ष के वर्णन में भावानुकूल पदावलियों का सन्निवेश है –

सृष्टिर्विचित्रा सचराचरात्मिका,
दृष्टिर्बुधानां सदसद्विवेका।
पृष्टिः प्रकृत्याः परितौ लसन्ती
ह्यापाङ्गलीलाम्बिकायाः।।[440]

भाषा की सहजता भाव की सरसता का समन्वय सृष्टिलीला के इस पद्य में वर्णित है –

तापं धरायाः रवितापितायाः, पयोधराणां पयसां प्रवाहैः।

प्रशामयन्ती प्रकृतेः पिपासां, तवैव लीला दिशतीह वृष्टिः।।[441]

भक्ति रस परक काव्यों का शिल्प प्रसाद के विना अपूर्ण माना जाता है। कवि ने अपने काव्य में प्रसादगुण का समुचित निर्वाह किया है, प्रसाद का अनूठा निदर्शन देखिये –

शिष्येषु श्रद्धा गुरुता गुरुणां,
प्रज्ञा बुधानां प्रतिभा कवीनाम्।
कुशाग्र बुद्धिः श्रुतिशास्त्र बोधे,
कृपाकटाक्षैस्तव लम्भनीया।।[442]

अपांगलीला काव्य में प्रतीकात्मकता, चित्रात्मकता एवं उक्ति वैचित्र्य के दर्शन भी होते है। कम्प्यूटर द्वारा लेखन क्षेत्र में आये बदलाव से गणपति की लेखनी की स्वतन्त्रता, दूरभाष से विश्वमात्र की गतिविधि की विडम्बना का वर्णन भी –

निगृह्य नादं वियतोऽतोवीर्य संचारितोऽद्यास्ति च दूरभाषः।[443]
गणेश हस्तार्पित लेखनीयं निरुद्धवेगास्त्युदिते हि यन्त्रे।[444]

संवाद योजना द्वारा कवि ने काव्य को कमनीय रुप दिया है, शिव–विष्णु संवाद कामेश्वर–कामेश्वरी संवाद, शिव–अपर्णा संवाद, शिव–उमा संवाद आदि भाषा शैली का वैशिष्ट्य है।

विष्णु उवाच – शम्भोत्वदीयं ललितं ह्रदयापहारि,
रुपं विवाह समये प्रविलोक्य दिव्यम्।।[445]
शिव उवाच – कूर्यां हरे! तनुमिमां यदि भूषणाढ्यां,
श्रृंगार–हार ललितां ललनाक्षि हृद्याम्।।[446]
कामेश्वरः – स्त्रीणामप्यति दुर्गमं हि चरितं ज्ञातुं न शक्तावयं।[447]
कामेश्वरी – श्रुत्वैतद् वचनं शिवा स्मितमुखी प्रोवाचकामेश्वरं।
युष्माकं हित साधनाय हि मया कादम्बरी सेव्यते।[448]

इस प्रकार भाषा की मृदुता, कोमलता, भावानुरुप पदवली की योजना, भाव प्रवणता संवाद–प्रेषणीयता आदि अपांगलीला में सर्वत्र दृष्टि गोचर होता है। भारती विलास खण्डकाव्य भी भक्ति श्रृंगार के धार को तेजस्विता प्रदान करने वाली कृति है। जिसमें भाषा के विविध अवयवों का

मानवीकरण कर भारती रुप प्रदान किया गया है। भारती की लीला को कवि ने नवीन परिकल्पना में बड़ी सहजता से इस प्रकार वर्णित किया है –

शब्द ब्रह्म रसायनोदयकारी सारस्वताराधिताम्,
वर्णाच्छादित विग्रहां नव नवच्छन्दोऽम्बराडम्बराम्।

शब्दार्थ ध्वनिरीति संभृत रसालंकार सम्मण्डिताम्,
वाग् व्यापार पथे भजे विदधतीं लीलायितं भारतीम्।।[449]

वैखरी वाणी के वर्णन में अनुप्रास का सहज न्यास अधोलिखित श्लोक में रमणीय छटा प्रस्तुत करता है –

मौनं मौनं वियति चरतां वैखरी खेचराणाम्,
शीतोष्णानां शशि रवि रुचां रोचना लेखनी त्वम्।
शून्ये चित्रांकन कृतिरता तूलिका रंजयित्री,
पंचाङ्गानां प्रकृति सुरभेः मण्डनं संविधत्से।।[450]

कविता विग्रह भारती के वर्णन में प्रसादात्मक शैली में स्वाभाविक अभिव्यक्ति से इसकी भाषा अतिसुन्दर बन गयी है –

अयि सुधाकर चारुमुखि! प्रिये!
कुमुदिनी–कुल–कौशल–कर्षिणी।
कुवलयेष्वपि कल्पितकेलिके!
कथमये कलितस्तव संगम्।।[451]

भक्ति एवं भाव के लिये यह काव्य जितना महत्वपूर्ण है, भाषा की दृष्टि से यह उतना ही रमणीय भी है। भाषा की चारुता में आनुप्रासिक छटा लघु सामासिक मंजुल पदावलियों का विनियोग, बोधगम्यता एवं प्रांजलता का वैशिष्ट्य है।

भगवती के नख शिख वर्णन में भक्ति जनित श्रृंगार प्रिय शिखरिणी, शार्दूलविक्रीडितम् और वसन्ततिलका छन्दों में रचित स्तोत्रों की पदशय्या रुचिकर एवं हृदयावर्जक है। अर्थगाम्भीर्य, प्रसादगुण की मनोरमता, माधूर्य की अभिव्यंजना एवं रसानुकूल रीति की कुशल संघटना कवि को भाषा शैली का सिद्धहस्त कवि सिद्ध करता है।

अनूदित काव्यों की भाषा शैली भी उनके मौलिक काव्यों की तरह ही प्रशस्त है। अकिंचनचैत्यम्, यवनीनवनीतम् और ब्रह्मरसायनम् तीन काव्य अनूदित काव्यों में परिगणित है। कवि ने कालजयी वैदेशिक रचनाओं का संस्कृत पद्यानुवाद कर संस्कृतानुरागियों को उपकृत किया है। अंग्रेजी के अमर कवि टॉमस ग्रे की रचना **'एलिजी रिटिन इन ए कन्ट्री चर्चयार्ड'** का संस्कृत पद्यानुवाद ही 'अकिंचनचैत्यम्' नामक खण्डकाव्य है।

कवि इस अनूदित काव्य में इंगलिसतान के शिल्प को संस्कृतोचित शैली में ढ़ाला है। तथा कथ्य में भी कहीं कहीं परिवर्तन किया है। अनुवाद की भाषा विशुद्ध एवं व्याकरण सिद्ध है। भाषा और भाव के साथ पूरा न्याय किया गया है। ग्राम्य जीवन की विषमता के वर्णन में भाषा की भव्यता तथा भावों की सम्प्रेषणीयता का उत्कृष्ट निदर्शनः

तत्रत्ये विषमस्थले च वृहतो वृक्षस्य छायातले,
एकं शाद्वल सैकतोन्नत रजो राशि स्थलं लक्ष्यते।
ग्रम्यास्तत्र निरक्षरा विधिहता वृद्धाः प्रयाता दिवम्,
संकीर्णे शवकेतने निगदिताः स्वे–स्वे चिराच्छेरते।।[452]

यवनी नवनीतम् में उर्दू के कवि मिर्जागालिव की कविताओं का विविध छन्दों में श्लोकानुवाद किया गया है। मिर्जागालिव का शोक यवनीनवनीतम् अनूदित संस्कृत काव्य के रुप में निवद्ध है। यद्यपि भाव सभी भाषाओं में समान होते है, किन्तु उन्हें अन्य भाषा में साहित्यिक मर्यादा में स्थान्तरित करना कठिन कार्य होता है। पं. दवे एक कुशल शिल्पी हैं अतैव उर्दू के भावों और शब्दों को संस्कृत भाषा में अनुवाद कर श्रेष्ठ कवि एवं बहुभाषा भाषी होने का परिचय दिया है। शृंगार और करुण रस का समन्वय काव्य में है, अतः रसानुकूल ललित पदों का विनियोग रमणीय है वसन्त वर्णन में काव्य की कमनीयता देखिये –

वसन्तोऽयं समायातो महता महसा सह।
मिहिरेन्दु दर्शकौ जातौ, महसाः कौतुकंमुदा।।[453]

अपनी व्यथा की कथा कहते हुये अधोलिखित श्लोक में भाषा की सहजता और रमणीयता देखिये

विप्रयोगे निशाप्येषा,
हन्ति मां निभृतं सदा।
वरं मे वरणं भूयात्,
सकृत्स्यात् यद् व्यथोदयः।।[454]

ब्रह्मरसायन नामक अनूदित काव्य सिन्धी भाषा के मूर्धन्य महाकवि शाहअब्दुल लतीफ'' के सूफी महाकाव्य ''शाहजोरसालो'' का विभिन्न छन्दों में संस्कृत श्लोकानुवाद है। अनुवाद में भाषा और भाव की स्वाभाविकता है। प्रसाद गुण की प्रधानता है। एकेश्वरवाद की वर्णना में शब्दों की शय्या की चारुता देखिये –

स एवास्ति च यत्किंचित, जीवनं मरणं तथा।
प्रियः प्राणाः स एवास्ति मित्रं शत्रुः स एव नः।।[455]
स एव सर्वतो भाति सर्वेषां ह्रदये स्थितः,
स एव स्व प्रकाशेन सर्वं पश्यति सर्वदा।।[456]

कवि ने अद्वैतवाद की वर्णना में दार्शनिक शब्दावलियों का प्रयोग किया है। शिल्प मौलिक है। भाव प्रवाह मयी है। शब्दों का गुम्फन भावानुरुप सहज सरल तथा प्रांजलता के साथ किया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि पं. श्रीराम दवे के खण्डकाव्यों की भाषा शैली भावानुरुप नीतिपरक भावोद्दीपक तथाा मानवीय गुणों के अनुरुप है जो सामाजिकों को रसास्वाद कराने में समर्थ है। भाषा पर कवि का असाधारण अधिकार है तथा भावानुकूल शब्दों के चयन में विशेषज्ञता है। भाषा को सशक्त एवं समृद्ध बनाने के लिये लोक सूक्तियों का भी प्रयोग किया है जैसे –

1. अंग्रेजी भाषा तथा प्रचलित शब्दों का यथावत प्रयोग हुआ है, जो सद्यः भावार्थ ग्रहण में सहायक हैं। जैसे – वेलेन्टाइन, फिरंगी।
2. भाषा में कालीदास के काव्यों का प्रभाव स्पष्ट है, मेघदूतम् के कतिपय पदावली यथावत् ग्रहण किये गये है।
3. स्रोत परक काव्यों में भावनुकूल भाषा एवं शृंगार प्रधान काव्य में रसानुकूल भावाभिव्यंजक पदों वर्णों का विनियोग हुआ है।
4. आवश्यकतानुसार व्यंग्यतात्मक शैली का प्रयोग भी किया गया है।

खण्डकाव्यों की प्रकृति के अनुसार कोमल कान्त पदावली के प्रयोग से भाषा सरल और प्रवाह पूर्ण है। दीर्ध दीर्धतर समास का अभाव तथा प्रयत्न साध्य अलंकारों का भी प्रायः अभाव है। स्वल्प शब्दों में भावों की पूर्ण अभिव्यक्ति रमणीयता वर्ण्य विषय, भावातिरेकता, चमत्कारजन्यता, चित्रात्मकता, मार्मिकता सिद्ध शिल्पी के रुप में प्रसिद्ध करता है।

काव्य समीक्षा के अन्तर्गत भाव और अभाव दोनों पक्षों की समीक्षा आवश्यक है। अभाव को दोष के नाम से जाना जाता है। किस प्रकार के शब्दों का कहाँ प्रयोग करने पर दोषों की स्थिति बनती है। यह विचार भी विचारणीय है।

आचार्य मम्मट का कहना है कि, जिन शब्दों के प्रयोग से रस रुप मुख्य अर्थ की हानि हो वहाँ उन शब्दों को दुष्ट कहा जाता है। पद, पदांश, वाक्य, अर्थ और रसगत होने से दोष पाँच प्रकार का होता है। सूक्ष्म रुप से विचार करने पर कतिपय स्थलों पर श्रुतिकटु, अप्रसिद्धत्व, प्रकमभंग तथा रस दोषों का दृश्य उपस्थापित होता है किन्तु समग्र विवेचन पश्चात् यह कहा जा सकता है कि पं. दवे का खण्डकाव्य भक्ति की पराकाष्ठा है, चाहे वह देवी भक्ति हो, मातृ भक्ति हो, संस्कृति भक्ति हो अथवा राष्ट्रभक्ति, वह सहृदय जन संवेद्य है। पं. दवे के खण्डकाव्यों का पाठ करते समय कहीं भी रसस्वादन में अवरोध की अनुभूति नहीं होती है। रसरुप मुख्य अर्थ की हानि नहीं होने से दोष की परिकल्पना उचित नहीं है।

एतदर्थ काव्य की भाषा शैली में निर्दुष्टता अलंकारिता, रसग्रहिता, भाव संप्रेषणीयता से ओत–प्रोत है।

इस प्रकार पं. दवे के काव्य में भाषा व्यावहारिक, समासरहित अथवा अल्पसमास वाली है। आवश्यकतानुरुप लोकोक्तियों, मुहावरों, सूक्तियों, के प्रयोग से भाषा सर्वजन सुलभ है। शब्द शक्ति का प्रयोग साधिकार किया गया है। आंग्लभाषा के शब्दों को यथावत् स्वीकार किया गया है, कहीं कहीं पर उसका संस्कृति करण भी किया गया है। भाषा में सरलीकरण से संस्कृत की लोकप्रियता बढ़ी है। कवि की उक्त खण्डकाव्यों की शैली में प्रवाह पूर्णता, भावानुरुपता, स्वाभाविकता, उपादेशात्मकता, संवादात्मकता विशेष रुप से दृष्ट्व्य है। युग बोधक, संस्कृति रक्षक तथा स्तुत्यात्मक शैली में जीवन मूल्यों का सम्प्रेषण, कवि के कुशल काव्य शिल्पी जीवन मूल्यों की सम्प्रेषण, कवि के कुशल काव्य शिल्पी वर्चस्व को प्रमाणित करता है।

निष्कर्ष –

किसी भी रचना का आधार रचयिता का हृदय एवं उनकी बुद्धि का सम्मिलित व्यापार होता है। कवि की अनुभूति तथा अनुभूत तत्वों की साधु अभिव्यक्ति ही साहित्य सौष्ठव की कोटि में आता है। जिसकी प्रकृत अध्याय में समीक्षा की गई है। समीक्षात्मक चिन्तन पश्चात् निष्कर्ष रुप में कहा जा सकता है कि पण्डित दवे का खण्डकाव्य साहित्यिक मानदण्डों के अनुरुप है। यह प्राचीन काव्याचार्यों के अनुशासन में ग्रथित एवं आधुनिक काव्याचार्यों द्वारा निर्दिष्ट नूतनता से व्यवस्थित है। इसमें भाव पक्ष तथा कला पक्षों का समुचित निर्वाह किया गया है। जहाँ तक भाव पक्ष की बात है, तो कवि ने पूर्ण न्याय किया है। स्वयं की भावना तथा सामाजिकों की भावना को शब्दों में भर दिया है। वहीं भावना शब्दार्थों से झरता हुआ रस रुप में व्यक्त हुआ है।

कवि के खण्डकाव्यों में रस की समीक्षा मुख्य रुप से काव्य प्रकाश तथा साहित्यदर्पण के आधार पर की गई है। क्योंकि अर्वाचीन आचार्यों का कोई प्रामाणिक मत पृथक से प्राप्त नहीं होता है। सर्वप्रथम भाव पक्ष को काव्य का हृदय पक्ष सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। तत्पश्चात् रसावयवों की शास्त्रीय परिभाषा दी गई है। परिभाषा अनुसार समीक्ष्य ग्रन्थों में स्थित रस की समीक्षा की गई है। तदनुसार पण्डित श्रीराम दवे ने अपने खण्डकाव्यों में काव्यास्वाद की दृष्टि से रसों की सुन्दर संयोजना की है। भावानुकूल सभी रसों का समुचित निर्वाह किया है। विशेषतः श्रृंगार रस, करुण रस तथा भक्ति रस पर विशेष अनुराग दिखाया है। उनके 'वियोगशतकम्' का विप्रलम्भ मेघदूतम् के विप्रलम्भ से स्पर्धा करता है एवं उनके कारुण्यकादम्बिनी की करुणा भवभूति की करुणा से

समता रखता है, वह भी आधुनिक परिप्रेक्ष्य के नवीन कलेवर में। यद्यपि कतिपय स्थलों पर 'स्वशब्दवाच्यता' जैसे–रस दोषों का दर्शन होता है तथापि रस का प्रवाह वाधित नहीं है।

इस प्रकार निष्कर्ष रुप में कहा जा सकता है कि पण्डित दवे का हृदय पक्ष उन्नत है। वे रसवादी कोटिक कवि है। निश्चय ही रस सिद्ध खण्डकाव्यों की रचना करने में सफल रहे है।

कवि का कला पक्ष भी प्रशस्त है। यह गुण, रीति, अलंकार, छन्द, सूक्ति तथा भाषा विन्यास के बुद्धि वैभव से विलसित है। रसानुकूल गुणाभिव्यंजक वर्णों की चारु शय्या चित्त को द्रवित–विस्तरित तथा सहज करने वाला है। रसानुकूल वर्णों की सुन्दर संघटना द्वारा कवि ने अपने स्वभाव के अनुरुप शैली का प्रभावशाली पक्ष प्रस्तुत किया है। कथानक के अनुरुप पदों के विन्यास में रीतिचयन की विशिष्टता तथा शिल्प का औचित्य परिलक्षित हो रहा है। इसमें चारों रीतियों का अपेक्षानुसार व्यवहार देखा जा सकता है। विशेषरुप से वैदभी रीति के प्रयोग में कवि सवर्था सफल सिद्ध हो रहे है। क्योंकि इनके श्रृंगार और करुण रस के काव्यों में वैदर्भी रीति विधान स्पष्ट रुप से देखा जा सकता है।

समीक्ष्य खण्डकाव्यों में अलंकारों के विस्तृत पर्यालोचन पश्चात् कहा जा सकता है कि कवि का खण्डकाव्य आलंकारिक काव्य नहीं है। अन्य अवार्चीन संस्कृत खण्डकाव्यकारों की तरह पण्डित दवे भी अलंकारों के मोहपाश से मुक्त है। सामाजिक विषयों को अपनी कविताओं में उतारने के कारण कवि ने नव्य दृष्टि और नये प्रतिमानों से काव्य को कमनीय बनाया है। अतः परम्परा से कुछ हटकर बदलते परिदृश्य तथा विषयों की नवीनता के कारण उपमानों में भी नवीनता आ गयी है और यहीं उपमान भिन्न–भिन्न अलंकारों में अपने सौन्दर्य से आभरित कर रहा है। कवि ने प्रायः अचेतन पर चेतन का आरोप किया है, जिसे सजीवारोपण भी कहा जा सकता है। अन्योक्ति और अर्थान्तरन्यास का सफल प्रयोग कवि की अभिव्यक्तिपरक शैली की विशिष्टता कहीं जा सकती है।

इस प्रकार कवि के समीक्ष्य खण्डकाव्यों में अलंकारों का सहज समावेश है। शब्दालंकार तथा अर्थालंकारों का स्वाभाविक न्यास है। यद्यपि कहीं–कहीं अलंकारों के लिये अलंकार शब्द का प्रयोग आलंकारिक प्रवाह को अवरुद्ध अवश्य करता है, तथापि आधुनिक लेखन का प्रभाव एवं विषयवस्तु की अभिनवता के कारण रस–भाव को समुज्ज्वल करने वाला होने के कारण आलंकारिक चारुता से सम्पन्न है। इस प्रकार कवि उपमा–रुपक–अर्थान्तरन्यास के सिद्ध हस्त कवि कहे जा सकते है।

कवि की छन्द योजना रस भावों के अनुकूल है श्रृंगार रस प्रधान काव्यों में मन्दाक्रान्ता, उपजाति, शार्दूलविक्रीडितम् एवं शिखरिणी छन्दों का भरपूर प्रयोग हुआ है। वहीं

भक्तिपरक काव्यों में अश्वघाटी छन्द, पंचचामर छन्द, शिखरिणी, भुजंगप्रयातम्, मन्दाक्रान्ता तथा मत्तमयूर छन्द का विशेष प्रयोग किया गया है।

कौतुक प्रधान काव्यों में उपजाति एवं मालिनी छन्द का योजन किया गया है। इस प्रकार कवि ने शास्त्रीय अनुशासन में रस के अनुकूल श्लाघ्य छन्दों का नियोजन किया है।

कवि के शिल्प में भाषा और भाव का मंजुल सन्निवेश है। इसमें व्याकरण का अनुशासन है, शब्दशक्तियों का व्यापार है और शब्द युगानुकूल है।

प्रसंगानुकूल पद शैय्या, भावों की बोधगम्यता, प्रवाह में प्रांजलता तथा उक्ति में वैचित्रता है। 33 वर्षीय बैंक सेवा के पश्चात् लेखन में भाषा की श्रेष्ठता कवि की गुरुता को द्योतित करने वाली है।

श्रृंगार परक खण्डकाव्यों में कर्णप्रिय शब्दों का नियोजन है तो भक्तिपरक एवं करुण रस परक काव्यों में भावात्मक शब्दों का प्रयोग है। वहीं वीर, अद्भुत आदि रस प्रधान काव्यों में चित्त विस्तारक महाप्राणीय परुष वर्णों का संयोजन दिखाई देता है। शोक ताप से तप्त विरही विधुर की अनुभूतियों के मार्मिक चित्रण में शब्द चयन एवं भावों का संयोजन मर्म स्पर्शी है। उपनागरिका वृत्ति वैदर्भी एवं माधुर्य व्यंजक वर्णों का गुम्फन रसोपकारी है। वियोगजन्य भावों की प्रस्तुति मन्दाक्रान्ता छन्द में, भक्ति–भाव की अभिव्यक्ति शिखरिणी, अश्वघाटी, पंचचामर, मत्तमयूर छन्दों में तथा प्रेम की संस्तुति मालिनी एवं उपजाति छन्द में की गई है। जो कवि की शैली और शिल्प की समृद्धि कहीं जा सकती है। युगीन एवं मार्मिक मुहावरों से भाषिक सौष्ठव परिपुष्ट है। आंग्लभाषा प्रचलित कतिपय शब्दों का यथावत् प्रयोग आधुनिक संस्कृत साहित्य की भाषिक उदारता के प्रमाण को पुष्ट करने वाली है। यद्यपि मेघदूतम् खण्डकाव्य की प्रमुख पंक्तियों का यथावत् प्रयोग मेघोपालम्भनम् एवं वियोगशतकम् के श्लोकों में हुआ है। छन्द एवं शैली का भी अनुकरण हुआ है तथापि भाषा और शैली की दृष्टि से समीक्ष्य खण्डकाव्य अनुपम है।

इस प्रकार पण्डित दवे का मौलिक एवं अनूदित खण्डकाव्य प्राचीन एवं अर्वाचीन साहित्य शास्त्रों की परिधि से परिवेष्टित है। युग् बोध, संस्कृति संरक्षा, मानवीय मूल्य तथा भारत–भारती के तथ्यात्मक कथ्यों से अभिमण्डित है। सनातन संस्कृति और आधुनिक परिवेश की संगति व विसंगतियों को सरल शैली, सरस भाव एवं सहज शिल्प में निबन्धित खण्डकाव्य बन्ध है।

सन्दर्भ :

1. साहित्यदर्पण प्र.परि.–पृ.सं.18,

"ध्वनिकारेणाप्युक्तं–नहिकवेरितिवृत्तमात्र निर्वाहेणात्मपद लाभः। इतिहासदेरेव तत्सिद्धेः।

2. ध्वन्यालोक – प्र.उद्योत – श्लोक संख्या – 6

3. साहित्यदर्पण–तृ.परि.–पृ.सं. – 118

4. साहित्यदर्पण – पृ.सं. – 31 (गद्य)

5. ध्वन्यालोकलोचन – पृ.सं.– 87

6. साहित्यदर्पण – पृ.सं. – 29 (अग्निपुराण की उक्ति)

7. राजशेखरकृत काव्यमीमांसा – रसाधिकारिकंरुपकनिरुपणीयं भरतः।

8. नाट्यशास्त्र – पृ.सं. – 271

9. नाट्यशास्त्र – पृ.सं. – 272

10. काव्यप्रकाश – च.उल्लास कारिका सं. 27, 28

11. साहित्यदपर्ण तृ.परि. कारिका सं.–1

12. वही – पृ.सं. – 111

13. वही – पृ.सं. – 2,3

14. वही–प्र.परि.–पृ.सं.–31

15. वही – पृ.सं. – 112

16. वही – तृ.परि. कारिका – 174

17. वही – तृ.परि.–रविकान्त मणि व्याख्या– पृं.सं. – 285

18. वही – तृ.परि.–कारिका – 175

19. अग्निपुराण – 4/29–33

20. वही – –''–

21. वही – –''–

22. वही – –''–

23. वही – –''–

24. वही – –''–

25. वही – –''–

26. वही – –''–

27. साहित्यदर्पण – तृ.परि., कारिका सं. – 175

28. वही – पृ.सं.– 64

29. नाट्यशास्त्र – सप्तम अध्याय

30. दशरुपक–पृ.सं. – 127

31. साहित्यदर्पण –पृ.सं. – 65

32. वही– तृ.परि.–का.सं. – 29

33. वही–तृ.परि.–का.सं. – 31

34. अभि.शाकु.– 2/12

35. साहित्यदर्पण – तृ.प.–का.सं. – 132

36. नाट्यशास्त्र – सं.अ.–का.सं. –5

37. वही – सं.अ.–का.सं. – 7

38. साहित्यदर्पण – तृ.परि.–का.सं.– 140

39. नाट्यशास्त्र – ष.अ. –का.सं. –17 ''एते हयाष्टौ रसाः प्रोक्ता द्रुहिणेन महात्मना''

40. काव्यप्रकाश चतुर्थल्लास का. सं. 29 एवं ना.शा. 6/16

41. काव्यप्रकाश चतुर्थोल्लास का सं. 47
42. साहित्यदपर्ण तृ.परि.–का.सं. – 182
43. उत्तररामचरितम् – 3/47
44. ध्वन्यालोक – तृ.उद्योत–का.सं.–20
45. साहित्यदर्पण – ष.परि.–का.सं.–329
46. मेदिनीकोश – 3/25
47. रसरत्नहार – 'शिवराम त्रिपाठी' पृ. –6
48. साहित्यदर्पण–तृ.परि.–का.सं.–183–185
49. दशरुपक – 4/47–48
50. भाव प्रकाश – 2/43
51. रसार्णव सुधाकर – 1/78
52. रसतरंगीणी – 6 तरंग–पृ.128
53. भावप्रकाशन – चतुर्थ अविष्कार
54. अग्निपुराण अ.– 349/4–5
55. ध्वन्यालोक – 3/39
56. श्रृंगारप्रकाश – 6/7
57. 'केशव' रसिकप्रिया – 1/16
58. काव्यप्रकाश – पृ.स. 121
59. साहित्यदर्पण – तृ.परि.–का.सं.–186
60. रसगंगाधर – पृ.सं. 148
61. रससिद्वान्त – पृ.सं. 246–247 एवं
62. हिन्दी अभिनव भारती – पृ.सं.–543
63. अभिनव भारती पृ.सं.–606
64. डॉ. नगेन्द्र – रस सिद्वान्त – पृ.सं.– 247
65. सरस्वती कण्ठाभरणम् – पंचम् परिच्छेदः
66. साहित्यदर्पण –तृ.परि.–का.सं. – 210
67. वही – तृ.परि.–का.सं. – 211
68. वही – तृ.परि.–पृ.सं. – 213
69. वही – तृ.परि.–पृ.सं. – 213
70. वही – तृ.परि.–पृ.सं. – 213
71. काव्यानुशासन – 2/30
72. सरस्वतीकण्ठाभरण – 5/45
73. साहित्यदर्पण – 3/187
74. काव्यप्रकाश – च.उल्लास – पृ.सं.–123
75. साहित्यदपर्ण – 6/317
76. सौन्दर्यलीलामृतम् – श्लोक सं.– 16
77. वही– श्लोक सं. – 17
78. वही – श्लोक सं. 29
79. वहीं – श्लोक सं.– 30

80. वहीं – श्लोक सं.– 34

81. वहीं – श्लोक सं.– 40

82. साहित्यदर्पण – 3/212, तत्र स्यादृतुषटकं चन्द्रादित्यौ तथोदया स्तमयः।
जल केलिवन विहार प्रभात मधुपान यामिनी प्रभृतिः।

83. सौन्दर्यलीलामृतम् – विपथाः विरहिणः –श्लोक सं. – 2

84. वही – श्लोक सं. – 3

85. वही – श्लोक सं. – 6

86. वही – काव्यमंजूषा पृ. 70 – श्लोक 18

87. वही –वैराग्यसंवेदना – श्लोक सं. – 1

88. वियोगशतकम् – श्लोक सं.– 1

89. वही – श्लोक सं.– 2

90. वही – श्लोक सं. – 49

91. वही – श्लोक – 50

92. वही – श्लोक सं. – 51

93. वही – श्लोक सं. – 64

94. वही – श्लोक सं. – 66

95. वही – श्लोक सं. – 67

96. साहित्यदर्पण – तृ.परि.–का.सं.– 209

97. वियोगशतकम् – श्लोक सं. – 69

98. साहित्यदर्पण – तृ.परि.–का.सं.–185

99. केलिभूकैतवम् – श्लोक सं. – 9

100. वही – श्लोक सं. – 10

101. वही – श्लोक सं. – 11

102. वही – श्लोक सं. – 12

103. अभि.शाकु.– 2/11

104. साहित्यदर्पण– तृ.परि.–का.सं.– 235–338

105. केलिभूकतवम् – 4/26–27

106. वही – 5/5

107. साहित्यदर्पण– पं.परि.–का.सं.– 214–219

108. केलिभूकतवम् – 5/11

109. वही – भूमिका भाग – पृ.सं. 135

110. मेघोपालम्भनम् – श्लोक सं. 1

111. वही – श्लोक सं. 5

112. वही – श्लोक सं. 4

113. वही – श्लोक सं. 3

114. वही – पृ.सं. – 113

115. साहित्यदर्पण – तृ.परि.–का.सं.– 222, 223

116. कारुण्यकादम्बिनी – श्लोक सं. 6

117. वही – श्लोक सं. 71

118. वही – श्लोक सं.–72

119. वही – श्लोक सं.–97

120. वही – श्लोक सं. – 98

121. वही –श्लोक सं. – 107

122. साहित्यदर्पण – तृ.परि.–का.सं.– 251–53

स्फुटं चमत्कारितया वत्सलं च रसं विदुः,
स्थायीवत्सलता स्नेहः पुत्राद्यालम्बनं मतम्।।
उद्दीपनानि तच्चेष्टा विद्याशौर्यदयादयः,
आलिंगनांग संस्पर्श शिरश्चुम्बनमीक्षणम्।।
पुलकानन्द वाष्पाद्या अनुभावाः प्रकीर्तताः,
संचारिणोऽनिष्ट शंकों हर्षगर्वादयोमताः।।
पद्मगर्भछविर्णो दैवतं लोकमातरः।

123. कारुण्यकादम्बिनी – श्लोक सं.– 57

124. कामधेनुशतकम् –श्लोक सं. – 71

125. वही – श्लोक सं. – 82

126. वही – श्लोक सं. – 113

127. वही – श्लोक सं. – 76

128. वही – श्लोक सं. – 36

129. वही – श्लोक सं. – 99

130. वही – श्लोक सं. – 01

131. वही – श्लोक सं.– 31

132. आधुनिक संस्कृत काव्य परम्परा – पृ. सं. 202

133. साहित्यदर्पण – प्र.परि. पृ.सं. 21 **'भगवद् विषया रतिर्भावः'**

134. वही – तृ.परि.–पृ.सं.–124

135. ललितालहरी–श्लोक सं. – 23

136. वही – श्लोक सं. – 26

137. वही – श्लोक सं. – 15

138. वही – श्लोक सं. – 37

139. वही – श्लोक सं. – 33

140. अपांगलीला – सृष्टिलीला : श्लोक सं. – 25

141. वही – युग्लीला – श्लोक सं. – 07

142. वही – रासलीला – श्लोक सं. – 04

143. वही – व्यष्टिलीला– श्लोक सं. – 1

144. भारतीविलास – श्लोक सं. – 38

145. मेघदूतम् – श्लोक सं. – 45

146. भारतीविलास – श्लोक सं. – 41

147. वही – श्लोक सं. – 42

148. वही – श्लोक सं. – 43

149. वही — श्लोक सं. — 45

150. वही — श्लोक सं. — 47

151. भारती विलास — श्लोक सं. 48

152. वही — श्लोक सं. — 49

153. वही — श्लोक सं. — 50

154. साहित्यदर्पण — तृ.परि.—कारिका सं. —232—233

155. परिखायुद्धम् — श्लोक सं. — 32

156. वही — श्लोक सं. — 106

157. वही — श्लोक सं. — 108

158. वही — श्लोक सं. — 110

159. वही — श्लोक सं. — 115

160. परिखायुद्धम् — श्लोक — 60

161. वही — श्लोक सं. — 69

162. वही — श्लोक सं. — 119

163. वही — श्लोक सं. — 121

164. वही — श्लोक — 122

165. साहित्यदर्पण — तृ.परि.—कारिका सं. — 242—244

अद्भूतो विस्मय स्थायी भावो गन्धर्व दैवतः। पीतवर्णो वस्तु लोकाति गमालम्बनं मतम्।।

गुणानां तस्य महिमा भवेदुद्यनं पुनः। स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमांच गद्गद्स्वर संभ्रगा।।

तथा नेत्र विकासाद्या अनुभावाः प्रकीर्तिताः। वितर्कावेग सम्भ्रान्ति हर्षाद्या व्यभिचारिणः।।

166. कालकौतुकम् — तन्त्रकौतुकम् — श्लोक सं. 6—8

167. वही —''नवोन्मेष कौतुकम्'' — श्लोक सं. — 5

168. वही — 'कालायतस्मैनमः' — श्लोक सं. — 25

169. वही — ''नवोन्मेष कौतुकम्'' श्लोक सं. — 2

170. कालकौतुकम् —गृहिण्याः गृहवेदना—श्लोक सं. — 3

171. वही — दोषदर्शन निरपेक्षस्य उक्तयः — श्लोक सं. — 2

172. वही — गृहिण्याः गृहवेदना — श्लोक सं. — 4

173. यवनीनवनीतम् — 2/1

174. वही — श्लोक सं. — 5/1

175. शारदा पत्रिका पुणे से प्रकाशित सन् 1966 अंक 22

176. अकिंचनचैत्यम्— श्लोक सं.—06

177. वही — श्लोक सं.—17

178. आधुनिक संस्कृत काव्य परम्परा — पृ.सं. 137

179. ब्रह्मरसायनम् — श्लोक सं. — 29

180. वही — श्लोक सं. — 04

181. भारतीय पाश्चात्य काव्यशास्त्र — पृ.सं. —194

182. काव्यालंकार सूत्र — 3/1/1—2 ''काव्य शोभायाः कत्तारौ धर्माः गुणाः तदतिशय हेतवस्त्वलकांराः''

183.(1) काव्यप्रकाश — 8/66 — ''ये रसस्यागिंनोधर्माः शौर्यादयः इवात्मन'' —

(2) ध्वन्यालोक — 2/6 — तमर्थमवलम्बन्ते येऽगिंन ते गुणाः स्मृता

184. श्रृंगारर्णवचन्द्रिका – 5/2

185. साहित्यदर्पण – प्र.परि.–कारिका सं. – 3 ''उत्कर्ष हेतवः प्रोक्ता गुणालंकार रीतयः''

186. काव्यप्रकाश – 8/68

187. वही – 8/68

188. वही – 8/74 ''मूर्ध्निवर्गान्त्यगाः स्पर्शाः अटवर्गारणौलघु।
अवृतिर्मध्यवृतिर्वा माधुर्ये घटना तथा।।''

189. साहित्यदर्पण – अ.परि.–कारिका सं. : 1–4

190. केलिभूकैतवम् – श्लोक सं. –25

191. सौन्दर्यलीलामृतम् – सौन्दर्यविभावना – श्लोक सं. – 8

192. कामधेनुशतकम् – श्लोक सं. – 32

193. अपांगलीला – सृष्टिलीला – श्लोक सं. –36

194. कालकौतुकम् पृ. 217 श्लोक 11

195. काव्यप्रकाश – 8/69

196. साहित्यदर्पण – अ.परि.–कारिका सं. – 4 ''ओजश्चितस्य विस्तार रुपं दीप्तत्वमुच्यते।
वीर वीभत्स रौद्रेषु क्रमेणाधिक्यमस्य तु।।''

197. ध्वन्यालोक – 2/9

198. परिखायुद्धम् – श्लोक संख्या – 108

199. वही – श्लोक संख्या – 106

200. सौन्दर्यलीलामृतम् – श्लोक संख्या – 1/28

201. वही – 1/30

202. भारती विलास – श्लोक संख्या – 103

203. काव्य प्रकाश – 8/75

204. वही – 8/76

205. ध्वन्यालोक–कारिकासंख्या – 2/10

206. भारतीविलास – श्लोक संख्या – 141

207. वही – विरसा विरहिण – श्लोक संख्या – 34

208. कारुण्यकादम्बिनी – श्लोक संख्या – 72

209. साहित्यदर्पण : प्र.परि.–कारिका सं. –3

210. काव्यालंकार सूत्राणि : 1/2–6

211. वही – 1/2–7

212. वही – 1/2–8

213. वही – 1/2–9

214. वक्रोक्तिजीवितम् – 1/24

215. ध्वन्यालोक – 3/5

216. वही – 3/6

217. साहित्यदर्पण – न.परि.–कारिका सं. –1

218. ''सरस्वती कण्ठाकरणम् – 2/28, वैदर्भी चाथ पाञ्चाली गौडीया अवन्तिका तथा
लाटीया मागधी चेति षोढ़ा रीतिनिगद्यते।

219. वैदर्भ मार्गस्य प्राणा दश गुणाः स्मृता ''रुद्रट''।

220. साहित्यदर्पण – न.परि.–कारिका सं. – 2

221. मेघोपालम्भनम् – श्लोक सं. – 16

222. वही – श्लोक संख्या – 02,

223. मेघोपालम्भनम् – श्लोक सं. – 2

224. ललितालहरी – श्लोक सं. – 22

225. वियोगशतकम् – श्लोक सं. – 18

226. परिखायुद्धम् – श्लोक सं. – 111

227. वही – श्लोक सं.– 112

228. काव्यादर्श – कारिका सं. – 2/13

229. साहित्यदर्पण – न.परि.–कारिका सं. 4

230. काव्यप्रकाश – कारिका सं. – 9/80

231. सौन्दर्यलीलामृतम् – श्लोक सं. – 2/9

232. साहित्य दर्पण – श्लोक सं. – 9/5

233. वही – श्लोक सं. – 273

234. साहित्यदर्पण – श्लोक सं. – 272

235. केलिभूकैतम् – श्लोक सं. – 37

236. वृतरत्नाकर – 3/97

237. वियोगशतकम् – श्लोक सं.– 1

238. मेघोपालम्भनम् – श्लोक सं.– 1

239. वही – मेघ प्रसादनम् – श्लोक सं. – 1

240. वही – 'इमे मुग्धामेघा' – श्लोक सं. – 1

241. वही –'दुर्भिक्षे विकलाधराः' – श्लोक सं. – 1

242. सौन्दर्यलीलामृतम् – सौन्दर्यलीला – श्लोक सं. – 48

243. वही – सौन्दर्यलीला – श्लोक सं. – 42

244. वही – श्लोक – 22

245. वही – श्लोक – 05

246. केलिभूकैतवम् – श्लोक – 1/1

247. वही – श्लोक सं. – 1/9

248. वही – श्लोक सं. – 2/24

249. कामधेनुशतकम् –श्लोक सं. – 27

250. वही –श्लोक सं. – 31

251. वही –श्लोक सं. – 74

252. वही –श्लोक सं. – 99

253. वही – श्लोक सं. – 109

254. कारुण्यकादम्बिनी – श्लोक सं. – 6

255. वही – श्लोक सं. – 36

256. वही – श्लोक सं. – 58

257. वही – श्लोक सं. – 106

258. परिखायुद्धम् – श्लोक सं. – 119

259. वही – श्लोक सं. – 45

260. वही – श्लोक सं. – 123

261. ललितालहरी – श्लोक सं. – 25

262. अपांगलीला श्लोक सं.– 13

263. वही – सृष्टिलीला – श्लोक सं. – 3

264. अपांगलीला – युगलीला –1, श्लोक सं. – 7

265. वही – युगलीला –2, श्लोक सं. – 2

266. वही – कृपालीला – II – श्लोक सं. – 1

267. वही – कृपालीला – I श्लोक सं. – 1

268. वही – युग्लीला – II श्लोक सं. – 24

269. वही – समर्पणम् – II श्लोक 03

270. भारतीविलास – श्लोक सं.– 54

271. वही – श्लोक सं. – 55

272. वही – श्लोक सं. – 14

273. वही – श्लोक सं. – 99

274. कालकौतुकम् – नवता कौतुकम्, श्लोक सं. – 1

275. वही – दोषदर्शन निरपेक्ष, श्लोक सं. – 4

276. वही – नवता कौतुकम्, श्लोक सं. – 9

277. अकिंचनचैत्यम् – श्लोक सं.– 23

278. यवनीनवनीतम् – 1/4

279. वही –1/5

280. वही – 3/4

281. ब्रह्मरसायनम् – श्लोक सं. – 53

282. वही – श्लोक सं. – 12

283. काव्यप्रकाश – 1/1

284. साहित्यदर्पण – द.परि.–कारिका सं. –1

285. चन्द्रालोक – प्र.मयूख–कारिका सं. – 8

286. काव्यप्रकाश–विश्वेश्वर व्याख्या – दशम उल्लासः पृ.सं. – 440

उपमा रुपकं चैव दीपको यमकस्तथाः। चत्वार एवालंकारा भरतेन निरुपिता।।
वामनेन त्रयस्त्रिंशद् भरतेन निरुपिताः। पंचत्रिंशद्विधश्चायं दण्डिना प्रतिपादितः।।
नवत्रिंशद् विघश्चायं भामहेने प्रकीर्तितः। चत्वारिशद्विघश्चैव उद्भटेन प्रदर्शितः।।
द्विपंचाशद्विधः प्रोक्तो रुद्रटेन ततः परम्। सप्तषष्टि विधः प्रोक्तः प्रकाशे मम्मटेन च।।
शतधा जयदेवेन विभक्तो दीक्षितेन च। चतुर्विंशति भेदास्तु कृता एक शतोत्तराः।। 67

287. अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम् – पृ. 124–125

288. वही – 2/4/1 – "अलंकार द्विविधा आभ्यन्तरा बाह्याश्च"

289. वही – 2/5/1

290. वही – 2/6/1

291. वही – पृ. सं. – 198,

अन्यथाकरणं छाया जातिश्चातिशतस्था। इमे चत्वार एव स्युराद्याः संघटनाश्रिताः।।

अपह्नुति र्विरोधाऽसंगतिविषमं तथा। द्वन्दं च तानवं च स्युवर्गे विरोधमूलके।।

नदानु वृत्तिर्यमकंश्लेषश्चापि लयस्तथा। एते सन्ति च चत्वारोऽलंकारा वृत्ति मूलकाः।।

292. साहित्यदर्पण – द.परि.–कारिका सं. – 2

293. वही – पृ. 275

294. सौन्दर्यलीलामृतम् – सौन्दर्यविभावना – श्लोक –5

295. सौन्दर्यलीलामृतम् – सौन्दर्यलीला – श्लोक –55

296. वही – सौन्दर्यविभावना – श्लोक –5

297. साहित्यदर्पण – द.परि.–कारिका सं. – 8

298. सौन्दर्यलीलामृतम् – मौनामृतम् – श्लोक सं. – 9

299. वही – सौन्दर्यलीला – श्लोक सं. – 2

300. साहित्यदर्पण – द.परि.– कारिका सं. – 35

301. कुवलयानन्द – पृ.सं. – 17

302. अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम् – 2/6/12

303. सौन्दर्यलीलामृतम् – 1/28

304. काव्यप्रकाश – 10/139

305. काव्यालंकार 2/6/13

306. सौन्दर्यलीलामृतम्–सौन्दर्यलीला – 46

307. साहित्यदर्पण – द.परि.– कारिका सं. –51

308. सौन्दर्यलीलामृतम्–पृ.सं. –72, श्लोक संख्या – 27

309. वही – पृ.सं. –74, श्लोक संख्या – 34

310. वियोगशतकम् – श्लोक सं.– 03

311. साहित्यदर्पण – द.परि.–कारिका सं. – 61–63

312. वही – द.परि.–कारिका सं. – 36

313. वियोगशतकम् – श्लोक सं. – 6

314. साहित्यदर्पण – द.परि.–कारिका सं. – 28

315. काव्यप्रकाश – 10/105

316. अभिनवकाव्यालंकार सूत्र – 2/6/13

317. वियोगशतकम् – श्लोक सं. – 22

318. काव्यप्रकाश – 10/87

319. साहित्यदर्पण – द.परि.–कारिका सं. – 14

320. काव्यालंकार सूत्रम् – 2/6/12

321. वियोगशतकम् –श्लोक सं. – 55

322. वही – श्लोक सं. – 57

323. वही – श्लोक सं. – 25

324. साहित्यदर्पण – द.परि.–कारिका सं. –26

325. वियोगशतकम् – श्लोक सं. – 78

326. वही – श्लोक सं. – 81

327. साहित्यदपर्ण – द.परि.–कारिका सं. – 40

328. अभिनवकाव्यलंकार सूत्र – 2/6/15

329. साहित्यदर्पण – द.परि.–कारिका सं. – 46
330. वियोगशतकम् – श्लोक सं. – 32
331. वही – श्लोक सं. – 40
332. वही – श्लोक सं. – 40
333. वही – श्लोक सं. – 33
334. वही – श्लोक सं. – 87
335. वही – श्लोक सं. – 71
336. मेघोपालम्भनम् – श्लोक सं. – 12
337. वही – दुर्भिक्षि विकलाधरा'' – 3
338. वही – दुर्भिक्षि विकलाधरा'' – 15
339. वही – ''इमे मुग्धाःमेघाः'' श्लोक संख्या – 1
340. वही – श्लोक सं. –15
341. केलिभूकैतवम् – 1/18
342. वही – श्लोक सं. – 1/25
343. वही –श्लोक सं. – 1/4
344. वही –श्लोक सं. – 3/6
345. वही –श्लोक सं. – 3/7
346. केलिभूकैतवम् – श्लोक सं. – 3/7
347. वही – श्लोक सं. – 1/12
348. साहित्यदर्पण – द.परि.–कारिका सं. – 26
349. केलिभूकैतवम् – श्लोक सं. – 2/3
350. कामधेनुशतकम् – श्लोक सं. – 31
351. वही – श्लोक सं. – 30
352. साहित्यदर्पण – द.परि.–कारिका सं. – 57
353. कामधेनुशतकम – श्लोक सं. – 89
354. वही – श्लोक सं. – 83
355. कारुण्यकादम्बिनी – श्लोक सं. – 1
356. वही – श्लोक सं. – 6
357. वही – श्लोक सं. – 25
358. वही – श्लोक सं. – 23
359. वही – श्लोक सं. – 24
360. वही – श्लोक सं. – 75
361. परिखायुद्धम् – श्लोक सं. –54
362. वही – श्लोक सं. – 112
363. वही – श्लोक सं. –115
364. वही – श्लोक सं. –114
365. वही – श्लोक सं. – 119
366. कालकौतुकम् – कालायतस्मैनमः – श्लोक सं. – 17
367. वही – श्लोक सं. – 18

368. वही – धर्मनिरपेक्षकौतुकम् – श्लोक सं.– 10

369. कालकौतुकम् – नवोन्मेषकौतुकम् – श्लोक सं.– 11

370. साहित्यदर्पण – द.परि.–कारिका सं. –76

371. कालकौतुकम् – नवता कौतुकम् – श्लोक सं.– 5

372. कुवलयानन्द – श्लोक सं.–14

373. कालकौतुकम् – श्लोक सं.– 4

374. वही – कुरंगीनौतिकेशरी –श्लोक सं.– 11

375. ललितालहरी – श्लोक सं. – 25

376. वही– श्लोक सं. – 26

377. वही– श्लोक सं. – 23

378. वही – श्लोक सं. – 55

379. अपांगलीला–सृष्टिलीला–श्लोक सं.–1

380. वही –युगलीला ॥ – श्लोक सं. – 2

381. वही –युगलीला॥ – श्लोक सं. – 2

382. अपांगलीला – सृष्टिलीला –श्लोक सं. –18

383. वही – सृष्टिलीला –श्लोक सं. –16

384. भारतीविलास –श्लोक सं. – 1

385. वहीं – श्लोक सं. – 53

386. भारतीविलास – श्लोक सं. – 58

387. साहित्यदर्पण – द.परि.–कारिका सं. – 72

388. भारतीविलास – 70

389. यवनीनवनीतम् – 153

390. वही – पृ.सं.– 361, श्लोक सं. –1

391. ब्रह्मरसायन – श्लोक 8

392. अकिंचनचैत्यम् – श्लोक सं. – 3

393. वही – श्लोक सं. – 5

394. वही – श्लोक सं. – 13

395. वही – श्लोक सं. – 27

396. साहित्यदर्पण – दि.परि.–कारिका सं. – 1

397. आधुनिक संस्कृत साहित्य एवं मथुरानाथ शास्त्री – पृ. सं. –118

398. सौन्दर्यलीलामृतम् – श्लोक सं. – 2

399. वही – श्लोक सं. – 8

400. वही – वैराग्य संवेदना – श्लोक सं. – 9

401. वियोगशतकम् – श्लोक सं.– 3

402. वही – श्लोक सं.– 69

403. वही – श्लोक सं.– 77

404. वही – श्लोक सं.– 56

405. वही – श्लोक सं.– 85

406. मेघोपालम्भनम् – 'श्रृण्वन्तु भोः किं कथयन्ति मेघाः' श्लोक सं.– 17

407. वही – इमे मुग्धाः मेघाः श्लोक सं.– 11

408. वही – श्लोक सं. – 1

409. वही – श्लोक सं. – 17

410. वही – श्लोक सं. – 18

411. वही ''अतिवृष्टयाऽऽकुलाधरा''– श्लोक सं.– 11

412. वही – श्लोक सं. – 4

413. केलीभूकैतवम् – 1/25

414. वही – श्लोक सं.– 2/12

415. वही – श्लोक सं.– 3/30

416. वही – श्लोक सं.– 4/12

417. वही – श्लोक सं.– 1/24

418. वही – श्लोक सं.– 4/17

419. कारुण्यकादम्बिनी –श्लोक सं.– 1

420. वही – श्लोक – 59

421. वही – श्लोक सं.– 62

422. वही – श्लोक सं.– 6

423. वही – श्लोक सं.– 36

424. कामधेनुशतकम् – श्लोक सं.– 71

425. वही – श्लोक सं.– 31

426. वही – श्लोक सं.– 11

427. वही – श्लोक सं.– 96

428. वही – श्लोक सं.– 101

429. परिखायुद्धम् –श्लोक सं. –15

430. वही –श्लोक सं. – 20

431. वही –श्लोक सं. – 37

432. परिखायुद्धम् – श्लोक सं. – 67

433. वही – श्लोक सं. – 77

434. वही – श्लोक सं. – 80

435. कालकौतुकम् –श्लोक सं.– 11

436. वही –श्लोक सं.– 18

437. ललितालहरी – श्लोक सं. – 17

438. वही – श्लोक सं. – 6

439. वही – श्लोक सं. – 14

440. अपांगलीला–सृष्टिलीला –श्लोक सं.– 1

441. वही – सृष्टिलीला –श्लोक सं.– 15

442. वही –श्लोक सं.– 27

443. वही –युग्लीला –II – 18

444. वही–सृष्टिलीला –श्लोक सं.– 20

445. वही –व्यष्टिलीला –श्लोक सं.– 1

446. वही –श्लोक सं.– 3

447. वही –श्लोक सं.– 8

448. वही – व्यष्टिलीला – श्लोक सं. – 9

449. भारती विलास – श्लोक सं.– 1

450. वही – श्लोक सं.– 16

451. वही – श्लोक सं.– 62

452. अकिंचनचैत्यम् – श्लोक संख्या – 04

453. यवनीनवनीतम् – वसन्त वर्णन – श्लोक सं. – 1

454. वही – वसन्त वर्णन – श्लोक सं. – 6

455. ब्रह्मरसायन – श्लोक सं. –8

456. वहीं – श्लोक संख्या – 10

पंचम अध्याय

पं. दवे के खण्डकाव्यों का सन्देश व सांस्कृतिक अवदान

1. सन्देश –

2. सांस्कृतिक अवदान –

(क) सम्यग्–दृष्टि सम्यक्–चरित्र संस्कृति

(ख) आत्मनोन्मुखी संस्कृति

(ग) नारीश्रद्धा संस्कृति

(घ) गो सेवा संस्कृति

(ङ) प्रकृति संरक्षण संस्कृति

पंचम अध्याय

पं. दवे के खण्डकाव्यों का सन्देश व सांस्कृतिक अवदान –

वर्तमान सदी की संस्कृत साधना के शिखर पुरुष पं.श्रीराम दवे का खण्डकाव्य युवा सापेक्ष नव कीर्तमानों की स्थापना एवं सनातन सांस्कृतिक मूल्यों की अवधारणा के लिये विश्रुत है। सनातनता के अनन्त प्रवाह का पक्षधर कवि समसामयिक वास्तविकता को धरा पर सत्यापित करता हुआ समकालीन परिदृश्य की संवेदनशीलता का यथार्थ अनुभूति करता है। संकटग्रस्त मानवता का मार्मिक प्रबोध तथा जीवन और जगत का प्रचुर विषय वस्तु प्रस्तुत करता है।

काव्याचार्यों ने भी **कर्त्तव्याकर्त्तव्य**[1] के उपदेशों को काव्य का प्रमुख प्रयोजन बताते हुए कहा है, कि मनुष्यों को शुभ कर्मों में प्रवृत्त करना तथा अशुभ कर्मों से निवृत्त होने का सरस संदेश देना काव्य का ध्येय होता है।

काव्य समीक्षकों की दृष्टि में भी सहृदय संवेद्य सन्देशों की सहज अनुभूति कराना ही काव्य की उपादेयता को द्योतित करता है।

पं.श्रीराम दवे का खण्डकाव्य भी उक्त गरिमा से गौरवान्वित है तथा करणीय–अकरणीय का सार्थक सन्देशों देने में समर्थ है। अतः अनुसंघेय काव्यों के सन्देश की समीक्षा शोध सापेक्ष है।

1. संदेश –

- **सौन्दर्यलीलामृतं**

कविता वनिता के साथ विहार करने वाले विनोदी साहित्यकार पं.दवे ने अपनी प्रथम काव्यकृति **"सौन्दर्यलीलामृतं"** में सौन्दर्य का सत्यं–शिवं–सुन्दरम् स्वरुप प्रस्तुत करते हुये उपाख्यानों द्वारा शाश्वत सन्देश प्रशारित किया है –

- सौन्दर्य अंगों की भंगिमा पर टिका हुआ चर्मरामग नहीं, उसका मानदण्ड तो मन होता है।[2]
- **'सौन्दर्यं शिव सत्य भाव सुभग'**[3] सौन्दर्य, शिव और सत्य के भाव से ही सुभग है।
- स्वच्छन्दचारिणी स्त्रियों की लोक प्रतिष्ठा नहीं होतीहै।[4]
- वह हृदय तो कारागृह ही है, जो प्रेम सुधा से लिप्त नहीं।[5]
- प्रणय वल्लरी स्नेह जल का सिंचन पाकर ही प्रसन्न होती है[6]
- वासना सौन्दर्योपासना का घातक है।[7]

इस प्रकार उक्त विशिष्ट काव्य पंक्तियों के माध्यय से सहृदय सामाजिकों के लिये केन्द्रीय सहज संदेश यह है कि – सौन्दर्य वस्तु में नहीं द्रष्टा के मानस में होता है।

वह श्रेयस् का विषय है प्रेयस् का नही, वह अलौकिक भावना से ग्राह्य है, लौकिक वासना से नहीं। अतः **''यथा दृष्टि तथा सृष्टि''** का संदेश दिया गया है।

- **मेघोपालम्भनम्** –

नामक खण्ड काव्य व्यंग्यात्मक शैली में लिखित उपालम्भात्मक काव्य है। जिसमें कथानक के माध्यम से सर्वजनसुखाय संदेश दिया गया है कि –

''भारत कृषि प्रधान देव भूमि है, कृषि की निर्भरता मेघ पर आधारित है, मेघ यज्ञ से बनता है,[8] यज्ञ के लिये हव्य और गव्य की आवश्यकता होती है,[9] जो प्रकृति से प्राप्य है, जिसे भौतिक वादी उन्मत्त शौण्डों[10] द्वारा स्वार्थवशात् पीड़ित किया जा रहा है। हितकारिणी प्रकृति का प्रतिदिन चीरहरण[11] हो रहा है, बलवती धरती के अस्थिपंजर[12] खोदे जा रहे है। अतः अतिवृष्टि–अनावृष्टि और अल्पवृष्टि की विविध लीला करने वाले रुष्ट मेघ से मरुधरा उपेक्षित हो रही है। उपालम्भ मेघ को दिया जा रहा है, जबकि दोषी प्रकृति को उद्वेलित करने वाले लोग है''

उक्त श्लोकांशों के माध्यम से सार्वभौम सन्देश प्रसारित किया है कि ''धरा का सन्तुलन प्रकृति संरक्षण से ही सम्भव है''।

- **'केलिभूकैतवम्'** –

समसामयिक कल्पित कथा पर लिखित एक युग–बोधक खण्डकाव्य है। जिसमें वर्तमान कालिक वैवाहिक समस्या को व्यंजित किया गया है। जहाँ दहेज के अभाव में युवतियों का तथा आजीविका के अभाव में युवकों का अविवाहित रह जाना सामान्य सी बात है। परिणाम स्वरुप शरीर की सहज पिपासा शान्ति के लिये भटकते हुये अमर्यादित हो केलिकर्दम के दल–दल में फिसल कर अविवाहित जैविक माता–पिता बन, लोक–लाज के भय से अपने नवजात शिशुओं को भाग्य भरोसे नारकीय जीवन जीने के लिये छोड़ अपनी आँखें बन्द कर लेते है। उनमें से कुछ अच्छे घरों के दत्तक बन जाते है, तो कुछ दीनता का जीवन बिताते है तथा कुछ अमानविक पृष्ठभूमि के हो जाते है। जबकि कन्या शिशुओं को कुट्टिनियाँ व्यापार साधना के लिए ले जाती है।

यहीं से स्वच्छन्ता और स्वैरता का सिलसिला शुरु हो जाता है। स्वच्छन्ता की पृष्ठिभूमि और अतिमहत्वाकांक्षा की मानसिकता दाम्पत्य सुख का बाधक बन जाता है। आधुनिका युवति और पारम्परिक शिक्षित युवकों का मेल सम्भव नहीं हो पाता है। इस प्रकार

आधुनिक सप्तपदी[13] के शर्तों पर विवाह, पुनः विच्छेद, विज्ञापन, क्लब की संस्कृति आदि भारतीय सनातन संस्कृति का अवमूल्यन करता है।

उक्त केलिभूकैतवम् खण्डकाव्यीय सार बिन्दु के आधार पर भारतीय संस्कृति के समुपासक कवि पं. दवे अपने पाठकों को सन्देश देना चाहते है कि –

''पाश्चात्य शिक्षा और संस्कृति की माया में उलझ कर भारतीय सनातन संस्कृति की मर्यादा, मूल्य और सदाचार का आधार नष्ट मत करो –''

क्योंकि समानता में प्रेम और गृहस्थाश्रम[14] की परिपालना जन्य श्रद्धा में ही सुख की सरस अनुभूति होती है''

- **कालकौतुकम्** –

नामक खण्डकाव्य के माध्यम से काल की महत्ता को प्रकाशित करते हुये कहा है कि, किसी वस्तु व्यक्ति एवं व्यवस्था का शाश्वत अस्तित्व[15] नहीं होता है। उदय का अस्त अवश्य होता है, पुनः पुनः नई व्यवस्थाओं[16] का आगमन और गमन काल की स्वाभाविकी स्थिति का ही परिणाम है। देव–दानव, राम–कृष्ण राजतंत्र, मुगल, अंग्रेज से लेकर प्रजातन्त्र तक की परिणति काल के चौपड़ का ही खेल है।

आहार विहार, शिक्षा–संस्कृति तथा मूल्यों का स्खलन काल का ही कमाल है। इसी भाव की सत्यता को सत्यापित करते हुये, गिरते नैतिक मूल्यों[17] को दिखाते हुये, वर्तमान के सर्व शक्तिमानों को,[18] तथाकथित सुविचारकों को सावधान करते हुये अपने काव्य के माध्यम से पण्डित जी ने सन्देश दिया है – कि ''काल की सत्ता और महत्ता सार्वकालिक है, परिवर्तन उसकी प्रकृति है। अतः परमार्थ में लगें, और नैतिक मूल्यों के प्रति उत्तरदायी बनें, जिससे हमारा राष्ट्र सनातन गौरव को पुनः प्राप्त कर सकें।

- **ललितालहरी** –

कुलदेवी स्वरुपा भगवती ललिता देवी की भक्ति पर आधारित खण्ड काव्य है, जिससे मन्दिर परिसर का सम्पूर्ण दृश्य वर्णित है। प्राच्य प्राकृतिक सौन्दर्य एवं सन्तुलित पर्यावरण को भक्ति का चोला पहने अपवित्र स्वार्थी तत्वों द्वारा विकास के नाम पर, निजहित में पर्यावरण को **असन्तुलित**[19] करने से खिन्न कवि की लेखिनी ने, प्रकृति सन्तुलन के निमित्त भक्ति और पर्यावरण के समन्वय का सन्देश भगवती पुत्रों के लिये समर्पित किया है।

- **भारती विलास** –

काव्य में शब्द ब्रह्म की माया मातृका रुप धारिणी भारती की विलास लीला है। व्यावहारिक जगत् में साहित्य, संगीत, कला, विज्ञान आदि समस्त ज्ञान साहित्य का मूल शब्दमातृका है, जिसे आगमों में भारती कहा गया है। भौतिक सृष्टि में हम जो विविध

परिवर्तन–परिवर्धन देखते है, ये इन्हीं की विविध विलास लीलायें है। ये ही शिक्षा–संस्कृति भाषा–भाषण भूषण, शासन[20] पद्धति आदि विलास लीलाओं के द्वारा प्रत्येक व्यक्तियों के मन–मानस को उद्वेलित कर क्रियात्मक कल्प–विकल्प देती है। अतः नवयुगोन्मुखी भगवती भारती हम पर सदा सौम्य दृष्टि बनाये रखे, ताकि पूर्वजों द्वारा संकल्पित विश्व गुरुत्व का गौरव पुनः इस पुण्यभूमि भारत को प्राप्त हो सकें। इस प्रकार भारती की समाराधना से भारत को पुनः विश्वगुरु बनाने का संदेश दिया गया है।

- **अपांगलीला –**

अपांगलीला नामक इस भक्ति काव्य में आराध्या देवी की कृपा लीला का वर्णन है, तदनुसार देवी की कृपा कटाक्ष का ही फल यह संसार है, व्यक्ति का विचार है, वैज्ञानिकों का आविष्कार है, ज्ञान–भक्ति–वैराग्य, साहित्य, संस्कृति आदि का आधार है। इनके अपांग के बिना जीव के जीवन में अधंकार ही अधंकार है।

अतः इनकी कृपा से शिष्यों में श्रद्धा, गुरुओं में गुरुता, बुधजनों में प्रज्ञा, कवियों में प्रतिभा, शिशुओं में सुकुमारता, युवकों में उत्साह, वृद्धों में सौम्यता[21] की प्राप्ति हो ऐसी कामना की गयी है। इस प्रकार–इष्ट साधना से अभीष्ट की प्राप्ति सम्भव है। ऐसा संदेश दिया गया है।

- **वियोगशतकम् –**

वियोगशतकम् नामक खण्डकाव्य समवयस्यक मित्र के पत्नी–वियोग–व्यथा की कथा है। जिसमें गृहस्थ **धर्म, गृहिणी की भूमिका, 'गृहिणी गृहमुच्यते'** की संकल्पना, दाम्पत्य प्रेम और भक्ति की सद्भावना तथा संयोग काल के सुखद् क्षणों के स्मरणपूर्वक, वियोगात्मक चिन्तन मनन जन्य कथन कवि संवेदना से कल्पित है। वस्तुतः वृद्धावस्था में पूर्वकाल के सुखद भोगों की स्मृति बड़ी दुःखदायी होती है।[22] ऐसी गृहिणियाँ भी दुर्लभ होती है, जो कान्तोचित्त विलास, मधुरवाणी और कार्य कौशल से अपने घर को इस पृथ्वी पर एक नया स्वर्ग बना देती है।[23] ऐसी नारी किस पुरुष को प्यारी नहीं लगेगी, जो उसके कुल की वृद्धि करती हुयी, उसका यश भी बढ़ाती हो।[24] इस प्रकार गृहिणी के सद्कृत्यों की मधुरस्मृतियों का स्मरण करते हुये, गृहस्थाश्रम की धर्मधुरी गृहिणी की शाश्वत् महत्ता की अनुभूति पश्चात् गृहस्थकामी पुरुषों के लिये संदेश दिया है कि ''गृहिणी गृह का आधार है, उसके विना सकल संसार असार है।''

NO LIFE WITHOUT WIFE

''नारी तू नारायणी सकल गृह आधार, बिनु तेरे लागे यथा अखिल संसार असार।।''

''कामधेनुशतकम्'' –

सनातन जीवन पद्धति जीवन जीने का विज्ञान है, जिसमें गोवंश महिमा का पुनीत गुणगान है। भारतीय चिन्तन धारा में गो दुधारु पशु मात्र नहीं, वह तो ईश्वर का प्रतीयमान और हमारी धरा के लिये वरदान है। जिसका अंग–अंग देवता और ऋषितीर्थों का निवास स्थान है। जिसकी सेवा के लिये गोपाल–गोविन्द को नन्द बाबा के घर जन्म लेना पड़ता है। वह हमारे धर्म–दर्शन और संस्कृति का मूलाधार है, तथा हमारे कृषि और अर्थव्यवस्था का मूल स्रोत भी है। ऐसी वन्दनीया–सेवनीया–पूजनीया गोमाता का आजाद भारत में वध किया जा रहा है। **क्रन्दतीयं कामधेनुः**[25] इस वेदना को कवि की संवेदना ने ''कामधेनु शतकम्'' का स्वरुप दिया है। जो भारत सापेक्ष समसामयिकी समस्या है। इसका संरक्षण–संवर्धन सत्ताधीशों का ही नहीं हमारा भी कर्त्तव्य है।

इस प्रकार ये खण्डकाव्य हमें यह सन्देश देता है कि ''अपना जीवन जीने का अधिकार प्राणिमात्र का है। अतः अहिंसा पथगामी वनों और अपनी संस्कृति का संरक्षण करो।

''जीयो और जीनो दो।''

- **कारुण्यकादम्बिनी –**

कारुण्यकादम्बिनी माँ को समर्पित कारुण्य काव्य है, जो कवि को अपने माँ के वैधव्य जीवन की वेदना से साक्षात्कार करता है। दुर्भाग्य से अल्पवय में सौभाग्य का क्षीण हो जाना, पारिवारिक विषमता, आर्थिक विकटता, सामाजिक असहजता, सन्तति की शिक्षा, पोषण, कुटुम्ब निर्वाह मां के वैधव्य जीवन की दुरुहता आदि दारुण्य दुःखों से व्यथित संवेदना को विश्व की समस्त माताओं में आत्मसाक्षात् करते हुये अपनी माँ को वृद्धाश्रम में स्थापित करने वाले पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित कलियुगी पुत्रों को धिक्कारते हुए संदेश दिया है।

अपनी सनातन संस्कृति पर गर्व करते हुये, मातृदेवो भवः की परिपालना श्रेष्ठतम् है।

- **परिखायुद्धम् –**

परिखायुद्धम् खाड़ी युद्ध की विभिषिका पर आधारित देव–दानव युद्ध की कल्पना से कल्पित कथाश्रित काव्य है। क्षीरसागर में शयन करने वाले विष्णु की प्रेरणा से इन्द्रादि देवताओं का तैल दानवों से युद्ध होता है। देवांगनाओं द्वारा परस्पर दोष दर्शन से आपस में विवाद हो जाता है। जिसे नारदमुनि देवताओं का कुशलक्षेम सुनाकर शान्त करते है।

यहाँ देव पश्चिमी राष्ट्र समुदाय के लिये सम्बोधित है, तथा दानव ईराकाधिपति सद्दाम धोषित है। इस प्रकार उक्त खण्ड काव्य द्वारा : **संघ में शक्ति है** का सन्देश प्राप्त होता है।

पं. दवे के समस्त खण्डकाव्यों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वे भारतीय सनातन संस्कृति के पक्षघर है, समसामयिक परिवर्तन परिवर्धन के विरोधी भी नहीं है किन्तु मानव मूल्यों का ह्रास उन्हें कदापि स्वीकार्य नहीं है। उनका मानना है कि भारतीय शिक्षा, संस्कृति, श्रद्धा, विश्वास, भक्ति, प्रकृति संरक्षण, गार्हस्थिक निष्ठा, मानवीय संवेदना, मातृ–पितृ गुरुवन्दना, इष्ट साधना ही भारत को पुनः विश्वगुरु की गरिमा से मण्डित कर सकता है। अतः निष्कर्ष रुप में उनके खण्ड काव्यों का

सकल सन्देश यही है कि

पाश्चात्य संस्कृति एवं स्वार्थी "मानसिकता का दास बनकर अपनी अस्मिता का नाश मत करों, भारत–भारती–संस्कृत और संस्कृति का उपहास मत करो।

सार्वभौम सन्देश – "प्रकृति और प्रगति का समन्वय अनिवार्य है।"

मंगलसंन्देश – जयतु संस्कृतम्, जयतु संस्कृति, जयतु भारतं, जयतु भारती।।

2. सांस्कृतिक अवदान –

प्राचीन संस्कृति के महान विचारक एवं युगीन संवेदनाओं के प्रबोधक कवियों का उद्देश्य अपने काव्य के माध्यम से भावी पीढ़ियों में सांस्कृतिक अलख जगाना होता है। उनके साहित्य की सार्थकता यथार्थ जीवन से जुड़ी होती है। उनका काव्य तथ्यों का संग्रहण किंवा बुद्धि का विलास मात्र नहीं होता है। उसका मूल तो उसके आस–पास विद्यमान जगत् में होता है। वर्तमान को छूने से ही उसका काव्य शाश्वत और त्रिकाल अबाधित होता है। उनका काव्य दरबारी न होकर मानवीय होता है।

पं.श्रीराम दवे की साहित्य साधना इस सन्दर्भ में महीयसी है। उन्होंने वर्तमान कालिक व्यवस्थाओं तथा पाश्चात्य शिक्षा संस्कृति से प्रभावित तथाकथित आधुनिकों का संवेदना हीन, यथार्थ तथ्यों को काव्य में ऊकेरा है। वन्दनीयों की वन्दना वारांगना सदृश नृपनीति एवं क्लब संस्कृति की भर्त्सना द्वारा सांस्कृतिक सुदृढ़ीकरण का एक स्रोत दिया है। अतः पं. दवे के खण्डकाव्यों की सांस्कृतिक अवदान की समीक्षा उनके कवित्व की सार्थकता को सिद्ध करेगा।

ध्यातव्य है कि कवि दवे धर्म कर्म निष्ठ भगवती भक्त, सनातन संस्कृति के शत–प्रतिशत समर्थक कवि थे । आजीविका बैंक मेनेजर की थी, अंग्रेजों का शासन तथा

भारत पाकिस्तान विभाजन की विभीषिका के प्रत्यक्ष द्रष्टा थे, तथा उन्हें विदेशी साहित्यों का भी गहन अध्ययन था। एतदर्थ सेवा निवृति पश्चात् विचारणा के क्षीर सागर से मथकर चतुर्दश भास्वित रत्न रुप समीक्ष्य **चतुर्दश खण्डकाव्यों** (एकादश मौलिक+त्रय अनुदित) का प्रणयन किया।

जो भारतीय सांस्कृतिक धरातल का यर्थाथवादी साहित्य के रुप सर्वमान्य तथा भारत–भारती–संस्कृत–संस्कृति का उद्घोषक खण्ड काव्य है, जो पश्चात्वर्ती कवियों, शोधार्थियों, भारतीय संस्कृति के समुपासक अध्येताओं के लिये कवि का अपूर्व सांस्कृतिक अवदान है। संस्कृति शब्द का भावार्थ बहुत ही विशद् और व्यापक है, यह मानव समाज की उस स्थिति का बोध करता है, जिससे उसे सभ्य कहा जाता है। किसी समाज देश अथवा राष्ट्र में निवास करने वाले मानव समुदाय के धर्म–दर्शन, ज्ञान–विज्ञान, क्रिया–कलाप, रीति–रिवाज, खान–पान, वेशभूषा, आदि आदर्श संस्कारों के सामंजस्य को ही संस्कृति कहा जाता है। वस्तुतः मानव की मानसिक, नैतिक, भौतिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं कलात्मक जीवन की उपलब्धियों की समग्रता ही संस्कृति है।

संस्कृति का अर्थ –

सम्+कृ+क्तिन् से निर्मित संस्कृति शब्द का अर्थ है, उत्तम प्रकार के कार्य, सुधरी हुयी दशा आदि दूसरे शब्दों में, मानव की बाह्य एवं आन्तरिक स्थितियों के सुसंस्कृत या परिष्कृत समूह को ही संस्कृति कहा जाता है। संस्कृति का सम्बन्ध मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष से सम्बन्धित है। हम यह भी कह सकते है कि किसी भी व्यक्ति द्वारा जाति, समाज और राष्ट्र के सामाजिक मूल्यों परम्पराओं एवं आदर्शो के समुचित निर्वाह के लिये की जाने वाली चेष्टायें, भावनायें, परम्परायें, कल्पनायें आदर्श आदि संस्कृति कहलाती है।

संस्कृति की परिभाषा –

छान्दोग्योपनिषद् में समाज के सम्भेदों को संघटित करने का हेतु संस्कृति को ही बताया गया है।

''सेतुर्विधृतिरेषां लोकानामसम्भेदाय''।[26]

श्री राजगोपालाचार्य के मत में – ''किसी भी जाति अथवा राष्ट्र के शिष्टपुरुषों में विचार वाणी एवं क्रिया का जो रुप व्याप्त रहता है, उसी का नाम संस्कृति है। डॉ. कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्सी के अनुसार ''संस्कृति जीवन की उन अवस्थाओं का नाम है, जो मनुष्य के अन्दर व्यवहार, ज्ञान और विवेक पैदा करती है। वह मनुष्य के व्यवहारों को सुनिश्चित करती है, उनकी संस्थाओं को संचालित करती है, उनके साहित्य और भाषा को बनाती है, उनके जीवन के आदर्श और सिद्वान्तों को प्रकाश देती है।''

डॉ. राधाकृष्णन का कथन है कि "विवेक और बुद्धि के द्वारा जीवन को भली प्रकार से जान लेना ही संस्कृति है।"

इस प्रकार जिस जीवन पद्धति से आत्मा सुसंस्कृति होकर पूर्ण विकसित हो और उसके अन्तस् से राग द्वेष, मोह–मत्सर, आदि विकार निर्मूल होकर सम्पूर्ण गुण सम्पन्न एवं प्रकाशमय हो वह संस्कृति है।[27]

वस्तुतः संस्कृति, परम्परा से प्राप्त निधि है, जो समाज से प्राप्त होता है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का सहयोग अपेक्षित होता है। अतः मानव जीवन की समग्रता का समन्वय तथा उसकी शारीरिक मानसिक तथा आध्यात्मिक सानुपातिक शक्तियों का क्रियात्मक तथा भावात्मक स्वरुप संस्कृति है। समीक्ष्य खण्ड काव्यों में जीवन की समग्रता का समन्वय है, दृष्टि, आध्यात्म, नारी, समाज, प्रकृति आदि के वर्णन में भारतीय संस्कृति का चिन्तन झलकता है, जिसका समीक्षात्मक निदर्शन कवि के सांस्कृतिक अवदान के आलोक में प्रस्तुत है।

(क) सम्यग्–दृष्टि सम्यग्–चरित्र संस्कृति –

कहा जाता है कि **"यथादृष्टि तथासृष्टि"** अर्थात् जैसी दृष्टि होती है वैसी ही प्रतीति होती है। सौन्दर्य लीलामृतम् जो कवि की प्रथम कृति है, जिसमें सौन्दर्यकामी जनों को, सौन्दर्य के शाश्वत स्वरुप से परिचय करवाते हुये भारतीय सांस्कृतिक दृष्टि को प्रकाशित किया गया है –

सौन्दर्यं शिव सत्य भाव सुमगं यत्कल्पितं सूरिभिः,
जातं तन्नवजात दुषितधियां दुर्वोधनैगर्हितम्।
येनैषा वितताऽपकीर्तिलघुता श्रृंगार भावे धुना,
सानो संलभतां कदापि ललिते काव्ये पदं मामके।।[28]

अर्थात् जिस सौन्दर्य को हमारे ऋषियों ने शिव और सत्य के साथ जोड़ा था। आज वह दूषितमतिकों से निन्दित हो गया है। जिसके कारण श्रृंगार भाव में अपर्कीति की लघुता आ गयी है। हे भगवति! वह लघुता मेरे काव्य में प्रवेश न करें।

सौन्दर्य चर्म राग नहीं, ना ही वह अंगों की भंगिमा पर आश्रित रहने वाला है, वह तो सत्यं शिवम् सुन्दरम् की सदाशयता पर प्रतिष्ठित तथा सम्यग्–दृष्टि, सम्यग्–चरित्र की चेतना से प्रवाहित होने वाला भाव है, जिसे आध्यात्मिक प्रज्ञा से साक्षात्कार किया जा सकता है –

सौन्दर्यं नहि चर्मराग निहितं नो वाङ्भङ्गयाश्रितम्,
कस्यापि प्रति भाति गौर वनिता यूनो मनोहारिणी।
कृष्णाकुञ्चित कुन्तलापि सुभगा कस्मैचिदाश्लिष्यति,
लावण्य ललना गतं तु मनसो मानेन वै मीयते।।[29]

विलास वृत्ति में लगे हुये लोगों की मूर्खता तथा नग्न गौरवनिताओं को देखकर मन ही मन मचलते हुये, जल क्रीड़ारत, विलासीजनों को सांस्कृतिक दृष्टि दिखाते हुये कह रहे है, कि विलासी जनों! तुम लोग समुद्र की लहरों के विलास को ही देखते हो, उसके गाम्भीर्य की ओर दृष्टि क्यों नहीं डालते।

पश्यैते चल यौवनोन्मदजुषो मूढ़ाविलासे रताः,
सोत्कण्ठं जल केलि कर्म निरतान् पश्यन्ति गौरानिमान्।
नग्नाश्चापि विलोक्य गौरवनिता रत्युत्सवं मन्यते,
गाम्भीर्यं न विलोकयन्ति जलघे वींची विलासेरताः।।[30]

प्राच्य भारतीय संस्कृति में गुरुकुल व्यवस्था हुआ करती थी, जहाँ गुरु अपने शिष्यों को जीवन दृष्टि दिया करते थे, जिससे समाज में मर्यादा की प्रतिष्ठापना हुआ करती थी किन्तु पाश्चात्य संस्कृति प्रभावित युवकों में इसका अभाव होने के कारण ही वे पूर्ण पथ को भूल कर अमर्यादित वासना के चक्कर में भटक रहे है। इस पीड़ा को कवि ने इस प्रकार वर्णित किया है।

यद ज्ञानं गुरुकुलावासे यत्नतो लम्यते जनैः ....।[31]
रागोपगूढ़ा निकरे निगूढ़ा, भोगावलीढ़ाः, गुरुभक्तयपोढ़ा।
विस्मृत्य हा! पूर्ण पथं विमूढ़ा तुच्छे विमुग्धाः विचरन्त्यनूढ़ाः ।।[32]

(ख) आत्मोन्मुखी संस्कृति –

विश्वगुरु भारत की वैश्विक पहचान आत्मोन्मुखी संस्कृति से रही है। यह संस्कृति मानसिक विकास पर अधिक बल देती है। रोम मिश्र आदि की प्राचीन संस्कृति में इसका अधूरापन दिखता है। इसलिये संस्कृतियाँ काल की कसौटी पर सच्ची न उतर सकी व आज केवल स्मर्तव्य ही शेष है। यूरोप ने भी आत्मिक शक्ति को पहचानना नहीं सीखा उन्होंने भौतिक चकाचौंध को ही संस्कृति कहा जो आत्मवंचना से अधिक कुछ नहीं है। भारतवर्ष की प्राचीन संस्कृति इस कसौटी पर साथर्क सिद्ध होती है। जिसका उल्लेख भी श्री दवे के खण्डकाव्यों में सर्वत्र समाहित है –

कवि का मानना है कि आज की शिक्षा संस्कृति, जीवन पद्धति, खान–पान, अभिवादन, भाषा, सेवा और शासन आदि पाश्चात्य पद्धति के अनुसरण का प्रतिफल है, जो उन्हें आत्मोन्मुखी नहीं होने देती :

शिक्षा संस्कृति जीवनोत्सव विधौ खाद्येऽभिवादे यथा,

भाषा भाषण भूषणे भृति पदे संकल्पिते शासने।

पाश्चात्यां सरणिं मुदाऽनु चरतां संकोचलेशोचलेशोऽपिनो,

चित्ते विश्वगुरुत्व गौरव कथा स्वीया न संस्मर्यते।।[33]

कवि आत्मोन्मुखी संस्कृति की थाती देववाणी में गुम्फित शास्त्रों को ही मानते है, जो भगवत् कृपा से प्राप्य है, चाहे वह विश्ववन्द्य पाणिनी का शब्द शास्त्र हो,[34] या पतंजलि का योग सूत्र, अथवा साहित्य शास्त्र हो सभी आत्मानन्द के तरंगों से मण्डित है, जिसके कारण मनुष्य के समस्त संकल्प विकल्प एकान्त में नन्दित होकर आत्मानन्द में रमण करते है –

मुनीनां सिद्धानां तपसि निरतानामपिवने,

स्थितिना संविष्टा हृदिकथमये! हंस विधिना।

विकल्पं संकल्पं सकलमपि हित्वा च रहसि,

भजन्ते येनैते परममुद मात्मन्यभिरताः।।[35]

शिष्यों में श्रद्धा गुरुओं में गुरुता, विद्वानों में प्रज्ञा, कवियों में प्रतिभा आदि को ईश्वरीय कृपा का फल मानते है। जैसा कि अघोलिखित श्लोक में वर्णित है –

शिष्येषु श्रद्धा गुरुता गुरुणां, प्रज्ञा बुधानां प्रतिभा कवीनाम्।

कुशाग्र बुद्धिः श्रुति शास्त्र बोधे, कृपा कटाक्षैस्तव लम्भनीया।।[36]

विशाल ब्रह्माण्ड मनुष्य के लघु पिण्ड में समाहित है, सूर्य आत्मस्थानी है, तो चन्द्र मानसवृति से अवस्थित है, समस्त ग्रह आदि मनुष्य के शरीर में अदृश्य रुप में सन्नद्ध है, यह आत्मज्ञान भगवती भारती की कृपा से प्राप्त गुरुता प्रज्ञा और श्रद्धा से ही प्राप्य है जैसा कि कवि दवे ने भारती विलास के इस श्लोक में इंगित किया है:

ब्रह्मण्डोऽयं लधुनि निहितः पिण्डकुण्डे त्वयैव,

स्वात्मन्येषोऽप्रकटितगती राजते चण्ड सूर्यः।

चन्द्रो राकारमण इह नो मानसी वृति निष्ठः,

दिव्या श्चैते गगन गतिकाः कल्पिता देहबद्धाः।।[37]

कवि भौतिक आविष्कारों के पीछे भी भगवत् कृपा को ही प्रेरणास्रोत मानते है। ईश्वर किसी न किसी रुप में अपनी सत्ता का अहसास करवा ही देता है। कभी–कभी अपनी

विचक्षण बुद्धि पर दर्प करने वाले अनीश्वरवादी मूढ़ों को ईश्वर अपना विराट रुप भी दिखा देता है। जैसा कि कवि ने कहा है –

'न विदितं भौतिकानामाध्यात्म गौरवम्'[38]

एते भौतिकवादिनो नवनवोन्मेषेऽति गर्वान्विताः,
मेधा मेदुरतातिदर्प गुरुव स्वीयोपलब्धौ भृशम्।
दृप्यन्ते निजबुद्धि वैभवफलं मत्वामृषाऽनीश्वराः,
ते मूढ़ाः नहि जानतेऽस्ति सकलं त्वप्रेरितं भारति![39]।।

जो भारत विश्व को ज्ञान की दिशा देता था, आज वहीं का युवक दिशाहीन हो गया है, प्रातः सुकृत्यहीन हो गया है, जिस कारण, वह आत्मोन्मुख न होकर बाह्योन्मुख हो रहा है –

स्नानं न संध्या न च देव पूजा,
प्ररोचते पत्र समुत्सुकेभ्यः।
विहाय सर्वं निजकार्य जातं,
पत्रं पठित्वैव सुखं श्वसन्ति।।[40]

आज वरतन्तु जैसे गुरु और कौत्स जैसे शिष्य न रहे, रामचन्द्र जैसे शासक, रामकृष्ण परमहंस जैसे उपासक, विवेकानन्द जैसे विवेकी, प्रताप जैसे प्रतापी, धन्वन्तरि जैसे चिकित्सक तथा चाणक्य जैसे शिक्षकों का पोषण करने वाली संस्कृति उपेक्षित हो रही है –

'एषा संस्कृति पोषिणी तव सखी यातास्त्युपेक्षापदम्'[41]

'सा विद्या या विमुक्तये' की शिक्षा ने सा विद्या या नियुक्तये का स्थान ले लिया है। आत्मोन्मुखी मराल, बक् बनाये जा रहे है, ये सब पाश्चात्य संस्कृति के पोषक मेकाले शिक्षापद्धति का हमारे प्रति व्यभिचार है, इस सांस्कृतिक करुणा को कवि ने इस प्रकार व्यक्त किया है –

अहो! वीणापाणिर्विमलवसना कुन्दधवला,
मरालं त्यक्त्वैषा भजति बक मेकाल कलितम्।
फिरंगी फेरुणां कपट घृत रागस्य वशगा,
सरस्वत्या मेघाहारिमपि न हा संकलयते।।[42]

कवि अपनी आराध्या से कामना करते है कि हे मां! मेरे मन के मोह जाल को हटाओं, मेरा चित्त तेरे चरण–कमल में लगे, हमें अपने अंक में धारण करो। ताकि हम आत्मोन्मुखी बन सकें।

सद्यः प्रसादं तव कामयेऽहं हर्तुं मनो मोहक जालमेतत्,

स्यात् येन चित्तं तव पादपद्मे लग्नं वयास्यास्मिन पश्चिमे मे।[43]

कवि पुनः कामना करते है, कि हे माते! अपने भक्त पुŸावों को आत्म प्रमोदित करें।

त्वदीय पाद पंकजे विधाय भक्ति भावनां।

भजन्ति भक्त पुंगवाः प्रमोदमात्मना भृशम्।।[44]

(ग) नारीश्रद्धा संस्कृति –

भारतीय संस्कृति में नारी को नारायणी और कल्याणी के रुप में अभिमण्डित किया गया है, तथा उसे श्रद्धा विश्वास रुपिणी भी कहा गया है। वह आध्यात्म चेतनादात्री, बुद्धि की अधिष्ठात्री और शान्ति की पुनीत मूर्ति के रुप में नर की सबसे बड़ी शक्ति स्वीकार की गयी है। उसने महापुरुषों को जन्म दिया है तथा पुरुषों को महापुरुष बनाया है। उसने अपने सतीत्व से यमराज को भी विवश किया है, तो इस ने समरांगण में रणचण्डी का रौद्र रुप भी दिखाया है। कहीं राष्ट्रीय अस्मिता के लिये अपने हाथों अपना शीश अपर्ण तो कहीं जोहर की ज्वाला में सशरीर समर्पण से शुचिता के इतिहास को दर्पण दिखलाया है।

कभी पुत्री बहिन, ननद, बुआ के रुप में पितृकुल का धर्म निभाया, तो कभी पतिगृह की विभिन्न उपाधियों के मर्म से श्रद्धेय स्थान पाया है। इस प्रकार सनातन संस्कृति की धुरी, गृहस्थाश्रम की आधारशीला, शीलवसना, भगिनी, गृहिणी, जननी स्वरुपा नारी की प्रतिष्ठा को, भारतीय लेखनी ने नारी श्रद्धा संस्कृति के आलोक में यथावसर सर्वत्र प्रतिष्ठित किया है।

शक्ति के उपासक पं. दवे ने भी उक्त परम्परा को प्रवाहित किया है, और अपने खण्ड़ काव्यों में यथा योग्य स्थान दिया है। अनुसंधेय काव्यों में नारी के तीन रुपों का उल्लेख प्राप्त होता है, जिससे प्रथम मातृरुपा, द्वितीय गृहिणीरुपा, तृतीया आधुनिकारुपा है। स्त्री का प्रथम एवं द्वितीय रुप भारतीय संस्कृति की थाती है, तो तृतीय रुप पाश्चात्य संस्कृति की अनुगामिनी है। उक्त तीनों रुप एवं दोनों परिधियाँ नारीश्रद्धा संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में समीक्ष्य है, जो कवि के खण्ड़काव्यों का सांस्कृतिक अवदान सिद्ध करता है।

(i) मातृरुपा नारी श्रद्धा संस्कृति –

''मातृदेवो भव'', **''मातृवत् परदारेषु''** का संस्कार देने वाली भारतीय संस्कृति में नारी की विविध उपाधियों में सर्वाधिक श्रद्धेय मातृरुप है। मातृभक्त पं. दवे ने अपने खण्ड काव्य कारुण्य कादम्बिनी में जो जननी विषयक संस्कृति का बोध कराया है, वो नारी श्रद्धा की पराकाष्ठा है। वस्तुतः माँ का जीवन संतति के लिये समर्पित होता है।

इसलिए सन्तति से भी अपेक्षा की जाती है कि मां की उपेक्षा न हो। मां का जीवन कैसा होता है ? इसका मार्मिक वर्णन कारुण्य कादम्बिनी के इस श्लोक में देखिये :

शीतेकन्था वृत कृशतनुः कम्बलैश्च्छादयन्ती,

ग्रीष्मेस्विन्ना व्यंजन धुनितैर्नोमुदाबीजयन्ती।

शुष्कै र्भोज्यैरुदर भरिणी चात्मो नः कवोष्णैः,

नो जाने सा कति कति रुजोऽस्मत कृते हा प्रसेहे।।[45]

मां जाड़े के दिनों में स्वयं फटीगुदड़ी और अपने बच्चों को कम्बलों से ढकती, गर्मी के दिनों में स्वयं पसीने से तर होते हुये भी बच्चों को हाथ पंखे से हवा कर सुलाती है, स्वयं भुखी रह कर भी उन्हें भर पेट खाना खिलाती है। न जाने मातायें अपने बच्चों के लिये कितने–कितने संकट झेलती होंगी। उसके संकट को तो भगवती ही जानती होंगी।[46] साधारण मनुष्यों का सामर्थ्य कहाँ ?

त्याग पूर्वक उपभोग करने वाली अपने राष्ट्र के लिये श्रेष्ठ एवं स्वस्थ सन्तति देने वाली मां का सम्मान और यशोगान कवि द्वारा नारी श्रद्धा संस्कृति का निदर्शन है।

जिस मां का दूध पीकर ये काया सरस बनी, जिसके स्नेह सिंचन से यह प्राणदीप प्रज्ज्वलित हुए, ऐसी वात्सल्य–सुधा–वार्षिणी, मंगलमयी गंगा सी निर्मल तपोमूर्ति को नमन,[47] जो गोद में उठाकर प्रसन्न होती है, शारदा की तरह संस्कार युक्त वाणी से अज्ञान के अन्धकार को हटाती है, अन्नपूर्णा की तरह पौष्टिक भोजन देती है, ऐसी स्मृतिमन्दिर में विराजमान मां को वृद्धावस्था में भी भुलाया नहीं जाना चाहिए।[48]

जो अपनी दीनता की काँटों भरी घड़ी में भी अपने पुत्रों को भिक्षावृति नहीं करने देती, श्रमद्वारा जीवन निर्वाह करते हुये शिक्षा के लिए अपने आत्मखण्ड को दूर देश भेज देती हो, ऐसी मातृत्व धर्म का निर्वाह करने वाली मां का ऋण[49] कभी चुकाया नहीं जा सकता है। मां विद्यालय में भले ही कभी पढ़ने नहीं गयी हो, फिर भी वह विद्वानों में सम्मानित हुयी।

सा विद्यालय वर्जिताऽपि विदुषां लेभेऽतिमानं हृदा।[50]

भले ही उसने तीर्थ स्थानों में जाकर कभी स्नान नहीं किया हो, फिर भी वह अपनी तपस्या और व्रत उपवासों के कारण तीर्थरुपा है।[51] वह अपनी गुणगरिमा के कारण ही सतत् सभी के स्मृति में निवास करती है। सन्तति के स्मृति में सतत् अधिवास की ये स्थिति ही मातृस्वरुपा नारीश्रद्धा की चारुता का उपाख्यान है। जो कवि के खण्डकाव्य का सांस्कृतिक अवदान है।

नारीणां गुण गौरवेण गुरुतां प्राप्ता स्मृतौ राजते।[52]

कवि ने माता को समाज की शिक्षिका स्वीकार किया है, क्योंकि वह नारियों को नारी धर्म का पालन, युवकों को सभ्याचरण, नवोढ़ातरुणियों को लज्जा और शील तथा प्रोढ़ों को परम्परा पालन का निर्देश निर्भयता पूर्वक देती है।

नारीणां निजधर्म पालन कृते यूनांच सम्यव्रते,
बालानां विनये नवोढ़तरुणि वर्गे च शीलत्रपाम्।
प्रौढ़ानांच परम्परापरिचये सम्बोधिनी निर्भयम्,
आसीत सा वसतौ स्वगुरुता भावेन वै शिक्षिका।।[53]

जिस के वात्सल्य के आगे देवता, ज्ञानी, मुनि भी झुक जाते है। जो विपरीत परिस्थिति में भी, मातृधर्म नहीं छोड़ती, पुत्र के कुपुत्र हो जाने पर भी कुमाता का भाव तक नहीं लाती, ऐसी मां भारतीय संस्कृति की थाती है, विश्ववन्द्य है। ''नो माता परितापितापि विषमें भूयात् कुमाता परम्[54] किन्तु विडम्बना है कि आज का कलियुगीपुत्र, आधुनिक शिक्षा के प्रभाव[55] से विकृत मतिवाला, पत्नी का सेवक, यौवन दम्भी, अपने व्यवहारों से मां को सत्त पीड़ित करता है। भारतीय संस्कृति ऐसे पुत्रों को धिक्कारती है, जो वृद्धा माता से मुख मोड़कर बैठ जाता है।[56] वृद्धा मां के खाँसने को निद्राबाधक समझता है, उसके उपचार का खर्च वित्त का अपव्यय समझता है, उसकी सुश्रुषा को अपनी पत्नी की स्वतन्त्रता में बाधक समझता है।[57]

स्वयं सुन्दर भवन में, माता वृद्धाश्रम में,[58] अस्थिर यौवन पर गर्व करने वाले पुत्रों को भारतीय संस्कृति वृद्धों की उपेक्षा की[59] सहमति नहीं देती है, कवि ने एसे सन्तति की सद्मति के लिये जगदम्बा से प्रार्थना करते हुये कहते है :

वात्सल्यं जननी कुलेस्तु सततं श्रद्धालवः सूनवः,
वध्वः श्वश्रुजनस्य सेवन पराः श्वश्रुः स्नुषा भाविनी।
सौहार्द स्वजनेषु चास्तु विमलं स्वार्थेषणावर्जितम्,
कन्यापाणि निबन्धनञ्च कुटिलो मा यौतुको बाधताम्।।[60]

भारत की माताओं में वात्सल्य–भाव निरन्त बना रहे, पुत्र माता–पिता के प्रति श्रद्धा भक्ति रखे, पुत्रवधुऐं सास की सेवा करें, सास पुत्र–बधुओं से प्रेम भरा व्यवहार करें, आदि के द्वारा कवि दवे ने मातृरुपा नारीश्रद्धा संस्कृति को अपने खण्ड काव्य के माध्यम से प्रकाशित किया है, जो पश्चात्वर्तियों के लिये तथा संस्कृत वाङ्मय के लिये अपूर्व अवदान है।

(ii) गृहिणीरुपा नारी –

जीवन कौशल प्रबन्धन की कसौटी गृहिणी रुपा नारी है, जो 'गृहिणीगृहमुच्यते' की संकल्पना को साकार करती है। नवीन बन्धनों में बन्धती हुयी, गृहस्थाश्रम की ऋषि

परिकल्पना को सार्थकता प्रदान करती हुयी, भारतीय संस्कृति के ध्वज को उन्नत करती है, तथा स्वयं के लिये श्रद्धेय स्थान सुनिश्चित करती है। गृहस्थ धर्मी कवि पं. दवे की लेखनी ने गृहिणी के चरित्र को चारुता दी है, उनके खण्ड काव्य वियोगशतकम् में तो गृहिणी का उज्ज्वल स्वरुप ही प्रस्तुत किया गया है, जो नारी श्रद्धा संस्कृति को सहज आधार देता है। किसी अज्ञात विद्वान ने सत्य कहा है – ''व्यक्ति के चले जाने पर ही उसकी उपयोगिता का भान होता है।'' कवि के मित्र की पत्नी का स्वर्गवास हो जाता है। वो पत्नी वियोग में व्यथित है, तथा गृहिणी रुपा नारी का सुचिन्तन करता हुआ, गृहिणी का सत्य–तत्थ अपने कथ्य में प्रस्तुत करता है – हे प्रिया! तुम्हारें वियोग में ये घर श्री हीन गया है, और मैं स्पन्दन हीन हो गया हूँ। फलस्वरुप तुम्हारें प्रेम पीयूष वृष्टि का पान करने वाली इन आंखों से श्रद्धा रुपी अश्रु की वृष्टि करता हुआ शोक प्रकट कर रहा हूँ।[61]

हे प्रिये! जब तुम हमारे घर की गृहिणी बनी उस समय दुल्हन के रुप में, तुम हमारे हृदय की खिली–कली सी लगती थी, तुम प्रणय वल्लरी सी हमारे गृहवाटिका की शोभी थी।[62] कथन के द्वारा कवि ने गृहिणी रुपा नारी को गृह वाटिका की शोभा के रुप में प्रतिष्ठा दी है।

हे प्रिये! तुम्हारे साथ व्यतीत किये गये अवधि में, अर्थाभाव के विषाद में भी, तुमने अतिथि सत्कार में नीरसता नही आने दी, तुम्हारे मुख पर कुन्द–पुष्प सी मधुर हंसी बनी रहती थी।

आतिथ्यं नो विगलित रसं नापि दाने विषादः।
दैन्येऽप्यासीन्तवतुवदने मत्प्रियं कुन्दहास्यम्।।[63]

वस्तुतः प्रसन्नतापूर्वक अतिथि सत्कार का भाव ही गृहिणियों को समाज में आदरणीय स्थान देता है। कवि गृहस्थ धर्म की श्रेष्ठता को प्रतिपादित करते हुये कहते हैं, कि गुरुजनों द्वारा समस्त बन्धु–बान्धवों के समक्ष गृहस्थ–मानसरोवर में प्ररोपित दाम्पत्य नेहलता में जो सुगन्ध है। वह काम भावना से विकसित एकान्त में रोपित वासना मूलक प्रेयसी के प्रेम–पुष्पों में नहीं होता –

कौमारांके गुरुजन करैः रोपितो बन्धु साक्ष्ये,
दाम्पत्याब्जे परिमल मुदा मानसे गुह्यके या।
सा नो लभ्या मदन विकचे वासना वद्ध मूले,
चाल्पप्राणे रहसि कलिते प्रेयसी प्रेमपुष्पे।।[64]

हे प्रिये! तुम्हारे अन्दर प्रेयसी के प्रेम और पत्नी की भक्ति का संगम था। हे सौन्दर्य लक्ष्मी दीपावली में दीप दान करती हुयी, सद्यः अवतरिता साक्षात् लक्ष्मी सी प्रतीत होती थी। होली के समय वसन्त सी लगती थी। गौरी पूजा के समय पति सौभाग्य कामना यज्ञ किया करती थी। आज तुम्हारें वियोग में, मैं ही नहीं गृहनिकुंज की लताये, कलियाँ पालतु पशु–पक्षी गण, वेदना से उद्विग्न एवं हर्षहीन लग रहे है।[65]

सत्यं लोके भणति गृहिणीं गेहरुपां वरेण्यां,
सैवख्याता मृदुल हृदय भोजदात्रयन्नपूर्णा।
नूनं मन्ये विधुर विधिनाऽज्ञात दामपत्य सौख्य,
स्वादैनैषादिवमपहृता स्वात्मनः स्वार्थ सिद्धये।।[66]

लोगों का कथन सत्य है, **''श्रेष्ठ गृहिणी ही घर है।''** वही गृहिणी अन्नपूर्णा है। इस प्रकार कवि दवे ने सौन्दर्यलक्ष्मी, वैभवलक्ष्मी, महालक्ष्मी तथा अन्नपूर्णा के रुप में गृहिणी को समादृत किया है। इसलिए गृहस्थाश्रम को श्रेष्ठतम कहा है।[67] श्रेष्ठ गृहिणी के रुप में नारी समस्त गृहसुखों को देने वाली होती है। आबाल वृद्ध को पुष्ट एवं तुष्ट करने वाली होती है। पुरुषार्थ चतुष्ट्य की साधिका होती है, तथा कान्तोचित विलास, मधुर वाणी और अपने कार्य कौशल से घर को धरती पर नया स्वर्ग बना देती है। वस्तुतः नारी का ऐसा गृहिणी रुप दुर्लभः है।

''स्वर्ग चक्रुः सदन भवनौ दुर्लभस्ताः गृहिण्यः''।।[68]

कवि नारी के गुणों की विशिष्टता को दर्शाते हुये, भारतीय संस्कृति में गुणियों को आदरणीय स्थान प्राप्त है। अतः नारी का गुणनिधान रुप प्रस्तुत करते हुए, यह सिद्ध करना चाह रहे है कि –

गृहिणी नारी की वाणी में कठोरता, बुद्धि में मन्दता, चरित्र में चपलता, उनके गुणों में कालिमा आदि नहीं होती है।[69] इस प्रकार का यथार्थ चिन्तन तथा यथातथ्य लेखन कवि का महान सांस्कृतिक अवदान है।

(iii) आधुनिका नारी –

पाश्चात्य संस्कृति की प्रतिकृति, **मेकाले** की मानस पुत्रियाँ, स्वच्छन्दचारिणी, युग्धर्मानुरागिनी नारियों की भारतीय संस्कृति में प्रतिष्ठा नहीं है, ऐसी नारियों को नारी–आदर्श का विघातक कहा है। कवि स्पष्ट शब्दों में कहना चाहते है कि स्त्रियों का स्वच्छन्द विचरण करना शोभा नहीं देता ।

''स्वच्छन्दाचरणं स्त्रियाञ्च सततं लोके न शोभावहम्''[70]

ऐसी युवतियाँ विवाह के बन्धन में भी नहीं बन्धना चाहती है, क्योंकि इनके अनुसार विवाह में हाथ मिलना ही जीवन में विपत्तियों को बुलाना है। एक ओर सास का आतंक, दूसरी ओर पति का कठोर शासन, उसके साथ हर रोज चुल्हा, झाड़ू–बुहारी की मुसीबतों से शरीर को क्षीण करना इस सबसे तो कुवांरापन ही अच्छा है –

उद्‌वाहे कर बन्धनं तु विपदामामन्त्रणं जीवने,
भर्तृश्शासन पालने नियमनम् श्वश्रुजनातङ्किकतम्।
चुल्ली सेवन मार्जनादि विषमैः काये क्षयावाहनम्,
भीमं यौतुक संकटं तु सुखदं निर्भर्तृकं जीवनम्।।[71]

ये पाश्चात्य–दृष्टि वाली अत्याधुनिका नारी अपनी संस्कृति को तिलांजलि देती हुयी सी, पाश्चात्य प्रणय देवता वेलेन्टाइन्स[72] को प्रणयांजलि समर्पित करती है तथा उसी के उत्सव को मदनोत्सव मान प्रयत्नशील रहती है। ऐसी स्त्रियों को कवि ने अमर्यादित शब्दों से सम्बोधित किया है। उन के लिये अश्वानना, चंचल–नितम्बा, युवक–संसर्ग–तृषिता, उद्‌दीप्त–कन्दर्पा, अधोवसना आदि शब्दों का प्रयोग किया है। ऐसे शब्दों का प्रयोग कवि ने आधुनिक संस्कृति के अन्धानुकरण का वैचारिक विरोध के लिये किया है।

उन्मुक्त कामा–फिरंगी वाम का कन्दर्प कौतुक देखकर ऐसी पाश्चात्य अन्धानुगामिनी वृत्ति–प्रवृत्ति से कवि व्यथित है। सलल्जशीला का निर्लज्ज रुप देखकर मौन है, कन्दर्प कामा फिरंगी वामा का सागर तटीय उन्मुक्त केलि कौतुक से हत प्रभ है –

उन्मुक्त कामा फिरंगी वामा पयोधिपांसौ लुढन्त्यः।
कान्तोपगूढाः सलिलं विशन्त्यः प्रपश्यतां कौतुकमावहन्ति।।[73]

ये अधुनातना–स्त्री युग्चातुर्य को जानने वाली होती है। वे भारतीय संस्कृति को तुच्छ मानती है, उनका मानना है कि नवाचार से अनभिज्ञ पंडित भी मूर्ख के समान ही होते है। यहाँ नवाचार आदर्श है। सदाचार नहीं, कामाचार धर्म है, गृहस्थोपचार नही।

''नवाचार अनभिज्ञत्वात् पण्डितोऽपि जड़ोमतः।
नाग्रेंजी पठिता चेति स्त्रीरत्नेनास्मिवञ्ित।।[74]

कवि स्वच्छन्द विहारिणी स्त्री की प्रकृति का वर्णन करते हुये कह रहे है, कि ये पाश्चात्य प्रभाविता युवतियाँ कुलटा प्रकृति की होती है। ये क्रूर कुटिल कुट्टिनियाँ पुरुषों के भोले–भाले मन को अपनी ओर खींचती है। विषलताओं सी अपनी भुज–लताओं में आबद्ध कर लेती है, कदाचित् प्राण भी हरण कर लेती है।

कुट्टिन्यः कुटिलाः क्रूराः हत्वा मुग्धं मनोनृणाम्।
हरन्ति विषवल्लर्यः प्राणानाश्लेष बन्धने।।[75]

भक्ति और शक्ति के इस देश में, जहाँ शील स्त्रियों का आभूषण हुआ करता है। जहाँ स्त्रियों की सौम्यता से संस्कृति सुरक्षित है। परिवार अखण्डित है। त्याग और ममता के कारण वह पूजित है। वहीं आधुनिक शिक्षा शिक्षिता का नवाचार व्यवहार नव विज्ञानयुग का नहीं विज्ञापन युग का हो गया है।

उनका शरीर विज्ञापन का वस्तुविशेष हो गया है, उनका विवाह भी विज्ञापन आधारित शर्तो के अन्तर्गत हो रहा है। कवि ने भारतीय संस्कृति नाशक, स्त्री–मर्यादा विनाशक पीड़ा का वर्णन युग्बोध के लिये केलिभूकैतवम् के तृतीय सौपान में किया है। जहाँ आधुनिक विज्ञापन के माध्यम से पारम्परिक सप्तपदी को कालातीत मानती हुयी, आधुनिक युगीन[76] सप्तपदी की शर्तों पर विवाह के लिये सहमत होती है।

पं. दवे का खण्डकाव्य युग्बोधक संस्कृति का अवबोध कराने वाला है। जो नारी की त्रिविध उपाधियों में नारी श्रद्धा संस्कृति का आत्मज्ञान, आत्मसम्मान, तथा ''**स्वधर्मे निधनं श्रेयः**'' का भारतीय नवनीत विश्ववाङ्मय को हस्तान्तरित करता है।

सार रुप में कहा जा सकता है, कि माता और गृहिणी के रुप में भारतीय नारी, नारी का आत्मरुप है। आस्था, ममता, सेवा, त्याग द्वारा परिवार प्रबन्धन में उसे आत्मतुष्टि मिलती है। जिससे समाज, राष्ट्र और संस्कृति को पुष्टि मिलती है। ऐसी आत्मधर्मी भक्तिमयी शक्ति भारतीय नारी श्रद्धा संस्कृति की परिचायिका होती है। जिसका परिचय कवि के खण्ड काव्यों में लभ्य है।

जबकि आधुनिका शरीर धर्मी होती है। बाजारु विज्ञापनों की वह सहचरी होती है। चार्वाक–दर्शन की अनुरागिनी होती है। यूरोपीय संस्कृति के लिये भले ही वे उत्तम हों, किन्तु भारतीय चिन्तन में अमान्य, और अश्रद्धा की पात्रा है। जो समीक्ष्य खण्डकाव्य की दृष्टि में भारतीय नारी श्रद्धा संस्कृति का ह्रास है।

(घ) गोसेवा संस्कृति –

सनातन जीवन पद्धति ही मानव जीवन जीने का विज्ञान है। यही भारतीय अस्मिता की पहचान है। यह प्राकृतिक नीति के आधार पर निर्मित है। प्रकृति द्वारा प्रदत्त मानव वरदानों में गौवंश सर्वोपरि है। जिसे निगमागमों में **''मातरः सर्वभूतानां''** कहा गया है। गौमाता से ही मानव जगत् को ऋषि और कृषि की प्राप्ति हुयी है, जिसका प्रमाण विज्ञान और वैदिक शोध ग्रन्थों में प्राप्य है। गो माताओं की शारीरिक संरचना में, ऐसे दिव्य और अतिसूक्ष्म यंत्रों को स्थापित किया गया है, जो ब्रह्माण्ड का संरक्षण और संतुलन बनाये

रखने में सक्षम है। उसके शरीर से जीवन दायिनी दिव्य ऊर्जा का सतत् प्रवाह होता रहता है।

इस प्रवाह से वानस्पतिक एवं जैविक सम्पदा को पुष्टि तथा मानव मस्तिष्क को संरक्षण मिलता है। अतः समय–समय पर सद्साहित्यों के माध्यम से गोवंश की महत्ता, उपयोगिता तथा उपादेयता को उजागर किया जाता रहा है। समीक्ष्य खण्ड काव्य के माध्यम से संदर्भित धेन्वानुरागी कवि ने भी, गोचारण, गोपालन, गोसंवर्धन और गोसंरक्षण की श्लाघनीय संस्तुति की है, जो सांस्कृतिक अवदान के रुप में सर्वग्राह्य है।

भारतीय सांस्कृति के साधक इस आधुनिक कवि ने सार्वकालिक–आधुनिक विषय **''गो माता''** की करुण क्रन्दना को कवि संवेदना से अनुभव किया, और कामधेनु वंशजा की करुणा को ''कामधेनुशतकम्'' के नाम से काव्यबद्ध किया ।

गो की एतिहासिक पृष्टिभूमि को प्रारम्भ करते हुये कवि का कहना है कि, जिस कामधेनु की कृपा से मुनि वशिष्ठ को ब्रह्मशक्ति प्राप्त हुयी, विश्वामित्र की कामनायें पूर्ण हुयी, राजा सौदास को गोत्वज्ञान हुआ, जिस की पुत्री नन्दनी की सदाशयता से रधु जैसे प्रतापी राजा का उदय हुआ, जिसकी सेवा से स्वर्ग की प्राप्ति होती है, जिसके हव्य–गव्य से देवताओं को तृप्ति मिलती है। जो आधुनिक समय में भी सर्वहितकारिणी है।[77]

वहीं गोवंश निजधर्म संस्कृति का मूल है, जैसा कि पं. दवे ने वेद प्रमाण को अपने शब्दों में कहा है :

धर्मस्य मूलं गणिताहि गावः ता एव मूलं निज संस्कृतेश्च।
सर्वेऽपि देवा वपुषि प्रातिष्ठाः इति श्रुतौ नो भणितं हि तस्याः।।[78]

यही गौ माता दूध दही और धी से धर को मंगलमयी बनाती है, अपने गोबर और गोमुत्र से घर को पवित्र करती है, अनेक रोगों को अपहृत करती है तथा यह सम्पूर्ण सम्पदाओं का सूत्र मानी जाती है।[79]

कवि का मानना है कि इसके शरीर में सभी देवता निवास करते है, इसकी पूजा से सारी विपदायें नष्ट हो जाती है, इसके दर्शन से पाप नष्ट होते है। भगवान कृष्ण की प्रिया यह गो माता वस्तुतः पूजनीय है।

वपुषिदेवगणो वसति .... ।[80]

संसार का उपकार करने वाली, जनपोषयित्री, समस्त पाप प्रणाशिनी, जिसका भारतीय पुराणों ने यशगान किया है, धन सम्पति देने वाली धरा सी पवित्र, मानव को मुक्ति देने वाली तीर्थ स्वरुपा, कामधेनु आज इस घरा पर संकटग्रस्त है, और वह अपने प्राणों की रक्षा के लिये करुण क्रन्दन कर रही है –

विश्वोपकर्त्री जनपोषयित्री, स्वाहा वषट् कारहविर्विधात्री।
मूलंच लक्ष्म्याः दुरितापहन्त्री सा नन्दनी क्रन्दति साम्प्रतं हा।।
पुराणगीता वसुदा धरित्री तीर्थस्वरुपा जनमुक्तिदात्री।
देवधिवासा जगतो हितैषिणी सीदत्यहो सा भुवि कामधेनुः।।[81]

कवि ने राष्ट्र नायकों से गोवंश सुरक्षा की गुहार लगायी है। गो हत्या बन्द करने का संकल्प लेने वाले हे पण्डित मालवीय! हे राष्ट्रपिता! हे रघुवंशी, हे गोपाल! हे वृषभध्वज, हे देव! क्षीर सागर की सम्पदा कामधेनुएँ क्यों बधिकों के बन्धन में है। मात्र अर्थोपार्जन का लक्ष्य रखने वाले दुष्ट राक्षस नहीं जानते कि ऐसा करने पर हमारी देशीगायों का वंश नष्ट हो जायेगा। स्वयं की अनेक हितकारिणी सम्पदा नष्ट हो जायेगी।

दितिजा इव दुष्टमनसाः अर्थोपार्जनमात्रबुद्धयः।
हतका न हि जानतेऽनया कुलमेवाद्यं विहन्यते धिया।।[82]

कवि शासनाध्यक्षों एवं धर्मरक्षकों को गोहत्या की दशा–दिशा दिखाते हुये स्पष्ट शब्दों में कहना चाहते हैं, कि यदि देश की यही दशा रही, तो इस धरा पर व्याप्त पाप कौन मिटायेगा। भारतीय संस्कृति को कौन जीवित रखेगा, आस्था अक्षुण्ण रहे की व्यवस्था कौन करेगा।

"को भूयो विनिवारयेदिदमहो पापं धरा व्यावृतम्।"[83]

इस प्रकार पं. दवे के खण्ड काव्य ने भारतीय जन मानस को गो सेवा संस्कृति को अक्षुण्ण रखने हेतु पुरजोर झंकझोरा है। आर्थिक संपूर्ति मात्र के लिये गोपालन करने वालों को, गो मांस भक्षियों को, गो तस्करों को, तथा मौन दृष्टा सत्ता लोभी राष्ट्रभक्तों को धिक्कारा है। यद्यपि आज इस दिशा में कुछ क्रान्ति आयी है, राष्ट्रभक्तों में गोसंरक्षण का भाव जागृत हुआ है। गौशालाओं की संख्या बढ़ रही है। उत्तर प्रदेश शासन ने कठोर कदम उठाये है। पतंजलि योग संस्थान द्वारा सम्पूर्ण विश्व में, अपने उत्पादों के माध्यम से कवि के सुचिन्तन को सत्य सिद्ध किया जा रहा है, तथा ग्रन्थ के सांस्कृतिक अवदान को प्रयोग द्वारा प्रसिद्ध किया जा रहा है।

(ङ) प्रकृति संरक्षण संस्कृति –

भारतीय संस्कृति प्रकृति को ही अपना सर्वस्व मानती है। वह प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ को देवता का अंश ही मानती है तथा नदी, वन, पवर्त, अग्नि आदि को साक्षात् देव शब्द से अभिहित करती है। प्रकृति से तात्पर्य उस वस्तु है जो मानव निर्मित नहीं है, स्वयं भू है, मानव की सहचारिणी है। मानवीय अनिवार्य आवश्यकताओं की साधिका है। वही

नैसर्गिक अभिराम की शाश्वत सत्ता भी है। चार आश्रमों में से तीन आश्रम ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ एवं सन्यास आश्रम की परिकल्पना प्रकृति के गोद में ही की गयी है। इसे आध्यात्मिक चेतना के लिये श्रेष्ठ माना गया है। सनातन धर्म के आराध्य देवों ने अपना आवास, शान्त एकान्त, दुर्गम प्रकृति के मध्य में ही प्रतिष्ठापित किया है, ताकि मानवों को प्रकृति की महत्ता, उसके दूरगामी परिणाम, अमरता, आदि का भान हो सके। वस्तुतः जीवन की जीवन्तता के लिये प्रकृति संरक्षण की संस्कृति का प्रसार अनिवार्य है।

पं. श्रीराम दवे के खण्ड काव्यों में प्रकृति संरक्षण के सुचिन्तन की सुदृष्टि परिलक्षित है। ध्यातव्य है कि विकास की अन्धी दौड़ ने आज प्रकृति का स्वरुप ही बदल डाला है। मानव ने प्रकृति का मन चाहा दोहन किया है। अतः पौराणिक तथा आधुनिक कवियों ने अपने–अपने कालजयी साहित्यों के माध्यम से मानव को ही आत्म मन्थन के लिये प्रबोधित किया है। पं. दवे ने ललितालहरी नामक काव्य में शैलवासिनी भगवती ललिता की भक्ति में मन्दिरपरिसर के नयनाभिराम प्राकृतिक दृश्य को उपस्थापित किया है। ग्राम समदड़ी में लूणीसरिता के कूल पर पहाड़ी की कन्दरा में भगवती ललिता अपने परिवार के साथ विराजमान है। इस शिखरिणी स्थित कन्दराओं की गोद में सिंहशावक निर्भयता से खेला करते है तथा अन्य वन्य पशु भी यहाँ लहलहाते वृक्षों के नीचे विश्राम पाते है। यहाँ परस्पर वैर भाव रखने वाले सिंह, हरिण, खरगोश आदि प्राणी भी निर्वैरभाव से विचरण किया करते है। पुष्परस पान करने वाले भौरों का झुण्ड भी यहाँ चारों ओर धूमता दिखाई पड़ता है –

गुहाङ्कें सिंहानामभयमिह खेलन्ति शिशवः,
वसन्त्यन्ये वन्याः श्रित विटपमूला अपि पदे।
चरन्त्यत्रा भीता हरि मृगशशा वैर–विधुराः,
अलीनां संधातो भ्रमति मधुलुब्धश्च परितः।।[84]

कवि उक्त पद्य के माध्यम से प्रकृति की सौम्यतासंस्कृति को उद्घाटित करते हुये सर्व सामान्य को बताना चाह रहे है, कि प्रकृति का सौम्य वातावरण वैरभाव वाले प्राणियों में भी ‘‘संगच्छध्वं संवदध्वं’’ का संस्कार ला देती है। सांसारिक प्राणियों में आपसी वैर की प्रकृति, प्रकृति के अतिशय दोहन का ही परिणाम है। अतः प्रकृति की संस्कृति से सद्भाव प्राप्त करना चाहिए।

वर्षाऋतु में गुफा से बहता हुआ पानी का झरना, वृक्ष और लताओं का पोषण करती हुयी, धरती को शस्य श्यामला बना देती है।[85] यह जल संरक्षण जीवन पोषण की संस्कृति का परिचायक है। अतः जल संरक्षण के लिये प्रकृति संरक्षण समसामयिक अनिवार्यता है।

तवस्नानार्थेऽम्ब! शिशिर सलिलः शैवालयुतः,
पयः कुण्डोऽधस्तात् गिरि गलित पाषाणखचितः।
तटस्थैः शाखाभिर्दलफल नतैर्वेष्टित वपुः,
पिपासां सिहानां शमयति पशुनांच चरताम्।।[86]

हे अम्ब! तुम्हारे स्नान के लिये नीचे की ओर ठण्डे जल से भरा शैवालयुक्त जल कुण्ड है, जिसके किनारे फल और पत्तों से लदे हुये वृक्ष खड़े है, जो पहाड़ पर विचरण करने वाले सिंह आदि पशुओं की भी बुभुक्षा एवं पिपासा को शान्त करता है। प्राणी मात्र का उपकार करने वाली होती है ये प्रकृति। अतः धरती पर दीर्घकालिक जीवन के लिये इनका संरक्षण आवश्यक है। धन्य है वह धरा जहाँ अनेक वृक्ष कन्द मूल व औषधियाँ नैसर्गिक रुप से मिलती हो।[87] किन्तु इस कलियुग में धन के लोभी कुछ दुष्ट लोग इस स्थान को कुल्हाड़ियों से काट कर विकृत कर रहे हैं, प्रकृति के वैभव को समाप्त कर रहे है।[88]

खनन्त पाषाणान् तव सदन सौन्दर्य निचयान्,
हरन्तो वृक्षाणां श्रियमपि च निष्कोनिरताः।
प्रदुष्टां कुर्वन्तः प्रकृतिमपि जीवोपकरणीम्,
अजानन्तो मूढ़ास्तव जननि! कारुण्य कलनाम्।।[89]

अर्थात् प्रकृति का दोहन करने वाले मूढ़ इस जीवोपकारिणी प्रकृति के विषय में कुछ नहीं जानते है। ना ही ये तुम्हारे कारुण्य को ही जानते हे।

हे युगों की रचना करने वाली माँ! तुम लोगों को बुद्धि प्रदान करती हो, अतः मैं तुम से यही प्रार्थना करता हूँ कि उनके भीतर की विषमता के विकारों को दूर करने की बुद्धि प्रदान करों।

युगानां कर्त्रीत्वं दिशसि मनुजानामपिमतिम्।
सतां वा दुष्टानामपि च घिषणा भेद जननी।।[90]

यह सत्य है कि पृथ्वी का जीवन मेघ पर आधारित होता है, मेघ का सन्तुलन प्रकृति के नैसर्गिक सम्वर्धन से ही सम्भव होता है, किन्तु आज प्रकृति के साथ कितना दुर्व्यवहार हो रहा है, इस हितकारिणी का प्रतिदिन चीर हरण[91] हो रहा है, अतः प्रकृति पुत्र मेघ अपनी मां की दुर्दशा देख कुपित है।

कवि प्रकृति उत्पीड़न की पीड़ा को शब्द देते हुये कहते है कि,

नित्यां चास्याः खनसि सवलानस्थिपिण्डान् धरायाः,
उत्पाट्यन्तें सुभग दलिनः पादपाः पत्र हेतोः।

वृक्षच्छेदैः शिखरिण इमे कल्पिता नग्न गात्राः,
येनेवैषा प्रकृति सुषमा क्षीयमानास्ति नित्यम्।।[92]

हे वैभवाकांक्षी भौतिकवादी मानव! तुम प्रतिदिन इस बलवती धरती के अस्थि–पञ्जर खोदते, रहते हो, कागज के लिये सुन्दर वृक्षों को काट रहे हो, वृक्षों को काट–काटकर इन सुन्दर शिखरवाले पर्वतों को भी नंगा कर दिया है। जिसके कारण इस प्रकृति की शोभा प्रतिदिन क्षीण होती जा रही है। यन्त्रों का धुआँ आकाश में फैल रहा है, यन्त्रों द्वारा पहाड़ों के अगं खण्डित हो रहे है, आश्रय–प्रश्रय के अभाव में मेघों का दुःखी होकर चला जाना कोई आश्चर्य[93] की बात नहीं । अब वन और गुफाओं में रहने वाले गर्जना प्रेमी सिंह भी नहीं रहे, न नृत्य प्रेमी मोर, न यज्ञ कुशल वैदिक ब्राह्मण[94] आदि ही रहे, यदि यही स्थिति रही तो सतत् अकाल मृत्य और भय का बादल की मण्डराता[95] रहेगा।

इस प्रकार समीक्ष्य खण्डकाव्यों में प्रकृति–संरक्षण से जीवन तथा उसके उत्पीड़न से जीवन नाश की सत्यता को प्रकाशित किया गया है तथा इनके माध्यम से प्रकृति–संरक्षण–संस्कृति की युग् सापेक्ष संस्तुति की गयी है। इन ग्रन्थों के अध्ययन से प्रकृति संरक्षण का अन्तः संस्कार जागृत हो सकेगा, जिससे बाह्य प्रकृति संरक्षण के प्रति सचेष्ट हो सकेंगे।

कवि ने आनुषांगिक रुप से कतिपय अवधारणीय संस्कृति के सूक्ष्म बिन्दुओं को भी स्पर्श किया है, जिसका किंचित् निदर्शन भी प्रासांगिक होगा एतदर्थ प्रस्तुत प्रसंग ध्यातव्य है –

पूज्यन्ते वै सदसि च जडाः शासनस्थाऽपूज्या,
विन्दन्त्यर्घ्याः विमल मतयो सादरं साधुभावात्।।[96]

जहाँ शासन में अयोग्य पुरुषों का सम्मान एवं निर्मल मेधावी पूजनीयों का अपमान होता हो, वह साम्राज्य सुरक्षित नहीं माना जाता है। शास्त्र और इतिहास प्रमाण है।

''कुपुत्रोऽपितवैव चाहम् दाम्पत्य युक्तं कुरुषे कथं नो''[97]

''हे माते ललिते! यद्यपि कुपुत्र हूँ, तथापि दाम्पत्य युक्त करो, आधुनिक संस्कृति।
''लिव इन रिलेशन'' को अस्वीकार कर, सनातन–संस्कृति–पालना–पात्र बनाने की कामना की गयी है।

स्मर्यन्ते हुत जीवना नहि जनाः स्वातंन्त्रयुद्धाध्वरे।
नो राष्ट्रस्य विषाद् सौख्य विषया वार्तापि संश्लिष्यते।[98]

भारत के लिये अनाम उत्सर्ग कर देने वाले पुरोधा सेनानियों का सश्रद्धास्मरण होना चाहिये, राष्ट्रीय सुख–दुःख विषयक सुचर्चा, करने वाले अर्थ कामी हो जायें, तो राष्ट्र का उद्धार कौन करेगा। इस प्रकार के व्यथा वाक्यों से राष्ट्रीय चिन्तन की संस्कृति को प्रकाशित किया गया है।

प्राक् भारतीयराजनैतिकसंस्कृति के पक्षधर कवि ने लोकतन्त्र के मन्त्रियों को कौटिल्य संस्कृति का अवदान देते हुये कहा है कि –

कामं गोमय गन्धदग्ध ह्रदये दीने कुटीरेवसन्।
चाणक्यो वृषलस्य मन्त्रि पदवीं लब्ध्वाऽऽपकीर्तिपुरा।
तन्त्रेसाम्प्रतिके जनाप्यमतके दिष्ट्याऽभविष्यत्पदे,
ज्ञाता स्यान्नु तदैव तस्य गुरुता कौटिल्य संज्ञा जुषाम्।।[99]

श्लोक के माध्यम से **'सादा जीवन उच्चविचारों'** वाली संस्कृति की परिकल्पना राष्ट्रीय समृद्धि के लिये अनुकरणीय है। जैसा कि गोबर से लिये हुये, दीन कुटीर में रहते हुये, चाणक्य ने वृषलराष्ट्र का संचालन और सम्वर्धन किया था।

इस प्रकार पं. दवे ने खण्डकाव्यों में, सनातन संस्कृति के ह्रास की चिन्ता झलकती है। भौतिक विकास की सीढियाँ चढ़कर भले ही मानव ने मंगल गृह को खोज लिया हो, किन्तु उसके जीवन में मंगल हो, इसके लिये सनातन संस्कृति के शाश्वत् मूल्यों का अनुपालन तथा संवर्धन का सतत् प्रयास आवश्यक है। क्योंकि परिवार टूट रहे है। मातायें वृद्धाश्रम में स्थापित है। गो सेवा का स्थान श्वानसेवा ने ले लिया है। मन्त्री गण विलासोन्मुख हो रहे हैं। तरुणगण स्वच्छन्दता के पक्षधर होते जा रहे है। सेवकगण उत्कोचप्रिय होते जा रहे हैं। स्वार्थ नैतिक धर्म बनता जा रहा है। अतः विश्वगुरुभारत की स्थायीसम्पदा सनातन संस्कृति के आलोक में भरतपुत्रों के समक्ष लाना, तथा सम्पूर्ण विश्व को मानवीय संस्कृति से परिचय करना, ही कवि का उद्देश्य तथा उनके खण्डकाव्यों का सांस्कृतिक अवदान है। जिससे अध्येता, शोधार्थी, समीक्षक तथा संस्कृतानुरागी जन सद्यः उपकृत होंगे।

सन्दर्भ –

1. काव्यप्रकाश–प्रथम उल्लास–कारिका नं. 2 की व्याख्या। ''कान्तेव सरसता पादनेनाभिमुखीकृत्य रामादिवत् वर्तितव्यं न रावणादिवदित्युपदेशं च यथा योगं कवेः सहृदयस्य च करोति इति सवर्था तत्र यतनीयम्''
2. सौन्दर्यलीलामृतं'' – श्लोक सं.– 8 सौन्दर्य नहि चर्मराग निहितं नो <u>वाङंगभङ्याश्रितम्</u>, लावण्यं ललना गतं तु मनसो मनिन वै मीयते।। ''
3. वही – मंगलम् श्लोक सं.– 3
4. वही – सौन्दर्यलीला श्लोक सं.– 12 ''स्वच्छन्दाचरणं स्त्रियांच सततं लोके न शोभावहम्''

5. वही – विवशाविरहिण – श्लोक सं. – 13 ''कारागार समं तदस्ति ह्वदयं प्रेम्णा न यल्लेपितम्''

6. वही – विवशाविरहिणः श्लोक सं.– 15 ''सिक्ता स्नेह जलैर्हि विन्दति मुदं प्रीतिप्रिया वल्लरी''

7. वही – 'सौन्दर्यविभावना'– श्लोक सं.– 15 वासना व्यसना सक्ते, विष्टे सौन्दर्यं मन्दिरम्।

सौन्दर्योपास्ति सक्तानां भक्तानां गलितं यशः।।

8. मेघोपालम्भनम् – श्लोक सं. – 6 यज्ञान्मेघो भवति भणितं मन्यते नाद्य लोकः''

9. वही – श्लोक सं. – 6 कूर्यादयज्ञानपिकथमयं दुर्लभे हव्यगव्ये –

10. वही – श्लोक सं. – 9 भूयोभूयो प्रकृतिवनितां भौतिकोन्मादशौण्डो,

दृष्टेभावै व्यथयति भृशं रुपलावण्य मुग्धः।

11. वही – किमर्थकुत्स्यतेमेघः– श्लोक सं. –1

12. वही – श्लोक सं. –2

13. केलीभूकेतवम् – श्लोक सं. – 2/27–36

14. वही – श्लोक सं. – 1/15 ''गृहस्य धर्मों भणितस्त्वयैव, सर्वाश्रमश्रेष्ठतमों हि शास्त्रे''

15. कालकौतुकम्–कालायतस्मै नमः – श्लोक सं. – 18,19,30,31

16. वही – नवताकौतुकम् श्लोक सं. – 2,8,9,10

17. वही – कोऽन्योस्ति सदृशों मम–श्लोक सं. – 11,12,13,14,15

18. वही – दोषदर्शननिरपेक्षस्योक्तय – श्लोक सं. – 1,2,3,4,5,6

19. ललितालहरी – श्लोक सं. – 32, 33, 34

20. भारतीविलास – श्लोक सं. – 187

21. अपांगलीला – श्लोक सं. – 27, 28

22. वियोगशतकम् – श्लोक सं. – 3 ''दुःखायैव प्रभवतितरां वार्धके पूर्वभोगः।

23. वही – श्लोक सं. – 77 यस्याः लास्यं मधुर भणितिः सौष्ठवं कार्यकल्पे।,

स्वर्ग चक्रुः सदन भवनौ दुर्लभास्ता गृहिण्यः।।

24. वही – श्लोक सं. – 85 कस्याभीष्टा भवति न जनस्याङ्गनासाऽनवद्या।

25. कामधेनुशतकम् – श्लोक सं. – 82 से 102 पर्यन्त

26. छान्दोग्योपनिषद् – 8। 4 । 1

27. प्राचीन भारतीय संस्कृति के मूल तत्व – पृ.सं. – 2

28. सौन्दर्यलीलामृतम् – श्लोक सं. – 3

29. वही – श्लोक सं. – 8

30. वही – वैराग्यसंवेदना – श्लोक सं. – 2

31. कालकौतुकम् – तन्त्रकौतुकम् श्लोक सं. – 14

32. वही – श्लोक सं. – 6

33. वही – कालाय तस्मै नमः श्लोक – 18

34. भारती विलास – श्लोक – 6

35. वही – श्लोक सं. –14

36. अपाङ्गलीला – सृष्टिलीला – श्लोक सं. – 27

37. भारती विलास – श्लोक सं. – 31

38. वही – श्लोक – 103

39. वही – श्लोक सं.–102

40. वही – श्लोक सं.–149

41. वही – श्लोक सं.–178

42. वही – श्लोक सं.–147

43. अपांगलीला – कृपांगलीला श्लोक – 12

44. वही – श्लोक सं.–1

45. कारुण्यकादम्बिनी – श्लोक सं. – 36

46. वही – श्लोक सं. – 37

47. वही – श्लोक सं. – 01

48. वही – श्लोक सं. – 02

49. वही – श्लोक सं. – 9

50. वही – श्लोक सं. – 12

51. वही – श्लोक सं. – –''–

52. वही – श्लोक सं. – –''–

53. वही – श्लोक सं. – 15

54. वही – श्लोक सं. – 53

55. वही – श्लोक सं. – 59

56. वही – श्लोक सं. – 97

57. वही – श्लोक सं. – 98

58. वही – श्लोक सं. – 99

59. वही – श्लोक सं. – 105

60. वही – श्लोक सं. – 117

61. वियोगशतकम् – श्लोक सं. – 15

62. वही – श्लोक सं. – 24

63. वही – श्लोक सं. – 25

64. वही – श्लोक सं. – 26

65. वही – श्लोक सं. – 50, 51

66. वही – श्लोक सं.– 56

67. केलीभूकैतवम् – श्लोक सं. – 1/5 ''गृहस्थ धर्मो भणिततस्तत्वयैव सर्वाश्रम श्रेष्ठतमो हि शास्त्र।

68. वियोगशतकम् – श्लोक सं. – 77

69. वही – श्लोक सं. – 87

काठिन्यं यद्वहतिकुचयोस्तन्न वाचां विहारे, कामं मान्द्यं भवतु गमनेनैवमत्यांसुदत्याः।

दृष्टिंः तस्याः भवतु चपला नो चलत्वं चरित्रे, कृष्णाः केशाः न परिमियं कृष्ण शीला गुणौधे।।

70. सौन्दर्यलीलामृतम् – श्लोक सं. – 12

71. वही – श्लोक सं. – 14

72. कालकौतुकम् – कालाय तस्मै नमः – श्लोक सं. – 17,

''वेल्टाइन्स विभाविंत प्रणयिदं सम्भावयन्त्युसवम्''

73. सौन्दर्यलीलामृतं – श्लोक सं. – 37

74. केलीभूकेवकम् – श्लोक सं. – 2/12

75. वही – श्लोक सं. – 4/26

76. वही – श्लोक सं. – 3/26–35
77. कामधेनुशतकम् – श्लोक सं. – 1/25
78. वही – जयति पथमेडा अवनीतलम् – श्लोक सं. – 27
79. वही – श्लोक सं. – 33
80. वही – श्लोक सं. – 34
81. वही – सा नन्दनी क्रन्दयति – श्लोक सं. – 71–72
82. कामधेनुशतकम् – सा नन्दनी क्रन्दयति – श्लोक सं. – 95
83. वही – श्लोक सं. – 105
84. ललितालहरी – श्लोक सं. – 2
85. वही – श्लोक सं. – 4
86. वहीं – श्लोक सं. – 7
87. मेघोपालम्भनम् – वारिदविलासः – श्लोक सं. – 5,
88. वही – श्लोक सं. – 32
89. वही – श्लोक सं. – 33
90. वही – श्लोक सं. – 39
91. वही – किमर्थं कुत्सते मेघः – श्लोक सं. – 1
92. वही – श्लोक सं. – 2
93. मेघोपलम्भनम् – श्लोक सं. – 3
94. वहीं – श्लोक सं. – 4
95. वहीं – श्लोक सं. – 5
96. वहीं – श्लोक सं. – –''–
97. केलिभूकैतवम् – श्लोक सं. – 1/6
98. कालकौतुकम् – कालायतस्मैनमः – श्लोक सं. – 13
99. वही – श्लोक सं. – 27

षष्ठ अध्याय

आधुनिक खण्डकाव्य परम्परा में पं.श्रीराम दवे का स्थान–एक तुलनात्मक अध्ययन

षष्ठ अध्याय

आधुनिक खण्डकाव्य परम्परा में पं. श्रीराम दवे का स्थान–एक तुलनात्मक अध्ययन

बीसवीं शताब्दी संस्कृत साहित्य में नये उन्मेष की शताब्दी मानी गयी है। इस अवधि के काव्यकारों ने देश की परिवर्तित परिस्थितियों को समझकर समय और समाज को अपनी–अपनी रचनाओं में स्थान दिया। पारम्परिक विद्वानों ने परम्परा से हटकर नये युग और नयी विधाओं को चुनौती के भाव से स्वीकार किया तथा लेखन की नयी भूमि भी अन्वेषित की। दरबारी स्तुतियों का स्थान सतही सत्यता ने ले लिया। मेकाले की शिक्षा–नीतियों की विकृति तथा पाश्चात्य संस्कृति की नयी चेतना संस्कृतकाव्यों में परिलक्षित होने लगी। प्रजातन्त्र की नयी व्यवस्था, बदलते परिदृश्य, बदलती हुयी मानसिकता तथा विश्व की घटनाओं ने उन्हें प्रभावित और विचलित किया, परिणाम स्वरुप राष्ट्रीय भावना और सांस्कृतिक संवेदना के प्रबल प्रवाह ने कवियों को भावों से भर दिया। उनकी सामाजिक चेतना प्रखर होती गयी, समय की अन्य विचारधाराओं का वैचारिक दर्शन, प्राचीन आख्यानों के माध्यम से होने लगा। विशालाकार महाकाव्यों के स्थान पर खण्डकाव्यों का प्रचलन बढ़ गया और आधुनिक काव्य परम्परा में खण्डकाव्यों की अग्रणी भूमिका स्वीकार की जाने लगी। समीक्ष्य कवि पं. श्री राम दवे आधुनिक खण्डकाव्य परम्परा के ख्यातनाम कवि है। इन्होंने विविध विषयों पर अपनी लेखनी चलायी है और अधुनातन भावबोध को अभिव्यक्ति दी है। पारम्परिक संस्कार के धनी, कवि ने सांस्कृतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना का लक्ष्य लेकर एकादश मौलिक तथा तीन अनुवादित खण्डकाव्यों की युग् बोधक रचना की है। इन काव्यों में परम्परा की ग्रह्यता आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य सत्यापित की गयी है। कहा जाता है कि कवि की प्रकृति ही उनके काव्यों में समाहित होती है। जैसा कि पं. जी के खण्डकाव्यों के अध्ययन से पता चलता है, कि वे भक्त प्रकृति के कवि है, ईशभक्ति, राष्ट्रभक्ति तथा सनातन–परम्पराभक्ति का अविरल प्रवाह उनके काव्यों में प्रत्यक्ष होता है। भारतीय संस्कृति में अगाध प्रेम, अद्भुत श्रद्धा के कारण उन्होंने स्वच्छन्द एवं अमर्यादित युग्धर्मों का विरोध भी किया है।

पारम्परिक परिवेश में पले हुये, पिता के अभाव में अभावों से एकाकार हुये कवि पं. दवे की मूल शिक्षा एवं दीक्षा भी पारम्परिक ही रही किन्तु अजीविका आधुनिक (राष्ट्रीयकृत बैंक प्रबन्धक) रही। राष्ट्रीय आन्दोलनों के अंग भी रहे। भारत पाकिस्तान विभाजन के समय लाहौर में निवास करते हुये हिन्दु होने की पीड़ा भी भोगी। यवनों के अत्याचार से भी साक्षात्कार हुआ। अंग्रेजों की रीति नीति से भी प्रत्यक्ष परिचय हुआ। स्वतंत्रता पश्चात्

राजनैतिक स्वार्थ, राजलक्ष्मी की महत्ता, उत्कोच का बाहुल्य, वोटवंचना संस्कृति का ह्रास, नैतिक पतन, रामजन्मभूमि विवाद, गोहत्या, स्वच्छन्ता का नग्ननृत्य, विज्ञापन में नारी, मातृमूल्य, प्रकृति का उत्खनन, भारत–भारती की मर्यादा का हनन आदि समसामयिक दुर्धटनाओं को उन्होंने अपनी आँखों से देखा, संवदेना से जाना, तथा अन्तः चेतना से उनका काव्यात्मक चित्रण किया। इस प्रकार सनातन मूल्य तथा अधुनातन युग्धर्म का विलक्षण सम्मिश्रण है, इनके खण्डकाव्यों में। इनका काव्य युग्संवादी है, क्योंकि इसमें युग का स्वर है, वर्तमान का स्पर्श है तथा सनातनीय स्पर्धा भी है। अतः श्री दवे का खण्डकाव्य शाश्वत है और वह आधुनिक खण्डकाव्य परम्परा का सारथी भी है। निःसन्देह पण्डित जी आधुनिक खण्डकाव्य परम्परा के पारंगत और सर्वमान्य कवि है।

इनके काव्यों में एतिहासिक, पौराणिक अथवा कवि कल्पित कोई कथा नहीं है, अपितु प्रत्यक्षदृष्ट भावों का प्रकरान्तर से सृजित संवेदना बोधक कथानक है। जो संस्कृत और संस्कृति के मानवीय कृत्यों की अनुपालना के लिये दृढ़ है। इनके काव्यों में कथावस्तु है अवश्य किन्तु कविता को कहने के लिए है। ''**भृत्याभरण्**'' नौकरशाही पर लिखित जीवन के अन्तरंग की अभिव्यक्ति है। ''**राजलक्ष्मीस्वयंवरम्**'' महाकाव्य लोकतंत्र की विडम्बनाओं का श्वेतपत्र है। जबकि उनका तृतीय महाकाव्य ''**साकेतसंगरम्**'' किसी आक्रान्ता द्वारा ध्वस्त भारतीय जन–नायक राम मन्दिर के पुनरुद्धार के जन समर्थन को आत्मिक समर्थन है। इस प्रकार पं. दवे का तीनों महाकाव्य अधुनातन समय का लेखा–जोखा प्रस्तुत करने वाला स्वभाविक काव्यात्मक दस्तावेज है, जो कवि को आधुनिक महाकवियों में आदरणीय महाकवि का स्थान दिलाता है।

खण्ड काव्यों की श्रृंखला भी लम्बी है, अनूदित काव्यों ने इसे और विस्तार दे दिया है। जिसमें प्राक्तन संस्कार, और अधुनातन व्यवहारों, का युगीन स्पन्दनात्मक चिन्तन शब्दों में ढ़ाला गया है। इस भक्त कवि के भक्ति काव्य के रुप में ललिता लहरी, अपाङ्गलीला, भारतीविलास तीनों गंगा–यमुना सरस्वती सी पावनता की वाहिनी है। जो इष्ट सिद्धि से अभीष्ट प्राप्ति पर बल देती है। सांस्कृतिक वैभव को बचाये रखने की संस्तुति करती है तथा मनुष्य के दैनिक व्यवहार का दृष्टान्त बनकर पथ प्रदर्शन करती है।

हे मां! तुम ही युगकर्त्री हो, सज्जन दुर्जन में बुद्धिगत भेद उत्पन्न करती हो, अतः अपनी करुणालहरी से विषमता के विकारों को दूर करो –

युगानां कर्त्री त्वं दिशसि मनुजानामपि मतिम्।

सतां वा दुष्टानामपि च धिषणा भेद जननी ....।।[1]

तुम तो सदैव दलित लोगों के कल्याण में व्यस्त रहती हो, ''भृश व्यस्तां मन्ये दलित जन कल्याणकलने[2] हे ललिते! हमारे ऊपर ऐसी कृपा करना कि हमारा मन विकारों का कारागाह न बने, कण्ठ प्रशंसा–पाश में न पड़े।

विकाराणां कारागृहमिदमुमे मेऽस्तु मानः।

प्रशस्त्यापाशः पतत्तु न च कण्ठे स्तुतिरते।।[3]

इस प्रकार उक्त कृति कवि के हृदय सागर में उठे भाव भक्ति के साथ, धरातलीय कर्त्तव्य को ईगिंत करती है, वैचारिक दरिद्रताओं को समाप्त करने की कामना तथा वैयक्तिक शुचिता को आधुनिक युग्‌बोधक शब्दों में अभिव्यक्त करती है। **''अपांगलीला''** यद्यपि आराध्या भगवति की कृपा कटाक्ष की लीलारुप जगत् को प्रस्तुत करती है किन्तु इसी जगत में, साम्प्रतिकी युग्‌लीला की नवता की खिन्नता, को स्वर देते हुये कवि कहते है कि –

सम्प्रति धर्म की अभिलाषा कृष् हो गयी है। मोक्ष की अवधारणा ही नहीं है, संसार में परितः काम लुब्ध जनों का प्राचूर्य[4] है। नटानां नटीनां मनोहारि चित्रै ....[5] नव विटों का मनोहर चित्र चित्त को प्रदूषित कर रहा है, सज्जन वृत्ति कलंकित हो रही है। कपट मिथ्या प्रचार से सरल जनों के हृदय को चुराकर छद्मजाल में निबद्ध किया जा रहा हैं,[6] विज्ञापन के जरिये भ्रमित किया जा रहा है।[7]

सन्तों की विलासिता, आश्रमों की विचित्रता, अर्थलोलुपता, स्त्रीशील भंग, विज्ञापन में नग्नता आदि वर्तमान कालिक घटनायें कवि की युग्–सापेक्षता के आधार पर आधुनिक खण्डकाव्य परम्परा के कवियों की अभिनवता का परिचय देता है। इसमें साहित्य कर्म की अपेक्षा कवि की संवेदना का प्राकट्य विशेष है।

कवि के युग्‌बोधक नैतिक एवं श्रैंगारिक काव्यों पर विहंग दृष्‌या दृष्टिपात करने पर खण्डकाव्यों की कतिपय विशिष्टता कवि की श्रेष्ठता का सूचक प्रतीत होता है। इनके अन्तर्गत सौन्दर्यलीलामृतम्, केलिभूकैतवम्, वियोगशतकम्, मेघोपालम्भनम्, कामधेनुशतकम्, परिखायुद्धम्, कालकौतुकम् आदि खण्डकाव्य आते है।

जिनमें विभिन्न प्रकरणों के माध्यम से ध्रुव सत्य कथ्यों को आलोकित किया गया है। सौन्दर्यलीलामृतम् में सौन्दर्य की विभावना की गयी है। सौन्दर्य चर्मराग[8] नहीं है। वह रुप का आलिंगन भी नहीं है। वह तो सत्य और शिवरुप है।[9] दृष्टि और भाव ही इसका मापक है। सरस शैली, प्रसाद गुण, शास्त्रीय छन्द तथा आधुनिक प्रचलित शब्दावलियों के सन्निवेश के साथ कथानक को प्रस्तुत किया गया है। मेघोपालम्भनम् काव्य द्वारा मानव जीवन में मेघ की महत्ता, मेघ के लिय पर्यावरण की सुचिता तथा प्रकृति संरक्षण की बात

कही गयी है। यज्ञीय भूमि पर यज्ञ का अभाव, हव्य–गव्य की दुर्लभता आदि ही जल देवता की रुष्टता है –

यज्ञान्मेघोभवति भणतिं मन्यते नायलोकः।

कुर्याद्यज्ञानपिकथयै दुर्लभे हव्य गव्ये।।[10]

प्रतिदिन धरती के अस्थि–पंजर[11] खोदे जा रहे है, पर्वतों को नंगा किया जा रहा है। यंत्रों का धूँआ आकाश में व्याप्त हो रहा है। जिसके डर से दुःखी होकर मेघ मानो अन्यत्र चला गया है। इस प्रकार बादलों का मानवीकरण किया गया है और कवि परम्परा का अनुसरण करते हुये युगानुरुप मेघों के विविध विलासों का वर्णन किया है। इस खण्डकाव्य में पात्र–चरित्र–तथा कथा का अभाव है, धरा को नायिका के रुप में तथा मेघ को नायक के रुप में मानवीकरण कर चित्रित किया गया है। पृथ्वी की दुर्दशा तथा अनावृष्टि के लिये के मेघ को ही दोषी न मानते हुये, भौतिक लाभ के लिये पृथ्वी को उद्वेलित करने वाले लोगों को भी दोषी बताया है। भाषा और भाव का सुन्दर समावेश अंलकारों की चारुता तथा मर्म स्पर्शी शृंगार और करुण रस के विनियोजन के साथ साथ व्यंग्यात्मक शैली की साधुता से काव्य रमणीय और कमनीय है।

उक्त तथ्य आधुनिक परम्परा के कवियों की अग्रगण्यता को प्रमाणित करता है। अधुनातन समय से लिये गये सार्वभौमिक समस्या का लेखा–जोखा प्रस्तुत करने वाला खण्डकाव्य **"केलिभूकैतवम्"** है। जिसमें आजीविका और विवाह की विसंगति–कुसंगति से उत्पन्न केलिकर्दमजन्य दैन्य को उभारने के लिये जो शब्द विन्यास हुये है, वे अभिधेय की सीमा को पार कर ध्वनि की कोटि में पहुँच गये है। वे सीधे ह्रदय में प्रविष्ट होते है। इन श्लोकों में शब्द नहीं उनसे व्यजमान हो रहा भाव क्षेत्र अवबोधनीय है।

कश्चित् कान्तोरुचिर वदनो गर्भजातः कुमार्यः,

प्राप्तोऽनाथालय शिशुकुलाद् देवलेनात्मजार्यम्।।[12]

काव्य का नायक कौत्स है, जो कुमारी गर्भोत्पन्न, अनाथालय में पालित, संस्कृत शिक्षा अधीत, पौराणिक स्वरुप वाला युवक है, जो विवाह की अत्यभिलाषा रखता है। वह आधुनिका अंग्रेजी–शिक्षिता कुट्टुनियों के विज्ञापन जाल में उलझ[13] जाता है और स्वैरिणी के समस्त शर्तों (आधुनिक सप्तपदी) को हठात् स्वीकार कर लेता है। यहाँ कलंकी ममत्व तथा अनाथ शिशुओं की वेदना को कवि ने स्वर दिया है तथा वेदना के बीज को भी ईंगित किया है। कवि ने इस विषय को भारतीय के रुप में सोचने पर विवश किया है। यह काव्य सुखान्त काव्य की कोटि में आता है। शिव की कृपा से समान स्थिति वाली पत्नी की प्राप्ति होती है, माता–पिताओं का आर्शिवाद प्राप्त होता है। इस प्रकार युग् की संगति और

विसंगति दोनों ही पंडित जी के इस काव्य में स्वर पाती है। काव्य का शिल्प विषयानुकूल है तथा विषय युग्गामी है।

सामयिक दर्शन, व्यंग्यवेदना और अन्योक्ति का साम्राज्य है। नवीन सुक्तियों तथा आधुनिक शब्दों का विनियोग है। जो कवि को आधुनिक खण्ड काव्य परम्परा के कवियों में अनामिकावत् सिद्ध करता है। वहीं काल की विडम्बना का रेखाचित्र कवि का ''**कालकौतुकम्**'' खण्डकाव्य है, जिसमें श्लेषालंकार के माध्यम से मानव के आधुनिक कार्य प्रणालियों का तथा उनके चित्त एवं चरित्र का व्यंग्यात्मक वर्णन किया गया है।

संस्कृति और सभ्यता का उदय–अस्त कवि की दृष्टि में काल का कमाल है। नवोन्मेष उसकी नियति है। परिवर्तन उसकी प्रकृति है। एतदर्थ युग्–बदला, युग्–पुरुष बदले युग्–धर्म भी बदल गया। राजतंत्र प्रजातन्त्र हो गया, प्रजातन्त्र स्वेच्छातंत्र हो गया, आस्था स्थल अब क्लब हो गये। वेलेन्टाईन–डे राष्ट्रीय पर्व सा उत्साह पूर्व हो गया –

चित्रं काल कलावकीर्णकलितैः कान्ताभिलाषोत्सुकाः,
कालेऽप्राप्य धवं शिवाश्रय बलं बालाः हताः यौतुकेः।
त्यक्त्वा सत्कुल सम्पदं नवदृशो लज्जां च भूषां स्त्रियाम्,
वेलेन्टाइन्स विभावितं प्रणमिदं सम्भावयन्त्युत्सवम्।।[14]

इस सुविधा भोगी समय में, सनातन परम्परा को लुप्त होता देख कवि का हृदय तड़प उठता है, और राष्ट्रीय सांस्कृतिक पहचान को पुनः स्थापित करने के लिये चिन्तक मनीषि का चिन्तन व्यंग्य के माध्यम से दायित्व बोध कराता है। सत्ता–स्वार्थ और वनिता व्यामोह में बद्ध हे भरत पुत्रो! सनातन संस्कृति रक्षण की चिन्ता कौन करेगा। इस काव्य में आज का समय दृष्टिगोचर हो रहा है, जो नव लेखकों के लिये प्रतिमान है। श्लोक सहजता से सम्पन्न है तथा भाव सहृदय संवेघ है। निःसन्देह यह काव्य श्रेष्ठ कृति है। कवि का ''वियोगशतकम्'' मेघदूतम् से प्रभावित रचना है। अन्यच्छाया का सुन्दर निदर्शन इसमें है, वही मन्दाक्रान्ता छन्द वही वियोग का योग तथा श्लोकों की संख्या भी वही, इसका मूल स्वर भी वही प्रिया वियोग जनित शोक है, जिसके कारण मेघदूत विश्वव्यापि बना। संवेदना के धनी कवि बाह्य–जीवन के विविध रंगों के साथ–साथ प्रिया वियोगी पुरुष के भोग्य विविध अन्तरंग–तरंगों को सहृदयों के हृदय में तरंगित करता है –

दृष्टा त्वां भो जलद! ताडिता सार्धमाकाश मार्गे,
प्रकीडन्तं वियति चपला द्योतऽऽमोद भावैः।
उद्दीप्यन्ते मनसि विषया यौवनांकेऽभूताः,
दुःखायैव प्रभवतितरां वार्द्धके पूर्वभोगः।।[15]

पत्नी अपने पति के सुख–दुखों का अभिन्न आश्रय होती है, जहाँ पति के हृदय को विश्राम मिलता है। प्रेम की अवस्था कभी वृद्ध नहीं होती है, अपितु पत्नी के अभाव में वृद्धावस्था में पूर्व भोगों की स्मृति अतिपीड़ादायी होती है। इस वियोग के भोग में माधूर्य व्यंजक शब्दों का योग, प्रसाद शैली और मर्मस्पर्शी गृहस्थाश्रमी भावों का संयोग, वेदना–संवेदना–करुणा सूचक दृष्ट–सत्य तथ्यों का विनियोग संस्कृत बटुकों के हृदय की तन्त्री को झंकृत करता है। आधुनिक परम्परा का यह खण्डकाव्य अनागत शोधार्थियों, काव्यानुरागियों के अन्त स्थल को संवेदना जल से द्रवित करने वाला कमनीय काव्य है जो आधुनिक खण्डकाव्य के कवियों में श्रीदवे को कालीदास सा प्रतिष्ठित स्थान दिलाता है। कारुण्यकादम्बिनी मातृभक्ति काव्य है। जननी विषयक मूल्य बोध का गरिमामय वर्णन वर्तमान समाज व्यवस्था एवं युवा पीढ़ी के लिये प्रेरणास्पद है। अपनी संतति के लिये सर्वस्व समर्पित कर देने वाली मां की महिमा से भला कौन अनभिज्ञ होगा, देवता भी वात्सल्य सुख पाने के लिये[16] राम और कृष्ण के रुप में अवतार लेते है। उसी मां की उपेक्षा देख कवि का हृदय रोता है और पत्नी–भक्त कलयुगी पुत्रों को धिक्कारता है –

धिक् तां कलंक कलनां जननीं धरिण्यां .... [17] ।

एसे पुत्रों को कर्त्तव्य बोध कराते हुये, मातृमूल्य के प्रति भावी पीढ़ी को सजग किया गया है। आज के अर्थकामी युग् में यह काव्य विश्व की समस्त माताओं को समर्पित आदरांजलि है। जो साम्प्रतिकी काव्यों में आदरणीय है।

''**कामधेनुशतकम्**'' काव्य प्राचीन काव्य परम्परा का भी प्रतीक है और आधुनिक विषय वस्तु का सटीक चित्रण कर साम्प्रतिकी भावाबोध को मूर्त रुप देने वाला शतक काव्य भी है। इसमें गीता, गोविन्द, गंगा सी पवित्र गो की महिमा की प्रशस्ति है। आनन्दवन, पथमेड़ा में स्थित गोवर्धन गोशाला की गरिमा, तथा उस पावन स्थली की ऐतिहासिक, धार्मिक महत्ता को छन्दोबद्ध किया गया है। आधुनिक युग में गोमाता की दयनीय दशा उसके क्रन्दन व चीत्कार का बड़ा ही कारुणिक वर्णन है। इसमें देवताओं से प्रार्थना की गयी है कि देव भूमि भारत में गोवध का अभिशाप कब समाप्त होगा ? भारतवासियों का शोर्य कब जागेगा ? आदि आदि। गो की व्यथा का यथार्थ चित्रण करने वाले इस काव्य में विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है। काव्य की भाषा प्रांजल और व्याकरण सम्मत है। भाव उत्कृष्ट है। भक्ति की सरिता प्रवाहित है। करुणा की मार्मिकता कवि के आधुनिक कवित्व की कसौटी है। निःसन्देह यह काव्य अधुनातन शतक साहित्य की अद्भुत कड़ी है।

''**परिखायुद्धम्**'' काव्य समसामयिक घटित घटनाओं का रेखाचित्र है। वह खाड़ी युद्ध की विभीषिका की युग्बोधिका है। इस काव्य में अनन्त काल से संसार में प्रलय और उदय

की प्रवृत्तियों का चिन्तन है। तैल सम्पदा पर एकाधिकार स्थापित करने की हठी मानसिकता वाले देशों के मध्य आग्नेय युद्ध का प्रचण्ड ताण्डव तथा जनता जनार्दनों के जलते हुये आरमानों को शब्द दिया गया है।

समुद्र में प्रलयंकर अग्नि के भड़कने से शेष–शैय्या पर सौ रहे भगवान विष्णु के योगक्षेम की चिन्ता की परिकल्पना में देव–दानवों की प्रतिक्रिया तथा देवांगनाओं का परस्पर दोष दर्शन की कल्पना कल्पित काव्य कथा में युग्प्रवृति का निर्बाध निर्वाह किया गया है। काव्य शास्त्रीय मर्यादा का चिन्तन भी दृष्टि गोचर होता है। भाषा सरल सहज है। शब्दों में युद्धोपयोगी आधुनिक शब्दों को योग्य स्थान दिया गया है। विविध छन्द एवं अलंकारों का विनियोग है। वीर व रोद्र रस का प्रवाह है औज गुण के व्यंजक वर्णों की प्रचुरता है तथा युगबोधक भावों का विन्यास है। इस प्रकार आधुनिक घटना का पौराणिक कथा के माध्यम से कथन, कवि दवे को आधुनिक खण्ड काव्य परम्परा में उत्तम स्थान दिलाने वाला यह श्रेष्ठ आधुनिक खण्डकाव्य है।

''अनूदितकाव्य'' सर्जना के क्षेत्र में भी कवि को आदरणीय स्थान प्राप्त है। उन्होंने तीन संस्कृत पद्यानुवाद तथा तीन संस्कृत गद्यानुवाद संस्कृत जगत् को समर्पित किया है।

पं.श्री राम दवे द्वारा रचित अनूदित काव्य का नाम चिन्तन इस प्रकार है –

1. ''ब्रह्मरसायनम्'' (खण्डकाव्य) मूल – शाह जो रसालों, सूफी सन्त अब्दुल लतीफ की कृति का संस्कृत पद्यानुवाद।
2. ''यवनीनवनीतम्'' (खण्डकाव्य) मूल – मिर्जा गालिब के ''गालिब'' के गजलों का संस्कृत पद्यानुवाद है।
3. ''अकिंचन चैत्यम्'' (खण्डकाव्य) मूल – टॉमस ग्रे कृत – ''एलिजी रिटिन इन ए कंट्री चर्चयार्ड'' का संस्कृत पद्यानुवाद।
4. गीतांजलि – मूल – रविन्द्र नाथ टेगोर कृत का संस्कृतानुवाद
5. निर्मला – मूल – मुन्शी प्रेम चन्द्र के उपन्यास का अनुवाद
6. ध्रुवस्वामिनी – मूल – जयशंकर प्रसाद कृत नाटिका का संस्कृतानुवाद ।

यह सत्य है कि आधुनिक युग् में दूरियाँ कम हुयी है। भाषा और संस्कृति की आपसी नजदीकियाँ बढ़ी है। विश्व साहित्य का परिदृश्य बदला है। इतर भाषा से स्वभाषा में अनुवाद की प्रवृत्तियाँ बढ़ी है। अन्य भाषाओं की श्रेष्ठ कविताएं भी संस्कृत में काव्यानुवादों के माध्यम से संस्कृत पाठकों के समक्ष आयी है। पं. दवे भी इस विधा के महत्वपूर्ण कड़ी है। इन्होंने महाकाव्य–खण्डकाव्य आदि बहुविध रचना के अतिरिक्त अनेक अन्य भाषीय ग्रन्थों का संस्कृत में पद्यानुवाद किया है। उनके अनूदित ग्रन्थों से नवता का संचार हो रहा

है। सूफी सन्त अब्दुल लतीफ की कृति **''शाहजोरसालो''** सिन्धी साहित्य का काव्यानुवाद **''ब्रह्मरसायनम्''** नामक खण्डकाव्य में कवि ने सूफी सन्तों की आध्यात्मिक चेतना को भारतीय रहस्यवाद की पृष्टिभूमि में संस्कृत पण्डितों के लिये सहज शैली में **''संस्कृतच्छाया''** अनुवाद किया है। जो भाषान्तरों के श्रेष्ठ ग्रन्थों में निहित विषय–वस्तु एवं शिल्प की सम्प्रेषणीयता को संस्कृतोचित शैली में स्थापित एवं सत्यापित करता है। भाषा, भाव का न्यास संस्कृत और संस्कृति के अनुकूल है। जो कि कवि को श्रेष्ठ अनुदित कवियों में महनीय स्थान दिलाती है।

''अकिंचनचैत्यम्'' नामक अनूदित खण्डकाव्य अंग्रेजी के अमर कवि ''टॉमस ग्रे'' की कालजयी रचना ''एलिजी रिटिन इन ए कंट्री चर्चयार्ड'' का काव्यानुवाद है। कवि दवे ने इसका काव्यानुवाद संस्कृत की अपनी शैली और मुहावरे में किया है। शार्दूलविक्रीडितम् छन्द में रचित यह काव्य संस्कृत के परिवेश के अनुरुप पठनीय बनाया गया है। कहीं कहीं स्थान और नामों का परिवर्तन अपने देश परिवेश के अनुकूल किया गया है। स्थूल रुप में यह यथार्थानुवाद न होकर, भावानुवाद काव्य है। शिल्प के परिमार्जन से इसे चमकाया गया है। कथ्य में स्वतंत्रता को भी स्थान दिया गया है। किन्तु भाषा और भाव के साथ पूरा न्याय किया गया है।

अनुवाद की भाषा विशुद्ध है, व्याकरण सम्मत है, इस अनुवाद के द्वारा संस्कृत की अभिव्यक्ति सामर्थ्य को बल मिला है। ''अकिंचनचैत्यम्'' के कलेवर को वास्तविकता प्रदान किया गया है।

In English –

Large was his bounty and his soul sincere;
Heaven did a recompense as largely send:
He gave to misery all he had, tear;
He gained from Heaven ('t was all he wished) a friend.[18]

संस्कृत श्लोकानुवाद –

यस्यौदार्यं वसति ह्दये निर्मलश्चात्मभावः,
दैवेनास्मै वितरितमिदं स्वर्गतः मित्ररूपम्।
येनाभीष्टं सकलमपि सः संदहेऽकिंचनेभ्यः,
शिष्टापाश्वै प्रियजन समा केवलं साश्रुधारा।।[18]

''यवनीनवनीतम्'' उर्दू के प्रसिद्ध विद्वान 'मिर्जा गालिब' के गालिब में लिखित गजलों का संस्कृत पद्यानुवाद है। यद्यपि मिर्जा गालिब के गजलों का काव्यानुवाद दुष्कर कार्य है, किन्तु कवि दवे की संस्कृत के समान ही उर्दू भाषा पर भी अच्छी पकड़ थी।

एतदर्थ दोनों भाषाओं के सौष्ठव को ध्यान में रखते हुये संस्कृत के प्रवाह को धार दिया है। जिसका एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है –

गजल –

हम कहाँ के दाना थे,
किस हुनर में यकता थे।
वे सबब हुआ ग़ालिब।
दुश्मन आसमां हमारा। 23/6

संस्कृत –

मृमैव गुणिनो लोके,
प्रख्याताः स्मो वयं गुणैः।
विधाता तु गुणान वीक्ष्यः,
हन्त्यस्मान् विपदां शरैः।।[19]

मिर्जा ग़ालिब के काव्य में शोक को प्रेरक माना गया है। शोक–साहित्य और जीवन का धनिष्ठ सम्बन्ध होता है। जीवनधारा ही धारा प्रवाह साहित्य होता है। दोनों कवियों के जीवन में दुःख का साथ बना ही रहा, अतः दोनों के काव्य में (मूल और अनुवाद) में अनुभूतियों की समता है। कवि ने उर्दू को ''यवनी'' और उसके लालित्य का नवनीत नाम दिया है। कवि ने ग़ालिब के गज़लों के संस्कृतानुवाद में केवल भावों का ही ग्रहण किया है। शिल्प स्वयं का है। भाषा सरल, सुबोध प्रांजल और प्रशस्त है। भारतीय अवधारणा में अनुवाद का अर्थ मूल पाठ में निहित अर्थ, सन्देश अथवा सम्प्रेष्य को एक अन्य पाठ में अन्तरित कर देना होता है। पाश्चात्य अवधारणा के समर्थकों का कहना है कि, एक भाषा के सन्देश को अन्य भाषा में यथा पथ सम्प्रेषित करना असम्भव को सम्भव बनाने जैसा है, क्योंकि कवि की उक्तियाँ अनन्य होती है। यदि इनका अनुवाद किया जायेगा तो उनकी अनन्यता खण्डित हो जायेगी। किन्तु ज्ञान विज्ञान के इस युग् में आदान–प्रदान की अवधारणा में अनूदित कृतियों की विचारणा एवं धारणा को विद्वान समीक्षकों का सम्बल प्राप्त होता है। अतः कवि ने तीनों मूल कृतियों के सन्देश को यथा सम्भव सुरक्षित रखते हुये, अनूदित कृति में लक्ष्य भाषा की इकाईयों में भावों को निबद्ध किया है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कवि ने कविता की सूक्ष्म–से–सूक्ष्म और तरल से तरल कल्पना के भाव को एक सीमा तक अभिव्यक्ति दी है। एतदर्थ आधुनिक काव्य परम्परा की सशक्त इकाई अनूदित खण्डकाव्य परम्परा में भी कवि की सर्जना श्लाघनीय, और साहित्यिक उदारवादिता की ओर ठोस कदम है।

वस्तुतः पं. श्रीराम दवे आधुनिक संस्कृत काव्यधारा के भागीरथ है। साहित्य मनीषी है। संस्कृत भाषा के समर्थ कवि है। संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू और सिन्धी भाषा में समान

अधिकार रखने वाले स्वतः स्फूर्त कवि प्रतिभा के धनी है। उनकी कविता में आधुनिकता का बोध तथा नवोन्मेष की निरन्तरता है। इनके खण्ड काव्यों में विविध भावों और विचारों की सूक्तियों का संचयन है। इनके काव्य में जीवन की निष्ठा है, भक्ति है, मूल्य है, श्रद्धा है, संस्कृति है, ज्ञान है, गरिमा है, प्रकृति है, विकृति है तथा भविष्य के लिये शाश्वत सन्देश है। इस प्रकार नूतनता युक्त मौलिक अवधारणाओं को मौलिक तर्कों से उपस्थित करने वाले, यथादृष्ट तथ्यों को प्रकारान्तर से उपन्यस्त करने वाले, प्राच्य एवं आधुनिक काव्य शास्त्रीय मानदण्डों पर खड़े उतरने वाले, भक्ति, शृंगार, जीवन मूल्य एवं युग्बोध को अपनी लेखनी से प्रबोध कराने वाले कवि पं. श्रीराम दवे का आधुनिक खण्डकाव्य की समृद्ध परम्परा में 20 वीं शताब्दी के अनेक कवियों के समान श्लाघनीय योगदान रहा है।

उन्होंने समसामयिक व्यवस्था को विलक्षण दृष्टि से देखा है तथा युग्–चेतना के समवाय को स्वकीय काव्य में समाहित किया है। इन परिवर्तनों से न केवल परम्परा को ही संवर्धित किया है, अपितु रसनीयता का परमोत्कर्ष स्थापित करते हुये अपने काव्यों को सहृदयास्वाद्य, कोविदास्वाद्य तथा लोकास्वाद्य भी बनाया है। भाव और शिल्प के क्षेत्र में आधुनिक विशेषणों को संयुक्त किया है। पूर्वाचार्यों कवि मनीषियों ने जिन्हें अनदेखा किया, उन भावों को भी आधुनिक परम्परा के कवियों ने अपने–अपने काव्य में संजोया है। उन्हीं कवियों और उनकी कृतियों का उल्लेख समीक्ष्य कवि एवं उनकी खण्डकाव्यकृतियाँ में समभाव स्थापना तथा स्थान निर्धारण के निमित्त तुलनात्मक अध्ययन के लिये अपेक्षित है।

क्योंकि समकालीन एवं समभाव एवं समदृष्टि वाले कवियों एवं उनके कृतियों का प्रभाव किसी न किसी रुप में प्रतिबिम्बित होता अवश्य है। यह जानने के लिये पूर्व में लिखित विशेषतः 20 वीं शताब्दी ख्यातनाम खण्डकाव्यकारों का उल्लेख अत्यावश्यक है। वे आधुनिक कवि जिन्होंने आधुनिक युग की समस्याओं को अपने काव्यों में उजागर किया है। परिवर्तित मानव–मूल्यों एवं सामाजिक–मूल्यों को प्रस्तुत किया है। ये समस्त परिवर्तन समाज व समय के परिवर्तन के कारण हुये है। पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव में सनातन संस्कृति की विकृति, गो–सेवा के स्थान पर श्वान–सेवा, स्वयं भवन में माता–पिता वृद्धाश्रम में, स्त्रियों का स्वछन्द रुप, विज्ञापन में नग्नता आदि भौतिक विकास की आड़ में प्रकृति का विनाश, संस्कृतज्ञों का उपहास, संस्कृति का ह्रास आदि तत्कालीन समाज का प्रतिबिम्ब, साहित्य में अवश्य समाहित होता है। समयानुसार नवीन छन्द, उपमान, बिम्बविधान भी काव्य में प्रस्तुत किये गये होते है। समीक्ष्य कवि की जन्म भूमि राजस्थान की धरा भी असंख्य कृतिकारों की लेखनी ने आधुनिकता को अभिव्यक्ति दी है तथा मूल्यों के प्रति जागृति दी है।

एतदर्थ समानधर्मी कतिपय कवियों का निदर्शन तुलनात्मक अध्ययन के आलोक में प्रस्तुत है –

भट्ट मथुरानाथ शास्त्री –

कवि भट्ट मथुरानाथ शास्त्री को युग् प्रवर्तक साहित्यकार के रुप में प्रतिष्ठा प्राप्त है। उन्होंने अपने काव्य में नई प्रवृत्तियों का आधान, नव विधा तथा नई शैली की अवतारणा की है। दोहा, सोरठा, घनाक्षरी, छप्पय कवित्त जैसे हिन्दी भाषा के छन्दों को संस्कृत काव्य में उतरा है। व्यंग्य, विडम्बना तथा सामाजिक वैषम्य की अभिव्यक्ति भी प्रभावशाली है।

भट्ट मथुरानाथ शास्त्री मूलतः आंध्रपदेश के तलंग ब्राह्मण परिवार के अंश थे। इनका जन्म 1891 में हुआ, इनकी शिक्षा–दीक्षा और आजीविका का क्षेत्र **जयपुर** राज्याश्रित संस्कृत विद्यालय–महाविद्यालय रहा। 14 वर्ष की अवस्था से लेकर 74 वर्ष तक की अवधि में निरन्तर साहित्य साधना करते हुये संस्कृत जगत् को अमूल्य योगदान दिया। कवि भट्ट मथुरानाथ शास्त्री ने गद्य और पद्य दोनों ही विधा में अपनी लेखनी चलायी है। ''आदर्शरमणी'' उपन्यास, प्रबन्धपारिजात ''विल्हणचरितम्'', ''भारतवैभवम्'', ''गीर्वाणगिरा गौरवम्'' इत्यादि गद्य रचना संस्कृत जगत् के मानस पटल पर समाद्रित है।

पद्य काव्यकृतियों में –

- **खण्डकाव्य :**
  1. मनोलहरी
  2. सुरभारती
  3. वियोगिनीविप्रलापः
- **मुक्तककाव्य :**
  1. जयपुरवैभवम्
  2. साहित्यवैभवम्
  3. गोविन्दवैभवम्

आदि छह काव्य शास्त्री जी के कवित्व को सिद्ध करता है। जिनका तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है।

- **खण्डकाव्य –**

1. **मनोलहरी खण्डकाव्य –** संस्कृत रत्नाकर नामक पत्रिका के तृतीय वर्ष की प्रथम संचिका, वैशाख संवत् 1991 में इस मनोलहरी के केवल 20 पद्य ही प्राप्त होते है। पद्यों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि, यह कवि की एक अपूर्ण रचना रही है।[20]

मनोलहरी में मन के विभिन्न पक्षों का सुन्दर चित्रण किया गया है। विषय वस्तु की गम्भीरता रस प्रवणता और गाम्भीर्य के कारण मनोलहरी को खण्डकाव्यों के रुप में स्वीकार किया जाता है।

2. **सुरभारती खण्डकाव्य** – ''सुरभारती'' से अर्थ है देववाणी, जो वाणी देवों की हो, वह मृत कैसे हो सकती है ? अतः इस कृति में संस्कृत भाषा की महिमा का बखान किया गया है। यह संस्कृत रत्नाकर पत्रिका के 8,9,10,11 अंक में प्रकाशित है।[21] 14 पद्यों के इस काव्य में संस्कृत की महत्ता को प्रतिपादित किया गया है। इस खण्डकाव्य को कवि ने अभिनन्दन सम्मेलन में पढ़ा था, सभापति ने प्रसन्न होकर स्वर्ण पदक दिया था।
3. **वियोगिनीविप्रलापः खण्डकाव्य** – संस्कृत साहित्य में विरह प्रसंग को लेकर अनेक काव्यों नाटकों आदि में रचना प्राचीन काल से ही होती रही है। इसी काव्य परम्परा के अनुसार भट्ट जी का खण्डकाव्य 'वियोगिनी विप्रलापः' भी विरह कथा पर आधारित है। इसका प्रकाशन मासिक पत्रिका संस्कृत रत्नाकर के द्वितीय वर्ष के तृतीय अंक में हुआ था। विरही नायक का जो चित्रण किया गया है, वह वास्तव में प्रशसनीय है। तथा विरहिणी के विरह दशा का वर्णन भी अत्यन्त मार्मिक है।

- **मुक्तककाव्य** –

1. **जयपुर वैभवम् मुक्तककाव्य** – जयपुर की सांस्कृतिक परम्पराओं का उल्लेख किया गया है। इस काव्य में संस्कृत के छन्दों के साथ–साथ हिन्दी और उर्दू के छन्दों का प्रयोग भी किया गया है। इसका प्रकाशन मंजु कविता निकुंज नामक जयपुर की पत्रिका में किया गया था।
2. **साहित्यवैभवम् मुक्तककाव्य** – नामक काव्य का प्रकाशन निर्णय सागर प्रेस मुम्बई से हुआ। इसमें नवीन शैली, एवं नवीन छन्दों का प्रयोग आदि काव्य कला का अद्भूत विलास दृष्ट्व्य है।
3. **गोविन्दवैभवम् मुक्तककाव्य** – इस काव्य का प्रकाशन गीता प्रेस गोरखपुर से हुआ। इसमें भगवान गोविन्द देव के यश तथा उनकी भावपूर्ण स्तुति का अद्भुत वर्णन है।

इस प्रकार शास्त्री जी की खण्डकाव्य कृति पं. दवे की कृतियों से सम्भाव रखती है। **अश्वघाटी छन्द** का नवीन प्रयोग आदि का बीज का श्रेय शास्त्री जी के काव्य को कदाचित दिया जा सकता है।

पण्डित जी ने अपने खण्डकाव्य कृतियों में भी विषय वस्तु के रुप में मन की वेदना, संस्कृत भाषा की संवेदना, संस्कृतज्ञों की सम्प्रतिकी स्थिति, विरह कालिक मनःस्थिति,

वर्ण–शब्द स्वरुपा भारती की स्थिति तथा इष्ट स्तुति को आधुनिक स्वरुप में स्थान दिया है। जो भट्ट मथुरानाथ शास्त्री के खण्डकाव्य एवं मुक्तक काव्यों कृतियों से तुल्यता रखती है।

श्री रसिकबिहारी जोशी –

कवि श्री रसिकबिहारी जोशी का जन्म 12.09.1927 को अजमेर जनपद के ब्यावर नामक गाँव में हुआ था। कवि के पिता श्री रामप्रताप जोशी नागपुर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभागध्यक्ष रहे थे। कवि जोशी की प्राथमिक शिक्षा ब्यावर (अजमेर) में ही हुई। विलक्षण प्रतिभा के धनी श्री जोशी जोधपुर विश्वविद्यालय तथा दिल्ली विश्वविद्यालय में संस्कृत विषयक प्राध्यापक रहे। उन्होंने अवकाश ग्रहण करने के बाद में ब्यावर में निवास करते हुये, साहित्य साधना की। साहित्य साधना के साथ–साथ राधामाधव की उपासना और योगसाधना करते हुये "मोहभंग" नामक महाकाव्य तथा **करुणा–कटाक्ष–लहरी, सारस्वतम्, श्रीगोवर्धनगौरवम्** नामक **तीन खण्डकाव्यों** का प्रणयन किया। जो आधुनिक खण्डकाव्य परम्परा को सम्बल देता है। **शिवलिंगरहस्यम्, स्पर्शास्पर्शविवेकः भक्तिमीमांशा तथा उपदेशावली** भी इनकी उल्लेखनीय विचार प्रधान रचना है।

1. करुणा–कटाक्ष–लहरी –

यह लहरी काव्य देवाराधन के लिये प्रसिद्ध है। इसमें भावों की गहनता है। कृपाकांक्षा का स्वर तथा अन्तर्जगत् से निःसृत व्यक्तिगत भावों की गीति है। इसमें माधूर्य भक्ति की प्रधानता है।

"स्तनं ते नयनं वदामि चतुरं राधे महालोलुपम्,
यश्चौर्यं ह्रदये चुचोरथिषते कृष्णस्य गुप्तं धनं।
नित्यानित्य विचार चारु ह्रदयस्योपास कस्यापि में,
तन्नूतं हरते विवके शरणं चेतः सुवर्णं सदा।।

2. सारस्वतम् –

यह गीतिकाव्य सरस्वती की स्तुति में लिखा गया भक्ति साहित्य है। भाव व शिल्प की दृष्टि से श्रेष्ठ है। कथ्य गागर में सागर भरने जैसा है।

3. श्रीगोवर्धनगौरवम् –

इस खण्ड काव्य में गोवर्धनधारी भगवान श्री गिरिराज जी का वर्णन है। इसका वर्ण्य विषय आँखों के सामने चित्र स्थापित करने वाला है। इसमें जीवन के विभिन्न पहलुओं को उद्धृत किया गया है।

निःसन्देह कवि का तीनों खण्ड काव्य समीक्ष्य कवि के भक्ति काव्य ललिता लहरी, अपांगलीला, भारतीविलास के भावों के तुल्य है। जहाँ विचारों की प्रधानता तथा भक्ति भाव समन्वित नूतनबिम्ब विधान की कल्पना का आधान है। भगवती ललिता तथा भारती की कृपा से ही संसार का समस्त चमत्कार स्वीकार किया गया है। मानव इनकी कृपा के बिना इहलोक में कुछ भी करने में समर्थ नहीं है। समसामयिक विषयों के माध्यम से भक्ति के साथ युगीन स्वर को सहज शब्दावली में आधुनिक प्रश्नावली में प्रस्तुत किया है। जो श्री जोशी के कवि विचारों का उनके लेखन शैली का समर्थक है। एतदर्थ आधुनिक खण्डकाव्य परम्परा में श्रीजोशी जैसे मूर्धन्य कवियों की कोटि में महनीय सम्मान रखता है।

श्रीनिवासरथ –

आधुनिक संस्कृत साहित्य के युग्बोधक कवियों में ख्यातलब्ध कवि ''श्री निवासरथ'' का जन्म 1933 में पुरी (उड़ीसा) में हुआ। उनका बाल्यकाल मध्यप्रदेश के विभिन्न नगरों में तथा युवाकाल काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में उच्च अध्ययन में व्यतीत हुआ। पारम्परिक पद्धति से संस्कृत विषयक अध्ययन पिता से प्राप्त कर विक्रम विश्वविद्यालय में प्राध्यापक बने। यहीं से साहित्य साधना प्रारम्भ हुयी जो आज आधुनिक कवियों की श्रृंखला में अपना विशिष्ट पहचान रखती है। मूलतः भट्ट मथुरानाथ शास्त्री के नवविधाओं में संस्कृत रचना की परम्परा से प्रभावित है। इनकी प्रथम रचना ''**बलदेवचरितम्**'' तथा द्वितीय रचना ''**तदेव गगनं सैव धरा**'' नामक गीतिकाव्य है। जिसका प्रकाशन राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान से हुआ है।

''**तदेव गगन सैव धरा**'' – यह गीतिकाव्य 41 मुक्तक गीतिकाव्यों का संग्रह है इस गीतिकाव्य में कवि ने आज के समाज में सदाचार विमुख नेताओं की स्वार्थलिप्सा, भौतिक भोगातिशयित जीवन शैली, जीवन विपर्यास एवं युवकों के मनों में व्याप्त निराशावादिता को नवीन शैली में स्वाभाविक अभिव्यक्ति दी है। समय की पुकार को ही उन्होंने रचनाओं की वर्ण्य सामग्री बनायी है। नवजीवन में संस्कार का महत्व क्या है ? कवि की पक्तियाँ दर्शनीय है।

अहमपि जाने, जनीषे त्वम्/नवजीवन–संस्कार महत्वम्।
स्वार्थ दर्शन लोक चरित्रम्/कुरुते शनैः शनैरपवित्रम्।
अनियन्त्रित प्रभावा हरते/पशुता मानव जीवन–सत्वम्।।

समीक्ष्य कवि दवे की कृति ''कालकौतुकम्'' नामक खण्डकाव्य में श्री निवास रथ की भावना को इस प्रकार प्रकट किया है –

शिक्षा संस्कृति जीवनोत्सव विद्यौ खाद्येऽभिवादे यथा।
भाषा–भूषण–भाषणे–भृति पदे संकल्पिते शासने।।[22]

समाजिक, धार्मिक राजनैतिक, वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक युग् बोधक भावों की तुल्यता दोनों कवियों की कृतियों में समाविष्ट है। कवि दवे ने **"कवितामंजरी"** नामक गीति काव्य में 38 मुक्तकगीत का संग्रह किया है। जो समसामयिक युगबोधक भावों को स्वर देता है। साथ ही नेताओं की स्वार्थलिप्तता, भौतिकभोग तथा निराशावादिता को अपने खण्डकाव्यों में दृढ़ता के साथ प्रस्तुत किया है। मेघोपालम्भनम्, कालकौतुकम्, केलिभूकैतवम् आदि काव्य में इसके प्रसंग प्राप्त किये जा सकते है। वस्तुतः कवि दवे ने श्रीनिवासरथ के युगीन भावों को ही आधुनिक शब्दावलियों में किन्तु शास्त्रीय स्वरुप में प्रस्तुत किया है। जो इन्हें आधुनिक खण्डकाव्यकारों के तुल्य बताता है।

कवि रामकरण शर्मा –

शिक्षा और प्रशासन के क्षेत्र में शीर्षस्थ पदों को अलंकृत करने वाले विद्वान कवि पं. रामकरण शर्मा का जन्म मिथिला धरा पर 1928 में हुआ। बाल्यकाल से ही उनकी मेघा काव्य–सृजन के ऊहा–पोह में लगी रही। उनकी प्रथम रचना 1943 में **तुलसीस्तवः** नाम से प्रकाशित हुयी, जो कॉलेज की पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। उनका **'पाथेयशतकम्' गगनवाणी, वीणा, सर्वमंगला** नामक काव्य मूल्यबोध और सांस्कृतिक चेतना के लिये प्रसिद्ध है। जिसमें मानव की गरिमा, सांस्कृतिक प्रदूषण और नैतिक मूल्यों की चिन्ता की गयी है। सनातन परम्परा के प्रति अगाध आस्था का भाव भी इनके काव्य में व्याप्त है।

समीक्ष्य कवि पं. दवे के काव्यों में भी कुछ इसी तरह की विशिष्टता देखने को मिलती है। सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति सचेष्ट कवि ने परम्परागत मूल्यों को पुनः स्थापित करनेका सार्थक प्रयास किया है।

आज के युग् में बढ़ते हुये कामना के प्रसार को लेकर कवि का चिन्तन स्पष्ट है –

युगानुरुपंनहि योऽधुनाज्ञः पुराणपंगु कुरुते प्रयासम्।

नासौ स्वकामना मनसि प्रकल्पितान लब्ध्वा क्वचित विदन्ति सौख्यम्।।[23]

इसी भाव को कवि श्री राम करण शर्मा ने इस प्रकार कहा है –

'अपि कामनाऽपराध्यन्ति जनयन्ति विविदिषा पिपासाश्च'।[24]

वस्तुतः आज के कलह के पीछे कामना का ही अपराध होता है। वही वाद–विवाद और पिपासाऐं पैदा कर रही है। प्रकल्पित कामना ने किसी को सौख्य नहीं दिया । अतः प्रणय की नीति से उसका संस्कार किया जाना चाहिये।

दोनों ही कवि सनातन चेतना के कवि है। उदात्त शैली और सहज अभिव्यक्ति ही इनके काव्य की चारुता है। कवि श्रीशर्मा के काव्य **'गगनवाणी'** में अन्याय के प्रतीकार के

लिये सतत् तैयार रहना चाहिये का आव्हान किया गया है, तथा कृपाण के स्थान पर हाथ में वीणा, पुस्तक, लेखनी धारण करने की कामना की गयी है।

''देवि ने धेहि कृपाणं वीणैव ते करे भातु''[25]

कवि दवे का काव्य भी भाव साम्य रखता है। जो युगीन समभाव का बोधक है।

धर्मोद्धत्यै त्वं ह्यवतीर्णस्त्विह राम!
पाणिस्थं ते हा कथमेतद्धनुरस्तम्।।[26]

इस प्रकार पं. दवे के खण्डकाव्यों में समकालीन काव्यकारों का समकालीन चिन्तन झलकता है। भाषा भाव में भी सरसता है। किन्तु उनकी मौलिकता, शब्दचयन, उद्धरण, स्पष्टवादिता की विशेषता समकालीन काव्यकारों में इन्हें महनीय बनाता है। सर्वमंगला में संगृहीत खण्डकाव्य **'उपालम्भशतकम्'** में आज के समय में हो रहे, अन्यायों के निस्तारण हेतु उपालम्भ की शैली में शिव से की गयी प्रार्थना अवलोकनीय है –

असुन्दरं निहन्ति सुन्दराणि काञ्चना वृतं,
छलावृतं तथा शिवंशिवानि हन्ति निर्दयम्।
असत्यमेव दाम्भिकं निहन्ति सत्यवाहिनीं,
तृतीयमाह्वयेत नेत्रमीश ते स्थितिस्तु का।।[27]

आज उल्लू और काक एक साथ मिल हंसों को भगा रहे है, चाटुकार पदासीन हो रहे है। चार्वाकी धर्मी हो गये है। अयोध्या की धरा पर रधुनन्दन उपेक्षित हो रहे है। इस प्रकार उपालम्भ शैली में आज के समय की समस्या निवारण हेतु कवि श्रीराम दवे कालकौतुकम् काव्य के माध्यम से गुहार लगा रहे है –

धूकाः कूकाः कृष्ण दलोग्रास्ततिविष्टाः,
हंसाः याताः पूर्ण विवेकाः सितपक्षाः।
चार्वाकास्याश्चाटुकारस्ते गतधर्माः,
प्राप्ताः वैषम्योदय दक्षाः प्रतिपक्षे।।[28]

आज के जीवन से जुडे, आधुनिकता के अनुभवों को समेटे हुये विडम्बनाओं को प्रखरता के साथ व्यक्त किया गया है, दोनों ही कवियों के काव्यों में। जहाँ शर्मा जी ने संवेदन शीलता दर्शाने के लिए प्रायः आर्या छन्द को चुना है, वहीं श्री दवे ने भावानुरुप बड़े छन्दों को अपनाया है। इस प्रकार आस्था, लोक कल्याण, भारतीय दृष्टि की भाव भूमि पं. दवे का काव्य समकालीन काव्यों में महत्वपूर्ण है।

कवि उमाशंकर शर्मा त्रिपाठी –

राम, कृष्ण और तुलसी के प्रदेश उत्तरप्रदेश के देवरिया जिले में उत्पन्न उमा शंकर त्रिपाठी (1922–1982) पारम्परिक एवं आधुनिक शिक्षा के विज्ञ विद्वान थे। वे काशी विद्यापीठ में अंग्रेजी के प्राध्यापक पद पर कार्य करते हुये, संस्कृत महाकाव्य तथा खण्डकाव्यों की रचना की। अंग्रेजी साहित्य से परिचित होने के कारण उनके महाकाव्य में नवीन विचारों का समावेश हुआ तथा उन्होंने आज की संवेदना को स्वर दिया है। कवि की रचनाओं में **'छत्रपतिचरित्रम्'** महाकाव्य अति प्रसिद्ध है तथा खण्ड काव्यों में **'उमरखय्याम भारती'** नामक अनुदित काव्य है। जिसमें खय्याम के रुवाईयों का मन्दाक्रान्ता छन्द इनका अनुवादित काव्य ग्रन्थ भी प्राप्त होता है। कबीर की साखियों का अनुष्टुप छन्द में अनुवादित काव्य ग्रन्थ प्राप्त होता है। इनका **चक्रिचूडामणि खण्डकाव्य** विनोदात्मक काव्य है, जो समय के विषय में गम्भीर संकेतों को देता है।

तुल्य कवि पं. दवे की आजीविका भी अंग्रेजी (बैंक मेनेजर) से तथा उनकी साहित्य साधना संस्कृत विषयक थी। अंग्रेजी, उर्दू, फारसी आदि से अतिपरिचित होने के कारण उनके काव्यों में भी आधुनिकता का समावेश हुआ, किन्तु पारम्परिक परिधान में। इन्होंने भी अनुदित काव्य सर्जना कर आधुनिक संस्कृत साहित्य में उदारवादी योगदान दिया है। यवनी नवनीतम्, ब्रह्मरसायनम् तथा अकिंचनचैत्यम्, ये तीन अनूदित उत्कृष्टकोटिक काव्य है। जिसमें योग–वियोग और शोक को विविध छन्दों में संजोया है।

इस प्रकार दोनों कवियों की परिस्थियाँ साम्य होने के कारण उनकी कृतियों में भी भावतुल्यता तथा समसामयिक स्थितियों में साम्यता है। श्री त्रिपाठी के काव्य में दलित वेदना है तो श्रीदवे के काव्य में जीवन की करुणा है। एक उपेक्षित वर्ग को स्नेह जल से सींच कर उन्नत मानव की कोटि में लाना चाहता है, तो दूसरा उन्नत वर्ग में मानवीय मूल्यों की वकालत करता है। त्रिपाठी जी खय्याम के रूबाईयों का अनुवाद किया है तो पं. दवे ने मिर्जा ग़ालिब के शायरी के शोक को श्लोक में रुपान्तरित किया है। कवि त्रिपाठी ने संत कबीर के साखियों को संस्कृत में रुपान्तरित किया है, तो श्री दवे ने ब्रह्मरसायनम् में सूफी संत शाहजोरसालो के पद्यों के भाव को संस्कृत भाषा के अनुष्टुप छन्द में भावान्तरित

किया है। दोनों ही कवियों ने ग्रन्थ की मौलिकता से भेद भाव किये विना भाषा शैली, पदविन्यास रस गुण अलंकार आदि काव्यावयवों को अनुदित काव्य में समुचित स्थान दिया गया है। इसके अतिरिक्त समीक्ष्य कवि ने टॉमस ग्रे के अंग्रेजी काव्य तथा गुरुदेव टैगोर की गीतांजली जैसे अतिप्रसिद्ध ग्रन्थों का भी अनुवाद कर आधुनिक संस्कृत साहित्य को समृद्ध किया है। अतः तुलनात्मक दृष्टि से अनुदित काव्यकारों की कोटि में श्रीदवे समृद्ध कवि माने जाते है।

परमानन्द शास्त्री –

समीक्ष्य कवि के समकालीन कवियों में परमानन्द शास्त्री का नाम आदर से लिया जाता है। उत्तर प्रदेश के बुलन्द शहर के अनवरपुर में जन्मे, मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़ के प्राध्यापक रहे शास्त्री जी ने तीन संस्कृत महाकाव्य तथा चार खण्डकाव्य रचे।

खण्डकाव्यों में 1. वानरसन्देश 2. गन्धदूतम् 3. कौन्तेयम् 4. भारतशतकम् है। इसके अतिरिक्त इन्होंने शोकगीति, गीतिसंग्रह, सूक्तिशतकम् तथा गजल–गीतियों की भी रचना की है। इनका वानरसंदेश राजनैतिक विडम्बना पर आधारित काव्य है, जिसमें नेता के हास्यास्पद चरित्रों का चित्रण किया गया है। नेताओं का सत्ता स्नेह से राजनीति का अधोपतन तथा कुर्सी, राशन आदि धरातलीय चिन्तन को चित्रित किया गया है।

स्मारं स्मारं चिरमतितरां भुक्तसत्ता सुखानां,
तस्य श्रीषु प्रणयि ह्रदयं वेधयन्ति व्ययाऽऽसीत्।
धर्मस्फोटे दिनकर कर स्पर्श दोषेण तुल्या,
तिग्मा किं वा नख इव शिका दीर्ध शूकस्य विष्ठा।।[29]

तुल्य कवि पं.दवे ने भी अपने खण्डकाव्यों में वर्तमान राजनीति, कुर्सी की आशक्ति, वरांगना समान उसकी मति का विभावन, भुक्त सत्तासुख का राग आदि को युगीन स्वरों में व्यक्त किया है –

नायं कुरसिकारागः प्राण कष्टेऽपि मुंचित,
मानापमानं भृत्यं वा नेक्षतेऽस्याः वशंवदः।[30]
लब्ध्वा कुरसिकासंग प्रमुग्धाः यतिनोऽप्यहो,
न त्यक्तुं चेष्टते कश्चित् आश्लिष्येमां सकृज्जनः।।[31]

शास्त्री जी ने आज के चिन्तन को आत्मसात् करते हुये, भाषा को अति सहज बनाकर, इतर भाषा के भावों को भी अपनी लेखनी में लपेटे हुये, कर्ण के चरित्र पर आधारित कौन्तेय नामक खण्डकाव्य लिखा है। जिसमें वर्तमान की अभिव्यक्ति होता है। भारतीय नारी की विवशता, शोषण तथा वंचितों की व्यथा प्रकट हो रही है।

देवा सुर नर गन्धर्व दनुज जातीनाम्,
निवैशिष्टयं सा समा प्रकृतिराद्यन्ता।
प्राग् भवत् सम्प्रति भवति भविष्यति भूयो,
नव नवा हि नारी शोषण कथा अनन्ता।[32]

कवि दवे ने नारी शोषण का नव रुप प्रस्तुत करते हुये विज्ञापन की वस्तु, के रुप में नारी को तथा स्मरोद्दीपक उसके अंगों का बाजारु प्रदर्शन रुप युग्बोध प्रदर्शित किया है–

साऽद्यास्ति वन्ध्या विपाणिप्रतिष्ठा,
नानाम्बराऽम्बरा मण्डितापि।
यत्रांगना यौवन भूषितांगी]
न स्वागतं द्वार मुखे विधत्ते।।[33]

दोनों ही कवियों के काव्य में चिन्तन एक ही है। केवल कथ्य भिन्न है। भाषा की सहजता, प्रसादगुण और अर्थ वैमल्य ने काव्य को रमणीय बना दिया है। दोनों कवियों के काव्य में सपाट कथन की तुल्यता है। युग् का स्वर समान है। मानववादी चिन्तन में भी समता है। अतः मानव मूल्यों के पारखी, युग्धर्मी आधुनिक संस्कृत कवि श्री दवे समकालिन कवियों से सम्भाव रखने वाले है।

आकाश में आकस्मिक धटित धटना में संजय गांधी को मृत्यु हो गयी। पत्नी मेनका गांधी के उपर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा। परिणाम स्वरुप मेनका गांधी के स्वाभाविक विलाप को शास्त्री जी ने कवि ह्रदय से अनुभूत कर काव्य का विषय बना लिया और परिवेदनम् नामक काव्य की रचना कर डाली, जो रधुवंश के एक प्रंसग अजविलाप के समतुल्य है। इस काव्य में कवि ने शोक के साथ–साथ माता की करुणा को भी शब्द दिया है।

ठीक इसी पृष्टिभूमि की कृति पं.श्रीराम दवे की भी प्रसिद्ध है, जो **वियोगशतकम्** नाम से जाना जाता है। यह कालीदास के मेधदूत की अनुगामिनी है। इस काव्य में कवि के परम मित्र आसुलाल संचेती के पत्नी का आकस्मिक देहावसान हो जाता है।

पति के शोक को कवि ने श्लोक में समाहित कर पति के स्वाभाविक विलाप को प्रकाशित किया है। पत्नी की मृत्यु पर पति का विलाप तथा पति की मृत्यु पर पत्नी का विलाप आधुनिक संस्कृत कवियों का समकालीन चिन्तन है जो प्राच्य परम्परा के काव्यों में स्वतंत्र रुप से नहीं पाया जाता है।

वस्तुतः कवि दवे ने आधुनिक समय के चिन्तनीय बिन्दुओं को काव्यधारा में रोपित किया है। जो उनके कवि कर्म की निष्ठा को द्योतित करता है। साथ ही समकालीन

अन्यकवियों के चिन्तन को तुल्यता प्रदान करता है। निःसन्देह कवि दवे का स्थान आधुनिक संस्कृत परम्परा के कवियों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

जानकी वल्लभ शास्त्री –

छायावादी हिन्दी कवि के रुप में सिद्ध कवि पं. जानकीवल्लभ शास्त्री (1935) का **'काकली'** तथा **'बन्दीमन्दिरम्'** अप्रकाशित खण्डकाव्य प्रकाश में आने के पश्चात् आधुनिक संस्कृत कवि के रुप में अति प्रसिद्ध हुये। ऐसा माना जाता है कि आधुनिक संस्कृत काव्य में नये युग् का सूत्रपात उन्होंने ही किया है। उन्होंने अपने काव्य में वैयक्तिक करुणा को समाहित किया है। शास्त्री जी का **'बन्दीमन्दिरम्'** खण्डकाव्य, ब्रिटिश शासन की विरोध में मनःस्थिति की खिन्नता का आख्यान है। मेधदूत की छाया से आच्छादित यह खण्डकाव्य मन्दाक्रान्ता छन्द में रचा गया है। **बन्दीमन्दिरम्** काव्य का प्रथम श्लोक की पदावली तो, मेघदूत की पदावली को ही दोहराता है।

कश्चित् देशोद्धरण व्रतधीः स्वाधिकाराय मतः।
कारागारे सुचिर वसतिं स्वेच्छया स्वीचकारः।।[34]

इस श्लोक में देश की स्वाधीनता के लिये संर्घष करने वाले सेनानी, राष्ट्र चिन्तन करते हुए अतिखिन्न मन से स्वेच्छया कारागार में कालीदास के यक्ष की तरह बैठा है।

कवि पं. श्रीराम दवे का खण्डकाव्य वियोगशतकम् भी मन्दाक्रान्ता छन्द में रचित, मेधदूत की छाया (पेरोडी) की तरह रचित है। जिसमें पत्नी शोक में व्यथित आसूलाल संचेती अपने आवास में बैठा हुआ खिन्न मन से चिन्तन कर रहा है–

कश्चितत्कान्ता विरह गुरुणा शोकतापेनतप्तः,
एकान्तस्थो निजसहचरो सेव्यमानालकायाम्।
काले–काले मधुरविषयान् संस्मरन् पूर्वभुक्तान्,
दृष्ट्वा मेघान् वियति सहसा सोऽब्रवीन्मुग्धचेताः।।[35]

इस प्रकार दोनों के काव्यों में रचना शैली की तुल्यधर्मिता है। जो समकालीन खण्डकाव्यों–कवियों की श्रेणी में ससम्मान स्थान देता है।

कवयित्री क्षमाराव –

पुरुष कवि की भाँति ही आधुनिक महिला कवयित्रियों ने भी अपने खण्डकाव्यों के माध्यम से समय के स्वर को पुष्ट किया है। भक्ति को भाव दिया है तथा संधर्ष को धार दिया है। जिसमें पण्डिता क्षमाराव का नाम अग्रगण्य है। पण्डिता क्षमाराव की संस्कृत साहित्य साधना ने आधुनिक खण्डकाव्य परम्परा को महती समृद्धि दी है। जीवन की समस्याओं को मानो साक्षात् शब्द दिया हो। कवयित्री का जीवन भी संघर्षमय ही रहा।

किन्तु उन्होंने संघर्ष को हर्ष में बदलते हुये अपनी लेखनी के प्रवाह को अवरुद्ध नहीं होने दिया और साहित्य साधना की अविराम सफलता को अभिराम तक ले गयी।

इनके पिता शंकर पाण्डुरंग अपने युग् के उत्तम कोटि के विद्वान थे। तीन वर्ष की अल्पायु में ही वह पिता की छत्र–छाया से वंचित हो गयी थी। इनका बाल्यकाल अति अभाव में व्यतीत हुआ, तथा गार्हस्थ जीवन का सुख भी चिरकालिक नहीं रहा। अत्यधिक असहिष्णु वातारण में जैसे–तैसे पितृव्य के समक्ष उन्हीं के घर में अनौपचारिक पढ़ाई पूर्ण की। अपने समय के राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रभावित हुयी और गाँधी जी की अनुमति से स्वतन्त्रता संग्राम का अंश बन गयी। कवयित्री को गन्दी बस्ती के प्रौढ़ लोगों को साक्षर करने का कार्य दिया गया, जिसे उन्होंने पूर्ण इमानदारी से निभाया। अपने उक्त अनुभवों को काव्य में पिरोया। नारी ह्दय की संवेदना से गुंजित नवयुग का नया काव्य रचा। पति के साथ कवयित्री ने यूरोप का भ्रमण भी किया था। अतैव आधुनिक जीवन और आधुनिक विधाओं से भी उनका साक्षात्कार हुआ जो उनके रचना संसार में दिखाई देता है। उन्होंने **''सत्याग्रहगीता''**, **''उत्तरजयसत्याग्रहगीता''** जैसे राष्ट्रभक्ति काव्य की रचना की तथा आस्था समर्पण एवं सामाजिक विसंगतियों के प्रति विरोध को अभिव्यक्ति देने वाला खण्डकाव्य **''मीरालहरी''** की रचना भी की।

मीरालहरीकाव्य – मीरा का चरित्र तथा उसकी साधना गाथा का काव्य है। इस काव्य में मीरा का समर्पण तथा उसके अंतरंग संसार का चित्रण किया गया है। यह काव्य 135 शार्दूलविक्रीडित छन्दों में निबद्ध है। मीरा का तन्मयी भाव को दर्शाने वाले इस छन्द में लहरी काव्य का सौष्ठव दृष्टव्य है।

दीनानां पाहि विभो त्वमेव शरणं नान्यः शरण्योऽस्ति में,
प्रार्थ्यैवं विनता प्रजातपुलका प्रोद्वीक्ष्य मूर्ते मुखम्।
ईषत्स्मेरमिव स्थितं परवशा वाष्पाय मानेक्षणा,
ब्रह्मानन्द महार्णये क्षणमहो मग्नेवराराजते।।[36]

पं. दवे के समान ही कवयित्री क्षमाराव का जीवन भी सर्घष मय रहा दोनों ही राष्ट्रीय आन्दोलन के साक्षी रहे, तथा अपने–अपने काव्यों में भक्ति और राष्ट्रीय वेदना को मुखर किया है।

निष्कर्ष –

वस्तुतः प्रत्येक काल में काव्य रचना की एक विशिष्ट शैली रही है। उनके मन्तव्य भी एक जैसे ही रहें है। उनके चिन्तन और चेतना का मनोविज्ञान भी एक जैसा ही रहा है, किन्तु कतिपय परिवर्तन और परिवर्धन के साथ। स्वतन्त्रता प्राप्ति पश्चात् के कवियों की

लेखनी ने युगानुरुप परिवर्तन की व्यवस्था को तथा साम्यवादी चिन्तन को काव्य का आकार दिया। राजतन्त्र और सामन्ती व्यवस्थाओं के विरोधियों के विरोध को सम्बल दिया गया। राष्ट्रभक्तों का स्तवन तथा सत्ता भक्तों के दुश्चरित्रों का चित्रण बिना लाग लपेट के किया गया। प्रकृति की विकृति, पाश्चात्य शिक्षा नीति के कारण भारतीयों में भारतीय संस्कारों के ह्रास पर चिन्ता जतायी गयी। वर्ग संघर्ष, राष्ट्रीय आंदोलन, रोटी, कपड़ा और मकान जैसी प्राथमिक आवश्यकताऐं खण्डकाव्य का विषय बन गया। इस प्रकार आधुनिक विषय परक एक–एक घटना विशेष को अपने काव्यों में घटित करने वाले कवि गण आधुनिक खण्डकाव्य परम्परा के कवि कहलाये।

पं. दवे ने उक्त घटनाओं के अतिरिक्त अन्य समसामयिक विषयों को भी चुना और इसे मर्यादापूर्वक अपने खण्डकाव्यों में समाहित किया। कवि ने जिन विडम्बनाओं के स्वरों को मुखरित किया, वह आज भी सीना ताने खड़ा है। चाहे वह गोहत्या की करुणा हो, पत्नी भक्त कलियुगी पुत्रों का माता के प्रति व्यवहार हो, नारी देहों में झांकती हुयी विज्ञापन दृष्टि हो, अथवा स्वार्थ साधना का उपक्रम हो वर्ण्य विषय के रुप में स्थान पाया है। इस प्रकार वर्ण्य विषय की दृष्टि से भी आधुनिक खण्डकाव्य परम्परा के कवियों में समीक्ष्य कवि को श्रेष्ठतम स्थान दिया जा सकता है।

आध्यात्मिक दृष्टि से भी कवि की कृति में कतिपय विशिष्टता देखने को मिलती है, प्रकृति का उत्खनन, पर्यावरण का संतुलन, हव्य–गव्य संरक्षण तथा मेघाराधान की आत्मिक दृष्टि विशेष के कारण प्रकृत कवि, अन्य कवियों में अग्रगण्य है।

कवि का सांस्कृतिक चिन्तन भी अनुकरणीय है। उन्होंने पाश्चात्य शिक्षा की उपज उपभोगवादी विचारधारा की भर्त्सना की है। विवाहपूर्ण स्वछन्दता के सप्त अनुबन्धों को 'आधुनिक सप्तपदी' के नाम से व्यंजित किया है। संस्कृत और संस्कृतज्ञों के उपहास की अभिव्यंजना की है। गो माता की करुणा को भरत पुत्रों के श्रवणेन्द्रियों का विषय बनाया है। जननी विषयक मूल्यों तथा वृद्ध विषयक वेदना को युवा संवेदना से साक्षात्कार कराया है। इस प्रकार की चारित्रिक शुचिता के सतह पर स्थित सांस्कृतिक चिन्तन की दृष्टि अन्य खण्डकाव्यकारों की तुलना में विशिष्टता को देता है। अतः आधुनिक खण्डकाव्य परम्परा के कवियों में कवि दवे की श्रेष्ठता स्वतः सिद्ध हो जाती है। भाषा शैली की दृष्टि से भी आधुनिक खण्डकाव्य के कवियों में श्री दवे की विशेषता परिलक्षित होती है। उनका नवीन किन्तु युगीन सुक्तियों का सृजन, उनके अर्थ गौरव को समृद्ध करता है। निर्दशनार्थ कतिपय उद्धरण प्रस्तुत है।

दुःखायैव प्रभाववतितरां वार्द्धके पूर्वभोगेः।[37]

स्वर्ग चकुः सदनमवनौ दुर्लभास्ता गृहिण्यः।[38]

लावण्यं ललना गतं तु मनसो मानेन वै मीयते।[39]

स्वच्छन्दाचरणं स्त्रियांच सततं लोके न शोभावहम्।[40]

आधुनिक शब्दों का प्रयोग कवि को उदारवादी संस्कृत कवि की श्रेणी में लाता है। जैसे – 'सल्वार संज्ञावरम्'[41], 'अश्वाननाकामिनी'[42] फिरंगीवामा, वेलेन्टाईन्स आदि प्रचलित शब्दों का प्रयोग शब्द समृद्धि की दृष्टि से कवि को महनीय बनाता है।

शास्त्रीय छन्दों के अतिरिक्त अश्वघाटी छन्द की नवीन उद्भावना और मत्तमयूरी जैसे–दुर्लभ छन्द में सहज रचना कवि को वृत्त बन्ध की दृष्टि से समकक्ष कवियों में उन्नत स्थान दिलाता है। राष्ट्रभक्ति रस, ''पक्वपीनस्तनी'' आदि जैसे नवीन उपमानों तथा श्लेषार्थक शब्दों के प्रयोग से उनकी कथन शैली स्वपरम्परा के कवियों में प्रतिष्ठित स्थान दिलाता है।

इस प्रकार पं. दवे के समकालीन कवियों के खण्ड़काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् कहा जा सकता है कि, वर्ण्य विषय के आधार पर, लेखनशैली के आधार पर, संवेदना के आधार पर, शब्द चयन और व्यंग्यार्थ कथन के आधार पर पं. दवे, आधुनिक खण्डाकव्य परम्परा के कवियों में गरिष्ठ है। क्योंकि इनके काव्यों में सहज संदेश देने साहस है। इनका काव्य युग् का सांगोपांग चित्र उपस्थापित करने में समर्थ है तथा ये ''कालीदासादिनां यशः'' की पात्रता रखने वाले कवि है।

अतः पं.दवे का खण्डकाव्य आधुनिक खण्डकाव्य परम्परा के संस्कृत काव्यों में कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से समालोचनीय है।

सन्दर्भ –

1. ललितालहरी – श्लोक सं. – 39
2. वही – श्लोक सं. – 42
3. वही – श्लोक सं. – 60
4. अपांगलीला – युगलीला – श्लोक सं. – 22
5. वही – श्लोक सं. – 24
6. वही – श्लोक सं. – 25
7. वही – श्लोक सं. – 27
8. सौन्दर्यलीलामृतम् – सौन्दर्यविभावना – श्लोक सं. – 8
9. वही – मंगलम् – श्लोक सं. – 3
10. मेघोपालम्भनम् – श्लोक सं. – 1/6
11. वही – श्लोक सं. – 3/4
12. केलिभूकैतवम् – श्लोक सं. – 1/1
13. वहीं – श्लोक सं. – 1/4 – 26

14. कालकौतुकम् – कालायतस्मैनमः – श्लोक सं. – 17
15. वियोगशतकम् – श्लोक सं. – 3
16. कारुण्यकदाम्बिनी –श्लोक सं. – 64–65
17. कारुण्यकदाम्बिनी –श्लोक सं. – 66
18. ''अकिंचनचैत्यम्'' श्लोक सं.– 31
19. ''यवनीनवनीतम्'' – श्लोक सं. – 2
20. जयपुर की संस्कृत साहित्य को देन – पृ.सं. 82
21. वहीं – पृ.सं.– 82
22. कालकौतुकम् – कालायतस्मैनमः – श्लोक सं.– 18
23. कैलिभूकैतवम् –श्लोक सं. – 1/14
24. वाणी – पृ.सं.– 6
25. गगनवाणी – पृ.सं. – 5
26. कालकौतुकम् – धर्म निरपेक्ष कौतुकम् – श्लोक सं. – 3
27. सर्वमंगला – पृ.सं. – 5
28. कालकौतुकम् – धर्म निरपेक्ष कौतुकम्– श्लोक सं. – 10
29. वानर सन्देश – श्लोक सं. – 30
30. कालकौतुकम् – बलवान कुरसिका मोहः – श्लोक सं. – 3
31. वही – श्लोक सं. – 6
32. कौन्तेय खण्डकाव्य– श्लोक सं. – 10
33. सौन्दर्यलीलामृतम् – सौन्दर्यविभावना – श्लोक सं. – 13
34. संस्कृत साहित्य बीसवीं शताब्दी – पृ.सं. – 181
35. वियोगशतकम् – श्लोक सं. – 1
36. मीरालहरी काव्य – पूर्वखण्ड – श्लोक सं. – 19
37. वियोगशतकम् –श्लोक सं. – 3
38. वही – श्लोक सं. – 77
39. सौन्दर्यलीलामृतम् – श्लोक सं. – 8
40. वही – श्लोक सं. – 12
41. वही – श्लोक सं. – 5
42. वही – श्लोक सं. – 19

सप्तम् अध्याय

उपसंहार

उपसंहार –

विधाता का अनमोल उपहार मानव है। मानवों में कवि का स्थान सर्वाधिक प्रधान होता है। कवि की कृति काव्य मानव मन की अनुभूतियों की साधु शब्दमयी अभिव्यक्ति है। इस प्रकार कवि और काव्य वाङ्मय धरा की दो ध्रुव धुरियाँ है, जिस पर साहित्य और समाज का वैभव टिका हुआ है। साहित्य और समाज का शाश्वत सम्बन्ध किसी से छुपा नहीं है। समाज में जो होता है, साहित्य में वहीं दिखता है। साहित्य के आईने में समाज को देखना कदाचित सहृदयों का रुचिकर विषय भी रहा है। जब किसी साहित्यकार के समक्ष समाज की स्थितियाँ, परिस्थितियाँ भिन्न–भिन्न स्वरुपों में उपस्थित होती है, तब वह दृष्ट परिस्थियों को शब्दों में पिरोकर छन्दों के साँचे में ढालकर, अलंकारादि से सजाकर रस–भावादि से अनुप्राणित करता है, तब रमणीयार्थ –प्रतीयमानार्थ को ध्वनित करने वाला किसी कमनीय काव्य का जन्म होता है। काव्य का जन्म समाज से ही होता है। समाज में ही वह पल्लवित पुष्पित होकर फलवान बनता है तथा सुधी सामाजिकों को मूल्यात्मक जीवन देता है।

मानव जीवन की शिक्षा तथा उनके मूल्यों की दीक्षा आदि सामाजिक–सांस्कृतिक अपेक्षा–उपेक्षा के तात्विक चिन्तनों का सुन्दरतम् साहित्य संस्कृत काव्य कृतियों को माना गया है। वैश्विक–धरा की सर्वाधिक समृद्ध भाषा के इन काव्यों में श्रेय और प्रेय का समन्वय दिखता है। इसमें जीवन–दर्शन की समग्रता और आत्मावलोकन की विशिष्टता परिलक्षित होती है। आत्म कल्याण, चरित्र निर्माण तथा इह लौकिक–पारलौकिक ज्ञान–विज्ञान के विधानों के विनियोग से व्यवस्थित मानव समुदाय को दिशा दिखाने वाली कृति के रुप में सिद्ध है, **संस्कृत काव्य** ।

संस्कृत काव्य आर्षकवि वाल्मीकि के हृदय से प्रवाहित करुणा से प्रारम्भ हुयी, व्यास–भास–कालिदास की लेखनी का साहचर्य पाकर प्रकाश में आयी, उत्तरोत्तर अनेकानेक संगति–विसंगतियों के झंझावात को चीरती हुयी, नैसर्गिक रुप से आधुनिक काव्यधारा के रुप में समृद्ध हुयी। जिसकी लावण्यता आज विश्व को आकृष्ट कर रही है।

ऐसे ही एक कवि जिसकी लेखनी के स्पर्श ने कविता को चिरजीवी बनाया, जिसकी कविता के लावण्य ने निखित विश्व के पाठकों को संस्कृत की ओर आकृष्ट किया। वे स्वनाम धन्य, माघ पुरस्कार प्राप्त, आधुनिक संस्कृत काव्य परम्परा के ख्यातनाम कवि पं. श्रीराम देव है।

पं.दवे समदड़ी नाम के एक छोटे से गाँव के अति सामान्य परिवार में जन्म लेकर, संधर्ष करते हुये शिक्षा, दीक्षा और आजीविका की विविध विभिषिका को पार करते हुये,

घाट–घाट की घटनाओं को आत्मसात् करते हुये, अन्ततः सूर्य नगरी जोधपुर में काव्य कीर्ति पताका को स्थापित किया। वस्तुतः व्यक्ति अपनी अनुपम कृतियों के कारण ही यशस्वी होता है। कवि दवे की लेखनी ने भी यशस्वी काव्य सर्जना द्वारा आधुनिक संस्कृत साहित्य को नई ऊँचाई दी है। पं.जी धरातल के कवि है। अतः सतही सत्यता को ही अपनी काव्य धरा में स्थापित किया है। उन्होंने अपने खण्डकाव्यों में आमजन के चिन्तन को स्वर दिया है। युग् के यथार्थ को शब्द दिया है तथा सांस्कृतिक संधि स्थल पर खड़ी युवा पीढ़ी को दिशा दिखाई है।

यद्यपि परिवर्तन प्रकृति की नियति होती है तथापि प्राच्य और पाश्चात्य का समन्वय अपेक्षित होता है। मूल्यों के उनमूलन से मानवता का ह्रास कवि का चिन्तनीय विषय है। इस प्रकार निज भाषा और निज संस्कृति की निष्ठा, के परम पक्षधर समीक्ष्य कवि पं. दवे के समग्र साहित्य के अनुशीलन से हमें एक तथ्य तो भली–भांति स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान व भावी पीढ़ी को दिशा और दशा का बोध कराने के उद्देश्य से ही काव्यों की रचना की है।

साम्प्रतिकी व्यवस्था से खिन्न कवि की पीड़ा उनके खण्डकाव्यों में सर्वाधिक झलकती है। युवा भौतिकता के दलदल में फंसते जा रहे है। भोगवादी संस्कृति उन पर हावी हो रही है। सम्बन्धों में सुचिता का अभाव दिख रहा है। प्रकृति का दोहन किया जा रहा है। इस प्रकार के चिन्तन से भारतीय दृष्टि से भारत और भारती को देखने के लिए, स्वतः शोध के भाव मन में जागृत हुये, जो प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में मूर्तरुप में विद्यमान है।

पं. श्रीराम दवे कृत खण्डकाव्यों का समीक्षात्मक अध्ययन के पीछे शोधार्थी का उद्देश्य भी यही था, कि कवि के युग् बोधक चिन्तन को पाठकों के समक्ष लाया जाय। कवि के शिल्प विधान से अध्येताओं को परिचित कराया जाय। इस प्रकार अनुसंधेय कवि के मौलिक एवं अनुदित खण्डकाव्यों का अध्ययन करते हुये पाश्चात्य शिक्षा संस्कृति से प्रभावित युवा वर्गों में भारतीय सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्यों की पुनः स्थापना का प्रयास तथा कवि के अव्यक्त भावों को मुखरित करने का प्रयास मात्र है।

समीक्षात्मक अध्ययन की दृष्टि से प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को सात अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय में पं. दवे के व्यक्त्वि एवं कृतित्व का विवेचन किया गया है। मरुधरा की पुण्या वसुन्धरा बाड़मेर जनपद के प्रतिष्ठित, गाँव 'समदड़ी' के अति सामान्य ब्राह्मण परिवार में दिनांक 22 सितम्बर 1922 को मथुरा देवी के कुक्षि से उत्पन्न हुये। पितृ सुख से वंचित, माता की अंगुली पकड़े आपदा और विपदा के बादलों को चीरकर, जैसे तैसे अध्ययन करते हुये स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त की। आधुनिक और पारम्परिक शिक्षा में

समान अधिकार प्राप्त कर 1950 से 1980 तक वित्त कोषीय सेवा करते हुये भी साहित्यिक साधना में लगे रहें। विलक्षण संयोग ही कहा जायेगा कि, राष्ट्रीयकृत बैंक में निष्ठा से कार्य करने वाला व्यक्ति काव्य सर्जना के चरम तक पहुँचे। ये उनके आत्मबल और आध्यात्म बल का ही कमाल था। उन्होंने प्रथम खण्डकाव्य मुम्बई प्रवास के दौरान लिखा जिसका नाम है **''सौन्दर्य लीलामृतम्''**। सेवानिवृत्ति के पश्चात् तो मानो वे साहित्य साधना में ही समाधिस्थ हो गये और काव्यों की झड़ी ही लगा दी। तीन महाकाव्य, एकादश खण्डकाव्य एवं तीन अनुदित काव्यों ने उनके कविकद को काफी ऊँचा कर दिया । फलस्वरुप आधुनिक परम्परा के कवियों में उनका स्थान अग्रगण्य हो गया। पं. जी की कवि प्रतिभा से प्रभावित लगभग आठ संस्थाओं ने उन्हें सम्मानित किया। राज.सं.अकादमी द्वारा माघ पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया।

सरल प्रकृति के सरस कवि ने अनेक पत्र–पत्रिकाओं का सम्पादन–सह सम्पादन भी किया और राष्ट्रीय आन्दोलन के सहभागी भी रहे। भारतीय संस्कृति में अगाध श्रद्धा रखने वाले कवि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सदस्य तथा विश्वहिन्दु परिषद् के सक्रिय घटक भी रहें। इस प्रकार कवि का सम्पूर्ण जीवन परिचय तथा उनकी साहित्य साधना ने भारती के वक्षस्थल को अमृतमयी बना दिया । जिसका विस्तृत वर्णन प्रथम अध्याय में निबद्ध है।

द्वितीय अध्याय में खण्डकाव्यों का स्वरुप, उद्भव व विकास की चर्चा की गयी है। सर्वाधिक प्राचीन संस्कृत भाषा के ग्रन्थों में ज्ञान विज्ञान का समन्वय स्वीकार किया गया है। सर्वजन सुखाय सर्वजन हिताय का साहित्य भाव भी इसी भाषा के ग्रन्थों में प्राप्त होता है। अतः संस्कृत भाषा के शब्दों में मानव हृदय का सुन्दर रुप दिखाने वाले रसमय छन्दबद्ध–बन्ध–प्रबन्ध को समालोचकों ने काव्य कहा है। मानव हृदय के सच्चे पारखी काव्य प्रबन्ध को प्रयोग शैली और रचना के आधार पर खण्डकाव्य नाम दिया गया है। इसी प्रकार जीवन के समस्त पक्षों का सांगोपाङ्ग वर्णन के कारण महाकाव्य तथा एक पक्षीय घटना को उद्घाटित करने के कारण इसे खण्डकाव्य के रुप में परिभाषित किया गया है। खण्डकाव्य की प्राचीन परम्परा तथा अर्वाचीन परम्परा के काव्यों का अध्ययन पश्चात् समीक्ष्य कवि के एकादश मौलिक खण्डकाव्य तथा तीन अन्य भाषाओं से संस्कृत भाषा में अनुवादित खण्डकाव्य, इस प्रकार कुल चौदह खण्डकाव्यों का शोधार्थी द्वारा चिन्तन किया गया है। प्राचीन तथा आधुनिक परम्परा के संस्कृत–काव्याचार्यों द्वारा प्रस्तुत खण्डकाव्य लक्षणों के अनुसार समीक्ष्य खण्डकाव्यों के स्वरुप निर्धारण का सार्थक प्रयास किया गया है। कतिपय स्थलों पर मौलिक उद्भावनायें भी प्रस्तुत की गयी है। साक्ष्यों के आधार पर खण्डकाव्यों के उद्भव विषयक तथ्यों पर प्रकाश डालते हुये, विकास की परम्परा को भी दर्शाया गया है।

समृद्धि की शिखर की ओर अग्रसर आधुनिक खण्डकाव्य की विषयवस्तु और शैली के आधार पर उसकी आधुनिकता को भी सिद्ध करने का प्रयास किया गया है।

तृतीय अध्याय में पं.जी के खण्डकाव्यों का उपजीव्य एवं उनका कथानक प्रस्तुत किया गया है। समीक्ष्य कवि कालिदास के काव्यों से अति प्रभावित प्रतीत होते है। वियोगशतकम्, मेघोपालम्भनम् खण्डकाव्य लेखन की प्रेरणा कवि को मेघदूत से मिली, मां की करुणा कारुण्यकादम्बिनी का बीज बना। ललितालहरी, भारती विलास तथा अपाङ्गलीला नामक खण्डकाव्यों का उपजीव्य कुलदेवी के प्रति असीम श्रद्धा तथा उनकी आध्यात्मिक निष्ठा को माना जा सकता है। क्योंकि कवि का मानना है कि इष्ट सिद्धी से ही अभीष्ट की प्राप्ति हो सकती है। सौन्दर्यलीलामृतम्, केलिभूकैतवम्, कालकौतुकम् परिखायुद्धम् आदि सौन्दर्य बोधक एवं युग् बोधक काव्यों का उपजीव्य कवि के आत्मबोध को कहा जा सकता है।

कवि ने अपने खण्ड़काव्यों का वर्ण्य विषय किसी ऐतिहासिक धटना या किसी प्राच्य प्रसंगों को नहीं बनाया। उन्होंने स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् के परिवर्तनों को आधार बनाया। इस प्रकार वैचारिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक सन्धि काल के वैविध्य को काव्य का विषय बनाया और कथानक के रुप में समाहित किया है। प्रस्तुत अध्याय में शोधार्थी द्वारा चर्तुदश खण्डकाव्यों का कथानक प्रस्तुत किया गया है, जो काव्य प्रवाह को गति देता है तथा अध्येताओं को उनके खण्डकाव्यों में प्रवेश करता है। जिस का संकेत दृष्ट्व्य है –

ललितालहरी, एवं अपांगलीला इन दो खण्डकाव्यों में, कवि की जन्म भूमि बाड़मेर जिला के समदड़ी गांव में स्थित, शिखरिणी नामक गुफा में विराजमान कुलदेवी स्वरुपा भगवती ललिता देवी के धाम का प्राकृतिक सौन्दर्य तथा वहाँ के वर्तमान वातावरण को कथानक के रुप में कल्पित किया गया है। साथ ही उनकी कृपालीला को कथारुप में प्रस्तुत किया गया है।

भारती विलास में अक्षर ब्रह्म को वर्ण मातृका के रुप में प्रस्तुत कर उसे भारती नाम दिया गया है। इस प्रकार वर्ण रुपी भारती की विलासलीला रुप भौतिक स्वरुप को कथानक के रुप में कहा गया है।

कवि ने अपनी माता के वैधव्य जीवन की व्यथा तथा विश्व की समस्त माताओं की साम्प्रतिकी स्थिति को कारुण्यकादम्बिनी का कथानक बनाया है। गाय की महिमा तथा उसकी वर्तमान दुर्दशा की कथा कामधेनुशतकम् का कथानक है। प्रौढ़ावस्था में पत्नी की मृत्यु के पश्चात् प्रौढ़ विधुर की मनस्थिति की कथा वियोगशतकम् एवं खाड़ी युद्ध की विभीषिका को देव–दानव संग्राम में समाहित कर पौराणिक कथा को आधुनिक सन्दर्भ में

कल्पित कर परिखायुद्धम् का कथानक बनाया गया है। इसी प्रकार मुम्बई के चौपाटी के दृश्यों को, मेघ की उपेक्षा के कारण को, वैवाहिक समस्या के मूल कारण को, स्वच्छन्ता को, काल के कौतुक को, संस्कृति के ह्रास और संस्कृत के उपहास आदि समसामयिक समस्या को काव्य प्रवाह के लिए कथानक के रुप में प्रस्तुत किया गया है, जो साहित्यिक समीक्षा की दृष्टि से आधार भूमि सिद्ध हुयी है।

शोध प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय में खण्डकाव्यों की साहित्यिक समीक्षा की गयी है। जिसमें शोधार्थी द्वारा काव्यशास्त्रीय अनुशासन में सर्जना की सार्थकता सिद्ध की गयी है। कवि के खण्डकाव्यों को भाव और शिल्प, अनुभूति और अभिव्यक्ति की दृष्टि से, हृदय और बुद्धि के आधार दो भागों में विभक्त किया गया है।

प्रथम भाग में कवि के हृदय पक्ष की विवेचना की गयी है। कविता–वनिता–विहारी पण्डित जी के काव्यों में भाव की प्रधानता है। इन्होंने अपने हृदय भावों को शब्दों में उडेल कर कविता कामिनी के गात्रों से रस की अनुभूति कराया है। भावानुकूल पद संयोजना की सिद्धता ने रस चर्वणा को सहज बना दिया है। समीक्ष्य काव्यों के रसात्मक अध्ययन के निमित्त रस प्रधानता के आधार पर काव्यों को रस प्रधान, करुण रस प्रधान, वीर रस प्रधान, अद्‌भुत रस प्रधान तथा भक्ति रस प्रधान काव्य कल्पित कर रसविषयक समीक्षा की गयी है।

शृंगार के वर्णन में कवि का हृदय युवा हो जाता है और अपनी वर्णना से संयोग–वियोग की चरमावस्था की अनुभूति कराता है। मुम्बई की चौपाटी पर सान्ध्यबेला में अभिसार के विचार से भ्रमण करती हुयी ललित ललनाओं के लावण्य का जो मनमोहक वर्णन प्रस्तुत किया है, पठन मात्र से तरुण भाव अरुण हो जाता है, मानो शृंगाररस जीवन्त हो उठा हो।

प्रौढ़ावस्था में पत्नी के वियोग से व्यथित नायक से मुख से निकला हुआ एक–एक शब्द हृदय को तरंगित करता हुआ, पूर्वभुक्त रति की परिणति विप्रलम्भ को आत्मसात् कराता हुआ कालिदास की लेखनी का स्मरण कराता है।

इनके करुण रस प्रधान काव्यों में करुणा सहज प्रस्फुटित होती है। कारुण्य कादम्बिनी नामक काव्य में अपनी मां की वैधव्य वेदना तथा भरे–पूरे परिवार में रहते हुये भी सन्तानहीन मां की तरह जीवन यापन करती हुयी मां की करुणा के शब्दों से प्रस्फुटित शोक उनके श्लोकों में समाहित हो कवि के करुण रस सिद्धता का द्योतक प्रमाण प्रस्तुत करता है। ''कामधेनुशतकम्'' नामक काव्य में कामधेनु सन्तति की करुण पुकार से उत्पन्न हृदय के भाव पिघल कर अश्रु में परिणत हो जाता है। अभिनव वर्ण्य विषय को मर्म तक

पहुँचाने में करुण का विपाक कवि के रस संयोजना की चारुता ही है। खाड़ी युद्ध की विभीषिका की वर्णना में प्रक्षेपास्त्रों की गर्जना–तर्जना तथा पक्ष–प्रतिपक्ष की दर्पोक्ति में युद्ध वीर रस की अभिव्यक्ति में चित्त का विस्तार, उत्साह आदि की पराकाष्ठा की प्रतीति कराने वाला है।

स्तोत्रपरक काव्यों में कवि ने प्राच्य परम्परा से किंचित हटकर भक्ति की अभिनव दृष्टि दिखाई है। अपनी मूल प्रकृति को काव्य में घोलते हुये, न केवल इष्ट स्तुति की है, अपितु भक्ति की नई धरती भी खोजी है। मातृभक्ति, राष्ट्रभक्ति, संस्कृतिभक्ति तथा पर्यावरण भक्ति जैसे लोक संवेदना की चेतना के आलोक में मंगल स्तुति की है। यह कवि का स्तुत्यपक्ष है।

सनातन धर्म निष्ठ कवि का हृदय प्रायः सनातन भावों से भरा होता है। उसमें समर्पण की पराकाष्ठा तथा देवादि विषयक रति भाव की निष्ठा होती है। फलस्वरुप वे स्वसंस्कृति के सात्विक भावों का वितान करते हुये अभीष्ट की स्तुति करते है। कवि दवे ने भी ऐसा ही किया है। अपनी सांस्कृतिक स्मिता की स्तुति में भक्ति की सरिता प्रवाहित की है। अंगीरस के अतिरिक्त अंग रसों की वर्णना में अद्‌भुत, भयानक एवं शान्त रस की अनुभूति द्वारा काव्यों में उपलब्ध सौन्दर्य का बोध कराया गया है।

इस प्रकार समीक्ष्य कवि के खण्ड़काव्यों का रसदृष्टया समग्र चिन्तन पश्चात् दृढ़तापूर्वक कहा जा सकता है, कि इनका काव्य हृदय के शुद्ध भावों के सरस संप्रेषण में सहज है। व्यंग्य निष्पादन में सफल है। युगीन सतही सत्यता को भावात्मक शब्दावलियों में अध्येताओं के हृदय तक पहुँचाने में कुशल है। अतः कवि का भाव पक्ष शोधार्थियों के लिए अनुभूति योग्य है।

इसी अध्याय में समीक्षा का द्वितीय पक्ष बुद्धिपक्ष भी विवेचित है। बुद्धिपक्ष ही अभिव्यक्ति या कलापक्ष के नाम से जाना जाता है। इस पक्ष में काव्य की कसावट के लिए आवश्यक अवयवों को प्रत्यक्ष किया गया है। भाषा, छन्द, अलंकार, रीति, गुण आदि को आधार बनाकर काव्य देह के सौष्ठव को प्रकट करने का प्रयास किया गया है। अश्वघाटी छन्द का नूतन प्रयोग, प्रचलित मुहावरें एवं लोकोक्ति के संयोग से भाषा के प्रवाह को प्रशस्त किया गया है। आधुनिक उपमान के द्वारा भाषा को विभूषित किया गया है। इस प्रकार अलंकार–गुण–रीति जैसे उत्कर्षाधायक तत्वों द्वारा कविता कामिनी की कमनीयता तथा आधुनिक प्रचलित वैदेशिक शब्दों के यथावसर समावेश से खण्डकाव्य की रमणीयता को अध्येताओं के समक्ष लाने का प्रयास किया गया है, ताकि अभिनव संस्कृत शब्दों की

समस्या से जूझते हुये, आधुनिक संस्कृत साहित्य के कवियों, शोधार्थियों को लेखन में सौविध्य प्राप्त हो सकें।

शोध प्रबन्ध का पंचम अध्याय संदेश और सांस्कृतिक अवदान का अध्याय है। अतः कवि के खण्डकाव्यों में निहित संदेशों को प्रकाश में लाने का प्रयास किया गया है। कवि अपने आत्मिक भावों को अथवा विचारों को किसी न किसी प्रसंग में बांधता अवश्य है। पं. दवे ने भी अपने समस्त खण्डकाव्यों के कथा प्रसंगों में कर्तव्याकर्तव्य का कान्ता–सम्मित–उपदेश, सहज संदेश के रुप में प्रसारित किया है। कवि ने जीवन के नैसर्गिक सत्यता को शब्द दिया है। भारतीय संस्कृति के मूल्यों की अपेक्षा की है। सनातन संस्कृति के उदात्त उद्देश्य सम्यग् दृष्टि–सम्यग् चरित्र का क्रीयमाण रुप प्रस्तुत किया है, जिसका समग्रभाव ग्राह्य है –

वासना सौन्दर्योपासना का विघातक है। सौन्दर्य वस्तु में नहीं द्रष्टा की दृष्टि में होती है। आधुनिकता अनुचित नहीं। संस्कारों की तिलांजलि अनुचित है। प्रकृति और प्रगति का समन्वय आवश्यक है। नारी का भारतीय रुप आराध्या है, विज्ञापन का चित्र नहीं। इस प्रकार शोधार्थी द्वारा चतुर्दश खण्डकव्यों के केन्द्रीय संदेशों को लोकहित में प्रसारित करने का लघु प्रयास किया गया है।

इसी अध्याय में कवि के सांस्कृतिक अवदान की विवेचना करते हुये मानव जीवन की मंगल कामना के लिए, सनातन संस्कृति के शाश्वत मूल्यों का अनुपालन तथा उसके सम्वर्धन की चेष्टा को प्रकाशित किया गया है। वर्तमान सामाजिक, पारिवारिक व्यवस्था को उजागर करते हुये, भविष्य बोध के संकेत को आलोकित किया गया है। सम्पूर्ण विश्व को मानवीय संस्कृति से परिचय करवाने के उद्देश्य से विश्वगुरु भारत की स्थायी सम्पदा सनातन संस्कृति के उत्तम पक्षों के बखान में कवि के खण्डकाव्यों का सांस्कृतिक अवदान प्रकट किया गया है, जिससे न केवल शोधार्थी, अध्येता आदि अपितु सम्पूर्ण मानव जाति उपकृत होंगे।

षष्ठ अध्याय में तुलनात्मक अध्ययन द्वारा आधुनिक संस्कृत खण्डकाव्यकारों में पं. दवे का स्थान निर्धारण करने का प्रयास किया गया है। कवि दवे युग् परिवर्तन तथा सांस्कृतिक संक्रमण काल के साक्षी रहे हैं। काल के प्रभाव से उत्पन्न सामाजिक संगति और विसंगति को देखा है। संस्कृत और संस्कृति का उपहास करते हुये मैकाले सन्ततियों के अट्टहास को सहा है। करुणा और संवेदना को तड़पते हुये देखा, सहेजा और उसी तथ्य को कथ्य बनाकर शास्त्रीय शिल्प में काव्य का रुप दिया है। बीसवीं शताब्दी के खण्डकाव्यकारों की स्थिति भी कुछ इसी प्रकार की रही है। रचना की धरा, शिल्प विधान

तथा भाव साम्य की सूक्ष्मता के आधार पर समीक्ष्य कवि का समभाव, समकाल, स्थापित करते हुये कतिपय विशिष्टता के आधार पर कवि का स्थान निर्धारण का प्रयास किया गया है। देश काल परिस्थिति तथा राष्ट्रीय संस्कृति में निष्ठा रखने वाले तथा प्रेम, भक्ति और करुणा में श्रद्धा रखने वाले कतिपय कवि भट्ट मथुरानाथ शास्त्री, रसिक बिहारी जोशी, आदि कवि के विभिन्न विषयक काव्यों से तुलनात्मक अध्ययन करते हुये। कवि दवे की शाश्वत स्थिति को अध्येताओं के समक्ष लाने का प्रयास किया गया है।

सप्तम अध्याय उपसंहार का अध्याय है। इस अध्याय में शोध प्रबन्ध का समेकित निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है। एक से छः अध्यायों में विषय वस्तुओं को उक्त वर्णित अध्यायानुसार व्यक्तित्व, कृतित्व, कथानक, भाषा, भाव, शिल्प, सन्देश आदि को सार रुप में प्रस्तुत कर उपादेयता के साथ भविष्य की शोध सम्भावनाओं को भी प्रकट किया गया है।

इस प्रकार सार रुप में कहा जा सकता है कि पं. दवे अतिसाधारण व्यक्तित्व वाले असाधारण संस्कृत कवि थे। उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से भारतीयता की ओर सामाजिकों का ध्यान आकृष्ट किया है। भावी पीढ़ी को सनातनता को अक्षुण्ण रखते हुये विश्व में भारत –भारती और भारतीयता की पहचान को यथावत रखने की प्रेरणा दी है।

साथ ही युग् धर्म के सांस्कृतिक सन्धि स्थल पर अवस्थित तरुणों को पाश्चात्य संस्कृति के अन्धानुकरण से उत्पन्न सांस्कृतिक प्रदूषण के कुचक्र से मुक्त हो, सनातन संस्कृति के सुवासित वातावरण में जीवन संवारने का युग् निर्माणकारी संदेशों का सूत्रपात भी किया है।

इसी प्रकार सम्बन्धों में असुचिता, राजनीति में निजता, तरुणों में स्वच्छन्दता, स्त्री–जननी विषयक मूल्यों में मन्दता आदि जीवन का ह्रासोंन्मुखी पक्ष प्रस्तुत कर मानवता को बचाने वाले सत्यं–शिवं–सुन्दरम् की सदाशयता से जुड़ने का विकल्प–संकल्प दिखाया है।

उक्त भावों की स्वाभाविक एवं प्रवाहपूर्ण अभिव्यक्ति इनके काव्यों में हुई है। कथ्य के अनुकूल ही शिल्प है। छन्द, अंलकार, रस, गुण आदि की संयोजना काव्य शास्त्रीय निर्देशानुसार है। आधुनिक नवीन प्रचलित शब्दों का यथा अवसर प्रयोग से उत्पन्न चारुता, सहृदयों को दवे के खण्डाकव्यों के अध्ययन के प्रति आकर्षित करता है। सूक्तियों, लोकोक्तियों तथा व्यंग्य आदि से सम्पन्न रचना होने के कारण इनका खण्डकाव्य संस्कृत भाषा की लोक प्रियता को बढाने वाला, आधुनिक संस्कृत साहित्य को समृद्धि देने वाला तथा साहित्यिक समीक्षा के मानदण्डों पर सिद्ध, उत्कृष्ट कोटिक खण्डकाव्य समूह है।

पं.दवे के खण्डकाव्यों का समीक्षात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करने वाला यह शोध प्रबन्ध अनागत अध्येताओं के लिए अनन्त सम्भावनाओं का उपस्थापक सिद्ध हो सकेगा। क्योंकि आत्म शान्ति की गवेषणा में भटक रहें विश्वजन मानस को जीवन दर्शन का मंगलमयी पक्ष इस शोध प्रबन्ध में प्रस्तुत किया गया है।

इसके अध्ययन से आधुनिक संस्कृत काव्यों की समीक्षा के प्रति शोधार्थियों की जिज्ञासा जागृत होगी तथा अनुदित काव्यों का लेखन, अन्वेषण की भावना बलवती होगी। कवि की प्रतिभा का वर्चस्व स्थापित होगा तथा इनके ग्रन्थों की शोध समीक्षा से खण्डकाव्य परम्परा को समृद्धि मिल सकेगी।

प्रबन्ध में प्राचीन तथा अर्वाचीन मूल्यों की समय सापेक्ष विवेचना की गयी है। जिसमें सनातन संस्कृति के उदात्त पक्ष एवं पश्चात्य संस्कृति के स्वैर मूल्यों को दर्शाया गया है। मूल्यपरक तुलनात्मक अध्ययन करने वाले शोधार्थियों के लिये इसका अध्ययन निर्णायक सिद्ध हो सकेगा।

इष्ट सिद्धी से अभीष्ट की प्राप्ति के उद्देश्य से रचित कवि के स्त्रोत साहित्य के युग्बोध की साम्प्रतिकी समीक्षा में प्रकाशित भावों के अध्ययन से भक्ति साहित्य के अनुसंधाकर्त्ताओं को नई दिशा मिल सकेगी।

वस्तुतः कवि का प्रत्येक खण्डकाव्य अपने अन्दर विविध विशिष्टताओं को समाये हुये है, इन विशेषताओं का विशेष अध्ययन शोधार्थियों के लिए शोध के अनगिनत द्वार खोलने वाला है।

भाषा, भाव और शिल्प की समस्याओं से जूझते हुये नवलेखकों के लिये इसका नवीन शब्द, नवीन छन्द, नव उपमान युग् संवादी कथानक आदि वरदान सिद्ध हो सकेगा।

आज के समय की वस्तुयें प्राचीन काल में नहीं थी। अतः प्राचीन काव्यों में उनका वर्णन भी प्राप्त नहीं होता है। आधुनिक काव्यों में इसका योग और प्रयोग मिलता है। अतः शोधेच्छुक अध्येता प्रस्तुत शोध प्रबन्ध से साम्प्रतिकी शब्दों का चयन कर युगीन वर्णना की नैपुण्यता प्राप्त कर सकेंगे।

इस प्रकार पं. श्रीराम दवे कृत खण्डकाव्यों पर किया गया शोधकार्य भविष्योन्मुखी शोधछात्रों के लिये दिशा सूचक होगा।

शोध सारांश

भारतीय भाषाओं की संजीवनी, संस्कृत भाषा को सर्वाधिक समृद्ध भाषा का गौरव प्राप्त है। इस भाषा में अनन्त रचनायें रची गयी। यह परम्परा अद्यतन भी गतिमान है। लौकिक साहित्य लेखन की परम्परा आदिकवि वाल्मीकि की करुणा से प्रारम्भ हुयी। व्यास–भास–कालिदास आदि की लेखनी के स्पर्श से विकसित हुयी, जो अब बीसवीं शताब्दी के कवियों के सानिध्य में समृद्ध हो गयी है। इसीलिये समालोचकों ने इस शताब्दी को संस्कृत साहित्य के उन्मेष की शताब्दी कहा है। इसे आधुनिक संस्कृत काव्य परम्परा की शताब्दी भी कहा जा सकता है। आधुनिक संस्कृत काव्य परम्परा का केन्द्र स्वतन्त्रता आन्दोलन तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् का काल खण्ड रहा है। इस अवधि के काव्यकारों ने देश की परिवर्तित परिस्थितियों को साक्षात् कर अपनी–अपनी रचनाओं में स्थान दिया है। पारम्परिक होते हुये भी परम्परा से किंचित हटकर नये युग् की नई चुनौतियों को आत्मसात् किया है। विश्व की घटित घटनाओं ने उन्हें प्रभावित किया है। प्रजातन्त्र की नई व्यवस्था और बदलती हुयी मानसिकता ने उन्हें विचलित भी किया है। एतदर्थ उनकी राष्ट्रीय चेतना प्रखर होती गयी और अन्ततः समय की धारा में बहते हुये, राजदरबारों की स्तुति की प्रकृति को छोड़, सतही सत्यता के शब्दों को छन्दों में पिरोने लगे। इसीलिये इस अवधि के काव्यकार आधुनिक परम्परा के संस्कृत कवि कहलाने लगे। आधुनिक परम्परा के ख्यातनाम संस्कृत कवियों में एक नाम पं.श्रीराम दवे का भी आता है। इन्होंने भी धारा को प्रवाह दिया और सम–सामयिक युग्बोधक विषयों को अभिव्यक्ति दी है तथा सांस्कृतिक संवेदना को अनुभूति दी है।

पं. दवे सनातन संस्कृति के प्रबल समर्थक तथा भक्त प्रकृति के कवि थे। गांव की गोद में, पारम्परिक परिवेश में पले बढ़े, साधारण प्रकृति के असाधारण कवि थे। अभावों से इनकी नजदीकियाँ थी। राष्ट्रीय आन्दोलन के ये अभिन्न अंग भी रहे। इन्होंने भारत विभाजन की त्रासदी देखी थी। इनका यवनों के अत्याचार से साक्षात्कार भी हुआ था। लाहौर में निवास करते हुये हिन्दू होने की पीड़ा भी भोगी थी। विशेषकर स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् की स्वार्थपरक राजनीति, संस्कृति के ह्रास तथा संस्कृत भाषा के उपहास ने पं. दवे के कवि हृदय को हिला के रख दिया था। फलस्वरुप इनकी रचना तात्कालिक समय का लेखा–जोखा प्रस्तुत करने वाला काव्यात्मक दस्तावेज बन गया। जो पं.दवे को आधुनिक परम्परा के संस्कृत काव्यकारों में महनीय स्थान दिलाता है।

इस आधुनिक संस्कृत महाकवि दवे की लेखनी से तीन महाकाव्य प्रसूत हुये।

1. **भृत्याभरणम् महाकाव्य –**

नौकरशाही पर लिखित जीवन के अन्तरंग की अभिव्यक्ति है। इसमें वर्तमान व्यवस्था की वेदना का व्यंग्य है।

2. **राजलक्ष्मीस्वयंवरम् महाकाव्य** – लोकतन्त्र की विडम्बनाओं का विनियोग है।
3. **साकेतसंगरम् महाकाव्य –** भारतीय जननायक राम के मन्दिर के पुनरुद्धार के लिए जन समर्थन को आत्मिक समर्थन है।

पं.जी द्वारा लिखित खण्डकाव्यों की श्रृंखला लम्बी है, अनूदित काव्यों ने इसे और विस्तार दे दिया है। इसमें प्राक्तन संस्कार और अधुनातन व्यवहारों का युगीन स्पन्दनात्मक चिन्तन है। इनका खण्डकाव्य युवा सापेक्ष है यह नवीन कीर्तिमानों की स्थापना के लिए तथा सनातन सांस्कृतिक मूल्यों की अवधारणा के लिए विश्रुत है। समीक्ष्य कवि कृत खण्डकाव्यों की श्रृंखला में एकादश मौलिक खण्डकाव्य तथा तीन अनूदित खण्डकाव्य हैं। इस प्रकार चतुदर्श खण्डकाव्यों की समीक्षा शोध प्रबन्ध का विषय वस्तु है।

आज समयाभाव, अतिव्यस्तता, बदलते युग् और बदलती परिस्थितियों ने विस्तृत विषय–वस्तु–घटना आदि को लघ्वाकार कर दिया है। जैसे – पंच दिवसीय क्रिकेट से अधिक लोकप्रिय अतिसीमित ओवर का क्रिकेट हो गया है, उसी तरह युग्–भावना के अनुसार कवि की काव्य रचना भी प्रभावित हुयी है। विशालाकार महाकाव्यों का स्थान लघ्वाकार खण्डकाव्यों ने ले लिया है। खण्डकाव्य एकदेशानुसारि वर्णना के कारण समयसापेक्ष एवं अतिलोकप्रिय हो गया है। इस प्रकार एकपक्षीय अध्ययन की परम्परा ही मानो विकसित हो गयी है। वस्तुतः खण्डकाव्य में मानव जीवन के एक पक्ष या घटना का चित्रण होता है। यह काव्य शास्त्रीय परम्पराओं से किंचित् मुक्त होता है। इसमें वैयक्तिक वेदना अथवा स्तुति की प्रधानता होती है। किसी एक रस की प्रमुखता होती है। यह घटना प्रधान विषय सापेक्ष होता है। अन्य विशेषतायें महाकाव्य की तरह ही होती हैं। इस प्रकार एकदेशानुसारि वर्णना विशेष को खण्डकाव्य कहा गया है। प्राक् काव्याचार्यों ने खण्डकाव्यों को विविध उपनामों से अभिहित किया है। जैसे – गीतिकाव्य, दूतकाव्य, संदेशकाव्य, शतककाव्य, पंचाशिकाकाव्य, मुक्तककाव्य, लहरीकाव्य, श्रृंगारिक काव्य, नीतिकाव्य, भक्तिकाव्य आदि।

डॉ. राधावल्लभ शास्त्री एवं डॉ. अभिराज राजेन्द्र प्रभृति आधुनिक काव्याचार्यों ने संघातकाव्य, स्तोत्रकाव्य, लहरीकाव्य, सन्देशकाव्य, अन्यापदेशकाव्य, नीतिकाव्य, गीतिकाव्य, रागकाव्य समस्या–पूर्ति, गजल–गीति, मुक्तक आदि अनेक नाम खण्डकाव्यों के दिये हैं।

पं.दवे के समीक्ष्य चतुर्दश खण्डकाव्यों में समस्त भेद समाहित हैं। जिसका वैशिष्ट्य शोध प्रबन्ध में विस्तार से वर्णित है। इसमें भाषा की बाजीगरी नहीं है। दरबारी संस्कृति से प्रेरित शैली उपेक्षित है। इतिहास पुराण से सम्बद्ध विषयों का अभाव है। आधुनिक जीवन के दृश्यों का अभिनव आलेख नव प्रतिमानों के साथ सृजित है। इसमें कल्पना–संवेदना–सद्भावना के आत्म जल से सिंचित अखण्ड भारत का दृश्य खण्ड है, जो अध्येताओं को अपनी ओर आकर्षित करता है। इस प्रकार उक्त वैशिष्टय से विशिष्ट इनके खण्डकाव्यों के विशेष अध्ययन से प्राप्त चिन्तन ने शोधार्थी को अनुसंधान विषय नियतन के लिये प्रेरित किया। परिणामस्वरुप पं. दवे कृत खण्डकाव्यों का समीक्षात्मक अध्ययन, विषय को अधिकृत कर शोधार्थी शोधकार्य में प्रवृत्त हुआ है।

राष्ट्रीयकृत बैंक की प्रबन्धकीय सेवा करते हुये, संस्कृत साहित्य साधना, कालजयी काव्यों की सर्जना, उसमें भी युगीन स्पन्दना, कुछ असहज सा लगता है। किन्तु 'दुष्करं किं महात्मनां' इस प्रकार कवि के खण्डकाव्य में विविध विषयों के माध्यम से समय की विद्रूपताओं का प्रखर स्वर मुखर हुआ है। युग् की संगति–विसंगति नवीन कलेवरों में अभिव्यंजित हुयी है। ह्रास होते मानवीय मूल्य तथा हावी होती स्वैर संस्कृति की विवेचना में भारत–भारती और भारतीयता की चिन्तना से प्रभावित हो शोधात्मक समीक्षा के लिये शोधार्थी द्वारा पं. दवे कृत खण्डकाव्यों की साहित्यिक समीक्षा' जैसे शोध विषय का चयन किया गया है।

सर्वविदित है कि अनुसंधान एक बौद्धिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा भ्रान्तधारणाओं का परिमार्जन होता है। नव शब्दकोषीय ज्ञान में वृद्धि, वर्तमान व्यवस्था की अवगति, रचनाधर्मिता के शिल्प का ज्ञान तथा कवि द्वारा अभिव्यक्त भावों की अनुभूति होती है। साथ ही उपादेयता तथा अवदान का भान भी होता है। एतदर्थ शोध प्रबन्ध के माध्यम से कवि के लेखन में प्रौढ़ता, गम्भीरता तथा उनकी मौलिकता से परिचय करवाना, इनके खण्डकाव्यों की उपादेयता, सार्थकता और श्रेष्ठता को सिद्ध करना, काव्य में स्थित सतही सत्य तथ्य की गवेषणा द्वारा युग् बोध परक संदेशों को संस्कृत स्नेहियों, अध्येताओं तथा अनुसंधेताओं के समक्ष लाना शोध प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य है।

शोध प्रबन्ध को अध्ययन सौविध्य की दृष्टि से सात अध्यायों में विभक्त किया गया है–

प्रथम अध्याय –

इस अध्याय में समीक्ष्य कवि पं.श्रीराम दवे के व्यक्तित्व व कृतित्व का चिन्तन किया गया है। उपलब्ध साक्ष्य एवं उनके स्वजनों से हुयी परिचर्या के आधार पर उनके व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है। जिसके अन्तर्गत कवि का जन्म, पारिवारिक पृष्ठ–भूमि, अध्ययन काल व अध्यापन काल, सेवाकाल तथा उनकी साहित्यिक साधना व सम्मान को स्थान दिया गया है। उनके कृतित्व पर प्रकाश डालते हुये, उनकी समस्त रचना से परिचय तथा उनकी सृजनात्मकता के विविध आयामों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

द्वितीय अध्याय –

इस अध्याय में खण्डकाव्यों का स्वरुप, उद्भव और विकास की चर्चा की गयी है। साहित्य समीक्षकों द्वारा खण्डकाव्य की दो परम्परा स्वीकार की गयी है। खण्डकाव्य की प्राचीन परम्परा तथा खण्डकाव्य की आधुनिक परम्परा। प्राचीन परम्परा के अन्तर्गत कालिदास के ऋतुसंहार, मेघदूत से लेकर पण्डितराज जगन्नाथ की कृति आसफविलास तक के खण्डकाव्यों को समाहित किया गया है।

जबकि खण्डकाव्य की आधुनिक परम्परा के तहत 20 वीं शताब्दी से अध्यावधि पर्यन्त के कवि–कृतियों को समाहित किया है। प्राचीन खण्डकाव्य कृतियों का अनुशासन, साहित्य–दर्पणकार, ध्वनिकार, लोचनकारादि के लक्षणों के आधार पर किया गया है। जबकि आधुनिक परम्परा के खण्डकाव्यों का विवेचन डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी एवं अभिनव राज राजेन्द्र जैसे आधुनिक काव्य शास्त्रियों के चिन्तन के आधार पर किया गया है। उक्त प्राचीन और अर्वाचीन दोनों ही परम्परा के अनुसार खण्डकाव्य के स्वरुप का निर्धारण किया गया है। तद्नुसार ही भेदों का विश्लेषण भी किया गया है।

इसी अध्याय में खण्डकाव्यों के इतिहास को दर्शाया गया है, जिसमें उद्भव व विकास की चर्चा विस्तार से की गयी है। अन्त में शोधार्थी द्वारा खण्डकाव्य स्वरुप विषयक मौलिक उद्भावना पूर्वक पं. दवे की समीक्ष्य 11+3 = 14 खण्डकाव्य कृतियों से परिचय कराने का सार्थक प्रयास किया गया है।

तृतीय अध्याय –

शोध प्रबन्ध का तृतीय अध्याय पं. श्री राम दवे प्रणीत खण्डकाव्यों का उपजीव्य एवं कथानक का अध्याय है। जिसके अन्तर्गत समीक्ष्य चतुर्दश खण्डकाव्यों का वर्ण्य विषय एवं उनके उपजीव्यों की चर्चा विस्तार से की गयी है। विवेचन के निमित्त कवि के खण्डकाव्यों को चार वर्गों में वर्गीकृत किया गया है।

1. **शृंगारपरक खण्डकाव्य :**

   इसके अन्तर्गत सौन्दर्यलीलामृतं, मेधोपालम्भनं, वियोगशतकम्।

2. **भक्तिपरक खण्डकाव्य :**

   ललितालहरी, अपांगलीला, भारती विलास, कामधेनुशतकम्।

3. **युग्बोधपरक खण्डकाव्य :**

   केलिभूकैतवम्, कालकौतुकम्, परिखायुद्धम्।

4. **अनूदित काव्य :**

   यवनीनवनीतम्, अकिंचन चैत्यम्, ब्रह्मरसायनम्।

इस आधार पर प्रत्येक खण्डकाव्यों का पृथक–पृथक कथानक तथा कथानक के मूल स्रोतों को प्रकाश में लाने का प्रयास किया गया है। कवि के काव्यों के कथानकों के विशेष अध्ययन पश्चात् मनन द्वारा पं. दवे की प्रकृति उनकी निष्ठा और उनके चिन्तन को सहृदयों के समक्ष लाया गया है। कवि भक्त प्रकृति के कवि हैं, स्वयं की माता, गो माता, भारत माता, इष्टदेवता, स्वसंस्कृति और स्वभाषा संस्कृत भाषा में उनकी निष्ठा है। युग्बोध परक एवं सनातन मूल्य परक उनका चिन्तन है। इस प्रकार कवि की अन्तश्चेतना को कथानक के आधार पर पाठकों के समक्ष लाने का सार्थक प्रयास प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में किया गया है।

चतुर्थ अध्याय –

चतुर्थ अध्याय शोध प्रबन्ध का मुख्य अध्याय है। इस अध्याय में पं. दवे के खण्डकाव्यों की साहित्यिक समीक्षा की गयी है। समीक्षा प्राचीन तथा अर्वाचीन काव्य शास्त्रीय अनुशासन में की गयी है। समीक्षा के दो प्रबल पक्ष है। हृदय पक्ष तथा बुद्धि पक्ष। **हृदय पक्ष** में रस विषयक विमर्श है। क्योंकि हृदय में भावों का स्थायी वास होता है। भाव ही रसरुप में परिणत हो काव्य का आत्मस्थानी तत्त्व बन जाता है। अतः रस विमर्श को शोध–प्रबन्ध में काव्य का हृदय पक्ष कहा गया है। समीक्ष्य काव्यों में हृदय पक्ष प्रबल है। मुम्बई के चौपाटी की सांध्यसुषमा का दृश्य कवि जब अपनी कविता में दिखाते हैं तब मानो पाठकों के हृदय में वसन्त का वैभव उत्पन्न हो जाता है। वहीं जब अनाथालय अथवा

कलियुगी पुत्रों की वृद्धा मां की तस्वीर दिखाते हैं तब पत्थर का हृदय भी पिघल कर अश्रु प्रवाह में अपनी करुणा प्रवाहित करता है। कवि जब इष्ट भक्ति, राष्ट्र भक्ति, संस्कृति भक्ति का दृश्य उपस्थापित करते हैं, तो श्रद्धा विश्वास व समर्पण से हृदय आर्द्र हो जाता है। इस प्रकार शोध प्रबन्ध के माध्यम से सद्यः प्रवाहित काव्य रसों से अध्येताओं का तादात्म्य स्थापित कराने का प्रयास किया गया है। कवि की अनुभूति को जन अनुभूति बनाने का प्रयास किया गया है। निष्कर्षतः रस सचेष्ट कवि की रस सिद्धता को स्थापित करने का प्रयास किया गया है।

इसी अध्याय में साहित्यिक समीक्षा का द्वितीय पक्ष बुद्धि पक्ष भी विवेचित है। बुद्धि पक्ष ही अभिव्यक्ति अथवा कला पक्ष है। शरीर को सुन्दर स्वरुप देना अथवा किसी मूर्त को कमनीय रुप देना एक कला है। कला चातुर्य कवि की विशिष्टता हुआ करती है। अपनी कविता वनिता को कमनीय रुप देना उनकी दक्षता कही जाती है। फलस्वरुप बुद्धि वैभव से सौन्दर्यभूत तत्वों की समुचित संघटना द्वारा काव्य देह को रमणीय बनाता है, ताकि उनके काव्य के प्रति सुधिजनों का आकर्षण अक्षुण्ण रहें। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में काव्य की कसावट एवं सजावट के लिए आवश्यक अवयवों को प्रत्यक्ष किया गया है। गुण–रीति, भाषा–शैली तथा छन्द–अलंकार के आधार पर काव्य देह के सौष्ठव को प्रकाश में लाने का प्रयास किया गया है। अश्वघाटी, मत्तमयूर जैसे नूतन छन्दों के प्रयोग से काव्य की अभिनवता को सिद्ध किया गया है। लोक में अति प्रचलित मुहावरें तथा लोकोक्तियों के संयोग से भाषा के प्रवाह को प्रशस्त किया गया है। आधुनिक उपमानों तथा उत्कर्षाधायक तत्वों के समयोजन से कविता–कामिनी की कमनीयता को प्रकाश में लाने का प्रयास किया गया है। आंग्ल भाषा तथा अन्य भाषा के लोक प्रचलित शब्दों का यथावत संस्कृत करण किया गया है। कवि की भाषा में सरलीकरण का भाव है, जो संस्कृत काव्यों की लोक प्रियता बढ़ाने को उद्यत है। शैली में स्वभाविकता के साथ आधुनिकता का प्रकाशन है। वर्ण संघटना, पद संयोजना आदि प्रसंगानुकूल है। इस प्रकार भाषा, शिल्प, गुण, रीति, अलंकार आदि के समन्वय से काव्य के बाह्य सौन्दर्य को उजागर करने का प्रयास किया गया है ताकि खण्डकाव्य की रुपगत सौन्दर्य को काव्यसौन्दर्याकांक्षी सुधि जनों के समक्ष लाया जा सकें।

पंचम अध्याय –

शोध प्रबन्ध का पंचम अध्याय संदेश व सांस्कृतिक अवदान का अध्याय है। इस अध्याय के अन्तर्गत कवि के खण्डकाव्यों में निहित संदेशों को प्रकाश में लाने का प्रयास किया गया है। कवि अपने स्वाभाविक भावों को तथा मनोगत विचारों को किसी न किसी कथा प्रसंगों में उपस्थापित अवश्य करता है। कवि दवे ने भी अपने खण्डकाव्यों में श्रृंगार,

करुणा और भक्ति के विविध प्रसंगों में जीवन और जगतोपयोगी संदर्भ को समाहित किया है। जिसे सर्वजन हिताय प्रकृत अध्याय में उद्धृत किया गया है। कवि ने सम्यग् दृष्टि और सम्यग् चरित्र पर बल दिया है। भरत–सन्ततियों से सनातन मूल्यों की अपेक्षा की है। विशेषतः तरुणजनों से जो पाश्चात्य स्वच्छन्द संस्कृति के अन्ध भक्त हैं, उन्हें भारतीय मर्यादा में आत्मोत्कर्ष की चेतना दी है। चारित्रिक चेतना को चैतन्य करने के उद्देश्य से कथित कवि कथन को संदेश के रुप में शोध–प्रबन्ध के माध्यम से प्रकाश में लाने का प्रयास किया गया है। काव्य का उद्देश्य मानवीय उत्कर्ष से जुड़ा होता है। मानवों में मानवीय मूल्यों की पुर्नस्थापना उसका ध्येय होता है। एतदर्थ रामादिवत् प्रवर्तितव्यं न रावणादित् आदि कर्त्तव्याकर्त्तव्य का उपदेश देता है। पं.जी के काव्य में शिक्षा–संस्कृति, करुणा–वेदना, दृष्टि–धर्म–मर्म आदि मानववादी चिन्तन परक करणीय–अकरणीय कर्म का युग् बोधक विमर्श है। जिसका व्यापक चिन्तन शोधार्थी द्वारा शोध के आलोक में किया गया है। जिसका भाव इस प्रकार है – सौन्दर्यवस्तु में नहीं दृष्टा के मानस में होता है। वासना सौन्दर्योपासना का विघातक है। प्रकृति और प्रगति का समन्वय होना चाहिये। आधुनिकता अनुचित नहीं है किन्तु आधुनिकता के छद्म में सनातन संस्कारों की तिलांजलि उचित नहीं है। इस प्रकार इस अध्याय में चतुदर्श खण्डकाव्यों के केन्द्रीय संदेशों को लोकहित में प्रसारित करने का लघु प्रयास शोधार्थी द्वारा किया गया है।

पं. दवे के खण्डकाव्यों का सांस्कृतिक अवदान भी इसी अध्याय में चर्चित है। जिसमें सनातन संस्कृति के दिव्य स्वरुप का चिन्तन, शाश्वत् मूल्यों की अनुपालना तथा आत्म संवर्धन पर विशेष बल दिया गया है। आज मातायें वृद्धाश्रम में स्थापित है। तरुणगण स्वच्छन्दता के पक्षधर हो रहे हैं। स्वार्थीय नैतिकता धर्म बनता जा रहा है। कवि की इस सांस्कृतिक वेदना को लोक चेतना बनाने का प्रयास शोधार्थी द्वारा किया गया है।

इस प्रकार विश्वगुरु भारत की स्थायी सम्पदा सनातन संस्कृति के आलोक में सम्पूर्ण विश्व को मानवीय संस्कृति से परिचय करवाना पं. दवे के खण्डकाव्यों का सांस्कृतिक अवदान है। जिसे शोध प्रबन्ध द्वारा भरत पुत्रों के समक्ष लाने का प्रयास किया गया है। निश्चय ही इस सांस्कृतिक अवदान से संस्कृतानुरागी जन सद्यः उपकृत होंगे।

छठा अध्याय –

इस अध्याय में आधुनिक खण्डकाव्य परम्परा में पं. दवे का स्थान एक तुलनात्मक अध्ययन अधिष्ठित है। समकालीन खण्डकाव्यकारों की समभाव रखने वाली कृतियों का कथ्य–तथ्य तथा वैशिष्ट्य प्रस्तुत कर कवि की कृतियों के साथ तुलनात्मक अध्ययन का प्रयास किया गया है। तुलनात्मक अध्ययन से पं. दवे की कविता की नवता, सतही सत्यता

तथा युगीन स्पन्दना के स्वरों को उजागर करते हुये खण्डकाव्य परम्परा में कवि का स्थान, कवि की श्रेष्ठता तथा उनके काव्यों की उत्कृष्टता आदि के निर्धारण का प्रयास किया गया है।

कवि दवे स्वतंत्रता से पूर्व व पश्चात् की संगति–विसंगतियों के साक्षी रहे हैं। उन्होंने संस्कृत और संस्कृति का उपहास करते हुये मेकाले सन्तति के अट्टहास को सहन किया है। संवेदनाओं को दम तोड़ते हुए देखा है। इन्हीं भावों को सहेज कर तात्कालिक तस्वीर को शब्दों में उकेरा है। बीसवीं शताब्दी के प्रायः खण्डकाव्यकारों के समक्ष लोक परिस्थिति कुछ इसी प्रकार की रही है। रचना की प्रकृति, भाव व शिल्प विधान में तुल्यता देखी गयी है। इस प्रकार कवि के काल, कथ्य और भाव से समता रखने वाले भट्टमथुरानाथ शास्त्री, रसिक विहारी जोशी जैसे अनेक कवियों के अनेकानेक विषयक काव्यों से तुलनात्मक अध्ययन करते हुये कवि दवे की शाश्वत स्थिति से अध्येताओं का परिचय करवाने का प्रयास किया गया है।

सप्तम अध्याय –

इस अध्याय में उपसंहार को समाहित किया गया है। उपसंहार की शैली में शोध कार्य का निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है। निष्कर्ष रूप में कवि, उनका खण्डकाव्य, उनके काव्यों का कथाकन, कथानक का उपजीव्य, साहित्यिक पक्ष, कवि का संदेश तथा सांस्कृतिक अवदान को संक्षेप में खण्डकाव्यानुरागियों के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इसी अध्याय में भाषा, भाव, शिल्प, संदेश आदि के आधार पर कवि के काव्य की उत्कृष्टता तथा उपादेयता को सार रुप में अध्येताओं के अध्ययन के निमित्त प्रकाश में लाया गया है।

इस प्रकार सार रूप में कहा जा सकता है कि पं. दवे आधुनिक खण्डकाव्य परम्परा के अतिसाधारण व्यक्तित्व वाले असाधारण कवि थे। इन्होंने अपने काव्य के माध्यम से भारतीय अस्मिता की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। भाषा और भाव के सम्प्रेषण से समाज को अभिमुख करते हुए, उनकी पीड़ा, व्यथा और आक्रोश को स्वर दिया है। व्यावहारिक जगत् के तथ्य को कथ्य बनाया है तथा आधुनिक विकास के परिदृश्य में युग् की दुर्बलताओं को पहचान कर आत्मिक समबलता के उपायों को दर्शाया है। एतदर्थ दृष्ट कवि पं.दवे की कवि–दृष्टि को जन–दृष्टि बनाने का प्रयास शोधार्थी द्वारा किया गया है। भाषा–भाव–उक्ति–सुक्ति तथा प्रतिमानों की नवता के उन्मेष से पं. दवे को आधुनिक संस्कृत खण्डकाव्यकार के रुप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास शोध प्रबन्ध में किया गया है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति पश्चात् के अत्याधुनिक भारत की सांस्कृतिक दृश्यों की छाया दिखाने की चेष्टा की गयी है। युग्धर्मानुसार खण्डकाव्यों में हो रहे नवीन परिवर्तन तथा समीक्षा के नये मानदण्डों से परिचय करवाने का विनम्र प्रयास किया गया है।

विश्व साहित्य का परिदृश्य बताने वाले भिन्न–भिन्न भाषाओं की श्रेष्ठ कविताओं का संस्कृत काव्यानुवाद की नवीनता तथा भाषयिक उदारता से परिचय कराने का प्रयास भी किया गया है।

आज का युग्, आज की सर्जना, आज की चुनोतियाँ, आज का प्रतिमान तथा आज के शब्दों का संस्कृत शब्द निर्माण आदि का वैशिष्ट्य प्रतिपादित करते हुये, भाषा शुद्धि से जुझते हुये नवलेखकों के लिये जो प्रतिमान उपस्थापित किये गये हैं, उन्हें शोध प्रबन्ध के माध्यम से सर्वसंस्कृत जनों के मध्य लाने का प्रयास किया गया है।

इस प्रकार आधुनिक खण्डकाव्यों के विश्लेषण व समीक्षात्मक मूल्यांकन को प्रस्तुत करने वाले इस शोध प्रबन्ध से अनन्त उपलब्धियों की सम्भावना की जा सकती है।

अर्वाचीन खण्डकाव्य परम्परा की समृद्धि में पं. दवे के इस साहित्यिक योगदान से भारती की श्री वृद्धि हो सकेगी।

खण्डकाव्य की विविध विधा की समीक्षा के प्रति शोधकर्ताओं के प्रयास तीव्रतर हो सकेंगे।

इसके अध्ययन से खण्डकाव्यों के अध्ययन की नई दृष्टि, लेखन की प्रवृति तथा समीक्षात्मक अन्वेषण की भावना बलवती होगी।

अध्येता अपनी भाषा, अपनी संस्कृति तथा अपनी राष्ट्रीयता पर गौरव करते हुये, ज्ञान–विज्ञान के इस युग में आध्यात्म से समन्वय स्थापित कर जीवन के मंगलमयी पक्ष को पुष्ट कर सकेंगे।

कवि के अभिनव चिन्तन को आत्मसात् कर संस्कृतानुरागी, करुणा और संवेदना के द्वारा आत्मीय सम्बन्धों में शुचिता रख सकेंगे।

भाषा की सरलता, भावों की सहजता तथा शब्दों की उदारता से जन सामान्य भी संस्कृत अध्ययन के प्रति आकृष्ट होंगे तथा संस्कृत भाषा के प्रचार–प्रसार के सारथी हो सकेंगे।

सनातन संस्कृति में निहित जीवन मूल्यों की ग्राह्यता से अध्येता अपने जीवन को उन्नत कर सकेंगे। इसके अध्ययन से युग्बोध का अवबोध तथा सांस्कृतिक संवेदना की अनुभूति कर सकेंगे।

साहित्य शास्त्रीय समीक्षा के मानदण्ड़ों से परिचित हो अनागत शोधार्थी अपने मौलिक चिन्तनों से शोध परम्परा का अभिवर्धन कर सकेंगे।

आशा है कि यह शोध प्रबन्ध आधुनिक संस्कृत साहित्य की समृद्धि में तथा सनातन संस्कृति की अभिवृद्धि में अपना योगदान दे सकेगा, साथ ही शोधार्थियों को शोध की अनन्त सम्भावनाओं के मार्ग पर उन्मुख कर सकेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

समीक्ष्य कविकृत ग्रन्थ

क्र.सं.	काव्य ग्रन्थ	लेखक/प्रकाशक
1	अकिंचन चैत्यम्	राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर, 2008
2	अपांगलीला	हंसा प्रकाशन, जयपुर, 2004
3	कवितामंजरी	राजस्थान संस्कृत अकादमी, 2008
4	कामधेनुशतकम्	आनन्दवन पथमेड़ा, सांचोर
5	कारूण्य कादम्बिनी	राजस्थान संस्कृत अकादमी, 2002
6	कालकौतुकम्	राजस्थान संस्कृत अकादमी, 2008
7	काव्यमंजूषा	राजस्थान संस्कृत अकादमी, 2008
8	केलिभूकैतवम्	राजस्थान संस्कृत अकादमी, 2008
9	गीतांजली (अनूदित)	राष्ट्रीय संस्कृत साहित्य केन्द्र, जयपुर, 2004
10	ध्रुवस्वामिनी (अनूदित)	हंसा प्रकाशन, जयपुर, 2007
11	निर्मला	राष्ट्रीय संस्कृत साहित्य केन्द्र, जयपुर, 2007
12	परिखायुद्धम्	हंसा प्रकाशन, जयपुर, 2006
13	ब्रह्म रसायनम्	हंसा प्रकाशन, जयपुर, 2006
14	भारती विलासम्	राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2008
15	भृत्याभरणम्	राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर, 1993
16	मेघोपालम्भनम्	राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर, 2008
17	यवनीनवनीतम्	राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर, 2008
18	राजलक्ष्मी स्वयंवर	हंसा प्रकाशन, जयपुर, 2008
19	ललितालहरी	स्वप्रकाशन, जयपुर, 1999
20	वियोगशतकम्	सर्वभाषा कालीदासीयम्, जयपुर, 1999
21	साकेतसंगरम्	राष्ट्रीय संस्कृत साहित्य अकादमी, जयपुर, 1999
22	सौन्दर्यलीलामृतम्	राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2000

काव्य शास्त्र एवं साहित्य समालोचक ग्रन्थ

क्र.सं.	काव्य ग्रन्थ	लेखक/प्रकाशक
1	अग्निपुराण	आनन्द आश्रम, संस्कृत ग्रन्थावली, 1957
2	अग्निपुराण	गीता प्रेस गोरखपुर।
3	अभिराज राजेन्द्र मिश्र	विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
4	अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम	रमाकान्तपाण्डेय, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, 2009
5	अलंकारशास्त्र का इतिहास	डॉ. कृष्णकुमार, साहित्य भण्डार, मेरठ
6	अलंकार सर्वस्व	व्याख्याका डॉ. त्रिलोकीनाथ द्विवेदी, चौखम्बा, वाराणसी, 1972
7	अलंकारानुशीलन	डॉ. राजवंश सहाय, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी।
8	अलंकार समीक्षा	डॉ. लक्ष्मीनारायण पुरोहित, नाग प्रकाशन, दिल्ली, 1997
9	अलंकार साहित्य का इतिहास	डॉ. जगन्नारायण, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर
10	अर्वाचीन संस्कृत साहित्य	डॉ. राजमंगल यादव, जे.पी.पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2015
11	आधुनिक भारत में संस्कृत की उपादेयता	सं.प्रो. कृष्णलाल, नाग प्रकाशन, दिल्ली, 1992
12	आधुनिक संस्कृत कवयित्रिया	डॉ. अर्चना कुमारी दुबे, नवजीवन पब्लिकेशन, निवाई, टोंक, 2006
13	आधुनिक संस्कृत काव्य परम्परा	श्री केशवराव मुसलगाँवकर, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 2004
14	आधुनिक संस्कृत काव्य की परिक्रमा	डॉ. मंजुलता शर्मा, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, नई दिल्ली, 2011
15	आनन्दवर्धन	डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 2000

16	औचित्य विचार विमर्श	क्षेमेन्द्र, चौखम्बा संस्कृत सीरिज
17	काव्यानुशासनम	हेमचन्द्र, निर्णय सागर प्रेस, मुम्बई
18	काव्यानुशासन	वाग्भट्ट द्वितीय
19	काव्यानुशासन	हेमचन्द्र
20	काव्यालंकार	भामह टीका– रमणकुमार शर्मा, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली।
21	काव्यालंकार सूत्रवृत्ति	आचार्य वामन, व्याख्याकार डॉ. राजेन्द्र प्रसाद कोठारी, चौखम्बा, सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
22	काव्यालंकार	आचार्य रूद्रट, टीका नमिसाधुकृत संस्कृत टीका व प्रकाश हिन्दी टीका,पं. रामदेव शुक्ल, विद्याभवन, वाराणसी।
23	काव्यालंकार	भामह, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना
24	काव्यालंकार	रूद्रट, निर्णय सागर प्रेस, मुम्बई, 1933
25	काव्यादर्श	दण्डी, चौखम्बा, विद्याभवन, वाराणसी
26	काव्यादर्श	दण्डी, भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना, 1930
27	काव्यदीपिका	चण्डीदास
28	काव्यदीपिका	निर्मला अग्रवाल।
29	काव्यदीपिका	कृष्णमणि त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2009
30	काव्यदीपिका	पं. श्रीराम गोविन्द शुक्ल, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
31	काव्यप्रकाश	आचार्य मम्मट, व्याख्याकार, आचार्य विश्वेश्वर, ज्ञान मण्डल, वाराणसी, मेरठ, 1960
32	काव्यप्रकाश	आचार्य मम्मट, व्याख्याकार, डॉ. श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ
33	काव्यप्रकाश	आचार्य मम्मट, ज्ञानमण्डल लि. वाराणसी
34	काव्यमीमांसा	राजशेखर, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2002

35	काव्यमीमांसा	राजशेखर, व्याख्याकार, डॉ. गंगासागर राय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1964
36	काव्य सिद्धांत और सौन्दर्यशास्त्र,	डॉ. जगदीश शर्मा, भारतीय शोध संस्थान, गुलाबपुरा (राज.)
37	चन्द्रालोक	जयदेव, व्याख्याकार डॉ. कृष्णमणि त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1964
38	चन्द्रालोक	आचार्य जयदेव, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1999
39	चन्द्रालोक	जयदेव, चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी
40	छन्दोमंजरी	गंगादास, चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी
41	छन्दश्चयनिका	पण्डित प्यारेमोहन शर्मा, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर
42	जयवंश महाकाव्य का तुलनात्मक व समालोचनात्मक अध्ययन (शोध प्रबन्ध)	डॉ. श्रीमती माया बंसल, 1986
43	दशरुपक	धनंजय, व्याख्याकार, डॉ. श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, मेरठ, 1976
44	दशरुपक	धनंजय, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1999
45	ध्वन्यालोक	आनन्दवर्धन, व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि, सम्पादक डॉ. नगेन्द्र, ज्ञान मण्डल, लि. वाराणसी।
46	ध्वन्यालोक	आनन्दवर्धनाचार्य, (टीका—आचार्य विश्वेश्वर) बी.के. सी. वाराणसी
47	नवोन्मेष	प्रो. रामचन्द्र द्विवेदी, राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर, 1993
48	नाट्यशास्त्र	भरत, अभिनवभारती संस्कृत व्याख्या, परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली
49	नाट्यशास्त्र	भरतमुनि, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1963
50	प्राचीन भारत का साहित्यिक	डॉ. निरंजन सिंह 'योगमणि,रिसर्च पब्लिकेशन,

	एवं सांस्कृतिक इतिहास	जयपुर 1995
51	बृहत्त्रयीः एक तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. सुषमा कुलश्रेष्ठ, ईर्स्टन बुक लिंकर्स, दिल्ली
52	भारतीय काव्यशास्त्र	डॉ. सत्यदेव चौधरी, अलंकार प्रकाशन, दिल्ली
53	भारतीय नाट्यशास्त्र	डॉ. नागेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1959
54	भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास	डॉ. वाचस्पति गैरोला, उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
55	भाव प्रकाशन	शारदातनय, ओरिएण्टल इन्टीट्यूट, बड़ौदा, 1930
56	मूल्य मीमांसा	डॉ. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
57	रसगंगाधर	पण्डितराज जगन्नाथ, व्याख्याकार आचार्य बद्रीनाथ झा, चौखम्बा प्रकाशन, 1970
58	रसगंगाधर	पण्डितराज जगन्नाथ, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
59	रसगंगाधर	पं. राज जगन्नाथ, चौखम्बा, विधाभवन, वाराणसी, 2001
60	रस सिद्वान्त	डॉ. नागेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
61	रसों की संख्या	प्रो.वी.राघवन्, हिन्दी रुपान्तर, अभिराज डॉ. राजेन्द्र मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2007
62	राजस्थान के प्रमुख संस्कृत महाकाव्य	डॉ. प्रभाकर शास्त्री
63	राजस्थानीयाभिवनवसंस्कृत साहित्य	सं.प्रो. गंगाधर भट्ट, राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर
64	लौकिक संस्कृत साहित्य	ए.बी.कीथ, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
65	लौकिक संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	डॉ. गौरीनाथ शास्त्री, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
66	वक्रोक्तिजीवितम्	आचार्य कुन्तक, व्याख्याकार श्री परमेश्वरदीन पाण्डेय, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
67	वक्रोक्तिजीवितम्	कुन्तक, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी

68	वक्रोक्तिजीवितम्	आचार्य कुन्तक, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
69	वृत्तरत्नाकर	भट्टनारायणभट्टीय व्याख्यासहित, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 2014
70	श्रीसीताराम भट्ट पर्वणीकर कृत नलविलास महाकाव्य का सम्पादन एवं समालोचनात्मक अध्ययन (शोध प्रबन्ध)	रुपनारायण त्रिपाठी
71	साहित्यालोचना	श्यामसुन्दर दास, इण्डियन प्रेस पब्लिकेशन लिमिटेड
72	साहित्यदर्पण विश्वनाथ	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1957
73	साहित्यिक निबन्ध	प्रतापनारायण टण्डन, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1927
74	संस्कृत आलोचना	पं.बलदेव उपाध्याय, उत्तरप्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ।
75	संस्कृत आलोचना	बलदेव उपाध्याय, प्रकाश ब्यूरो, सूचना विभाग, प्रं. सं. 1957
76	संस्कृत एवं अभिनव भारत	रामकृष्ण शर्मा, नाग प्रकाशन, दिल्ली, 1989
77	साहित्य एवं समीक्षा	जुगल किशोर, माणिक्यलाल शास्त्री, अजमेरा बुक कम्पनी, जयपुर, 1993
78	संस्कृत का अर्वाचीन समीक्षात्मक काव्यशास्त्र	अभिराज राजेन्द्र मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
79	संस्कृत कवि दर्शन	भोलाशंकर व्यास, प्रकाश ब्यूरो, सूचना विभाग, प्रं. सं. 1957
80	संस्कृत काव्यकार	डॉ. हरिदत्त शास्त्री, साहित्य भण्डार, मेरठ
81	संस्कृत काव्यतत्व मीमांसा	डॉ. उमेश प्रसाद रस्तोगी, प्रकाशन केन्द्र लखनऊ
82	संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास	सुशील कुमार डे
83	संस्कृतकाव्यशास्त्रेतिहास	आचार्य जगदीश चन्द्रमिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2002

84	संस्कृत का भाषा शास्त्रीय अध्ययन	डॉ. भोलाशंकर व्यास, विश्वविद्यालय, प्रकाशन, वाराणसी
85	संस्कृत की पहचान	डॉ. भास्कराचार्य त्रिपाठी, नाग प्रकाशन, दिल्ली 2001
86	संस्कृत मनीषा के कतिपय नक्षत्र	पो. ओम प्रकाश पाण्डेय, नाग प्रकाशन, दिल्ली 2003
87	संस्कृत महाकाव्य की परम्परा	डॉ. केशवराय मुसलगांवकर, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
88	संस्कृत वाङ्मय का विवेचनात्मक	डॉ. सूर्यकान्त, ओरिएन्ट लौंगमेन
89	संस्कृत साहित्य का इतिहास	डॉ. बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा विद्याभवन,वाराणसी, 1987
90	संस्कृत साहित्य का इतिहास	डॉ. बचनदेव कुमार, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली,1990
91	संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	डॉ. बाबूराम त्रिपाठी, वासुदेव कृष्ण, महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा
92	संस्कृत साहित्य का इतिहास	कपिल देव द्विवेदी।
93	संस्कृत साहित्य का इतिहास	बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
94	संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास	पद्म श्री कपिलदेव द्विवेदी, साहित्य संस्थान, इलाहबाद, 1982
95	संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास	डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, विश्वविद्यालय, वारायणी, 1987
96	संस्कृत साहित्य की रुपरेखा	पाण्डेय एवं व्यास, साहित्य निकेतन, 1964
97	साहित्य सिद्वान्त	डॉ. श्रीराम अवध द्विवेदी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद
98	हाड़ौती संस्कृत महाकाव्यों का ऐतिहासिक मूल्यांकन	डॉ. उमा त्रिपाठी

काव्यग्रन्थ

क्र.सं.	काव्य ग्रन्थ	लेखक / प्रकाशक
1	अर्थशास्त्र	कौटिल्यकृत, प्राच्य विद्या संशोधनालय, मैसूर विश्वविद्यालय, 1960
2	अभिज्ञानशाकुन्तलम्	कालिदास, एम.आर. काले, बम्बई, 1957
3	अभिज्ञानशाकुन्तलम्	कालिदास, पं. रामनारायण बेनीमाधव, इलाहबाद, 1972
4	ईशावास्योपनिषद्	पं. जगन्नाथ शास्त्री, तेलंग, चौखम्बा, संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1976
5	उत्तररामचरितम्	भवभूति, व्याख्याकार, डॉ. पी.वी.काणे, मोतीलाल, बनारसी दास, 1962
6	कठोपनिषद्	व्याख्याकार डॉ. रघुवीर वेदालंकार, चौखम्बा, संस्कृतसीरीज, वाराणसी, 1976
7	कादम्बरी	रामपाल शास्त्री, चौखम्बा ऑरियन्टल, नई दिल्ली, 1914
8	कामसूत्र	वात्सायन, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।
9	कालिदास ग्रन्थावली	रेवाप्रसाद द्विवेदी, काशी हिन्दु विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1978
10	किरातार्जुनीयम्	भारवि, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, 1962
11	किरातार्जुनीयम	काशीनाथ गौड़, चौखम्बा, संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1976
12	कुमारसंभवम्	कालिदास, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
13	कुमारसंभवम्	व्याख्याकार कन्हैयालाल जोशी, चौखम्बा ऑरियन्टल, नई दिल्ली, 1914
14	चण्डीशतकम्	बाणभट्ट, चौखम्बा ऑरियन्टल, नई दिल्ली, 1914
15	नीतिशतकम्	भर्तहरि, हरिदास एण्ड कम्पनी, वाराणसी, 1977
16	नैषधीयचरितम्	मल्लिनाथकृत 'जीवातु टीका सहित, चौखम्बा, संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1976
17	नैषधीयचरितम्	सुरेन्द्रदेवशास्त्री, चौखम्बा ऑरियन्टल, नई दिल्ली, 1914
18	नृसिंहचम्पूः	माणिक्यलाल शास्त्री, हंसा प्रकाशन, जयपुर
19	मनुस्मृति	श्रीकृष्णऔझा, अभिषेक प्रकाशन, जयपुर
20	मृच्छकटिकम्	डॉ. शिवबालक द्विवेदी, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 2012

21	मेघदूतम्	शिवबालक द्विवेदी, चौखम्बा, संस्कृत सीरीज, वाराणसी,1976
22	रघुवंश	कालिदास, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1948
23	रामायण	वाल्मीकि, गीताप्रेस गोरखपुर, 1933
24	रावणवधम्,(भट्टिकाव्यम्)	काव्यमर्मविमर्शिकाव्य संस्कृत, हिन्दी व्याख्योपेन, व्याख्याकार श्रीगोपाल शास्त्री, दर्शनकेसरी, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।
25	विवेकानन्द विजयम्	भवानी शंकर शर्मा, हंसा प्रकाशन, जयपुर
26	सूर्यशतकम्	कवि मयूर, चौखम्बा, संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1976
27	सौन्दर्यलहरी,	डॉ. प्रभाकर शास्त्री, हंसा प्रकाशन, जयपुर
28	शिशुपालवधम्	मल्लिनाथकृत टीका, चौखम्बा संस्कृत सीरिज वाराणसी, 1979
29	शिवराजविजयम्	अम्बिकादत्तशास्त्री, चौखम्बा ऑरियन्टल, नई दिल्ली, 1914
30	हितोपदेश–मित्रलाभ	रश्मिकला टीका, चौखम्बा ऑरियन्टल, नई दिल्ली,1914

कोश ग्रन्थ

क्र.सं.	ग्रन्थ	लेखक / प्रकाशक
1	अमरकोश	निर्णय सागर प्रकाशन, मुम्बई
2	आदर्श हिन्दी संस्कृत कोश	रामस्वरुप 'रसिकेश'
3	भारतीय साहित्य कोश	डॉ. नगेन्द्र नेशनल, पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
4	भारतीय साहित्य–शास्त्र कोश	डॉ. राजवंश सहाय 'हीरा', बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना संस्करण, 1973
5	वृहद् पर्यायवाची कोश,	डॉ. रघुवीर
6	संस्कृत अंग्रेजी शब्द कोश	वामन शिवराम आप्टे वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसीदास
7	संस्कृत–हिन्दी कोश,	शिवराम आप्टे, मोतीलाल वामन बनारसी दास, वाराणसी, 1966
8	शब्दकल्पद्रुम	राजा राधाकान्त देव 'बहादुर'
9	English Sanskrit Dictionary,	Sir M.M. Willinam, मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी, 1966
10	Sanskrit English Dictionary,	Sir M.M. Willinam, Oxford University, London.1951

शोध पत्र पत्रिकाएं

क्र.सं.	पत्र–पत्रिकाएं	प्रकाशक
1	अर्वाचीन संस्कृतम् (त्रैमासिक)	देववाणी परिषद्, नई दिल्ली
2	कल्याण	गीता प्रेस गोरखपुर
3	दृक्	दृक् भारती इलाहबाद
4	भारती	भारती भवन, जयपुर
5	स्वरमंगला	राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर
6	सागरिंका	सागर विश्वविद्यालय, सागर (मध्यप्रदेश)
7	संस्कृतमंजरी	दिल्ली संस्कृत अकादमी, नई दिल्ली
8	सम्भाषण संदेश	संस्कृत संस्थान, बैंगलूरु
9	शोध प्रभा	लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली
10	International Journal of Advanced Research and Development	Gupta Publication, New Delhi, India
11	Research Reinforcement	Mansarovar, Jaipur
12	Sodha Mimansa	Deoria, U.P.

प्रकाशित शोध – पत्र

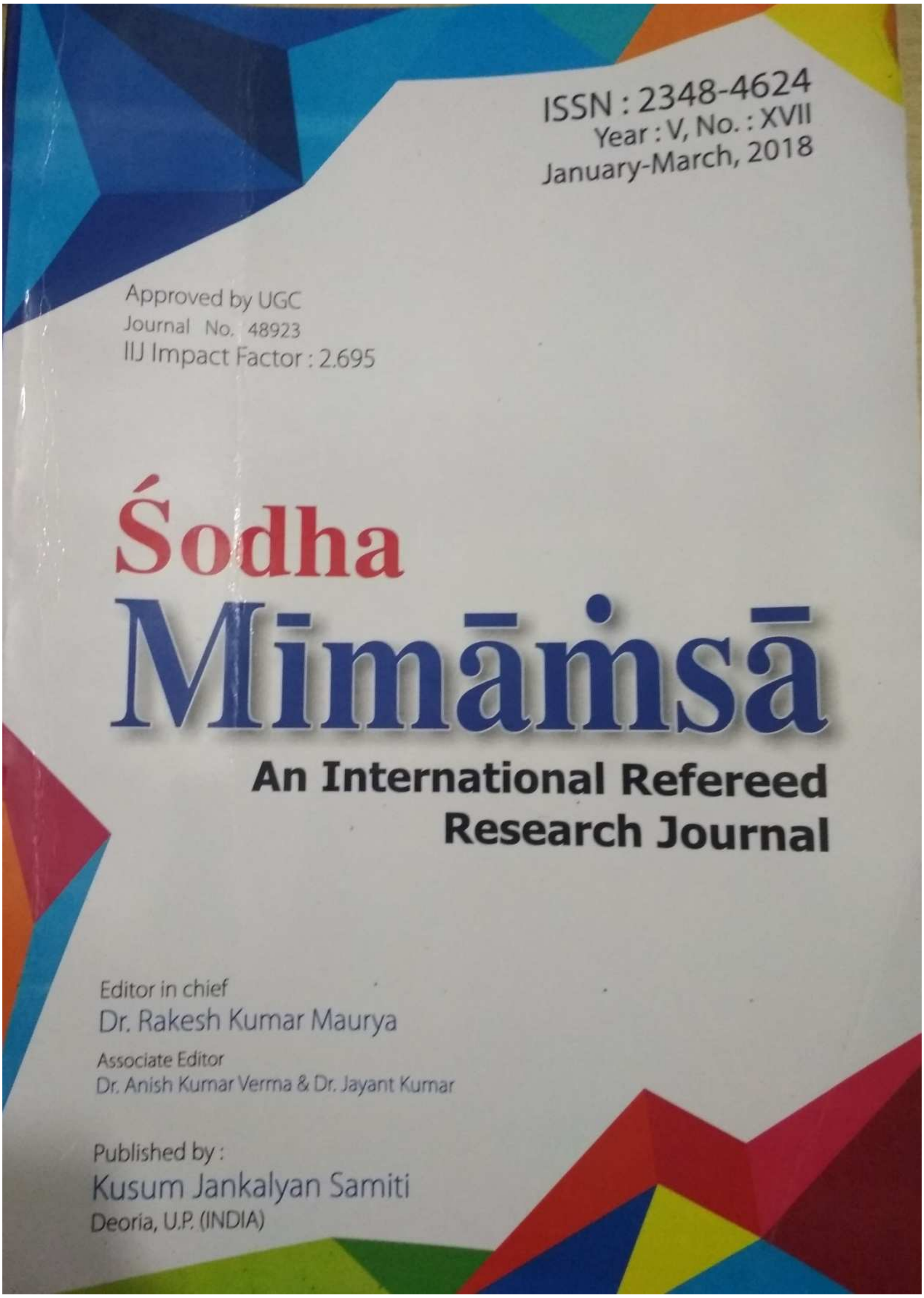
ISSN : 2348-4624
Year : V, No. : XVII
January-March, 2018
Approved by UGC
Journal No. 48923
IIJ Impact Factor : 2.695
Śodha
Mīmāṁsā
An International Refereed
Research Journal
Editor in chief
Dr. Rakesh Kumar Maurya
Associate Editor
Dr. Anish Kumar Verma & Dr. Jayant Kumar
Published by :
Kusum Jankalyan Samiti
Deoria, U.P. (INDIA)

Approved by UGC
Journal No. 48923
Letter No. : NSL/ISSN/INF/2014/461

ISSN 2348-4624
IIJ Impact Factor No. : 2.695

Śodha Mīmāṁsā

An International Refereed Research Journal

Year-V No.-XVII January-March 2018

Editor in Chief

Dr. Rakesh Kumar Maurya

Associate Editor

Dr. Anish Kumar Verma
Dr. Jayant Kumar

Published by :
Kusum Jankalyan Samiti
Deoria, U.P. (INDIA)

तीर्थों में याज्ञिक कर्म काण्डों का महत्त्व 261–262
डॉ0 रमाकान्त वर्मा
महाकवि कालिदास के कृतियों में वर्णित वनस्पति की औषधीय उपयोगिता 263–266
गरिमा, सुधांशु चौबे
भारत में राष्ट्रवाद का उग्ररूप 267–268
सुशील कुमार
ग्रामीण विकास में सहकारिता 269–270
डॉ0 अजय कुमार सोनकर
गीता का नैतिक दर्शन 271–273
प्रो. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी
महानगरीय जीवन की संवेदनाएँ : सुधा अरोड़ा 274–278
संध्या सिंह
भैषज्य गुरू–शाक्यमुनि 279–280
नीरज कुमार मिश्रा
ग्रामीण लोक संस्कृति के परंपरात्मक स्वरूपों का विश्लेषणात्मक अध्ययन 281–282
संदीप कुमार
ब्रह्मशिक्षा के प्रतिपादन में प्रश्नोपनिषद् एवं योगवासिष्ठ की औपदेशिकी शिक्षा 283–286
स्वाती पाण्डेय
बौद्ध कला विषयक आधुनिक इतिहास लेखन : दक्षिणापथ के विशेष संदर्भ में 287–290
नीरज कुमार मिश्रा
अनवच्छेदकत्वानुसरणविचारः 291–293
दुर्गेशपाठकः
न्यायदर्शन में हेत्वाभास का स्वरूप 294–297
प्रिन्स कुमार सिंह
बालश्रमिकों के शोषण का स्वरूप एवं कारण 298–300
डॉ0 राकेश कुमार मौर्य
भक्ति का स्वरूप 301–302
सुनिता कुमारी
संक्लेश–व्यदानम् 303–304
डॉ0 लेखमणी त्रिपाठी
आदिवासी साहित्य : संघर्ष और चुनौतियाँ 305–307
डॉ0 अमर बहादुर सिंह
पं0 श्रीराम दवे के खण्डकाव्यों में युगबोध 308–311
अवधेश कुमार मिश्र
भवभूति का भाव एवं भाषागत वैशिष्ट्य एवं उनमें सूक्तियों का अवदान 312–314
पूर्णेन्द्र प्रताप सिंह

Śodha Mimāṁsā - ISSN 2348-4624
Letter No. NSL/ISSN/INF/2014/461
Published by : Kusum Jankalyan Samiti, Deoria, U.P. (INDIA)
UGC Journal No. 48923

IIJ Impact Factor : 2.695
Year : V, No. : XVII, January-March, 2018
Page No. : 308-311

पं० श्रीराम दवे के खण्डकाव्यों में युगबोध

*अवधेश कुमार मिश्र
*शोध छात्र, संस्कृत, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा
व्याख्याता, संस्कृत साहित्य, राजकीय संस्कृत कॉलेज, कोटा, राजस्थान

शोध सारांश : मरुधरा की पावन वसुन्धरा समदड़ी (बाड़मेर) के श्रीमाली परिवार में समुत्पन्न, आधुनिक संस्कृत साहित्य के ख्यातनाम कवियों में अग्रगण्य, पं. श्रीराम दवे युगीनस्पन्दना के सफल शब्दसाधक माने जाते है। उन्होंने अपनी अनुभवी लेखनी से कुल 20 यशस्वी काव्यों की सर्जना की है। जिनमें तीन महाकाव्य, एकादश खण्डकाव्य तथा शेष मौलिकअनुवादित काव्य है। इनका काव्य, प्राच्य परम्परा की पटरी पर प्रवाहमान विवरणों का पिटारा नहीं है, ना ही इसमें सनातन कथा वस्तु की प्रधानता है। इनका काव्य तो स्वातन्त्र्योत्तर काल की विडम्बनाओं का श्वेत पत्र है, समय की विद्रूपताओं का प्रखर स्वर है, जो स्वाभाविक रुप से युग की संगति और विसंगतियों को अभिव्यक्त करता है। वस्तुतः तात्कालिकी धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक एवं वैचारिक विचित्रताओं का चित्र शब्दों में कैद कर युग का दस्तावेज प्रस्तुत करने वाले इस कवि की कालजयी कृतियों में पदे–पदे युगबोध दृष्टिगोचर होता है, जो शोध योग्य है। एतदर्थ युगबोध के आलोक में कवि दवे के खण्डकाव्यों में स्थित युगीन चेतना के स्पन्दनों को यथा तथ्य शोधपत्र में प्रस्तुत किया जायेगा।

कूट शब्द : युगधर्म, चेतना, युगबोध, संवेदना, यथार्थ, सौन्दर्यलीलामृतम्, भारतीविलास, कारुण्य कादम्बिनी, कालकौतुकम्, केलिभूकैतवम्।

प्रस्तावना : प्राचीन संस्कृति के महान विचारक एवं युगीन संवेदनाओं के संवाहक कवियों का उद्देश्य अपने काव्यों के माध्यम से भावी पीढ़ियों में अलख जगाना होता है। उन्हें युगधर्म, मानवीयमर्म और करणीय–अकरणीय कर्म का दर्पण दिखाना होता है, बिखरी हुयी समस्त विविधताओं को समग्र रूप से देखने की प्रेरणा देना होता है। जिसे विद्वद्जन युगबोध कहते है।

युगबोध की अभिव्यक्ति प्रायःतीन रूपों में होती है –

1. समाज का यथार्थवादी चित्रण
2. समाज का सुधारवादी वर्णन तथा
3. विविध प्रसंगों का क्रान्ति प्रेरक चित्रण।

वस्तुतः काव्यकार ही सामाजिक उत्कर्ष एवं बौद्धिक विमर्श की आधार शिला प्रस्तुत करता है, ताकि राष्ट्रीयता की नवचेतना को जागृति तथा गौरवमय अतीत के प्रति निष्ठा का भाव भरा जा सके। स्वन्त्रता संग्राम हो या शिक्षा–संस्कृति, दलितचेतना हो अथवा नारीविमर्श साहित्य ने समाज में नवजागृति उत्पन्न की और समाज को कर्त्तव्य पथ के प्रति प्रेरित किया है। इसी परम्परा के कवियों में पं. श्रीराम दवे का नाम आदर से लिया जाता है।

जिन्होंने अपने खण्डकाव्यों में युगबोधक तथ्यों को स्थान दिया है। कवि ने समसामयिक विविधविषयक एकादश खण्डकाव्य लिखे हैं, जिसमें मानव की सार्वभौम युगबोधक संवेदना को देखा जा सकता है। क्योंकि इनके काव्य का उद्देश्य मानवीय चेतना को जागृत करते हुये जीवन को उत्कर्ष प्रदान करना है। जीवन का उत्कर्ष भी समाजसापेक्ष होना चाहिये, क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तथा उसका अस्तित्व और उसकी जीवन्तता भी समाज से ही है। यद्यपि कवि दवे सामाजिक मर्यादा और सम्बन्धों की शुचिता के पक्षधर है, तथापि युगबोध के आलोक में अपने काव्य के माध्यम से समाज एवं मानवजीवन में होने वाले तीव्र परिवर्तनों को बड़ी ही कुशलता से व्यक्त किया है।

अतीत को देखा जाय तो सामाजिक संरचना का प्रमुख आधार वैवाहिक व्यवस्था को माना जाता रहा है। श्री हर्ष, कालीदास आदि के काव्यों में इसे समुचित स्थान भी मिला है, तथा यही भारतीय संस्कृति के सामाजिक समरसता का विधान भी रहा है। भला युग के प्रवाह को कौन रोक पाया है ? व्यवस्था के बन्धनों से मुक्त जीवन ही युग धर्म हो गया है। इसी मर्म को 'सौन्दर्य लीलामृतम्' नामक खण्डकाव्य में आधुनिका शिक्षिता युवती के मुख से विवाह के विषय में अपनी मां को दिये गये वक्तव्य के माध्यम से कवि ने व्यक्त किया है –

उद्वाहे करबन्धनं तु विपदामामन्त्रणं जीवने,
भर्तुश्शासन पालने नियमनम् श्वश्रुजनातंकितम्।
चुल्लीसेवन मार्जनादि विषमैः काये क्षयावाहनम्,
भीमं यौतुक संकटं तु सुखदं निभर्तृकं जीवनम्।।[1]

माँ तू विवाह की बात मत कर। विवाह में हाथ मिलाना ही जीवन में विपत्तियों को बुलाना है। एक ओर सास का आतंक, दुसरी ओर पति का कठोर शासन, उसके साथ हर रोज चूल्हाचक्की, झाडू–बुहारी की मुसीबतों से शरीर को क्षीण करना, इन सबसे भयंकर दहेज का संकट। इससे तो कुंवारापन ही अच्छा है। उक्त उक्तियों से 'लिव इनरिलेशनशिप' के युगस्वर की पुष्टि हो रही है।

''एवं मातृवचोऽवधीर्य चपला स्वच्छन्द चारेरता''[2]

यद्यपि स्वतंत्रता प्राणी मात्र का अधिकार है, तथापि स्वच्छन्दता सामाजिक शुचिता की दृष्टि से श्लाघ्य नहीं हैं। कवि ने सौन्दर्यलीलामृतम् काव्य में मोहमयीनगरी की चौपाटी के सायंकालीन यथादृष्टदृश्यों के वर्णन में वनिताविलास के सौन्दर्य–बोध को युगबोध के रुप में प्रस्तुत कर समाज का यथार्थवादी चित्रण किया है।

सामाजिक युगबोध की श्रंखला में कवि का 'केलिभूकैतवम्' नामक खण्डकाव्य तो अद्वितीय ही है। जहाँ आजीविका, शिक्षा, स्वच्छन्ता, अनाथालय, अनाथों की स्थिति, विज्ञापन, विवाह, वैवाहिक–आधुनिक–सप्तवचन आदि युगीन परिदृश्यों को सामाजिक पृष्टिभूमि में प्रस्तुत किया गया है। ग्रन्थानुसार आज के युग की सबसे बड़ी समस्या आजीविका है, जिसके अभाव में लड़कों का विवाह एवं दहेज के अभाव में प्रायः लड़कियों का विवाह नहीं हो

पाता है। शरीर की सहज पिपासाशान्ति के लिये जल की आशा में कदाचित् केलिकर्दम में फिसलना स्वाभाविक सा हो जाता है। परिणामस्वरुप अवैधसन्तति, अनाथालय, स्वच्छन्दता, सामाजिकदुत्कार, केलिगृह में पनाह जैसे असामाजिकजीवन का प्रारम्भ हो जाता है, जहाँ से समाज में क्लबीय व्यवस्था का सूत्रपात होता है।

काव्य का नायक कौत्स मिश्र भी इसी व्यवस्था की उपज है। वह अनाथ कुमारीपुत्र एक पुजारी के सानिध्य में परम्परागत शिक्षा में दक्ष हो जाता है, और पुजारी के रुप में ही अपनी आजीविका चलाता है।[3] रमणीयाकर्षति वाले इस अनाथ युवक को कोई भी पिता अपनी लड़की नहीं देना चाहता है, क्योंकि उसने अंग्रेजी नहीं पढ़ी थी।[4] केवल संस्कृतज्ञ होने से वह नौकरी के योग्य नहीं था। समान व्यवसाय वाले पुजारी भी इस हतभाग्य को अपनी पुत्री के योग्य नहीं समझता था। अविवाहित जीवन से अतिखिन्न वह समाचार पत्रों के विवाह–विज्ञापनों को पढ़कर वहाँ प्रयास करने लगा, प्रयास सफल भी हुआ किन्तु वह क्लब कुट्टिनी विवाह के लिये कुछ शर्त रख देती है, जिसे कवि ने आधुनिकसप्तपदी[5] का नाम दिया है। सात फेरों के सातों वचन तो जगत प्रसिद्ध है ही, किन्तु विवाह पूर्व सप्त अनुबन्ध में युग के यथार्थ को व्यंग्यात्मक शैली में कवि की लेखनी ने जो चित्र उकेरा है वह ध्यातव्य है –

प्रथम शर्त :

केशः सदा कंकत संस्कृतास्युः, स्नेहाभिषिक्ताः मलयारणाढ्याः,
शिखापि गुर्वी रुचिरा न शीर्षे एषः पणो मे प्रथमोऽस्ति भावः।।[6]

द्वितीय शर्त :

ललाटपट्टेश्तु न भस्म लेपः, वक्त्रेऽपि रम्ये न च क्लेशःलेशः।
श्मश्रुप्रिया मे न कपोल लक्ष्मीः एषः द्वितीयऽस्ति पणोमदीयः।।[7]

तृतीय शर्त :

रज्जूपमं वक्षसि लम्बमानं, यज्ञोपवीतं परिरम्भबाधम्।
त्यक्त्वा नवीनं परिधाय वेशम् उपैतु मामस्ति पणस्तृतीयः।।[8]

चतुर्थ शर्त :

न चाप्यधोऽंगावरणं पुराणं, कौपीन कौशेय युतं मदिष्टं।
उपानदागूढपदश्च नित्यं, भूयः पणोमेऽस्ति सखे! चतुर्थः।।[9]

पंचम शर्त :

न भिक्षुचर्या न च देवलत्वं , द्विजन्मनांचाप्य परा न वृत्तिः।
पंचांगसंगोऽपि मयैव सार्धं, नान्यः पणोऽयं मम पंचमोऽस्ति।।[10]

षष्ठ शर्त :

हेया पुराणी सरणी च पाके, पानाशने चापि न बन्धनानि।
नवे युगे नूतन मेव सर्वम्, भूयाच्च षष्ठोऽपि पणोमदीयः।।[11]

सप्तम शर्त :

विहारशय्यासनभोजनेषु व्यवायपानोत्सवसंगमेषु।
वामासुरा–स्वाद रसायनेषु न चावरोधोऽस्तुपणोऽस्ति सप्तम्।।[12]

उक्त सप्त अनुबन्धों में भारतीय पुरुषों से भारतीय स्वरुप के त्याग की अपेक्षा करती है।

उसे पुराणपंगु पसन्द नहीं, आंग्लशिक्षित एवं तदनुरुप वेशभूषा की चाह रखती है, चलने–फिरने, सोने–बैठने, खाने–पीने, संगम–पानोत्सवादि में पति के द्वारा कोई अवरोध उसे स्वीकार्य नहीं है। गन्धर्व विधि से विवाहेच्छु, उस युवती को जनसम्मर्द भी पसन्द नही है। 'इयं सप्तपदीष्टा मे सम्मता भवतो भवेत्'[13] 'भवामि नूनं भवतो हि वामे14 'उक्त स्वीकारोक्ति के साथ ही वामांग में बैठना चाहती है।

वस्तुतः आज की पीढ़ी भोगवादीसंस्कृति की पक्षधर है। ये बन्धन मुक्त जीवन चर्या की सारथी रूपी साथी प्राप्ति की अपेक्षा लिए हुये लोकयात्रा में रमण करते है। अपने आप को जागृत इंसान, इक्कीसवीं सदी की सन्तान तथा समयसापेक्ष मानते हुए प्राचीन परम्परा, शास्त्रीय–सिद्धांतो तथा सामाजिक व्यवस्थाओं को कालातीत तथा समयनिरपेक्ष की संज्ञा देते है। इन्हीं युगीनस्पन्दनों को कवि ने युगबोध के आलोक में व्यंजित किया है, वह अभिधा में ही लक्षित हो रहा है–

स्वच्छेन्दे लोकतन्त्रेऽस्मिन यथेष्टं कुरुते जनः।
न धर्मं न कुलं शीलं मन्यते शासका अपि।।
कुलीना अकुलानेषु हीनाः वर्गे समुन्नते।
यथा कामं प्रवर्तन्ते लोक लज्जा विवर्जिता :।।
निरस्त निग्रहाः सर्वे स्वार्थ साधन तत्पराः
बहुर्भि विहितं लोके दूषणं भूषणायते ।।[15]

इस स्वच्छद लोकतन्त्र में सभी लोग चाहे कुलीन हों, अकुलीन हों, शासक हो या शासित हो, लोक लज्जा छोड़कर, नियमों को भंगकर स्वार्थ सिद्ध करते है, क्योंकि बहुतायता की विडम्बना में दूषण भी भूषण बन जाता है। लोकतन्त्र का यह प्रत्यक्ष शब्दचित्र युगबोध की दृष्टि से सुचिन्त्य है।

युगबोधक खण्डकाव्यों की स्वर्णसीकड़ी में कवि का "कालकौतुकम्" भी स्वतंत्र अस्तित्व रखता है, जहाँ 'समय एव करोति बलाबलम्' को यथार्थ चरितार्थ किया है। वस्तुतः युग परिवर्तन–परिवर्धन काल का ही कमाल है। इतिहास प्रमाण है किसी भी व्यक्ति, वस्तु या व्यवस्था का शाश्वत अस्तित्व नहीं रह पाया है। अपनी–अपनी विशेषताओं के साथ युगों का उदय और अस्त हुआ। शिक्षा, संस्कृति, जीवनोत्सव में परिवर्तन आया। भारतीय मानसमेदनी में पाश्चात्य संस्कृति के पौधे पनप गये, फलस्वरुप विश्वगुरु की सन्तति वेल्टाइन्स विभावित हो गयी –

त्यक्त्वा सत्कुल सम्पदं नवदृशो लज्जां च भूषां स्त्रियाम्।
वेल्टाइंस विभावितं प्रणयिदं सम्भावयन्त्युत्सवम्।।[16]

परिवर्तन के दृश्यों से पीड़ित कवि की पीड़ा इन शब्दों में व्यक्त हो रही है –

"आज ज्ञान और शान्ति का मार्ग दुर्लभ हो गया है। नवोदित परमाणु के कारण धरा का धैर्य भी टूट गया है। कृत्रिम लेपों से खरमुखी भी पद्मा पद पा गयी है। मूर्ख भी उपाधि पाकर विद्वानों में स्थान पा रहें है। वित्त–विडम्बना ने सौहार्द्र को समेट लिया है। धर्म निरपेक्षता का नया कौतुक खड़ा हो गया है, जिससे राष्ट्र धर्म गौण व मौन हो गया है। श्वान वत्समुग्धावनिताओं का गोवत्सों पर प्रेम न रहा, इस प्रकार अन्यों के मुकुर में मुँह देखने वाले अपनी प्रतिबिम्ब से ही अनभिज्ञ हो गये है।

नारी सशक्तिकरण के यथार्थ चित्रण में युगबोध की अभिव्यंजना देखिये–आज की वल्लरी वृक्ष की सहायता के बिना ही विकसित हो रही है।[17] पुष्पों के अभाव में लता प्रसन्न प्रतीत हो रही है। नवता के मोह में प्रकृति से पुराने बन्धनों को तोड़ चुकी है। अंगना को बिन्दी, कुंकुम, कंगना से सजना पसन्द नहीं है। वे पुरुष की सी परुषवर्षति पसन्द करती है। इस प्रकार नूतनता के कुचक्र में शाश्वत विधानों के विरुद्ध प्रकृति का कृत्रिम रुप सारहीन प्रतीत होता है। नारी का विकास नारी के रुप में हो, सनातन स्नेही कवि की यही अपेक्षा है। दैहिक विज्ञापन के आधार पर नारी उन्नति का औचित्य अनुचित है। उसका विवसना स्वरुप माननीया आदरणीय

की पदवी प्राप्ति में बाधक है तथा नारी स्वातन्त्रय युगबोध की संचित विसंगतियाँ है। कवि दवे राजनीति बोध की दिशा मे, ''बलवान् कुरसिका मोहः' शीर्षक के माध्यम से जन सेवा के नाम पर सत्ता, सिंहासन की आसक्ति मे मुग्ध लोकतन्त्र के कर्णधार का कथन,नष्पनीति की यर्थाथता का चरित्र चित्रण है –

नायं कुरसिका रागः प्राणकष्टेऽपि मुंचति।
मानापमानं मृत्युं वा नेक्षतेऽस्याः वशंवदः।।[18]

चुनाव पूर्व की लोक–लुभावनी घोषणा में लोकतांत्रिक युगीनसंवेदना की सुन्दर अभिव्यंजना देखिये –

स्वीयं मतं हितकरं वितरन्तु मह्यम्,
वांछति चेन्निजहितं न भूयात्।
सत्यं ब्रवीमि यदि मे विजयो न भूयात्,
युष्माकमप्यतिशयो भविता प्रसादः।।[19]

कवि ने आगाह किया है ये राजनीति के बरसाती मेंढक जिनका शरीर आकण्ठ भ्रष्ट आचार–विचार के कीचड़ मे है, उन्हें अपना मत नहीं दे। कवि अपने युगबोधक कर्मों से क्षणिक भी विमुख नही है, वह तो अपने साहित्य को लोकतन्त्र के पंचम स्तम्भ परिगणन के पक्ष में साक्ष्य प्रस्तुत कर रहा है।

''कामधेनु–शतकम्'' गोमाता के प्रति अनाचार को ध्वनित करता है। इसमें विभिन्न राष्ट्रपुरुषों और देवताओं से करूण आव्हान किया गया है –

विश्वोपकर्त्री जन पोषयित्री, स्वाहा वषट्कार हविर्विधात्री,
मूलंच लक्ष्म्या दुरिताप हन्त्री सा नन्दनी क्रन्दती साम्प्रतं ह्य।।[20]
अयि! राष्ट्रपति महामते! याते गौर कुशासनेऽप्यहो।
सुरभिर्निज शासनेऽपि सा मृत्योर्पाशगताद्यक्रन्दति।।[21]
अयि पण्डित मालवीय! ते सन्धागोवधवारणेकृता।
ननुधर्मविहीनशासने सा जाता विफलाऽद्यभारते।।[22]

भारतीय धर्म, दर्शन और संस्कृति की मूलधार, ग्रामीण अर्थव्यवस्था का मूल स्रोत, वन्दनीया, पूजनीया गोमाता को आजाद भारत के कत्लखानों में काटा जा रहा है। हे राष्ट्र नायकों, धर्मध्वजों, भारती के सपूतों अपनी चेतना को जागृत करो, का प्रेरक वर्णन प्राप्त होता है, जो शतशः यथार्थ है। शायद कवि का घोष साम्प्रतिकी उत्तर प्रदेश के शासन–प्रशासन को सुनाई दे रहा है।

'परिखायुद्धम्' : पौराणिक दृष्टि से खाड़ी युद्ध पर वक्तव्य देता है। इस भौतिक युग में स्वार्थ समृद्धि की एषणा में मानवता का नाश मत करों। प्राकर्षतिक सम्पदा का उपयोग सकलजनकल्याणाय होने दो, का प्रेरकयुगबोध परिलक्षित होता है।

शिलातैलाप्त सम्पत्तिः प्राचुर्योन्मद मानसः।
ईराकृचकमे कर्तुं कुवैतं स्ववशे बलात्।।[23]

'मेघोपलम्भनम्' नामक खण्डकाव्य के माध्यम से कवि ने प्रकृति सन्तुलन की लोक चेतना को प्रवाहित किया है। कहीं अतिवृष्टि, कहीं अनावृष्टि, कहीं अल्पवृष्टि से पीडित पृथ्वी तथा दुर्भिक्ष की विभीषिका का दंश झेल रहे मानव को इंगित, इस काव्य में कवि ने, भौतिक लाभ के लिये प्रकृति को उद्वेलित करने वालों का यथार्थ प्रस्तुत किया है तथा उन्हें उन्मत्त (शौण्ड) गुण्डा शब्द से सम्बोधित किया है।

भूयो–भूयो प्रकृति वनितां भौतिकोन्माद शौण्डो।
दुष्टैर्भावै व्यथयति भषां रुप लावण्य मुग्धः।।[24]

प्रकृति प्रेमी कवि की संवेदना प्रकृति से है, एतदर्थ क्षीण होती प्रकृति की वेदना से व्यथित कथन में युगबोध का अवबोध हो रहा है।

नित्यं चास्याः खनसि सबलानस्थिपिण्डान् धराया।
वृक्षच्छेदे शिखरिण इमे कल्पिता नग्न गात्रा।।[25]

धरती के अस्थिपंजर खोदे जा रहें है, विलासिता के लिये वृक्षों को काटे जा रहे है, पर्वतों को भी नंगाकर दिया गया है। अब तो हमारे पैरों के नीचे की भूमि को खोदना ही शेष रह गया है, इस कथन में कवि का व्यंग्य, पर्यावरण चेतना की दृष्टि से स्पन्दित हो रहा है। कहा जा सकता है कि माननीय उच्च न्यायालय का खनन माफियाओं पर संज्ञान कवि के पर्यावरणीय युगबोध को पुष्ट कर रहा है। ललितालहरी, कारुण्यकादम्बिनी तथा अपांगलीला नामक खण्ड काव्य स्तुतिकाव्य की कोटि में आता है, जहाँ कवि कर्म की अपेक्षा श्रद्धा का प्राक्कट्य है। श्रद्धा विश्वास रुपिणी इन इष्ट स्तुतियों में भी धार्मिक, वैज्ञानिक, सांस्कृतिक तथा वैचारिक युगबोध की अभिव्यंजना हो रही है –

नवशासन–पीठगता अधुना कुलधर्म सुशील सुधा विधुराः'
मतयो गतयो नवनीति जुषामपि सन्ति
न राष्ट्रहिते कलिता।।[26]

हे भगवती ललिते! नवयंत्र युग् में गणपति की लेखनी अवरुद्ध हो गयी है, कम्प्यूटर आदि की गति से व्यास भी चकित है।[27] हे मां! जिस संचार क्रान्ति से यह जग रज्जुबद्ध हो गया,[28] व्योमनाद दूरभाष में संचारित हो गया, नवविटों के उसी विवसन दर्शन से साधुजनों का चित्त भी प्रदूषित हो रहा है–

जिस विज्ञापन से कच और कुच की वृद्धि भ्रम का नारा दिया जा रहा है,[29] यह सब तेरी ही युग–लीला है। कवि ने भक्ति काव्य में भी स्तुति की शैली में नवतन्त्रयुग् की संगति कम्प्यूटर, इन्टरनेट तथा तदाधारित विज्ञापन आदि से चित्त प्रदूषण की विसंगतियों का युग बोध, सहज शब्दावलियों में प्रस्तुत किया है।

भारतीविलास नामक भक्तिकाव्य में भगवती भारती की भौतिक माया का वर्णन करते हुये, कवि ने कहना चाहा है कि तुम्हारी मन्त्र शक्ति ही आज यन्त्र शक्ति में समाहित हो गयी है। जन विस्मय कारक यह तुच्छ भौतिक चाकचक्य रूप, युग–परिवर्तन तुम्हारा ही विलास है। इसी प्रकार ''वियोगशतकम्'' में गृहिणी और गृहस्थ धर्म की मयार्दा का यथार्थ तथा ''कारुण्य कादम्बिनी'' में मातृमूल्य विषयक युगबोधक वर्णन के द्वारा वृद्धाश्रम की सत्यता के युगीन चिन्तन को छन्दोबद्ध किया गया है।

उक्त साक्ष्यों के आधार पर हम कह सकते है कि पं. दवे की काव्य सर्जना मे आज का युग दृष्टि गोचर होता है, वो भी अपने जीवन्त स्वर मे। कथ्य और तथ्य का समुचित तादात्म्य स्थापित करने के कारण इनका खण्डकाव्य युगसंवादी है। इनका काव्य शाश्वत मूल्यों के प्रकाश में वर्तमान को छूता है तथा युग के स्वर को साज देता है। निःसन्देह पं. दवे धरातल के कवि है। उन्होंने समसामयिक झंझावतों को झेला है। विभाजन की त्रासदी को देखा है, आजीविका और विवाह की विभीषिका को भोगा है। आचार विचार और सदाचार के साथ कदाचार तथा शिक्षा संस्कृति, वेषभूषा, विज्ञापन, धार्मिक, आर्थिक, नैतिक, यांत्रिक एवं राजनैतिक युगवैविध्य की विचित्र विडम्बनाओं से उनका साक्षात्कार हुआ है। एतदर्थ कवि के खण्ड काव्य में यथार्थता सहज समाहित हो गयी है। आधुनिक संस्कप्त साहित्य मे युगीनता की दृष्टि से कवि की

कृति उल्लेखनीय है. इसमें युग् का प्रभाव और प्रभावन भी है। वन्दना और वेदना भी है, चित्त और चेतना भी है।

सन्दर्भ :

1. सौन्दर्यलीलामृतम् – श्लोक 14
2. वही – श्लोक 15
3. केलीभूकितवम् – 1/1–10
4. वही – 2/12 नवाचार अनभिज्ञत्वात् पण्डितोऽपि जड़ो मतः।
   नांग्रेजी पठिता चेति स्त्री रत्नेनास्मि वंचितः।।
5. वही –2/22 सत्यत्र केचिन्मम बान्धवानाम्, पणाः हि पाणि ग्रहणानुबन्धाः।
   अनारतं सप्तपदी समानाः ते पूरणीयाः भवतातु पूर्वम्।।
6. वही –3/29
7. वही – 3/30
8. वही – 3/31
9. वही –3/32
10. वही –3/33
11. वही –3/34
12. वही –3/35
13. वही –3/36
14. वही –3/28
15. वही –4/15–17
16. वही – श्लोक सं.–17
17. वही – नवताकौतुकम् – श्लोक सं. –13
18. वही – बलदान कुरासेका मोहः – 03
19. वही – 13
20. कामधेनुशतकम् –07
21. वही –88
22. वही –87
23. परिखायुद्धम् – 06
24. मेघोपालम्भनम् – 09
25. वही – 02
26. अपांगलीला– युगलीला – 10
27. वही – युगलीला – 20
28. वही – युगलीला – 21
29. वही – युगलीला – 27 "नवाः पत्र दूत्योऽपि नग्नांगचित्रैः। कथानां कुधाना श्रियो वध्दयो वै"।।

♦♦♦

Print Journal
Indexed Journal
Refereed Journal
Peer Reviewed Journal

ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
Index Copernicus 2016: 59.37

VOLUME 3 ISSUE 2 MAR-APR 2018

International Journal of Advanced Research and Development

Gupta Publications
New Delhi, India

International Journal of Advanced Research and Development

Peer Reviewed Journal, Refereed Journal, Indexed Journal

ISSN: 2455-4030, Impact Factor: RJIF 5.24

UGC Approved Journal. UGC Journal No.: 48816

Publication Certificate

This certificate confirms that "अक्वेश कुमार मिश्र" has published manuscript titled "पं० श्री राम दवे के खण्डकाव्यों में सनातन जीवन मूल्य, एक अध्ययन".

Details of Published Article as follow:

Volume	:	**3**
Issue	:	**2**
Month	:	**Mar-Apr**
Year	:	**2018**
Page Number	:	**1445-1448**
Certificate No.	:	**3-4-53**
Published Date	:	**01-03-2018**

Yours Sincerely,

IJARD

Nikhil Gupta
Publisher
International Journal of Advanced Research and Development
www.advancedjournal.com
Email: ijard.research@gmail.com
Tel: 9999888931

Year: 2018, Volume: 3, Issue: 2
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
Online Available at www.advancedjournal.com

International Journal of Advanced Research and Development

1. विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति का उनकी चिन्तन शैली व सृजनात्मकता के सदर्भ में अध्ययन
Authored by: डॉ. विष्णु शर्मा, शुभा व्यास
Page: 1431-1436

2. **Effect of modified proprioceptive neuromuscular facilitation type Suryanamaskar on body composition of college level students**
Authored by: Sunil Koak, Dr. Pardeep Kumar
Page: 1437-1441

3. **Sustainable risk management in banking sector**
Authored by: Harsimran Singh
Page: 1442-1444

4. पं० श्री राम दवे के खण्डकाव्यों में सनातन जीवन मूल्य, एक अध्ययन
Authored by: अवधेश कुमार मिश्र
Page: 1445-1448

5. **Autonomy and accommodation in India: A case of Jammu and Kashmir**
Authored by: Gazala Farooq Peer
Page: 1449-1457

6. **Value orientation and academic achievement: A comparative study of male and female college students**
Authored by: Dr. Najmah Peerzada
Page: 1458-1460

7. **Implementation of government strategies on women empowerment: A case study of J&K state**
Authored by: Asmat Farooq, Naheed Vaida, Yasmeen Ashai
Page: 1461-1463

8. **The folk ballads or Gitikas of Bengal**
Authored by: Nasir Ahmed, Piyali Chakraborty
Page: 1464-1466

9. **Efficacy of intensive and extensive interval training on cardio respiratory endurance of physical education students of Annamalai University**
Authored by: Dr. K Palanisamy
Page: 1467-1468

10. महिला व कमजोर वर्ग को सशक्त बनाने में शिक्षा का योगदान
Authored by: डॉ. राजेश कुमार
Page: 1469-1471

International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 3; Issue 2; March 2018; Page No. 1445-1448

पं० श्री राम दवे के खण्डकाव्यों में सनातन जीवन मूल्य, एक अध्ययन

अवधेश कुमार मिश्र
शोध छात्र (संस्कृत), कोटा विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान, भारत।

सारांश
पं० श्री राम दवे आधुनिक संस्कृत साहित्य के श्रेष्ठ कवि माने जाते है। उन्होंने तीन महाकाव्य, एकादश खण्डकाव्य तथा तीन अनूदित काव्य लिखे है। निःसन्देह उनकी समस्त काव्य कृतियाँ सर्वोत्कृष्ट है। उनका एकादश खण्डकाव्य आधुनिक संस्कृत साहित्य में अति विशिष्ट स्थान रखता है। खण्डकाव्यों में ललितालहरी, अपांगलीला तथा भारतीविलास स्तोत्रपरक काव्य है। वियोगशतकम्, कारूण्यकादम्बिनी, कामधेनुशतकम् नीतिपरक काव्य है, तथा परिखायुद्धम् कालकौतुकम् केलिभूकैतवम्, मेघोपालम्भनम् एव सौन्दर्यलीलामृतम् युग बोधक काव्य है।
इन खण्ड काव्यों में सनातन संस्कृति के शाश्वत जीवन मूल्यों का पक्ष प्राप्त होता है जो इस शोध पत्र का विषय भी है। अतः इस शोध पत्र में मानव मूल्यो की मीमांसा के साथ ग्रन्थ में दृष्ट आध्यात्मिक,सांस्कृतिक समाजिक आदि शाश्वत जीवन मूल्यों के विषय में वर्णन किया जायेगा।

कूट शब्द : मूल्य, मानव, श्रेयस्, प्रेयस्, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, मातृमूल्य, खण्डकाव्य।

प्रस्तावना
'बड़े भाग मानुष तन पावा'[1]
वस्तुतः यदि मानव तन भाग्य है तो, जीवन–मूल्य उस मानव का सौभाग्य है, क्योंकि मूल्यों के बिना जीवन का कोई अर्थ नहीं, मानवता का कोई अस्तित्व नही होता है। अतएव मूल्यों का संरक्षण–संवर्धन कवि मनीषियों के मानस मेदनी में सतत् सुचिंत्य विषय रहा है।
मूल्य शब्द मूल+यत् से निर्मित है जिसका अर्थ किसी वस्तु के विनिमय में दिया जाने वाला धन है।[2] विद्वानों का मानना है कि 'मूल्य' अर्थशास्त्र से व्यवहार में आया है, जो वर्तमान में नीतिपरक साहित्यों का प्रमुख विषय बन गया है। जैसा कि 'शब्दकल्पद्रुमकार' ने 'मूल्य' शब्द की व्युत्पत्ति की है ''मूल्यम् मूलेन अनाम्यते अभिभूयते, मूलेन समं वा इति'' जिसका तात्पर्य है मूल के समान अर्थात जो मूल के समान है वह मूल्य है, जो आत्मवत् है वह मूल्य है, जो शास्त्र विहित है, सदाचार निहित है, वहीं मूल्य है। लगभग इन्हीं अर्थों में अन्य वैदेशिक भाषाओं में भी मूल्य का प्रयोग हुआ है, अंग्रेजी में इस शब्द के लिय ''वैल्यु'' ग्रीक में 'एक्सियोज', जर्मन मे वैट और फ्रांसीसी में 'वालोर'[3] का प्रयोग होता है। मूल्य का विषय क्षेत्र व्यापक होने के कारण विद्वानों के लिये इसे किसी सुनिश्चित और ऐकान्तिक परिधि में बाँधना कठिन है तथापि सुविचारकों ने उच्चतम परिभाषा प्रस्तुत की है –

> 'मूल्य वे मानवदण्ड है जो सम्पूर्ण संस्कृति और समाज को अभिप्राय और सार्थकता प्रदान करते है'[4]
> 'जो जीवन को अस्तित्व और गति प्रदान करें, वही मूल्य है'[5]

मूल्य जीवन, परिवेश, आत्मा, समाज, संस्कृति और इन सबके अलावा मानवीय अस्तित्व व अनुभूति के आदर्शात्मक व आध्यात्मिक आयाम से उद्भूत होते है।[6]
'मूल्य का सम्बन्ध मनुष्य की उत्तर जीविता और उसके अस्तित्व से है, क्योंकि उसका स्रोत और माध्यम मनुष्य ही है। अतः मनुष्य के जीवन को जीवन्तता, उत्कृष्टता तथा व्यवहार सम्बन्धी विवेक प्रदान करने वाला गुण भाव विशेष जीवन मूल्य कहलाता है। मानव मूल्य सम्बन्धी चिन्तन के बीज हमें वैदिक साहित्य में उपलब्ध तो होते है, किन्तु वहाँ 'मूल्य' शब्द का उल्लेख नहीं है, तत्सम्बन्धी धारणा अवश्य मिलती हैं। संहिता काल में ऐश्वर्य विजय तथा यशोऽभिलाषी होते हुये भी वैदिक जन नैतिकता के प्रति विमुख नही थे, उनके जीवन में नैतिकता का शासन था। इनकी आस्था 'ऋत' की धारण में सन्निहित थी। ब्राह्मण काल में कर्मकाण्ड, आरण्यककाल में आध्यात्म, और उपनिषद्काल में श्रेयस् और प्रेयस् की प्राप्ति में ही जीवन मूल्य की अवधारणा थी। महात्मा बुद्ध के आविर्भाव के पश्चात् मोक्ष को चरम मूल्य माना गया, भक्ति काल में भक्ति को परम मूल्य समझा गया किन्तु सामाजिक सुधार के प्रयास में मूल्यों की महनीयता भी परिलक्षित हुयी, कबीर के काव्य प्रमाण है।
रामायण और महाभारत का काल आते आते पुरुषार्थ चतुष्टय को मान्यता मिली, और वे ही मानव मूल्य हो गये, वस्तुतः ये सार्वजनीन सार्वकालिक मूल्य है जिनकी भित्ति पर भारतीय जीवन प्रतिष्ठित है। धर्म मे सामाजिक एवं नैतिक मूल्य आ जाते है, अर्थ का सम्बन्ध भौतिक मूल्यों से है। काम मे सौंदर्य और कला सम्बन्धी सभी मूल्य समाहित होते है और मोक्ष में आध्यात्मिक मूल्य आ जाते है। डॉ. राधाकृष्णन् के अनुसार धर्म सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानव मूल्य है। इसके अभाव में जीवन की सारी संगति नष्ट प्राय है।[8] अर्थ धर्म से समन्वित होना चाहिए। काम मंगल भावना से मण्डित होना चाहिए तथा मोक्ष मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य होना चाहिए। चारों पुरुषार्थों की पूर्णता में ही जीवन की सार्थकता है, पुरुषार्थ चतुष्टय में ही सारे मूल्य समाहित है चाहे नाम भेद कुछ भी हो।''
महादेवी वर्मा के अनुसार मूल्यों के दो रूप हैं। प्रथम प्रयोग रूप जो युग धर्मानुसार परिवर्तित परिवर्धित होता रहता है। द्वितीय शाश्वत रूप – जो कभी नहीं बदलते सत्य, अहिंसा, न्याय, प्रेम, स्नेह, सद्भावना, संवेदना, करुणा, बन्धुत्व, समानता आदि शाश्वत मूल्य है।[9]

> धृति क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः
> धीर्विद्या सत्यक्रोध दशकं धर्मलक्षमणम्।।[10]

मनुस्मृतिकार ने उक्त दस शाश्वत मूल्य बताये है।
भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् लोकतांत्रिक मूल्यों की चर्चा हुई और उसे मानव जीवन मूल्य में सर्वोच्च स्थान दिया गया। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में जो न्याय, स्वतंत्रता, विश्वास, समानता तथा बन्धुत्व की चर्चा की गयी है, ये राष्ट्रीय लोकतंत्रात्मक मूल्य है।
लोकतांत्रिक मूल्यों के संरक्षण में स्वंतत्रता पश्चात् के कवि मनीषियों के साहित्यों का अनुपम योगदान रहा है। पं श्री राम दवे भी उनमें से एक है जिन्होंने अपने खण्डकाव्यों में शाश्वत और लोकतांत्रिक दोनों ही जीवन मूल्यों की स्थापना की है। पं. दवे ने समसामयिक विविधविषयक एकादश खण्डकाव्य लिखे है, जिनमें मानव की सार्वभौम संवेदनाओं को देखा जा सकता है। क्योंकि इनके काव्य का उद्देश्य मानव जीवन को उत्कर्ष प्रदान करना है। अतः इनकी कृतियों में जीवन मूल्यों को देखा जा सकता है। कवि परम्परावादी सनातनधर्मी है तथा भारतीय संस्कृति के सनातन मूल्यों में उनकी निष्ठा है। जो उनकी कृतियों में व्यंजित भी हो रहा है। अतः अधोलिखितानुसार कवि का मूल्यात्मक चिन्तन प्रस्तुत है।

1. आध्यात्मिक जीवन मूल्य

कवि की मूल प्रकृति आध्यात्मिक है। अतः उन्होंने अपने खण्ड काव्यों में आध्यात्मिक मूल्यों को सर्वोच्च स्थान दिया है। कवि का मानना है कि ये ही मूल्य मानव की उदात्त प्रवृत्तियों को उत्कर्ष तथा जीवन को विमर्श देता है। ईश्वर को प्राप्त कर अखण्डानन्द में लीन रहना ही मानव का साध्य और परम लक्ष्य है। इन्हीं आध्यात्मिक मूल्यों की अभिव्यक्ति ललिता लहरी काव्य में हुई है।

> विकाराणां कारागृहमिदमुमे! मेऽस्तु नः मनः
> प्रशस्त्यापाशः पततु न च कण्ठे स्तुति रिते।
> समेषां कामानां त्वमसि ललिते! शेवधिपदम्,
> पुनः केऽमी कामा क्षणकृत विरामास्तवपुरः।।

हे भगवती ललिते! आपसे यही प्रार्थना है कि मेरा मन विकारों का कारागृह न बने, तुम्हारी स्तुति करने वाले कण्ठ में प्रशंसा की आशा का पाश न पडे। फल की इच्छा जागृत न हो, विद्या का अभिमान न हो, पूजा में अरुचि न हो तथा अन्त में यह नश्वर शरीर भी तुम्हारी गोद में समा जाये।

> न वा विद्यादर्पो भवतु न विसर्पोऽप्ययमतेः
> त्वदंके देहोऽयं विलयमपि चान्तो न लभताम्।।[12]

जब शृंगार रस का रतिभाव भगवद् विषय बन जाता है, तब प्रभुचरणों में अनुरक्ति रखने वाले भक्तजन के प्रेम भरे ह्रदय में, हरि कथा एवं कीर्तन के कारण भक्ति रस प्रबल हो जाता है तो विरक्त पुरुष भी व्रजांगना के प्रेम भरे प्रसंगो में आसक्त होकर राधारमण के लीला सागर में डूब जाते है :

> यदाभक्त्युद्रेको हरि मधु कथा कीर्तन भवः
> उदेतिस्निग्धान्ते प्रभुचरण संसिक्त मनसः........।।[13]

आत्म शुद्धि की कामना, मनोविकारों से मुक्ति, ह्रदय में प्रेम, अनासक्त कर्म रूपी मूल्यों की अनुभूतियों का उद्घाटन काव्य में किया गया है, जो भौतिक मूल्यों का अतिक्रमण करके श्रेयस् की ओर अग्रसर होता है। यह आध्यात्मिक मूल्य सुसंस्कृत मानवों के लिये ग्राह्य होता है, तथा परमपद की प्राप्ति में साधक होता है। अपांगलीला नामक खण्ड काव्य में कवि ने माना है कि आध्यात्म के भाव से ही शिष्यों में श्रद्धा, गुरुओं में गुरुता, बुधजनों में प्रज्ञा, शिशुओं में सुकुमारता, युवकों में उत्साह और वृद्धों में सौम्यता[14] जैसे नैसर्गिक मूल्यों की प्राप्ति होती है। एतदर्थ कवि का भक्ति परक काव्य अन्य मूल्यों की अपेक्षा आध्यात्मिक मूल्यों को अधिक आत्मोन्मुखी मानता है।

2. सांस्कृतिक जीवन मूल्य

प्राचीन संस्कृति के महान विचारक एवं युगीन संवेदनाओं के प्रबोधक कवियों का उद्देश्य अपने काव्य के माध्यम से भावी पीढ़ियों में अलख जगाना होता है। उनका काव्य तथ्यों का संग्रहण अथवा बुद्धि विलास का विषय नहीं होता है, वह तो उन व्यवस्थाओं को देता है जो ज्ञान और विवेक पैदा करे, सदाचारी बनाये, वसुधैव कुटुम्बकम् का भाव जगाये, तथा मानव जीवन की समग्रता का समन्वय करें। पं.श्री राम दवे की काव्य साधना इस सन्दर्भ में महीयसी है। उनके काव्यों में सांस्कृतिक मूल्यों का चिन्तन झलकता है। जो आलोक योग्य है –
भारतीय संस्कृति की सार्वभौमिक विशेषता सम्यग्–दृष्टि, सम्यग्–चरित्र की अनुपालना रही है। जिसे विश्वधरातल पर सर्वाधिक सराहा गया है। कवि दवे ने "सौन्दर्यलीलामृतम्" काव्य में यथा दृष्टि तथा सृष्टि की भारतीय दृष्टि को प्रकाशित करते हुये सौन्दर्य के शाश्वत स्वरूप को दिखाया है –

> सौन्दर्य नहि चर्म राग निहितं नो वांऽगभंगयाश्रितम् .... [15]
> सौन्दर्य शिव सत्य भाव सुभगं यत्कल्पितं सूरिभि .... [16]

सौन्दर्य चर्म राग नही, ना ही वह अंगों की भंगिमा पर आश्रित व्यापार है, वह तो सत्यं शिवम् सुन्दरम् की सदाशयता पर प्रतिष्ठित तथा सम्यग् दृष्टि और सम्यग् चरित्र की चेतना से प्रवाहित होने वाला भाव है, जिसे भाव प्रज्ञा से ही साक्षात्कार किया जा सकता है। आज यह दूषित मतिकों के कारण कलुषित हो गया है, वासना दृष्टि ने इसे इन्द्रियजन्य भोग्य बना दिया है, देह पिपासुओं ने इसे चारित्रिक अपकीर्ति के योग्य बना दिया है।
कवि का मानना है कि आज की शिक्षा, संस्कृति, जीवन पद्धति, खान–पान, अभिवादन, भाषा–भूषा, सेवा और शासन आदि पाश्चात्य पद्धति के अनुसरण का प्रतिफल है, जो भारतीय मानवों को विश्वगुरुत्व गौरव की गाथा का संस्मरण करने नहीं देता, सांस्कृतिक अनुकूल वेदना से आत्मसात् नहीं होने देता है –

> शिक्षा संस्कृति जीवनोत्सव विधौ खाद्येऽभिवादे यथा,
> भाषा भाषण भूषणे भृति पदे संकल्पिते शासने।
> पाश्चात्यां सरणिं मुदानुचरतां संकोच लेशोऽपि नो,
> चित्ते विश्वगुरुत्व गौरव कथा स्वीया न संस्मर्यते।।[17]

गुरु शिष्यों का चरित्र भारतीय संस्कृति की विशिष्टता रही है, जो आज काल के प्रभाव से तथा पाश्चात्य प्रेम के कारण शनैःशनै धूमिल होती जा रही है कवि ने इस सांस्कृति पीडा को "गुरु शिष्य सदाचरणे निरताचरणे निरतानहि भाति शिवे! ह्यधुनासुखदा।"[18] पंक्ति में व्यक्त किया है। रूप से अधिक गुणों की महत्ता के शास्त्रीय सिद्धान्तों एवं शास्त्रीय उद्देश्यों को प्रतिपादित करते हुये कवि कहना चाहते है कि –
मात्र रूप के आकर्षण की अपेक्षा भार्या में गुणों का अन्वेषण,[19] कुल की वृद्धि के निमित्त 'दुष्कुलादपि स्त्री रत्नं ग्रहणं'[20] अर्द्धांगिनी को गृहिणी का समस्त अधिकार अर्पण "कान्यादानं महापुण्यं"[21] आदि

व्यवस्थागत मूल्य हमारी सांस्कृतिक थाती है। "परोपकारे फलितः प्रयासः येनाशु जातः परिणाम एष"[22] परोपकार में किया गया प्रयास फलीभूत होता ही है। "अतो मे विषमे काले, वृथेयं धर्म भीरुता"[23] विषम काल में भी धर्मभीरुता व्यर्थ है की चेतना, मातृदेवो भव, धन्योगृहस्थाश्रमः, गो सेवा परमसेवा की सांस्कृतिक संवेदना को भी अभिव्यक्त किया गया है।

जिसका दूध पीकर काया सरस बनी,[24] जिसके स्नेह सिंचन से प्राण प्रदीप प्रज्ज्वलित हुये, ऐसी वात्सल्य सुधावर्षिणी, मंगलमयी, अन्नपूर्णा सी जननी, संस्कारों का आधार होती है। वही जन्मदात्री जब वृद्धा अवस्था में आती है, तब क्वचित् कदाचित् कलियुगी पुत्रों द्वारा उनकी उपेक्षा की जाती है, कवि उन्हें धिक्कारते[25] हुये, उन्हें वृद्धों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये का सांस्कृतिक संदेश देते हैं –

> कामं चाक्षुष मान्द्यमस्तु न परं प्रज्ञेक्षणे मन्दता
> दौर्वल्यं श्रवणेऽस्तु जीर्णवयसा नो ह्रीयते सुश्रुतम्
> देहं स्याद् गलितं परं विगलितो येषां विवेको नहि
> नोपेक्ष्यास्तरुणैः सदैव विषमे ज्ञानाय वृद्धः जनाः।।[26]

कवि भारतीय संस्कृति के प्रबल पक्षधर है, अतः शास्त्र विहित संस्कार और संस्कार से उत्पन्न स्वच्छ सम्बन्धों की परिपालना की अनुशंसा की है। जिसमें सत्य स्नेह, सद्भावना, करुणा और मानवीय निर्मल संवेदना आदि को समाहित करते हुये सांस्कृतिक मूल्यों को प्रसारित किया है।

3. सामाजिक जीवन मूल्य :

यह तथ्य सत्य है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तथा उसका अस्तित्व और उसकी जीवन्तता भी समाज से ही है। सद्भाव सामंजस्य एवं शुचिता की अस्मिता भी सामाजिक गवेषणा में ही निहित है। एतदर्थ कवि मनीषियों का चिन्तन भी सामाजिक जीवन मूल्यों के संरक्षण एवं संवर्धन के ऊहा–पोह में ही लगा रहा । पं. देव की काव्य कृतियों में भी तन्निमितिक निदर्शन प्राप्त होता है। कवि दवे ने सामाजिक जीवन मूल्यों की आधारभूमि गृहस्थाश्रम को माना है, जहाँ सामाजिक मर्यादाओं को आत्मिकमान, सम्बन्धों की शुचिता को सम्मान, तथा चारित्रिक चित्तवृत्तियों का संविधान प्राप्त होता है।

उनके अनुसार गृहस्थ धर्म की धुरी गृहणियाँ होती है, जो अपने मूल्यों से घर को स्वर्ग बना देती है।

'स्वर्गीचक्रुः सदनमवनौ दुर्लभास्ता गृहिण्यः'[27] वस्तुतः घर से परिवार और परिवार से ही समाज की परिकल्पना होती है। घर से प्राप्त जीवन मूल्य जनित संस्कार ही सामाजिक जीवन मूल्यों की प्रवेशिका हुआ करती है। यौवन के दहलीज पर दस्तक देती हुयी स्वछन्द मनसा पुत्री को सामाजिक मर्यादा का पाठ पढ़ाती हुयी मां कहती है कि –

> नित्यं नोचितमस्ति तेऽटनमिदं वत्से! तटेऽसंस्तुतैः,
> तारुण्योद्धत भाव दुष्ट मतिभिः शीलानभिज्ञैःश्चलैः।
> स्वच्छन्दाचरणं स्त्रियांच सततं लोके न शोभावहम्,
> मुंचं त्वं चलतां हि शिष्ट कुलजे। शीघ्र वरोऽन्विष्यते।।[28]

वस्तुतः स्त्रियों का स्वच्छन्दाचरण सामाजिक जीवन की शोभा नहीं होता है। सामाजिक शुचिता के लिये सामाजिक मूल्यों की अपेक्षा होती है। शिक्षा –संस्कृति–जीवन उत्सव विधि अभिवादन और शासन पद्धति को कवि ने सामाजिक जीवन मूल्य के रूप स्वीकार करते हुये भारती विलास नामक खण्ड काव्य में इस प्रकार कहा है

> शिक्षा संस्कृति–जीवनोत्सव विधौ खाद्येऽभिवादे तथा।
> भाषा भाषण भूषणे भृति पदे संकल्पिते शासने।।[29]

आचार–विचार और संस्कारों की पारदर्शिता सामाजिक मूल्यों को पुष्ट करती है। संबन्धों का संविधान हो या वृद्ध सेवा का विधान, शिशुओं का लालन हो अथवा सोलह संस्कारों का परिपालन, सामाजिक जीवन मूल्यों की बुनियाद व्यवस्थित करता है। काल के प्रभाव से दिनानुदिन सामाजिक मूल्यों के ह्रास से चिन्तित कवि की पीड़ा कारुण्यकादम्बिनी में झलकती है।

> वृद्धानां चरणेषु मंगल दिने नो श्रद्धया वन्दनम्,
> नो वाशीर्वचनाभिलाष कलना चित्ते वधूनामपि।
> नो वाचा कुशलं चिरेण मिलिताः पृच्छन्ति वैबान्धवाः,
> या तास्ताः विलयं पुराक्षि विषयाः ग्रामश्रियः साम्प्रतम्।।[30]

श्रद्धा से वृद्धों को प्रणाम नहीं किया जाता, वधूएं आशीर्वादाभिलाषिनी नहीं रही, बन्धुजन कुशलाकांक्षी नहीं है। मानो वसन्त को वैराग्य हो गया हो, ऋतुएं वीतराग हो गयी हों, वृद्धा मां भार बन गयी हैं, अर्थहीन पिता अभिशाप बन गया है, परस्पर सद्भाव नहीं है। एकाकी परिवार, 'अयं निजः परोवेति', 'संगच्छध्वं–संवदध्वं' का अभाव आदि कवि चेतना को झकझोरता है। अतः कवि ने अपने काव्यों में सामाजिक जीवन मूल्यों के प्रति जन मानस को जागृत किया है।

4. मातृ विषयक जीवन मूल्य

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में आदर्श स्थान नारी को दिया गया है। अरुन्धती, लोपमुद्रा, अनुसूया आदि को नारी विषयक मूल्य बोध की दृष्टि से आदर्श एवं अनुकरणीय माना गया है। नारी की विविध उपाधियों में सर्वाधिक समादृता माता को युगपुरुषों की प्रेरक शक्ति कहा गया है। उनके त्याग, वात्सल्य, समर्पण और बलिदान रूप जननी विषयक जीवन मूल्यों से भारतीय संस्कृति आज भी मूल्यवान् है। पं. दवे की काव्य कृति भी इन्हीं मातृ मूल्यों की महिमा से मण्डित है। उन्होंने कारुण्य कादाम्बिनी नामक खण्डकाव्य में जननी की भूमिका विषयक मूल्य बोध का जो गरिमामय वर्णन किया है। यह वर्तमान समाज व युवा पीढ़ी के लिये प्रेरणास्पद है।

भले ही जननी विषयक मूल्य बोधक खण्डकाव्य कारुण्यकादम्बिनी की रचना कवि ने अपनी माता के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने के लिये की हो किन्तु काव्य के रूप में यह विश्व की समस्त माताओं को समर्पित भाव विशेष है।

वस्तुतः जन्मदात्री मां सहर्ष नैसर्गिक कष्टों को सहते हुये सन्तति के लिये सहज समर्पित रहती है। वह करुणा सागर की लक्ष्मी, संस्कार युक्त वाणी देने वाली शारदा तथा पौष्टिक भोजन से पुष्ट करने वाली साक्षात् अन्नपूर्णा सी होती है।[31] उनमें स्नेह, सद्भाव, सहिष्णुता तथा करुणा का भाव होता है। उनका प्रत्येकाचरण मानव मूल्यों का प्रकाश होता है। अतः मातृमूल्यों को भी शाश्वत मूल्यों की श्रेणी में रखा जाता है।

वो माँ ही होती है। जो विपरीत परिस्थिति में भी अपने पुत्रों को भिक्षा हेतु प्रेरित नहीं करती, अपितु श्रमपूर्वक जीवन निर्वाह की प्रेरणा देती है, साथ ही शिक्षा के लिये अपने आत्मज को अपनी आत्मा से दूर करती है। कवि ने इसी भाव को इन शब्दों में कहा है–

> कष्टानां निशितेऽपि कंटक कुले नो भिक्षणे प्रेरितः।
> शिक्षार्थं श्रम जीवनापि गृहतो दूरंच मां प्रेरयत्।।[32]

कवि के इस भाव से प्रेम–धैर्य और दृढ़ता रूप जननी विषयक मूल्यों की अनुभूति और अभिव्यक्ति हो रही है।
कवि के अनुसार मां एक जीवन मूल्य शिक्षिका होती है। वह केवल अपनी सन्तति को ही नहीं, सम्पर्क में आने वाले जनों को भी मूल्यवान् बनाने की सतत् चेष्टा करती है। वह नारियों को निज धर्म पालना हेतु प्रेरित करती है, बालकों से विनय, तरूणी से शील रक्षा तथा प्रौढ़ों से परम्परा पालन की अपेक्षा करती है –

नारीणां निज धर्म पालन कृते युना०चं सम्यव्रते,
बालानां विनये नवोढ़ तरूणीवर्गे च शीलत्रपाम्।
प्रोढ़ाना०च परम्परा परिचये सम्बोधनी निर्भयम्,
आसीत आ वसती स्वगुरूता भावेन वै शिक्षिका।।[33]

त्याग सेवा और समर्पण की प्रतिमूर्ति मां सेवा शुश्रुषा में ही परितोष का अनुभव करती है तथा परितोषात्मक मूल्यों को अपनी सन्तति में सहज समावेश कराती है।
जैसा की कवि ने कहा है कि –

शीते कन्थावृतकृशतनु: कम्बलैश्च्छादयन्ती।
ग्रीष्मे स्विन्ना व्यजनधुनितैर्नो मुदावीजयन्ती।।
शुष्कै भौज्यैरुदरभरिणी चात्मनो: न: कवोष्णै:।
नो जाने सा कति कति रूजोऽस्मत्कृते ह्य प्रसेहे।।[34]

जिसके वात्सल्य के आगे देवता, ज्ञानी, ऋषि, मुनि भी झुक जाते है, ऐसी सनातन मूल्यों की जननी, माता कभी भी किसी भी परिस्थिति में कुमाता नहीं होती चाहे पुत्र भले ही कुपुत्र हो जाय।

'नो माता परितापितापि विषमे भूयात् कुमाता परम्'[35]

उक्त प्रसंगों के माध्यम से कवि ने जननी विषयक जीवन मूल्यों के प्रति युवा पीढ़ी को सजग करने का सार्थक प्रयास किया गया है। वस्तुत: पाश्चात्य संस्कृति स्नेही वे पुत्र जो मातृ मूल्यों से अनभिज्ञ है उनके लिये कवि दवे का यह खण्डकाव्य प्रेरक है। तथा ''मातृदेवोभव'' की संकल्पना का संरक्षक तथा जननी विषयक मूल्यों का सम्पोषक है।
वस्तुत: मानव के वे उदात्त गुण जिसने मानव को मानव बनाया, वहीं मानव मानव मूल्य कहलाया किसी भी राष्ट्र का शरीर, उसकी भौतिक सम्पदा को कहा जा सकता है। किन्तु उस राष्ट्र के मानवों का जीवन मूल्य ही उसका प्राण होता है। इसलिए राष्ट्रीय संस्कृति में मानवीय मूल्यों को ही देखा जाता है। दवे राष्ट्रीय संस्कृति के सम्पोषक कवि है, एतदर्थ उन्होंने शाश्वत मूल्यों को अपनी कृतियों में दृढ़ता पूर्वक स्थापित किया है। जिसे हम आध्यात्मिक–सांस्कृतिक–सामाजिक एवं जननी विषयक मूल सिद्धान्त की अन्तश्चेतना भी कह सकते है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. रामचरित मानस
2. संस्कृत हिन्दी कोष वामन शिवराम आप्टे पृ.सं. 812
3. मूल्य–मीमांसा, गोविन्द चन्द्र पाण्डेय पृ.सं. 1
4. सौन्दर्य मूल्य और मूल्यांकन, डॉ. रमेश कुन्तल मेघ पृ.सं. 3
5. इन साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका खण्ड 22 पृ.सं. 962
6. डाईमेन्शन्स ऑफ वेल्यूज, डॉ. राधाकमल मुखर्जी पृ.सं. 9
7. भारतीय संस्कृति, डॉ. देवराज पृ.सं. 5
8. धर्म और समाज, डॉ. राधाकृष्णन पृ.सं. 19
9. धर्मयुग (24 फरवरी 1980) महादेवी वर्मा पृ.सं. 25
10. मनुस्मृति : 6/92
11. ललितालहरी – 60
12. ललितालहरी – 61
13. भारतीविलास – 44
14. अपागंलीला श्लोक 27–28
15. सौन्दर्यलीलामृतम् – श्लोक 8
16. सौन्दर्यलीलामृतम् – श्लोक 3
17. कालकौतुकम् – 18
18. अपागं लीला श्लोक 11
19. केलिभूकैतवम् – 2/24
20. केलिभूकैतवम् – 2/25
21. केलिभूकैतवम् – 2/31
22. केलिभूकैतवम् – 3/3
23. केलिभूकैतवम् – 3/11
24. कारुण्यकादम्बिनी – 1
25. कारुण्यकादम्बिनी – 99
26. कारुण्यकादम्बिनी – 99
27. वियोगशतकम् – श्लोक 77
28. सौन्दर्यलीलामृतम् – श्लोक 12
29. भारती विलास – श्लोक 186
30. कारुण्यकादम्बिनी – 91
31. कारुण्यकादम्बिनी – 02
32. कारुण्यकादम्बिनी – 09
33. कारुण्यकादम्बिनी – 15
34. कारुण्यकादम्बिनी – 36
35. कारुण्यकादम्बिनी – 53

महाकवि पं. श्रीराम दवे